ओ३म्

आर्य-संसार : वार्षिक विशेषांक

कलकत्ता

२०२९ वि० ❀ दिसम्बर, १९७२ ई०

ओ३म्

आर्य संसार

वार्षिक - विशेषांक

पौष
२०२९

●

दिसम्बर
१९७२

●

सम्पादक :
उमाकान्त उपाध्याय, एम० ए०

●

मूल्य :
इस अंक का १ रुपया
वार्षिक २ रुपये

ब्राह्मण की 'गौ'

●

लेखक :
'अभय' विद्यालङ्कार

●

प्रकाशक :
आर्य-समाज, कलकत्ता
१९, विधान सरणी,
कलकत्ता-६.

प्रकाशकीय

विगत कई वर्षों से आर्य-संसार के वार्षिक विशेषाङ्क के रूप में किसी महत्त्वपूर्ण स्थायी साहित्य का प्रकाशन किया जाता है। इस वर्ष "ब्राह्मण को गौ" नामक पुस्तक का प्रकाशन हो रहा है।

अथर्ववेद में 'ब्रह्मगवी' एक सूक्त है। इसमें ब्राह्मण की वाणी का बड़ा सुरुचिपूर्ण वर्णन हुआ है। श्री अभयजी ने इस सूक्त का हृदय-ग्राही विवेचन प्रस्तुत किया है। स्वाध्यायशील पाठक पूर्ण लाभ उठावेंगे, ऐसी आशा है।

इस अवसर पर हम विद्वान् लेखक के प्रति हृदय से आभार प्रकट करते हैं।

प्रेस की हड़ताल और प्रकाशन की अन्य असुविधाओं के कारण विशेषाङ्क दो मास बिलम्ब से प्रकाशित हो रहा है, एतदर्थ हम खेद प्रकाश करते हैं। भविष्य में आर्य-संसार का प्रकाशन नियमित हो सके, इसके लिए हम भरपूर चेष्टा में हैं।

—प्रकाशक

आर्य समाज कलकत्ता के अधिकारी और अन्तरग सदस्य

बैठे हुए बायें से दाहिने श्रीमती सुनीति देवी शर्मा (अन्तरग सदस्य), श्रीमती विद्यावती समरवाल (प्रधाना आर्य स्त्री समाज, कलकत्ता), श्री छबील्दास सैनी (उप प्रधान), श्री बनारसीदास अरोड़ा (प्रधान), श्री प० उमाकान्त उपाध्याय (आचार्य), श्री लक्ष्मण सिंह (उप प्रधान) श्री कृष्णलाल खट्टर (मन्त्री)। खड़े हुए बायें से दाहिने श्री सुखदेवजी शर्मा (अन्तरग सदस्य), श्री यशपालजी वेदालंकार (उप मन्त्री), श्री शिवदासजी (अन्तरग सदस्य), श्री पुनमचन्दजी आर्य (अधिष्ठाता आर्य वीर दल) श्री श्रीरामजी जायसवाल (उप मन्त्री), श्री भीनाथदासजी गुप्त (कोषाध्यक्ष)। दूसरी पंक्ति में खड़े हुए बायें से दाहिने श्री रामस्वरूप खन्ना (हिसाब परीक्षक), श्री अमर सिंह सैनी (उप मन्त्री), श्री प्यारेलाल मनचन्दा (अन्तरग सदस्य) श्री रामलखन सिंह उप प्रधानाध्यापक, रघुमल आर्य विद्यालय (पदेन सदस्य)।

आर्य-स्त्री-समाज, कलकत्ता, पदाधिकारी एवं अन्तरंग सदस्य और कतिपय बालक-बालिकाएँ

आर्य समाज कलकत्ता, बालक सत्संग

आर्य समाज कलकत्ता का साप्ताहिक सत्संग

विज्ञापन-सूची

ओ३म्

आर्य समाज की प्रगति
का संक्षिप्त सिंहावलोकन

उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ में जब भारत देश अधोगति की पराकाष्ठा पर पहुँच रहा था, अबलायें अशिक्षा, बाल-विवाह, वृद्धविवाह आदि कुरीतियों की चक्की मे पिसकर करुण क्रन्दन कर रही थी : युवा वर्ग वेदिक मार्ग से भटक कर मत मतान्तरों में भ्रमित हो किंकर्तव्य विमूढ़ होते जा रहे थे, आर्य जाति छूत छात जैसे गलित कुष्ठ रोग से विदीर्ण होकर विनाश की ओर शनैः शनैः बढ़ती जा रही थी वर्णाश्रम धर्म की मर्यादा लुप्त हो रही थी, उस समय जगत पिता के इस नियम के अनुसार—

"धरा जब-जब विकल होती, मुसीबत का समय आता।
किसी भी रूप में कोई, महा मानव चला आता॥

आदित्य ब्रह्मचारी महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपने अध्ययन स्वाध्याय, तप, और त्याग की पूँजी लेकर अदम्य साहस अटूट विश्वास के साथ देश के सर्वतोमुखी उत्थान के लिये निर्भीकतापूर्वक कार्य क्षेत्र में पदार्पण किया।

इसी क्रम में स्थान स्थान पर आर्य समाज स्थापित हुए। विवेकी जनता उत्साहित हो उठी आज ९७ वर्षों का प्राचीन इतिहास हमारी पृष्ठ भूमि में है।

कलकत्ता महानगरी में भी आर्य समाज की नींव पड़ी। सभी श्रेणियों की जनता ने हार्दिक समर्थन किया। विगत ८७ वर्षों की लम्बी अवधि में हमारे पूर्वज आर्य समाज के निष्ठावान सेवकों के मन्तव्यों के अनुसार वैदिक धर्म के प्रचार, प्रसार और जनता जनार्दन के ऊपर विभिन्न अवसरों पर आये हुए भीषण विपत्तियों में निष्कामभाव से सेवा की है।

इनमें कुछ अवसर ये हैं—

पूर्निवाल्या मेदनीपुर सन् १९४२, प्रलयंकर दुर्भिक्ष पूर्व-बंग सन् १९४३, नोआखाली नरसंहार सन् १९४६, विभाजन जनित विपत्तियों पर १९४७ सहायता केन्द्र नोआखाली। इसके अतिरिक्त १९६४ से १९७० तक कई अवसरों पर बहुमुखी सेवा कार्य तथा अनुकरणीय संचालन किया है।

१९७२ में भी पाकिस्तान के नापाक इरादों द्वारा इतिहास दुर्लभ अमानुषिक नरसंहार तथा लोमहर्षक अत्याचारों से पीड़ित होकर और हुए शरणार्थियों की सेवा आर्य समाज रिलीफ सोसाइटी के तत्वावधान में शीत से ठिठुरते हुए परिवारों के बच्चे उनके केम्पों में जाकर रजाई और आवश्यक वस्त्र आदि वितरण किये। इन्हीं सब कार्यवाहियों के आलोक में आर्यजन इस वर्ष में भी वैदिक धर्म संस्कृति और सभ्यता के विस्तार के लिये अपना यह ८७वाँ वार्षिकोत्सव बड़े उत्साहपूर्वक मना रहे हैं।

ये सभी कार्य जो कुछ हुए और हो रहे हैं—हमारे पूर्व वर्ती तथा वर्तमान अधिकारियों की लगन एवं परिणाम हैं, तथा जिन्होंने अपने सहयोग द्वारा हमें अपने कार्य में आगे बढ़ाया वे सभी श्रेय के एक अंशीदार हैं—

आर्य समाज को अभी बहुत कार्य करने की आवश्यकता है। हम चाहते हैं कि आर्य समाज द्वारा वैदिक मान्यताओं और सिद्धान्तों का अधिकाधिक प्रचार हो। इसके लिये नित नवीन योजनायें प्रस्तुत करके क्रियात्मक रूप देने का सतत् प्रयत्न किया जायगा।

आर्य समाज कलकत्ता स्थायी रूप से जिन विविध क्षेत्रों

में कार्य कर रहा है—हम उनकी निम्न प्रकार गणना कर सकते हैं।

१. शिक्षा संस्थाएँ—

आर्य समाज कलकत्ता के तत्वावधान में प्रत्यक्षतः दो उच्चतर विद्यालय 'रघुमल आर्य विद्यालय' एवं 'आर्य कन्या महाविद्यालय' तथा अप्रत्यक्ष रूप से अन्य अनेक आर्य विद्यालय शिक्षण सेवायें कर रही हैं, इनमें हमारी इन शिक्षा संस्थाओं की यह विशेषता है कि छात्र छात्राओं को चारित्रिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक विकास तथा व्यापक आर्यत्व निर्माण के द्वारा सुगठित जीवन दर्शन के लिये विशेष दीक्षायें प्रदान की जाती है, जिससे ये बालक सुन्दर नागरिक और अपने भावी जीवन के लिये अनुकूल प्रस्तुति प्राप्त कर सकें।

२. पुस्तकालय—

आर्य समाज मन्दिर में प्रवेश करते ही दक्षिण पार्श्व में अपने समाज का भव्य पुस्तकालय एवं वाचनालय है, जिसका समय प्रातः ७ से ९ बजे एवं सायं ६ से ८ बजे तक है। पुस्तकालय में मुख्यतः वेद, वैदिक साहित्य, धर्म शास्त्र, दर्शन शास्त्र, व्याकरण शास्त्र, साहित्य शास्त्र एवं संस्कृत, हिन्दी, बंगला, अंग्रेजी भाषाओं में लिखित अनेकानेक विविध पुस्तकें सुसज्जित हैं। पुस्तकालय में ही अन्तर्भुक्त वाचनालय है, जिसमें देश विदेश से विविध भाषाओं में प्रकाशित समाचार पत्रों एवं धार्मिक, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक, साहित्यिक एवं राजनैतिक पत्रिकाओं की सुविधापूर्वक सुव्यवस्था है।

पुस्तकाध्यक्ष महाशय रघुनन्दनलालजी एक अनन्य धर्मनिष्ठ साहित्य-प्रेमी विद्वान् तथा कुशल प्रबन्धक हैं, जिनके निरन्तर निःस्वार्थ प्रयासों से हमारा यह पुस्तकालय, वाचनालय क्रमशः प्रगति पर अग्रसर है।

३. दातव्य चिकित्सालय—

'महर्षि दातव्य चिकित्सालय' आर्य समाज, १९, विधान सरणी की स्थापना सन् १९५७ ई० में हुई थी, तबसे यह चिकित्सालय आयुर्वेदिक औषधियों द्वारा रोग पीड़ित मानवों की निःशुल्क सेवा करता आ रहा है, जिसमें प्रति वर्ष लगभग ३५ हजार रोगियों को सुचिकित्सा प्राप्त होती है। रोगियों की दैनिक उपस्थिति शताधिक है। चिकित्सालय के सुयोग्य चिकित्सक प० श्री अमृतनारायण झा यथा योग्य औषधि वितरक प्रस्तुतकारक श्री कुमार ठाकुर तथा अन्य अनुसेवियों की नैष्ठिक सेवायें प्राप्त हैं।

४ सत्संग भवन व अथितिशाला

संगमरमरी दीवालों पर महर्षि श्री दयानन्दजी सरस्वती की आलोकमय उत्प्रेरक जीवनी के सजीव चित्रांकन (चित्रावली) से कलकत्ता आर्य समाज का भवन स्वतः एक दर्शनीय स्थान बना हुआ है महर्षि जीवनी के भाव प्रवण चित्रांकन से चित्रकार श्री चारुचन्द्र खान की कलाकृति अमरत्व प्राप्त कर गयी है। समाज के इस विशाल भवन में एक सुन्दर व्याख्यान मंच यज्ञशाला स्नानागारादि निर्मित है।

भवन की दूसरी मंजिल पर बिड़ला आर्य अतिथि शाला है, जिसमें वैदिक धर्म प्रेमी आर्य सिद्धान्त के अनुयायी अतिथियों के ठहरने का अधुनातन वस्तु कला जन्य उत्तम प्रबन्ध है।

आर्यजनों के विवाहादि विशेष उत्सवों के आयोजनों की व्यवस्था भी भवन में होती है।

५. आर्य स्त्री समाज

प्रति बुधवार २ ३० से ४ बजे तक आर्य समाज मंदिर के सत्संग भवन में ही आर्य स्त्री समाज का साप्ताहिक सत्संग आयोजित होता है। यद्यपि बहुत सी बहनें नगर के दूर दूर के अञ्चलों में निवास करने के कारण साधनों के अभाव में उपस्थित नहीं हो पाती, फिर भी आर्य स्त्री समाज की संगठनशील बहनों का इस दिशा में प्रयत्न सराहनीय होता है। आर्य स्त्री समाज की बहनों का आर्य सामाजिक पर्वों, विशेष विशेष अवसरों तथा वार्षिकोत्सव के प्रसंग में भी हमें सदा ही सहयोग उपलब्ध होता है। हमारे सभी

समाजोन्नति सम्बन्धी कार्यों के लिये धन संग्रह की दिशा में श्रीमती विद्यावतीजी सभरवाल, श्रीमती विद्यावतीजी दत्त व श्रीमती सुनीति देवी शर्मा, श्रीमती शान्ती देवी सैनी, व प्रेमलताजी सहगल, मेवा देवी आर्य, श्रीमती शीलवती बिश्नोई आदि देवियों का प्रमुख सहयोग प्राप्त होता है।

६ बालक सत्संग

बालक सत्संग का कार्यक्रम आर्य बच्चों में धार्मिक प्रवृत्ति पैदा करने वैदिक संस्कार डालने के निमित्त आर्य समाज कलकत्ता द्वारा विगत कई वर्षों से बड़े ही सुन्दर ढङ्ग से चलाया जा रहा है। रविवार को प्रातः ६ से १० बजे तक बच्चों को सन्ध्या अग्निहोत्र आदि सिखाया जाता है। बालक-बालिकाओं की उपस्थिति लगभग १०० के हो जाया करती है। पं० प्रियदर्शनजी सिद्धान्तभूषण द्वारा बड़े ही प्रेरणात्मक ढङ्ग से शिक्षा दी जा रही है। अब तो पं० जी द्वारा उन्हीं बच्चों में से ही प्रधान मन्त्री तथा अन्तरंग सदस्यों का चुनाव करके एक उत्तरदायी परिषद की स्थापना कर दी गई है। इस प्रकार उन्हें योग्य नागरिक बनाने की दिशा में भी ठोस प्रयत्न किया जाता है।

७. मासिक पत्रिका आर्य संसार—

आर्य समाज कलकत्ता अपनी मासिक पत्रिका 'आर्य-संसार' का प्रकाशन नियमित रूप से नवम्बर सन् १९५८ ई० से करता आ रहा है। पत्रिका को प्रोफेसर पं० श्री उमाकान्त उपाध्याय एम० ए० का सुसम्पादन प्राप्त है। पत्रिका में वैदिक धर्म आर्य संस्कृति एव सभ्यता तथा ज्ञान विज्ञान और साहित्य संबन्धी गवेषणापूर्ण सुन्दर लेख साथ ही आर्य समाज की गतिविधियों का विवरण प्रकाशित होता रहता है।

८. दैनिक तथा साप्ताहिक कार्यक्रम—

समाज में नित्य नियमित प्रातः ७ से ८ संध्या हवन तथा महर्षि प्रणीत ग्रन्थों का पाठ होता है। रविवार प्रातः ८ से ११ तक संध्या हवन के पश्चात् साप्ताहिक सत्संग, कथा, व्याख्यान, भजनोपदेश आदि होते हैं जिसमें आर्यों की अच्छी समुपस्थिति होती है समाज के आचार्य प० उमाकान्तजी उपाध्याय द्वारा वेद मन्त्रों की व्याख्या बड़े ही सरल और बोध गम्य शब्दों में होती है, साथ ही बाहर से पधारे हुये विद्वानों द्वारा भी आध्यात्मिक प्रवचन की व्यवस्था रहती है।

९. प्रचार कार्य बंगभाषा में—

पं० श्री दीनबन्धुजी वेद शास्त्री जो कि पश्चिम बगाल के लब्ध प्रतिष्ठ वैदिक विद्वान हैं प्रतिदिन साय ५ से ६ बजे तक कालेज स्क्वायर पार्क में प्रवचन करते हैं और श्रद्धालुजन लाभ उठाते हैं।

१० जल क्षेत्र—

श्रीमती 'महादेवी चेरिटेबल ट्रस्ट' की ओर से आर्य समाज मन्दिर के द्वार के सामने ही एक प्याऊ की वर्षों से सुन्दर व्यवस्था है जिससे हजारों तृषित व्यक्ति शीतल जल से तृप्ति लाभ करते हैं।

इन सबके अतिरिक्त आर्य समाज कलकत्ता द्वारा समय-समय पर अन्य अनेक प्रकार के धार्मिक, सामाजिक, सास्कृतिक विविध कार्यों का आयोजन होता रहता है।

आर्य समाज कलकत्ता के कार्य सम्पादन हेतु जिन महानुभावों ने तन-मन या धन से सहयोग दिया है, सबका हार्दिक धन्यवाद।

मन्त्री

कृष्णलाल खट्टर

आर्य - समाज कलकत्ता
१६७२-७३ वर्ष के अधिकारी तथा सदस्यगण

दिनांक १६ ७-७२ रविवार सत्संग के पश्चात् आर्य-समाज मन्दिर १६, विधान सरणी में वार्षिक साधारण सभा का अधिवेशन श्री बनारसीदासजी अरोड़ा प्रधान आर्य-समाज के सभापतित्व में सम्पन्न हुआ। नये अधिकारियों तथा अन्तरंग सदस्यों की नामावली निम्न प्रकार है :—

(१) प्रधान : श्री बनारसीदास अरोड़ा (न्यू अलीपुर)
(२) उप प्रधान : श्री लक्ष्मण सिंह
(३) ,, ,, : श्री छबीलदास सैनी
(४) ,, ,, : श्री रुलियाराम गुप्त
(५) मन्त्री : श्री कृष्णलाल खट्टर
(६) उप-मन्त्री : श्री यशपालजी वेदालंकार
(७) ,, ,, : श्री राम आयसवाल
(८) ,, ,, : श्री अमरसिंह सैनी
(९) कोषाध्यक्ष : श्री नाथदास गुप्त
(१०) पुस्तकाध्यक्ष : श्री महाशय रघुनन्दनलालजी
(११) उप-पुस्तकाध्यक्ष : श्री दशरथलाल गुप्त
(१२) अधिष्ठाता आर्य वीर दल : श्री पूनमचन्द आर्य
(१३) हिसाब परीक्षक : श्री रामस्वरुप खन्ना
(१४) अन्तरंग सदस्य : श्री पं० उमाकान्तजी उपाध्याय
(१५) ,, ,, : श्री सुखदेवजी शर्मा
(१६) ,, ,, : श्री शिवदासजी
(१७) ,, ,, : श्री प्यारेलालजी मनचन्दा
(१८) ,, ,, : श्री सोमदेवजी गुप्त
(१९) ,, ,, : श्रीमती सुनीतिदेवी शर्मा
(२०) पदेन सदस्य : श्रीमती विद्यावती सभरवाल
(प्रधाना आर्य स्त्री समाज कलकत्ता)
(२१) ,, ,, : श्रीमती कमला शूद
(प्रधानाध्यापिका आर्य कन्या महाविद्यालय)
(२२) ,, ,, : श्री रामलखन सिंह
(उप-प्रधानाध्यापक रघुमल आर्य विद्यालय)

●

ओ३म्

प्रस्तावना

आप स्वाध्यायप्रेमी सज्जनों की सेवा में इस वर्ष अथर्ववेद का यह ब्रह्मगवी सूक्त (पञ्चम काण्ड का १८ वां सूक्त) स्वाध्याय के लिये समर्पित है। इस सूक्त में एक महाबली प्रजा-द्रोही राजा के मुकाबले में एक बिचारे ब्राह्मण की गरीब सी वाणी को दिखाया है जिसमें कि अन्त में इस 'ब्राह्मण-वाणी' की ही अनायास विजय होती है। ईश्वर शासित इस संसार में यह घटना कोई नयी नहीं है। ऐसा सदा ही होता है। यह सनातन सत्य है। पर हम इसे देखते हुये भी नहीं देखते।

इस सत्य का दर्शन हमें कौन करवावे? भारतवर्ष की रजःकण से उत्पन्न हुई हम सन्तानों में, जिनमें कि वैदिक सभ्यता चिरकाल तक कभी पूर्ण यौवन में विकसित रही है, यदि वेद का यह सुन्दर ओजस्वी सूक्त-गीत इस सत्य को सुझाने में सहायक हो तो इसमें कुछ आश्चर्य नहीं है।

यह वैदिक सूक्त तो राजा प्रजा दोनों के लिये है। इस सूक्त के सार्वभौम, सार्वदेशिक उपदेश को यदि दोनों (राजा और प्रजा) सुनें, स्वीकार करें तो निस्सन्देह दोनों का इसमें कल्याण होगा। पर हम प्रजाजनों को तो इस सूक्त से अपने लिये उपदेश लेना ही चाहिये। इसमें सन्देह नहीं कि यदि हम इस सूक्त में सुझाई गई सचाई को स्वीकार कर लें तो मरे हुये, दबे हुये, बिलकुल हताश हुये हम भारतवासियों में नये प्राण का संचार हो जाय।* इसमें हमारे लिये आशा का आत्मविश्वास का सदेश है। यदि हम इसे सुनलें तो अन्याय की भयङ्कर चतुरङ्गिणी फौज से चारों तरफ घिरे हुये भी बेशक हम हों तो भी—

'अद्य जीवनि मा श्वः'

'अन्याय आज बेशक जीवित है, पर कल नहीं' इस अटल श्रद्धा के कारण इस दशा में भी निर्भीक और निश्चिन्त होकर अपने मार्ग में चलते-चले जायें। इस सूक्त के ८ वें मन्त्र में जिस दिव्य अस्त्र का वर्णन है और जिसे ९ वें मन्त्र में अमोघ अस्त्र कहा है, यदि हम सचमुच पूरे दिल से उस अस्त्र को ग्रहण करलें तो हमें कौन दुनिया में नीचा रख सकता है हम धनुष बाण (तोप बन्दूक) को ही हथियार समझते हैं! और इनके अभाव को देखकर दुःखी होते हैं, पर तब हमें पता लग जाय कि हमारा असली बल, हमारा असली शस्त्र सदा हमारे पास है। उसके सामने तोप बन्दूक बिलकुल हेच हैं, ये बेकार पड़ी रह जाती हैं।

ईश्वर करे कि इस सूक्त का अध्ययन हम असहायों में हमारे असली बल को अनुभव करा दे, हमारे हाथों में हमारा सच्चा अमोघ अस्त्र पकड़ा दे।

—'अभय'

---

* यह परतन्त्रता के दिनों में लिखा गया था।

—सम्पादक

ओ३म्

प्रारम्भिक विवेचना

पाठक इस ब्रह्मगवी सूक्त का अर्थ पढ़ना प्रारम्भ करें, इससे पहिले यह आवश्यक है कि वे अपने हृदयों में कुछ बातें अच्छी तरह जमा लें। शब्दों के अर्थ, शब्दों के भाव और अभिप्राय समय-समय पर बदलते रहते हैं। वेद काल के उस अति प्राचीन युग में एक शब्द का क्या अर्थ था, इसके साथ क्या-क्या भाव जुड़े हुये थे, यह सब कुछ आज हम ठीक-ठीक नहीं समझ सकते। जब कभी वेदिक-भाषा बोली जाती थी, उस समय के लोग उनके पूरे भाव एक-दम ग्रहण कर सकते थे, पर आज हजारों लाखों वर्षों के बाद एक नयी भाषा (लौकिक संस्कृत भी वैदिक संस्कृत की अपेक्षा एक बिलकुल नई भाषा है) बोलने वाले हम लोगों को वेदिक शब्दों का अर्थ समझाने के लिये तो बड़े विशेष प्रयत्न की आवश्यकता है। वैदिक भाषा से लौकिक संस्कृत भाषा इतनी भिन्न हो गई है कि वैदिक शब्दों का अर्थ लौकिक संस्कृत में बहुत बदल ही नहीं गया किन्तु बिलकुल उलटा तक हो गया। व्रात्य, असुर आदि बहुत से शब्द उदाहरण के लिये उपस्थित किये जा सकते हैं। तात्पर्य यह है कि हमें ब्रह्मगवी सूक्त का ठीक ठीक आशय जानने के लिये भी इस सूक्त के कुछ मुख्य शब्दों का (जो कि शब्द इस सूक्त में बार बार आते हैं) अर्थ समझने के लिये कुछ विशेष प्रयत्न करना आवश्यक होगा। इस सूक्त के ये मुख्य शब्द चार हैं। १—गौ २—'अद्' धातु के रूप (जैसे अत्तवे, अद्यात्, अन्न इत्यादि) ३—ब्राह्मण ४—वैतहव्य।

वैसे यह सूक्त बहुत कुछ स्पष्ट है। इसकी वाक्य रचना बहुत सरल है। यदि हम इन चार शब्दों को ऐसे ही रहने दें—इनका स्पष्टीकरण न करें—तो इस सूक्त का सारांश निम्न शब्दों में बोला जा सकता है।

'हे राजा! तू 'ब्राह्मण' की "गौ" को मत अदन कर, मत नाश कर। ब्राह्मण की हिंसा मत कर। इसका बड़ा घोर दुष्परिणाम होगा। मारी जाती हुयी 'ब्राह्मण' की 'गौ' राष्ट्र को मार डालती है। 'वैतहव्य' सैकड़ों हजारों थे, पर वे 'गौ' के 'अदन' करने के कारण सब मारे गये... ..।

इस सारांश को सुन कर पाठक देख लेंगे कि यदि केवल इन चार शब्दों का अर्थ हमें स्पष्ट हो जाय तो फिर इस सूक्त के स्पष्ट हो जाने में कुछ देर न लगेगी। इसलिये इस सूक्त की विवेचना के लिये जो प्रारम्भिक चार बातें जान लेनी हमें आवश्यक हैं वह यह हैं—

१. इस सूक्त में ब्राह्मण की 'गौ' क्या है?
२. 'अदन' करने का क्या अभिप्राय है?
३. 'ब्राह्मण' कौन हैं?
४. 'वैतहव्य' कौन हैं?

यद्यपि 'गौ' और 'ब्राह्मण' ये दो शब्द ऐसे हैं, जिनके अर्थ न केवल संस्कृत भाषा में बल्कि हिन्दी भाषा में भी अति प्रसिद्ध हैं तो भी इनके ये प्रसिद्ध अर्थ, जिनसे कि हम सुपरिचित हैं, वे नहीं हैं जो कि वेद में इनके अर्थ प्रसिद्ध हैं और जो कि इस सूक्त में इन शब्दों का वास्तविक अर्थ है। यही बात अद् धातु के विषय में है। ऊपर कहा ही जा चुका है कि वेद के अति प्राचीन शब्दों के अर्थ, भाव और

अभिप्राय इस समय तक बहुत कुछ बदल चुके हैं। इसलिये जहाँ "वैतहव्य" शब्द का (जिससे कि हम अपरिचित हैं) अर्थ हमें जानना होगा, वहाँ 'गौ', 'ब्राह्मण' और 'अदन' शब्द का आशय भी हमें प्रयत्न पूर्वक खोजकर अपने हृदय में जमाना होगा।

हम इन चारों बातों पर क्रमशः विचार करते हैं :—

१—ब्राह्मण की गौ क्या है ?

इस शीर्षक के नीचे हमें 'गौ' शब्द पर ही विचार करना है। गौ का सम्बन्धवाचक जो यहाँ ब्राह्मण शब्द है, उसपर विचार "ब्राह्मण कौन है" इस तीसरे प्रकरण में हो जायगा।

आजकल की अपनी भाषा बोलनेवाले हमलोगों को तो 'गौ' यह सुनकर 'गाय' कहलानेवाले, चार पैरोंवाले प्रसिद्ध पालतू पशु के अतिरिक्त और कुछ ध्यान नहीं आता है। हमारे मनों में इस शब्द के साथ इसी अर्थ का सम्बन्ध जुड़ा हुआ है। बोलते बोलते यह सम्बन्ध दृढ हो चुका है। अतः यद्यपि वेद में तो इस अर्थ के साथ साथ 'गौ' शब्द के इससे भिन्न भी बहुत अर्थ हैं, तो भी हममे से लौकिक सस्कृत पढा हुआ व्यक्ति भी जब सूक्त में 'गौ' शब्द सुनेगा तो वह अपने इसी दृढ सस्कारवश 'गाय पशु' इस अर्थ के अतिरिक्त और किसी अर्थ की कल्पना 'गौ' शब्द से नहीं कर सकेगा।

पर हमें यह विदित होना चाहिये कि वेद के शब्दकोष (निघण्टु) का प्रारम्भ ही 'गौ, ग्मा, ज्मा, क्ष्मा' इस तरह गौ शब्द से होता है और वहाँ पर ही 'गौ' शब्द का अर्थ गाय नहीं है, किन्तु पृथ्वी है। अर्थात् वेद में 'गौ' का प्रसिद्ध अर्थ गाय नहीं है। वेद में 'गौ' का सबसे मुख्य अर्थ पृथ्वी ही कहा जा सकता है। वैदिक साहित्य में गौ शब्द के प्रसिद्ध अर्थ क्रमशः 'पृथ्वी', 'द्यौ', 'लोक', 'वाणी' और 'गाय' हुये हैं, फिर लाक्षणिक अर्थों में जायँ तो गो शब्द 'धन, किरण, प्रकाश, इन्द्रिय, जल, स्तोता और गाय' से सम्बन्ध रखनेवाले 'दूध, घी, चमड़ा' आदि तक का वाचक हुआ है। गौ शब्द के वेद मे इतने अर्थ होते हैं। इसलिये इस सूक्त का ठीक अर्थ जानने के लिये जो हमें सबसे पहला प्रयत्न करना चाहिये, वह यह है कि हम अपने दिलों से यह सस्कार हटा दें कि गो शब्द का अर्थ केवल 'गाय' ही होता है। यदि हम इतना भी न करेंगे तो हम वेद के साथ बड़ा अन्याय करेंगे। यह इसलिये कहना आवश्यक हुआ है, क्योंकि ग्रीफिथ आदि पाश्चात्य टीका-कारों ने इस सूक्त के गौ शब्द का अर्थ 'गाय' ही कर डाला है। इसका कारण यही पहिले से पड़ा हुआ सस्कार है। यद्यपि (इस सूक्त के पढने पर पाठक देखेंगे) गाय अर्थ करने पर इस सूक्त का अर्थ किसी तरह सगत नहीं होता, तो भी यही अर्थ करना पूर्व सस्कारों की प्रबलता को सिद्ध करता है। इसलिये वेद प्रेमी पाठकों से निवेदन है कि वे अपने मन मे पहिले यह जमा लें कि वेद मे गो शब्द के अर्थ पृथ्वी, द्यौ, वाणी, किरण, गाय आदि बहुत से (कम से कम ११ या १२) अर्थ होते हैं और इन सब अर्थों में गो शब्द वेद मन्त्रों मे बार बार प्रयुक्त हुआ है। जिन्होंने वेद का कुछ भी स्वय स्वाध्याय किया है, वे तो यह बात जान चुके होंगे कि गो शब्द वेद मे इतने अधिक (११, १२) अर्थों मे जगह जगह व्यवहृत होता है, पर साधारण पाठक भी यह अच्छी तरह समझ लें कि गो शब्द के इन ११, १२ अर्थों मे से भी 'गाय' यह अर्थ गो शब्द का मुख्य अर्थ नहीं है। अस्तु,

तो अब हमें यह विचारना है कि 'पृथिवी' आदि अनेक अर्थों में से इस सूक्त मे गो शब्द का कौन सा अर्थ है। यदि हम सूक्त का जरा ध्यान से अध्ययन करें तो हमें पता लगेगा कि यहाँ गो शब्द का अभिप्राय 'वाणी' है, पृथिवी, द्यौ, गाय नहीं। इस सूक्त की व्याख्या जब पाठक पढेंगे तो उन्हें ऐसे सकेत तो जगह जगह दिये जायेंगे, जिनसे पता लगे कि इस सूक्त मे 'गो' शब्द का अर्थ गाय नहीं है। यहाँ तो हम इस बात की सिद्धि के लिये कि इस सूक्त में 'गौ' का अर्थ वाणी ही है, इसी सूक्त मे विद्यमान एक साक्षी

देना पर्याप्त समझते हैं। इस अत्यन्त स्पष्ट अतः साक्षी के सुन लेने पर हमें किसी अन्य प्रमाण की आवश्यकता न रहेगी। इस सूक्त का आठवाँ मन्त्र पढ़िये, वह इस प्रकार है :—

> जिह्वा ज्या भवति कुल्मलं वाक्,
> नाडीका दन्तास्तपसाऽभिदिग्धाः
> तेभिर्ब्रह्मा विध्यति देवपीयून्,
> हृद्बलैर्धनुर्भिर्देवजूतैः ॥

इस मंत्र को इस सूक्त का मुख्य मन्त्र समझना चाहिये। (इस मन्त्र के अर्थ को हमने चित्र द्वारा भी स्पष्ट किया है।) इस मन्त्र में रूपक अलङ्कार से यह बतलाया गया है कि सताने वाले राजा को ब्राह्मण अपने इस 'गौ' रूपी धनुष से कैसे नष्ट करता है। इस धनुष के साथ जो गौ का रूपक है, उसमें धनुष के अंगों की वाणी के अंगों से तुलना की गई है, न कि गाय पशु के अंगों से।

रूपक इस प्रकार है—

धनुष	वाणी
ज्या (प्रत्यञ्चा)	(जिह्वा) जीभ है।
बाणदण्ड	उच्चारित शब्द हैं।
बाणी की नोक	नाड़ियाँ (nerves) हैं
(अग्नि)	तप है
धनुर्दण्ड	हृदय बल है

यदि यहाँ गौ का अभिप्राय गाय होता तो धनुष की उपमा जीभ, उच्चारित शब्द आदि (वाणी के अवयवों) से न देकर सींग पूंछ आदि (गाय के अवयवों) से दी गई होती। यह इतना स्पष्ट है कि आश्चर्य होता है कि इस सूक्त के 'गौ' शब्द का अर्थ गाय कर डालने वाले टीकाकारों का ध्यान इस पर कैसे न गया। हाँ यदि यह मान लिया जाय कि वेद की बातें अप्रासङ्गिक, असम्बद्ध अयुक्ति युक्त होती हैं, तब तो उनका इस इतनी स्पष्ट बात पर ध्यान न जाना समझ में आ जाता है। बात यह है कि पाश्चात्य विद्वान् (तथा उसी प्रकृति वाले या उन का अनुसरण करने वाले कुछ भारतीय) यह श्रद्धा तो नहीं रखते हैं कि वेद के अर्थ कुछ गौरवयुक्त या कम से कम युक्तियुक्त अवश्य हैं, इसलिये वेद का अर्थ करने के लिये वे कोई सावधानी रखने का यत्न नहीं करते। इसलिये स्वभावतः अपने पूर्व संस्कारों (लौकिक संस्कृत के संस्कारों) के वश हो कर कुछ का कुछ अर्थ कर डालते हैं। अस्तु,

इस सूक्त में गौ-शब्द का अभिप्राय तो निश्चय से वाणी ही है, पर इसका यह मतलब नहीं कि गो-शब्द के अन्य अर्थों का इससे कुछ सम्बन्ध नहीं। असल में गो-शब्द के जितने अर्थ हैं, उन सब का ही आपस में सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध को हम आगे दिखलायेंगे। यहाँ इतना कहना है कि यद्यपि यहाँ 'गौ' शब्द वाणी के लिये प्रयुक्त हुआ है, तो भी इस में इस अर्थ के लिये वाणी के अन्य वैदिक पर्यायवाची शब्द (सरस्वती गी आदि) या 'वाण' शब्द ही स्पष्ट न रखकर जो 'वाणी' के लिये 'गौ' शब्द प्रयुक्त हुआ है, वह एक विशेष प्रयोजन के लिये है। इसमें जो 'गौ' शब्द का अभिप्राय है, उसे यदि हम आज-कल की अपनी भाषा में ठीक ठीक प्रकट करना चाहें तो हम 'वाण-रूप गाय' इस तरह अधिक से अधिक ठीक रूप में बोल सकते हैं। यह भाव इस सूक्त में 'वाणी' शब्द रखकर कभी नहीं प्रकट किया जा सकता था। 'गौ' शब्द में ही यह भाव भरा हुआ है। गौ-शब्द के साथ एक निर्दोषता, भोलेपन रक्षणीयता का भाव लगा हुआ है। दूसरे शब्दों में हम यहाँ 'गो' शब्द का भाव हिन्दी में 'बिचारी वाणी' इन शब्दों में बोल सकते हैं। जब हम कहते हैं 'बिचारा गरीब ब्राह्मण मारा गया, तो इस वाक्य में बिचारा शब्द का जो भाव है, वह वैदिक भाषा में गौ-शब्द के साथ जुड़ा हुआ है। तात्पर्य यह है कि वैदिक साहित्य में 'गौ' वह वस्तु है जो कि स्वयं निर्दोष है, दूसरों का सदा भला करने वाली है, सदा अन्यों द्वारा रक्षणीय है। इसलिये गौ का वैदिक पर्याय शब्द 'अघ्न्या' (कभी न मारने योग्य), 'अदिति'

आदि होते हैं। बल्कि निघण्टु में गाय के नाम गिनाते हुए सबसे पहिला नाम ही 'अघ्न्या' रखा हुआ है। यह हमेशा पालनीय होती है। इसी तरह ब्राह्मण की वाणी भी सदा पालनीय होती है, यह भाव लाने के लिये यहाँ वाणी शब्द न रख 'गौ' शब्द रखा गया है। हे राजा! तू ब्राह्मण को मत नाश कर' इसकी जगह 'तू ब्राह्मण की 'गौ' को मत नाश कर', इस वाक्य में बड़ा बल आ जाता है। यह ध्वनित होता है, कि ब्राह्मण की वाणी जो कि बिचारी सदा पालनीय है, उपकार करने वाली है, उसे नाश करना कितना बुरा है—बल्कि यह ध्वनित होता है कि इससे गो-हत्या का पाप लगता है।

'गौ' शब्द वैदिक भाषा में भिन-भिन वस्तुओं का नाम हुआ है, उन सब में यह भाव सम-रूप से विद्यमान है कि वे सब 'गौ' यदि पाली-पोसी जायँ तो बड़ा भारी उपकार करती हैं। यदि उन बिचारियों को असहाय समझ नाश कर दें तो वे नष्ट तो हो जाती हैं (या नष्ट हो गयी दीखती हैं) पर हम भी उसके अभाव से नष्ट हो जाते हैं। भूमि, वाणी, किरण, गाय आदि सब गौ इसी प्रकार की हैं। भूमि-गौ की यदि हम जोतने सींचने आदि द्वारा सेवा करें तो यह हमें एक दाने की जगह सैकड़ों दाने पैदा कर देती है। गाय 'गौ' को पाले पोसें तो वह घास खाकर हमें अमृतमय दूध देती है। सूर्य-किरण 'गौ' को यदि हम मारें नहीं, रोके नहीं खुला आने दें तो वह हमें अमूल्य जीवन शक्ति देने वाली वस्तु है। इसी तरह वाणी गौ' भी—खास तौर पर ब्राह्मणकी वाणी-गौ—रक्षित-पालित होकर बड़ा भारी उपकार करने वाली वस्तु है। इस भाव को प्रकट करने के लिये इस सूक्त में वाणीवाचक बहुत से वैदिक शब्दों के होते हुए भी यहाँ 'गौ' शब्द को ही रखा गया है। इसी भावको अभिव्यक्त करने के लिये हम भी इस पुस्तक में इस सूक्त के 'गौ' पद का अर्थ बहुत बार केवल वाणी न करके 'वाणी गौ' या वाणी रूपी गौ' करेंगे; ऐसे ही व्यवहार करेंगे।

अदन करने का अभिप्राय क्या है?

इसी सिलसिले में यह भी विचार कर लेना चाहिये कि सूक्त में ब्राह्मण की वाणी को 'रोकना' 'बन्द करना' इस अर्थ के लिये 'हन्' धातु या अद्' धातु का प्रयोग आया है। यदि इसका शब्दार्थ करें तो वाणी का 'मारना' या वाणी को खा जाना' यह अर्थ बनता है। हमारे कानों को यह अखरेगा—अस्वाभाविक लगेगा, खींचातानी प्रतीत होगी। पर यह दोष एक भाषा से दूसरी भाषा में शब्दः अनुवाद करने का है। यदि हम वेद के मुहावरों को समझें तो ब्राह्मणस्य गा जग्ध्वा' इस वैदिक वाक्य में हमें बड़ा सौन्दर्य लगे, यद्यपि इसका हिन्दी का शब्दानुवाद ब्राह्मण की वाणी को खाकर' इस तरह अटपटा सा होगा। पाश्चात्य टीकाकार तो मजे में इसका अर्थ ब्राह्मण की गाय को खाकर ऐसा कर डालेगा और यह परिणाम निकाल लेगा कि वेद के जमाने में लोग गाय को खाया करते थे। पर यदि हम अपने संस्कारवश वेद का अर्थ न करें, किन्तु वेद को बार-बार पढ़कर वैदिक भावों के संस्कारों को अपने पर दृढ़ करके [अपने पूर्व संस्कारों को छोड़कर] वेद को देखें तब ऐसी बात न होगी। वेद के किन अर्थों में कैसी वाक्य-रचना होती है यह तब हम जान जायेंगे। गौ-शब्द को देखते ही उसका अर्थ 'गाय' ही कर देना और 'जग्ध्वा' का अर्थ सीधा **खा जाना, चबा जाना** कर देना कितना अत्याचार करना है!

यदि कोई अंग्रेजी 'sweet girl' इस वाक्य का अर्थ "मीठी लड़की" ऐसा कर दे, तो यह अनजान समझा जायेगा। गुरुकुल में हमारे हिन्दी उपाध्याय ने (जो कि शुरू में हिन्दी नहीं जानते थे) पहिले ही दिन स्काट की 'मार्मियन' नामक कविता को पढ़ते हुए सचमुच 'Sweet girl' का अर्थ "मीठी लड़की" यह करके सुनाया था। यह अर्थ सुनकर यदि कोई आगे यह अनुमान भी लगावे कि स्काट के जमाने में इङ्गलैण्ड के लोग लड़कियों को खा जाया

करते थे क्योंकि बिना खाये लड़की का स्वाद कैसे पता लग सकता है कि वह मीठी है या कड़वी, तो यह कितना अनर्थ होगा। Young India में यदि कहीं M. D. ने यह वाक्य लिखा हो "Gandhi was drinking in the scenery of the Himalayas at Almora" और हमारे जैसा कोई नयी अंग्रेजी के शौक़ वाला इसका सीधा यह अर्थ कर दे कि 'गान्धी जो अल्मोड़ा में हिमालय के दृश्य में पी रहे थे' तो उस अंग्रेजी वाक्य की कैसी दुर्दशा होगी। फिर यदि कोई जरा-सी अधिक अंग्रेजी जानने वाला [जो कि यह जानता है कि 'He drinks' इस वाक्य का अर्थ **'वह शराब पीता है'** ऐसा है] इसके अर्थ को शुद्ध करके ठीक-ठीक अर्थ यह बता दे कि अल्मोड़ा में 'गान्धीजी हिमालय के दृश्य में शराब पी रहे थे' तब तो अनर्थ की हद हो जाय। ऐसा अनर्थ करना पाप होगा। पर वेद का यूं ही *'गाय खाना' अर्थ* कर देना इससे अधिक ही पाप करना है।

असली बात तो यह है कि लड़की को केवल 'अच्छे स्वभाव वाली, मन को प्रसन्न करने वाली' कहने की अपेक्षा 'मधुर' कहना अधिक काव्यमय और सुन्दर है। 'गान्धी जी हिमालय के दृश्य को तन्मय होकर देख रहे थे, उसका आनन्द ले रहे थे' इतना कहने की अपेक्षा 'वे दृश्य को पी रहे थे' ऐसा कहना बड़ा सुन्दर है। इसी तरह 'राजा ब्राह्मण की वाणी को रोकता है, बोलने नहीं देता है', उसकी जगह 'वाणी को खा जाता है' ऐसा कहने में एक बड़ा सौन्दर्य है। खा जाने में यह भाव आता है कि वह रोकने में नहीं आता। खा जाने में यह भाव आता है कि 'वह आसानी से, मजे में उसे नाश कर देता है, आनन्द लेते हुए खतम कर देता है।' ऐसा भाव लाने के लिये 'अद्' धातु का प्रयोग है। हम दूर क्यों जायँ इसी सूक्त में आता है कि—

(१) 'यो ब्राह्मण अन्नमेव मन्यते'

(मन्त्र ४)

(२) यो मल्वः ब्राह्मणमन्न स्वादु अद्मि इति मन्यते

(मन्त्र ७)

इसका क्रमशः शब्दार्थ यह होता है (१) जो ब्राह्मण को अन्न समझता है (२) जो 'मल्व' ब्राह्मणों को स्वादु अन्न खा रहा हूँ ऐसा समझता है। पाश्चात्य लोग भी इतना तो मानेंगे कि यहां ब्राह्मण को खा जाने की, चबा जाने की बात नहीं लिखी है, *गाय के न खाने की* बात में उन्हें बेशक भारी सन्देह हो पर ब्राह्मण को खा जाना यहां मतलब नहीं, यह तो उन्हें भी असन्दिग्ध है। तो फिर इस वाक्य में अन्न का क्या अर्थ है ? अन्न तो खा जाने की चीज को ही कहते हैं। यहां अन्न का अर्थ अलङ्कारित है, अर्थात् ब्राह्मण को खूब सताना यह है, ब्राह्मण बड़ी आसानी से (मजा लेते हुए) सताया व मारा जा सकता है यह अभिप्राय है, तो इस सूक्त में (इन मन्त्रों के आस पास के मन्त्रों में ही) 'गौ' (वाणी) के साथ भी ऐसा मतलब क्यों नहीं है ? कितनी साफ बात है कि जिस अर्थ में ब्राह्मण के साथ इन दो मन्त्रों में अद् धातु का प्रयोग है उसी अर्थ में अद् धातु का प्रयोग गौ के साथ भी शेष सूक्त में है। ब्राह्मण के साथ 'अदन' का अर्थ यदि-सताना और नाश करना है (वहां तो ग्रीफिथ ने 'हन्ति' का अर्थ भी Smites किया है, Kills नहीं) तो वाणी के साथ भी 'नाश करना' क्यों नहीं, वहाँ 'खा जाना' क्यों है ?

अतः यहाँ अदन से जो अभिप्राय है वह यह है कि राजा जहाँ अन्य बहुत-सी चीजों का—बुराइयों का—अपनी बड़ी शक्ति द्वारा आसानी से नाश कर देता है, वैसे ही यह विचार ब्राह्मण की निर्दोष आवाज (वाणी-गौ) को भी बन्द कर देता है, उसे [तुच्छ] मजे से खाने की चीज समझ लेता है। इस सूक्त को जब पाठक पढ़ेंगे तो वे यह भाव एक-एक मन्त्र में स्पष्ट देखेंगे।

वेद की अद् धातु को जाने दें। हिन्दी भाषा का ही 'खाना' शब्द अलंकारित अर्थों में कैसे प्रयुक्त होता है, इसके बहुत से उदाहरण दिये जा सकते हैं। पण्डित सातवलेकर जी ने अपने अथर्व वेद के सुबोधभाष्य में इसी स्थल पर एक बड़ा अच्छा उदाहरण दिया है कि जब हम कहते हैं कि फलाना राजकर्मचारी पैसे खाता है तो उसका अर्थ यह नहीं

होता कि वह अन्न की तरह रुपये आने पाई खाता है, या जब हम यह कहते हैं कि अनियन्त्रित राजा प्रजा को खाता है तो उसका मतलब यह नहीं होता कि प्रजा के लोगों को चबा कर पेट में ले जाता है। इसी तरह इस सूक्त में अद् धातु का प्रयोग है। यदि यहा अद् का प्रयोग न कर के 'आसानी से नाश कर देता है' 'मजा लेता हुआ रोक देता है' ऐसा कहा जाता तो वह भाव न आता जो कि 'खाजाना' कहने से आता है। इसी तरह हिन्दी में जब हम बोलते हैं 'वह रिशवत खाता है' 'उसने उसकी जायदाद हड़प कर ली' आज मुझे मच्छरों ने खा लिया' 'उसने अपनी सम्पत्ति ऐसे ही स्वाहा करदी' तो यदि इन वाक्यों के 'खाना' 'हड़पना' 'स्वाहा करना' आदि पदों का शब्दार्थ ही लेवें तो वाक्य का सारा सौन्दर्य मारा जाय, इसका मतलब तो कुछ बनता ही नहीं। इसी तरह इस सूक्त में आसानी से मजे में नाश कर देना, इसकी जगह 'अदन करना' (खाना) इस प्रयोग में बड़ा सौन्दर्य है और सौन्दर्य-पूर्वक भाव की पूर्ण अभिव्यक्ति है।

पाठकों को समझाने के लिये तो यह भी बतलाया जा सकता है कि वाणी के साथ जो 'अद्' धातुकाइस सूक्त में प्रयोग है वह 'अद् भक्षणे' का नहीं है, किन्तु अदि बन्धने, का वैदिक प्रयोग है। अतः वाणी का अदन (अन्दन) करने का मतलब वाणी को रोकना हो है (आजकल की भाषा में कहें तो दफा १४४ लगाना है)। पर वह उन लोगों को समझाने के लिये है जिनके कि मन मे 'अद् भक्षणे इस धातु से बना हुआ यह मुहावरा ठीक नहीं जचता है। धातु तो पीछे बनी है, उसके प्रयोग पहिले थे। अतः 'अद्' जैसे शब्द का प्रयोग 'खाने मे' और 'बाधने मे, दोनों मे देखा गया तभी पाणिनि ने अद् भक्षणे' और 'अदि बन्धने, ये दोनों धातुएँ बना दी। अतः "वाणी का अदन करना" इसमें "वाणी" को खाना" इसके साथ साथ "वाणी का बंधन में डालना" यह भाव भी स्वयं समाया हुआ है। धातु का नाम तो समझाने के लिये बोलना होता है। अतः अदन का अर्थ 'बाँधना' सर्वथा ठीक है।

वैसे यदि शब्द शास्त्र के शब्दों में यह बात समझनी होगी तब तो हमें यह प्रयोग 'अद् भक्षणे' का मुहावरे का रूप है इसी तरह इसे समझाना ज्यादह अच्छा लगता है। यह तो कहने की जरूरत नहीं कि विशेषतया जब कि इस सूक्त में वाणी के लिये प्रयोग 'गौ' शब्द का किया है तब 'अदन' में (अद् भक्षणे द्वारा) खाने का ही भाव रखकर इसकी व्याख्या करना अधिक सुन्दर लगता है, चाहे व्याकरण के नियम वेद में बहुत शिथिल होते हैं, पर व्याकरण की दृष्टि से भी अद् भक्षणे का प्रयोग मानना ही अधिक सुविधाजनक है। जो हो 'अदि बन्धने' से कहो या 'अद् भक्षणे' से कहो, हमें अपने मन मे यह संस्कार दृढ़ कर लेना चाहिये कि इस सूक्त में गौ वाणी के साथ आये 'अदन' का अर्थ 'वाणी को रोकना, बाधना' ऐसा है, मुँह में डाल कर खाना कभी नहीं।

आशा है कि गौ और अदन सम्बन्धी इस विस्तृत, विवेचन के बाद हमने जो इसका अर्थ 'वाणी को रोकना ठहराया है उसे पाठक खींचातानी न समझेंगे, किन्तु इस ठीक अर्थ के सच्चे संस्कारों को हृदय मे जमाने का यत्न करेंगे और जिन लोगों ने पहिले संस्कारों के वश असावधानी से अर्थ करके घोर अनर्थ किया है उनके वेद के प्रति असह्य अत्याचार को अनुभव करेंगे।

अस्तु अब हम इस सूक्त मे—

३—ब्राह्मण कौन है!

इस बात पर आते हैं। ब्राह्मण यह शब्द सुनकर भी हमारे पुराने संस्कार हमारे सामने आज कल के भारतवर्ष मे दीखने वाले एक अनुदार, पुरानी रूढ़ियो के उपासक व्यक्ति को उपस्थित कर देंगे, यदि वे एक बेपढ़े, परान्नजीवी रोटी पकाना आदि का पेशा करने वाले 'ब्राह्मण' का चित्र सामने न ले आयेंगे। परन्तु वेद का कुछ स्वाध्याय करने वाला भी जान जायेगा कि वेद के ब्राह्मण का चित्र कुछ और ही है। वेद में ब्राह्मण मुखस्थानीय माना है। मुख की तरह वह बिलकुल निःस्वार्थ व्यक्ति है। अपने आप कुछ

न भोगनेवाला, दूसरों का ज्ञान-दान द्वारा और बल द्वारा निरन्तर उपकार करनेवाला व्यक्ति है। यह वेदिक ब्राह्मण का सामान्य स्वरूप हुआ।

पर इस सूक्त में ब्राह्मण का वर्णन प्रजा के सम्बन्ध से आया है। अतः इस सूक्त का ब्राह्मण 'प्रजा का निःस्वार्थ सेवक' इस रूप में है। इसके लिये इस सूक्त में जगह जगह प्रमाण विद्यमान हैं। देखिये १२ वें मन्त्र में प्रजा को ब्राह्मण का प्रजा कहा है।

प्रजां हिंसित्वा ब्राह्मणीम्

एवं इससे अगले ५.१६ सूक्त के ११ वें मंत्र में भी प्रजा को ब्राह्मण की (ब्राह्मणी) कहा है इससे पहले ५-१७ सूक्त में ब्राह्मण को ही एक मात्र प्रजा का या लोक प्रजा का पति कहा है।

ब्राह्मण एव पतिः न राजन्यो न वैश्यः

५-१७ ६

इस ब्रह्मगवी सूक्त के 'छठे मन्त्र में ब्राह्मण को प्यारे राष्ट्र-शरीर की अग्नि कहा है। इन सब वचनों से पाठक समझ लेवें कि इस सूक्त का ब्राह्मण कैसा व्यक्ति है। मतलब यह है कि ब्राह्मण "प्रजा का एक निःस्वार्थ बड़ा सेवक, अतएव बड़ा नेता" इस सूक्त में समझा गया है। इस सूक्त के १३ वें मन्त्र में जो ब्राह्मण को 'देवबन्धु' कहा है और प्रजाद्रोही राजा को 'देवपीयू' कहा है उससे भी पता लगेगा कि यहाँ का ब्राह्मण प्रजा का नेता है। भारतवर्ष में वर्तमान युग* में गाँधीजी का जो स्थान है यदि पाठक उसे ध्यान में रखें तो उन्हें इस सूक्त के ब्राह्मण की कल्पना ठीक ठीक आ जायगी। इस सूक्त का 'ब्राह्मण" शब्द ठीक ऐसे ही सच्चे प्रजानेता के लिये आया है। आजकल प्रचलित हुये 'सत्याग्रही' शब्द में जो भाव है, प्राचीन ब्राह्मण शब्द में भी भाव वही है। 'ब्रह्म' शब्द का अर्थ सत्य ज्ञान या अनुभव ज्ञान होता है। वेद भी ब्रह्म इसीलिये कहाता है क्योंकि वह सत्यज्ञान है। पर इसके साथ ही ब्रह्म शब्द का वैदिक अर्थ कर्म भी होता है। यास्कमुनि ब्रह्म का अर्थ कर्म भी करते हैं। इसीलिये ब्राह्मण शब्द में जो भाव समाया हुआ है वह यह है "सत्य ज्ञान को कर्म में परिणत करने वाला"। इसलिये यदि हम कहीं-कहीं अभिप्राय को स्पष्ट करने के लिये 'ब्राह्मण' या 'ब्रह्म' का अर्थ सत्याग्रही ऐसा करेंगे तो यह उचित ही होगा। ब्राह्मण एक सत्याग्रही प्रजा नेता है।

अब पाठक यह भी समझ जायेंगे कि ऐसे ब्राह्मण की वाणी कितनी बड़ी वस्तु है। ब्राह्मण में वाणी ही मुख्य चीज है। 'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत' पुरुष सूक्त का यह वाक्य प्रसिद्ध है। राष्ट्र शरीर का मुख ब्राह्मण है—राष्ट्र ब्राह्मण द्वारा ही बोलता है; मनुष्य शरीर में जो मुख है उसकी उपमा से विचारें तो हम देखेंगे कि मुख में पाँचों ज्ञानेन्द्रिय हैं, और एक ही कर्मेन्द्रिय है जो वाणी है। अर्थात् ब्राह्मण को सब प्रकार से ज्ञान का उपार्जन करके जो कुछ कर्म करना है वह वाणी का ही है—ज्ञान को वाणी द्वारा प्रसार करना है। उसे राष्ट्र की सेवा शारीरिक बल या धन बल बढ़ाकर नहीं करनी है, किन्तु इन्हें त्याग कर उसे ज्ञान को (सर्वोच्च बल को) उत्पन्न कर उसे वाणी द्वारा फैलाना है। यह सर्वोच्च प्रकार की सेवा करने के कारण ही वह समाज में सर्वोच्च (सिर) बनता है, यह स्पष्ट है कि समाज में ज्ञान फैलाने, उपदेश देने का कर्तव्य और अधिकार भी ऐसे ब्राह्मण का ही है। तो यह भी स्पष्ट है कि किसी उपाय से ऐसे ब्राह्मण को सत्य उपदेश के देने से रोकना—उसकी वाणी को बन्द करना—कितना भारी पाप है। इसलिए इस सूक्त में ब्राह्मण वाणी को रोकने की निन्दा बड़े कठोर शब्दों में की गई है। अस्तु—

अतः इस सूक्त का ठीक स्वाध्याय करने के लिये जो तीसरा कार्य हमें करना है वह यह है कि वर्तमान में ब्राह्मण कहलाने वालों को देखकर हमारे मनों में संस्कार ब्राह्मण शब्द के साथ बैठे हुए हैं उन्हें हम भूल जायें और यह

---

* जब भी गान्धीजी के नेतृत्व में स्वतन्त्रता का संघर्ष चल रहा था। —सम्पादक

समझ लें कि इस सूक्त में ब्राह्मण उपर्युक्त प्रकार का 'सच्चा' निःस्वार्थ, प्रजा-बन्धु, प्रजा का नेता है"।

४—वैतहव्य कौन है ?

इस चौथी बात का विचार अर्थात् वैत हव्य शब्द का अर्थ पता लगाना कुछ कठिन काम नहीं है। क्योंकि यह अप्रसिद्ध शब्द है, अतः इसके साथ हमारे मनों में कोई अशुद्ध पूर्वसंस्कार नहीं बैठे हुए हैं जिन्हें कि हटाना पड़ेगा। इस लिये इनका ठीक अर्थ समझ लेने के लिये इसके धात्वर्थ पूर्वक शब्दार्थ जान लेने की ही जरूरत है।

वीतहव्य शब्द से वैतहव्य शब्द बना है। वीतहव्य में दो पद हैं, वीत और हव्य या हविः। वीत का अर्थ है 'खा लिया, खतम कर दिया, व्यय कर दिया।' 'वी खादने' या 'वि पूर्वक इण धातु' से यह शब्द बना है। तो वीतहव्य वह हुआ (वीतं खादितं हविः हव्यं वा येन) जिससे हव्य (हवि) को खा लिया है। हव्य का मतलब हम समझते हैं। देवों का हिस्सा हव्य कहलाता है। यज्ञ में देवों के लिये अर्पण किये जानेवाले पदार्थ को हव्य कहते हैं। यज्ञ के इस पदार्थ को खा जाना बड़ा पाप है। यह असुरों का ही काम समझा जाता है। इसलिये 'वीत हव्य' वह पापी पुरुष होता है, जो कि यज्ञ के हवनीय पदार्थ (देवों के भाग) को उन्हें न पहुँचा कर स्वयं खा जाता है, अपने स्वार्थ मे उसे खर्च कर डालता है।

परन्तु राष्ट्र के प्रसंग में वीतहव्य का क्या मतलब होगा ? यह समझने के लिये हमें जरा यह और सोचना चाहिये कि राष्ट्र यज्ञ में हवि क्या वस्तु होती है। राष्ट्र यज्ञ में हवि "प्रजा से प्राप्त किया हुआ कर (Tax)" होता है। साधारण हवन में डाले जानेवाले घृत सामग्री को हवि क्यों कहते हैं ? हवि, "हु दानादानयोः" धातु से बना है, जिसका अर्थ है दान और आदान अर्थात् देना और लेना। यज्ञ में जो हवि डाली जाती है, उसमें यह 'लेना और देना' होता है। यज्ञ में हम जो कुछ डालते हैं (दान करते हैं) यह सहस्र गुणित होकर फिर हमें मिलता (आदान होता) है। यही हवन का महत्त्व है। इसी में हवि का हविपना है इसी तरह राष्ट्र-यज्ञ प्रजा की कर-रूपी हवि से चलता है। प्रजा राजा को कर देती है (यह दान हुआ) और राजा (सरकार) उस प्राप्त 'कर' का ऐसी तरह सदुपयोग करता है, जिससे प्रजा को उस कर के देने के बदले में उससे सैकड़ों गुना अधिक लाभ (आदान) होता है। कर (Tax) का यही सिद्धान्त है। कालिदास ने रघु राजा की कर प्रणाली को सूर्य की उपमा देते हुए इसी सिद्धान्त पर आश्रित वर्णित किया है। उसने कहा है :—

प्रजानां हि भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत्,
सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः।

"प्रजा की समृद्धि के लिये ही वह प्रजा से कर ग्रहण करता था। रस को सूर्य ऊपर खींचता है कि वह उसे सहस्र गुणा करके फिर बरसा दे।" अस्तु। तात्पर्य यह है कि राष्ट्र यज्ञ में हवि का अर्थ कर (Tax) है। वेद में कर (Tax) अर्थ में हवि शब्द का कहीं-कहीं प्रयोग भी मिलता है। कर का वाची जो बलि शब्द है, वह हवि का समानार्थक है यह तो स्पष्ट ही है। अतः वीतहव्य वह राजा (सरकार) है, जो कि प्रजा से प्राप्त कर को खा जाता है, अपने स्वार्थ मे व्यय कर देता है। वीतहव्य से 'वैतहव्या' बना है। वीतहव्य के जो हों वे 'वैतहव्याः' कहलावेंगे (वीतहव्यस्य इमे इति वैतहव्याः) अर्थात् आधुनिक रूप में बोलें तो वीतहव्य सरकार के सब नौकर-चाकर, सब कर्मचारी सब संचालक 'वैतहव्याः' हुए।

यहां भी सीधा कर या बलि (टैक्स के लिये संस्कृत में ये दोनों प्रसिद्ध शब्द है) न कह कर, कर (Tax) लिये हव्य शब्द का प्रयोग करना कुछ विशेष अर्थ रखता है। हव्य खा जाना बड़ा पाप समझा जाता है। क्योंकि यज्ञ बहुत ही पवित्र और दिव्य वस्तु है। इसलिये किसी राजा को 'कर का दुरुपयोग करने वाले' ऐसा कहने की अपेक्षा 'राष्ट्र यज्ञ की हवि खा जाने वाला' ऐसा कहने में बहुत बल आ जाता है। अतः वीतबलि न कह कर वीत-

हव्य कहा है। राष्ट्र संचालन को भी पवित्र यज्ञ समझना (समझाना) वेद की, वैदिक सभ्यता की एक बड़ी विशेषता है।

आशा है कि पाठक 'वेतहव्या' का अर्थ भी समझ गये होंगे।

५—इस सूक्त का विषय

इन मुख्य-मुख्य शब्दों का विवेचन हो चुकने के बाद पाठक एक बार इस सूक्त का समुच्चयार्थ भी देख लें। इस सूक्त का प्रतिपाद्य विषय संक्षेप से इस प्रकार है—

मान लीजिये एक भोग-विलासी (मन्त्र २) राजा है। अतएव उसे धन की ज़रूरत होती है। वह 'धनकाम' हो जाता है (मन्त्र ५)। उसके मन में पाप आता है। अतः वह 'वीतहव्य' हो जाता है, प्रजा से मिल कर के धन को स्वयं खाने लग जाता है (मन्त्र १०)। तब प्रजा पीड़ित होती है। प्रजा पर अत्याचार होने लगते हैं (मन्त्र १२)। ऐसे समय में प्रजा की रक्षा, सेवा के लिये प्रजा का नेता (ब्राह्मण) उठता है। उसके पास सिवाय वाणी के और क्या है। यह प्रजा वा राजा को सच्चा उपदेश करता है। परन्तु ऐसा राजा समझता है कि इस तुच्छ निःशस्त्र ब्राह्मण, और इसकी विचारी वाणी को तो मैं खा जाऊँगा, मजे से नाश कर दूँगा। यह मेरा क्या बिगाड़ेगा ? अतः वह उस ब्राह्मण को बोलने से रोक देता है। इस प्रकार उसकी वाणी-गौ का खातमा कर डालता है या कर डालने की सोचता है। ऐसी अवस्था में वेद का जो उपदेश है, वह इस सूक्त में वर्णित है।

ऐसी अवस्था कभी किसी देश में किसी समय में थी उसका यहां उल्लेख है, यह बात नहीं। दुनिया में ऐसी अवस्था आते रहना स्वभाविक है। राजा, सरकारें वीत-हव्य हमेशा हो जाती हैं। यह एक नित्य इतिहास है। ऐसे अवसर पर राजा को और प्रजाजनों को क्या करना चाहिये इसे बतलाने के लिये वेद ने इस सूक्त (बल्कि इस अनुवाक द्वारा) उपदेश दिया है।

इस सूक्त में बार-बार नाना तरह से कहा है कि राजा ब्राह्मण-वाणी को तुच्छ चीज न समझे। इसका नाश न करे। यह बड़ी भयंकर वस्तु हो जाती है। राजा को बार-बार सावधान किया है। इसकी ज़रूरत है। क्योंकि ब्राह्मण के पास हीन दर्जे का बल, क्षात्रबल, तोप, बन्दूक, मशीन-गन का बल नहीं होता। अतः हमेशा खतरा है कि कोई मूर्ख शासक (राजन्य) स्वार्थान्ध हो कर ब्राह्मण की सच्ची आवाज को अपने लिये हानिकारक समझ कर उसे अपने दुरुपयुक्त क्षात्रबल से दबा डाले। अतः बड़े घोर शब्दों में इसकी निन्दा की गई है। और बताया गया है कि ब्राह्मण का यह वाणी-रूपी हथियार कितना जबरदस्त है। यह सब राजशक्ति को परास्त कर देता है।

अस्तु ; इसी कथा को अब पाठक वेद के हृदयग्राही सुन्दर शब्दों में पढ़ें। केवल इतना और कहना है कि इस वैदिक सूक्त को पढ़ने के बाद भी यदि पाठक इस प्रारम्भिक विवेचना को एक बार फिर पढ़ जायेंगे तो उन्हें इसमें कही बातों की सचाई अधिक स्पष्ट हो जायेगी।

ओ३म्

ब्रह्मगवी-सूक्त

१

ब्राह्मण-वाणी रोकने योग्य नहीं है।

नैतां ते देवा अददुस्तुभ्यं नृपते अत्तवे
मा ब्राह्मणस्य राजन्य गां जिघत्सो अनाद्याम्।

(नृपते !) हे राजा (ते देवाः) उन प्रसिद्ध देवताओं ने (एतां) ब्राह्मण की यह वाणी गौ (तुभ्यं) तुझे (अत्तवे) खा डालने के लिये (न अददुः) नहीं दी थी। इसलिये (राजन्य) हे क्षात्र शक्तियुक्त राजा ! तू (ब्राह्मणस्य) ब्राह्मण की (अनाद्या) कभी भी न खाने योग्य या कभी भी न खायी जा सकने वाली (गा) इस वाणी का (मा जिघत्सः) खातमा कर डालने की इच्छा मत कर।

इस मन्त्र में कहा है—ब्राह्मण की वाणी राजा को उन देवताओं ने दे रखी है। पर यह खा डालने के लिये उन्होंने नहीं दी है। ये प्रसिद्ध देवता कौन हैं, जिनका नाम भी लेने की आवश्यकता नहीं समझी गई है ?

वेद के देवता—अग्नि, इन्द्र, वरुण, सोम आदि प्रसिद्ध ही हैं। देवाधिदेव परमात्मा हैं। इस जगत् पर उस परम देव का अटल और पूर्ण-शासन है। वह एकदेव अपनी जिन भिन्न-भिन्न शक्तियों द्वारा जगत् का शासन कर रहा है, वे ही शक्तियाँ ये वेद की नाना देवतायें हैं। अग्नि, इन्द्र, वरुण आदि परमात्मा की ही भिन्न-भिन्न शक्तियाँ हैं। मनुष्य राजा भी अपने छोटे से राष्ट्र पर अपनी अल्प-शक्ति के अनुसार अपूर्ण शासन करता है। मनुष्य राजा की शासन-विधि के भी अङ्गभूत बहुत से व्यक्ति होते हैं। राजा का अपने राष्ट्र के भिन्न भिन्न विभागों (Departments) से वही संबंध होता है, जो कि परमात्मा का अग्नि वायु आदि देवताओं से है। इसी अर्थ में मनु ने राजा को सर्व-देवमय कहा है। मनुस्मृति के सप्तम अध्याय के ३ से ११ से तक के श्लोक इस सम्बन्ध में पठनीय हैं। उनमें से दो श्लोक नीचे उद्धृत हैं—

इन्द्रानिलयमार्काणामग्नेश्च वरुणस्य च।
चन्द्रवित्तेशयोश्चैव मात्रा निहृत्य शाश्वतीः॥
सोऽग्निर्भवति वायुश्च सोऽर्कः सोमः स धर्मराट्
स कुबेरः स वरुणः स महेन्द्रः प्रभावतः॥

इनमें कहा है—इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, अग्नि, वरुण, सोम, कुबेर, इन आठ देवताओं से अंश लेकर राजा बनता है। राजा के आठों विभागों में शक्ति इन आठ देवताओं से आई हुई है। शुक्र-नीतिसार के प्रथम अध्याय के ७१ से ८१ तक श्लोकों में इनकी व्याख्या है। ये ही प्रसिद्ध देवता हैं, जिन्होंने मनुष्य राजा को सब वस्तुएँ—सब शक्तियें—दी होती हैं। इन अग्नि, इन्द्रादि द्वारा जहाँ राजा को और बहुत सी वस्तुयें राज्य करने को मिली होती हैं ; वहाँ ब्राह्मण की वाणी (अर्थात् ब्राह्मण द्वारा प्रजा को उपदेश दिया जाना, शिक्षा मिलना, प्रजा को सन्मार्ग दिखाया जाना) यह

भी एक बड़ी भारी वस्तु मिली होती है। ब्राह्मण की वाणी क्या, ब्राह्मण ही मिला होता है। ब्राह्मण का ब्राह्मत्व ही उसकी वाणी में है, वाणी द्वारा ही वह राष्ट्र की सेवा में आता है। यह ब्राह्मण-वाणी एक बड़ी महत्व की वस्तु देवताओं ने (या यूँ कहना चाहिये, परमात्मा ने) राजा को दी होती है। पर यह खा डालने के लिये नहीं दी होती।*

अस्तु, पहले तो यहाँ राजा को वेद ने यह स्मरण दिलाया है कि यह ब्राह्मण-वाणी जैसी पवित्र वस्तु देवताओं की (परमात्मा की) दी हुई है। फिर यह स्मरण दिलाया है कि किस कार्य के लिये दी है। यह खा जाने को कदापि नहीं दी गई हैं, यह तो स्वाधीनतापूर्वक राष्ट्र में ज्ञान फैलावे, सन्मार्ग दिखला कर राष्ट्र का कल्याण करे, इसलिये दी गई है। इसका पालन-पोषण करना चाहिये, इसे बढ़ाना चाहिये।

राजा को बहुत सी चीज खा डालने के लिये भी दी होती हैं। राजा में यम देवता का अंश खासतौर पर इसी लिये होता है। राजा काम जहाँ अच्छाई को, राष्ट्रहित की वस्तुओं को उत्पन्न करता, बढ़ाता और फैलाता है, वहाँ राष्ट्र के लिये सब अनर्थकारी वस्तुओं को नाश करना, समाप्त करना भी है। सब बुराइयों को, अपराधों को, अशान्ति को, अव्यवस्था को, बलवान् द्वारा निर्बल के सताये जाने को, सब अन्याय को उसे नष्ट कर डालना चाहिये। इन सब चीजों को उसे यम बनकर खा जाना चाहिये। पर ब्राह्मण की वाणी ऐसी चीज नहीं है, जिसे कि नाश कर दिया जाय। यह देवों से मिली हुई वस्तु पालने-पोसने को मिली है। पाली-पोसी हुई यह वाणी गौ अपने पालने के बदले में इससे हजार गुणा प्रतिफल देकर राष्ट्र को निहाल कर देगी।

यह वाणी गौ 'अनाद्या' है—कभी भी नाश करने योग्य नहीं है। यह अनाद्या शब्द ही इस मन्त्र का मुख्य शब्द है। इसका अर्थ 'अत्तुमशक्या' अर्थात् जिसका नाश नहीं किया जा सकता' ऐसा करना भी ठीक है। इस अर्थ का स्पष्टीकरण तो अगले मन्त्रों में स्वमेव हो जायगा। यहाँ पर तो 'यह खाये जाने, नष्ट किये जाने के योग्य नहीं' इस अर्थ को समझ लेना चाहिये। जैसे गो 'अघ्न्या' (न मारने योग्य) कहलाती है, वैसे ही यहाँ इसे 'अनाद्या' नाम से पुकारा है। ब्राह्मण-वाणी को रोकना, बाँधना, नाश करना बड़ा जघन्य पाप है, क्योंकि यह पालने योग्य वस्तु का नाश करना है, क्योंकि यह बड़ी गो-हत्या है, क्योंकि यह देवों की वस्तु का घोर दुरुपयोग करना है। वैसे तो वाणी-मात्र ही 'अनाद्या' (अबन्धनीया) होती है। हर व्यक्ति को वाणी-स्वातन्त्र्य होना चाहिये। पर ब्राह्मण की तो वाणी ही मुख्य चीज है, जैसे पहिले स्पष्ट किया जा चुका है। अन्यों की वाणी तो अज्ञान के कारण व स्वार्थवश हानि भी कर सकती है। ज्ञानी, निःस्वार्थ ब्राह्मण की वाणी में तो कल्याण ही भरा होता है। इस वाणी की रक्षा में ही समाज की रक्षा है। अतः इस वाणी की रक्षा करना तो गाय पशु की रक्षा करने की अपेक्षा भी बहुत-बहुत आवश्यक है। ब्राह्मण-वाणी के इशारे से लाखों गायों की रक्षा हो सकती है। इसीलिये इस सूक्त में ब्राह्मण वाणी को बार-बार 'अनाद्या' विशेषण से पुकारा गया है।

अब दूसरे मन्त्र द्वारा वेद यह स्पष्ट करता है कि वह कौन-सा राजा—किस तरह का राजा—होता है, जो कि इस अनाद्या को नाश करने का घोर कृत्य करने को उतारू होता है।

---

* जरा पाठक यहाँ पर एक दृष्टि इस पर भी डालते चलें कि यदि यहाँ "गौ" गाय ही हो, तो इस कथन का कुछ मतलब नहीं बनता। राजा को कौन-सी गाय अग्नि आदि देवों ने दी होती है। —लेखक

२

कैसा राजा ब्राह्मण-वाणी को रोकता है

अक्षद्रुग्धो राजन्यः पाप आत्मपराजितः ।

स ब्राह्मणस्य गामद्यात् अद्य जीवानि मा श्वः ॥

(अक्षद्रुग्धः) इन्द्रियों से द्रोह को प्राप्त अर्थात् अजितेन्द्रिय (पापः) अतएव पापी (आत्म पराजित) आत्मा से हारा हुआ या अपने आप पराजित हुआ (राजन्यः) जो राजा होता है (सः) वह ही (ब्राह्मणस्य गामद्यात्) ब्राह्मण की वाणी को बन्द करता है। यद्यपि वह : 'अद्य जीवानि' आज बेशक जीवित है (मा श्वः) पर कल नहीं रहेगा।

जब कभी ऐसे पतित-व्यक्ति जो कि इन्द्रियों के दास होते हैं, राजपद पर पहुँच जाते हैं तो वे ही इस पालनीया ब्राह्मण-वाणी को नाश करने की जी में ठानते हैं। उन्हीं को सदा सत्य कहने वाली ब्राह्मण-वाणी अपने लिये हानिकर प्रतीत होती है। इस युग के महातेजस्वी ब्राह्मण—ऋषि दयानन्द—जहां कहीं जाते थे, अपनी सत्यपरायण वाणी से सब के हित का ही उपदेश करते थे। पर उनके सत्य-कथन से, जिनके क्षुद्र-स्वार्थों में—अन्ततः इन्द्रिय सुखों में-बाधा पड़ती थी, वे ऋषि को मारने तक को उद्यत हो जाते थे—उसकी वाणी का बन्द होना तो जरूर चाहते ही थे। एक बार एक अजितेन्द्रिय राजा को वेश्यागमन से मुक्त कराने की सदिच्छा से, जो उन्होंने अपनी ओजस्विनी वाणी का उपयोग किया, कहते हैं वही उनकी देहलीला-समाप्ति का कारण हुआ। किसी ने उन्हें कांच पिलाने का पाप कर डाला। मतलब यह कि जब राजा विलासी होता है तो सच्ची ब्राह्मण-वाणी को नहीं सह सकता और उसके मन में पाप का उदय होता है।

जो अजितेन्द्रिय कामी होता है वह पाप करने में जरूर पतित होता है। इसलिये इस मन्त्र में ऐसे राजा के लिये 'अक्षद्रुग्धः' के बाद दूसरा विशेषण 'पापः' कहा गया है। भगवद्गीता के तृतीयाध्याय में जब अर्जुन ने श्रीकृष्ण से पूछा है कि मनुष्य में पाप क्यों प्रवृत्त होता है, तो उसका उत्तर श्रीकृष्ण भगवान् ने यही दिया है—

'काम एष, क्रोध एष, रजोगुण समुद्भवः।'

काम के साथ क्रोध जुड़ा हुआ है। मनुष्य किसी में आसक्त होकर (काम द्वारा) और उससे विरोधी वस्तु से भाग कर (क्रोध द्वारा) पाप करने को प्रवृत्त होता है।

काम क्रोध ही पाप के जनक हैं। काम और क्रोध का सूक्ष्म आभ्यन्तर रूप ही राग-द्वेष है। छान्दोग्योपनिषद् और बृहदारण्यक में एक सुन्दर कथा कही है। उसमें कहा है कि एक बार देवों और असुरों का युद्ध हुआ। देवों ने अपना उद्गाता क्रमशः सब इन्द्रियों को बनाया, पर सभी इन्द्रियों को असुरों ने पाप से युक्त कर दिया। क्यों पाप से युक्त कर कर दिया, इसका कारण यही हुआ कि उन सब में

राग और द्वेष रहता है। केवल प्राण में राग-द्वेष न था, अतः प्राण को असुर पाप से विद्ध न कर सके। बल्कि उसके मुकाबिले में टकरा कर उन सब का चकनाचूर हो गया। मतलब यह कि इन्द्रियों में जो राग-द्वेष हैं (जिनका स्थूल रूप काम और क्रोध हो जाता है) उसके कारण इन्द्रियों का दास जो होगा वह स्वभावतः पाप में प्रवृत्त होगा।

इसीलिये अजितेन्द्रिय राजा अपने इन्द्रियों के विषय में 'काम' के कारण और इसकी विरोधिनी, सत्य बोलने वाली ब्राह्मण-वाणी में 'क्रोध' के कारण क्यों न पाप में गिरेगा। फलतः ऐसा ही राजा ब्राह्मण की वाणी-गौ के घात करने तक का पाप कर डालता है।

इसका तीसरा विशेषण 'आत्मपराजितः' है अर्थात् वह अपने आप हारा हुआ होता है। इसी के साथ ही "वह आज जिन्दा है पर कल न रहेगा" यह कह कर उसका निश्चित विनाश बतलाया है। इस 'विनाश' पर हमें कुछ गहराई में जाकर विचार करना चाहिये, क्योंकि इस विचार द्वारा (पाठक देखेंगे) इस मन्त्र का एक गूढ़ भाव साफ हो जायगा।

भगवद्गीता के द्वितीयाध्याय' में विनाश का मार्ग, सुन्दरता और स्पष्टता के साथ वर्णित है। वे द्वितीयाध्याय के ६२ और ६३ श्लोक यहाँ बिना स्मरण आये नहीं रह सकते :—

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते,
संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते।
क्रोधाद् भवति संम्मोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः,
स्मृति भ्रंशात् बुद्धिनाशोबुद्धिनाशात्प्रणश्यति।

इनमें विनाश का क्रम इस तरह वर्णित है। (१) मनुष्य पहले विषयों का ध्यान करता है। (२) इससे उनमें उसका संग हो जाता है। (३) संग से उनके लिये 'काम' पैदा हो जाता है। (४) इसके बाद उसे उस काम की पूर्ति में उसे जो बाधा दिखाई पड़ती हैं, उनके लिये उसमें 'क्रोध' पैदा होता है। (५) क्रोधी पुरुष में 'सम्मोह' आ जाता है। (६) सम्मोह से वह अपने आपको भूल जाता है—स्मृति विभ्रम हो जाता है। (७) इससे बुद्धि ठिकाने नहीं रहती। (८) बुद्धि-नाश के साथ ही उस पुरुष का विनाश हो जाता है। यहाँ विनाश का प्रारम्भ 'विषयों के ध्यान' से होता है और विनाश की पूर्ति 'बुद्धिनाश' में होती है। इसी तरह इस मन्त्र में ऐसे राजा के विनाश का प्रारम्भ 'अक्षद्रोह' (अजितेन्द्रियता) से होता है—और इसकी समाप्ति 'आत्म-पराजय' में होती है। बीच के जो छः क्रम हैं उन्हें इस मन्त्र में पाप शब्द में कह दिया है।

अब इसी दृष्टि से इस वेद-मन्त्र में कहे विनाश-क्रम को भी जरा देखिये। 'अक्षद्रुग्ध' का शब्दार्थ 'इन्द्रियों द्वारा द्रोह को प्राप्त ('अक्षैरिन्द्रियैर्द्रुग्धः') यह होता है। अजितेन्द्रिय पुरुषों में इन्द्रियाँ द्रोह कर देती है। ऐसा पुरुष इन्द्रियों की गुलामी तो इसलिये स्वीकार करता है जिससे कि उसे सुख मिले, परन्तु ये इन्द्रियाँ उसे सुखी कर देने के स्थान पर उसे और-और तृष्णा में डालती जाती हैं और इस तरह उसे अपना अधिक-अधिक गुलाम बनाती जाती हैं। यह धोखा देकर इन्द्रियाँ उसे ठग लेती हैं। इस मनुष्य-जीवन रूपी राज्य का असली राजा तो आत्मा है, और ये इन्द्रियाँ उस राज्य में सब से नीचे प्रकार की नौकर हैं। पर ये नौकर धोखा देकर मनुष्य को इस प्रकार सुख देने के बहाने जब ठग लेते हैं, तो इस आत्मा के राज्य में इन्द्रियों का द्रोह प्रारम्भ हो जाता है तो आत्मा का पराजय हो जाता है, और इन्द्रियाँ आत्मा को राजगद्दी से उतार स्वयं राजा बन बैठती हैं। उस समय मनुष्य 'आत्म-पराजित' कहलाता है।

इन्द्रियाँ आत्मा के विरुद्ध राजद्रोह का झण्डा खड़ा करके बाहर के विषयों से संग करती हैं, बाहिरी शत्रु (काम, क्रोध, सम्मोह जो कि एक से एक बढ़ कर शत्रु हैं) को सहायता के लिये बुला लेती है और इनकी सहायता से आत्मा—राजा के अधिकारी सूक्ष्म प्राण, चित्त और मनको दबा लेती हैं—अपने काबू में कर लेती हैं। तब स्मृतिविभ्रम की अवस्था आ जाती है अन्त में आत्मा के सबसे अधिक विश्वासपात्र मन्त्री बुद्धि का भी जब पतन हो जाता है तब तो आत्मा का राज्य बिल्कुल समाप्त हो जाता है। 'बुद्धिनाशात् प्रणश्यति।' आशा है कि पाठक 'अक्षद्रुग्धः' और 'आत्मपराजितः' इन विशेषणों का भाव अब समझ गये होंगे।

तो फिर ऐसा (राजा कहलाने वाला) पुरुष जिसके कि अपने अन्दर आत्मा का राज्य खतम हो चुका है—इन्द्रियों का राजद्रोह सफल हो चुका है, ऐसा पुरुष राष्ट्र का शासन कैसे कर सकता है। उसमें राज्य करने की शक्ति रहती ही नहीं। इसीलिये वेद ने कहा है कि ऐसे राजा का निकट-भविष्य में ही अन्त निश्चित है। यद्यपि वह आज ऊपर से जीवित दिखाई देता है, पर असल में अन्दर से मर चुका होता है। इसलिये कल न रहेगा। आज जीवित इसलिये दीखता है क्योंकि हम लोग शरीर की दृष्टि से उसे देखते हैं। आत्मा को देख सकने वालों को वह आज ही मरा दिखाई देता है। अतएव वे ऐसे राजा से जरा भी भयभीत नहीं होते। पर शरीर (स्थूल) को देखने वाले साधारण लोग ऐसे (पापी, आत्म-पराजित भी) राजा की थोड़ी देर की फौजें, तोपें और सब बाहिरी ठाठ देख कर उसके आतङ्क में (Prestige में) आये रहते हैं। जरा भी आगे की न देख सकने वाले इन लोगों को कौन विश्वास दिलावे कि—

"अद्य जीवानि मा श्वः"

'वह आज जीता है कल नही'

और बिना यह विश्वास मिले उन्हें ढाढस कैसे बँधे, भय कैसे जाये?

प्यारे अर्जुन को तो श्रीकृष्ण भगवान् ने अपने योगैश्वर्य से मुँह खोलकर दिखा दिया था कि सारे कौरव—भीष्म, द्रोणादि सेनापति और ११ अक्षौहिणी सेना सहित सब कौरव—आज ही मरे पड़े हैं। पर हमें कौन विश्वास दिलाये? हम क्षुद्र (वर्तमान में अपनी दृष्टि परिमित रख सकने वाले) जीव तो यों ही भय के मारे हुए पड़े हैं और अपने कर्तव्य से च्युत हुए रहते हैं। पर हम में भी यदि श्रद्धा हो तो यही वेद भगवान् का वचन हमारे लिये कृष्ण भगवान् का काम कर सकता है। 'अद्य जीवानि मा श्वः' इस वेद-वचन पर श्रद्धा जम जाय तो हमें सूर्य प्रकाश की तरह दीख जाय कि ब्राह्मण की वाणी-गौ घातक का राजा आज ही मरा हुआ है—मुर्दा है।

श्रीकृष्ण ने वह दृश्य दिखला कर अर्जुन से कहा था कि ये सब मैंने मार डाले हैं, तू तो अब निमित्त-मात्र हो जा। इसी तरह, यद्यपि आगे ८वें, ९वें और ११वें मन्त्र में कहा है यह ब्राह्मण-वाणी ही ऐसे राजा को मार डालती है पर असल में ब्राह्मण-वाणी तो निमित्त-मात्र ही होती है। यह सबका भला चाहने वाली ब्राह्मण वाणी तो किसी का नाश नहीं चाहती और न करती है, पर ऐसा राजा अपने आप ही अपने को मार डालता है ऐसा कहना चाहिए। 'आत्म-पराजितः' शब्द का अर्थ यह बनता है कि जो अपने आप हारा हुआ है। उसे हराने व मारने के लिये ब्राह्मण को फौज आदि खड़ी करने की चिन्तायें नहीं करनी पडतीं। उसका पाप ही उसे मार डालता है। उसने अपने अन्दर आत्मा को मार डाला होता है अतएव वह पहिले ही हार चुका होता है। उसके हार और विनाश का यह कारण समझ में आते ही भगवान कृष्ण के निम्न वाक्य कानों में गूँजने लगते हैं—

आत्मैवात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः।

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः

अनात्मानस्तु शत्रुत्वे वर्त्तेतात्मैव शत्रुवत्।

गीता ६—५, ६

३

रोकी गई ब्राह्मण-वाणी बड़ी भयंकर वस्तु है

आविष्टिताघविषा पृदाकूरिव चर्मणा।
सा ब्राह्मणस्य राजन्य ! तृष्टैषा गौरनाद्या ॥

(एषा ब्राह्मणस्य अनाद्या गौः) ब्राह्मण की यह अनाशनीया वाणी (तृष्टा) जब प्यासी होती है अर्थात् बोलने की तीव्र इच्छा वाली होती है पर बोलना मिलता नहीं, रोकी गई होती है ; तब (सा) वह वाणी (चर्मणा आविष्टिता) चमड़े से ढँकी हुई (पृदाकूः) सर्पिणी (इव) की तरह (अघविषा) भयंकर विष वाली हो जाती है।

यद्यपि ब्राह्मण वाणी बड़ी सरला, दयालु और परोपकारिणी होती है, किसी को हानि नहीं पहुँचाना चाहती ; पर जब वह रोकी जाती है (प्यासी रखी जाती है) तब रोकने वाले राजा व सरकार के लिये यह कैसी हो जाती है) यह बात इस मन्त्र में कही है। तब यह भयंकर विष वाली सर्पिणी के समान हो जाती है। ऊपर से तो सर्पिणी सुन्दर चमकीले चमड़े से ढकी होती है, एक निर्दोष प्राणी दिखाई देती है ; पर उसके मुँह में घातक विष भरा होता है। यदि उसमें विष न हो तो सर्पिणी सबको बड़ी प्यारी और मनोहर चीज लगा करे। इसी तरह यह रोकी हुई ब्राह्मण-वाणी बड़ी सीधी और भोली वस्तु दिखती हुई भी ऐसे राजा और सरकार के लिए विष-पूर्ण हो जाती है। विष-पूर्ण कैसे हो जाती है यह जरा समझने योग्य बात है।

रोकने से विष पैदा होता है। न रोकने योग्य वस्तु के रोकने का यही परिणाम होता है। वायु को अपने कमरे में आने से बिलकुल रोक दो, वायु हमें कुछ नहीं कहेगी पर हमारा बन्द कमरा विषैला हो जायेगा, और हमारी मृत्यु का कारण हो जायेगा। शरीर में रुधिर की गति को रोक दो, शरीर विषाक्त हो जायेगा। हैजे की बीमारी में मृत्यु इसलिये हो जाती है क्योंकि मूत्र रुक जाता है, मूत्र रुकने से शरीर में विष जमा हो जाता है। एक मूर्ख ऐसा सोच सकता है कि मूत्र एक तरह का पानी होता है, यदि वह शरीर में रोक रखा जाय (बाहर न निकलने दिया जाय) तो वह पानी हमारे शरीर का क्या बिगाड़ डालेगा। पर उसे यह मालूम नहीं कि इससे शरीर में विष जमा हो जायेगा। असल बात यह है कि पवित्रता करने वाली वस्तुएँ स्वतन्त्रता से बहने देनी चाहिये, वे कभी रोकने लायक नहीं होतीं। उनके रोकने से पवित्रता होनी बन्द हो जाती है, हमेशा बनते रहने वाला विष बाहर नहीं निकल सकता। ब्राह्मण-वाणी भी ऐसी ही 'पावमानी' पवित्रता करने वाली वस्तु होती है। मूर्ख वा स्वार्थी राजा इसे अहितकर समझ कर रोकता है, वह समझता है इस वाणी के चुप हो जाने से भला होगा, किन्तु होता यह है कि राष्ट्र में पवित्रता होते रहना बन्द हो जाता है। अब पाठक समझे होंगे कि रोकने से ब्राह्मण-वाणी विषैली कैसे हो जाती है और इसे

सर्पिणी से उपमा क्यों दी गई है*।

स्वयं ब्राह्मण-वाणी में तो कभी भी विष नहीं आता, वह तो अमृत से भरी होती है। किन्तु सामान्य जनता में जो स्वभावतः बदला लेने की इच्छा, क्रोध, हिंसा, द्वेष आदि विष होते हैं, वे सामान्यतया स्वतन्त्र, स्वाधीन ब्राह्मण-वाणी द्वारा निकाले जाते रहते हैं अतः राष्ट्र में विष नहीं जमा होने पाता। पर जब कोई मूर्ख राजा इस 'अनाद्या' 'पाश्मानी' स्वाधीन ब्राह्मण-वाणी को बाँध देता है, रोक देता है तो उसका परिणाम यह होता है कि जनता में ऐसे राजा के विरुद्ध द्वेष घृणा आदि विष जमा हो जाता है। अपने देश की वर्तमान अवस्था का ही दृष्टान्त लें, प्रायः सब यह अनुभव करते हैं कि महात्मा गान्धी की वाणी कितना अधिक विष दूर करने का काम करती है। सरकार के कई समझदार उच्चाधिकारी भी यह बात समझते हैं कि गांधी का बोलना रोकने की अपेक्षा उसे बोलने देना अच्छा है। यह इसीलिये कि वास्तव में ब्राह्मण-वाणी पवित्रता-कारक वस्तु है उसका तो काम ही सब प्रकार का विष दूर करना है। वह राजा-प्रजा सब में से विष दूर करने की तीव्र इच्छा वाली होती है।

इस मन्त्र में 'तुष्टा' शब्द विशेष ध्यान देने योग्य है। इसका मूल अर्थ 'तीव्र इच्छा वाली' ऐसा होता है। वाणी की इच्छा तो बोलने की ही होती है अतः इसका अर्थ हमने किया है "जो बोलना चाहती है पर बोलना मिलता नहीं।" पर तृष' धातु एक खास इच्छा में—पीने की इच्छा में—रूढ़ हो गई है। इसी रूढ़ि अर्थ में बोलें तो 'तृष्टा' का अर्थ है 'प्यासी'। ब्राह्मण-वाणी राष्ट्र में विष दूर करने के लिये प्यासी रहती है। जैसे जब हमें प्यास लगती है तो इसका मतलब यह होता है कि शरीर में कोई ऐसे विष जमा हो गये हैं जिन्हें शरीर अपने प्रसिद्ध पवित्रताकारक साधन (पानी) द्वारा निकालना चाहता है, उसी तरह ब्राह्मण-वाणी राष्ट्र में से (राजा और प्रजा सब में से) जब विष निकालने की तीव्र इच्छा वाली होती है, तभी वह बोलना चाहती है, प्यासी* होती है। पर यदि तब राष्ट्र का मूर्ख राजा (कड़वी बात सुनना न चाहता हुआ) उसे बोलने नहीं देता, प्यासी रखता है तो इस द्वारा राष्ट्र शरीर में घोर विष जमा न हो जायगा तो और क्या होगा।

यदि कोई आदमी हवा के साथ आनेवाली गरमी वा सर्दी के डर से वायु को बिल्कुल ही बन्द करने का प्रबन्ध करने लगे तो जैसे उसका कोई हितैषी उसे समझावेगा कि "यह तो तू आत्म-घात करने लगा है। यदि वायु बिल्कुल ही बन्द हो जायेगी तो तू कुछ ही मिनटों में ही मर जायगा। सर्दी या गर्मी से डर के हवा बन्द करना तो बिच्छू से भाग कर साँप के मुँह में पड़ना है। गर्मी या सर्दी को यथा-शक्ति सहो, पर वायु का आना बिल्कुल बन्द न कर दो ……", वैसे ही यहाँ 'वेद' ने राजा को उसके हित के लिये इसके भयंकर परिणाम दिखला कर समझाया है।

---

* 'चर्मणाभिष्टिता' का अर्थ यह भी हो सकता है कि केंचुली से जो जुदा हुई है। कहते हैं कि जब सर्पिणी केंचुली छोड़ चुकती है उस समय वह विशेष विषैली होती है।

* इस मन्त्र में यदि 'गौ' का अर्थ गाय पशु हो तो उसका विशेषण भूत 'तृष्टा' शब्द का विशेष, संगत अभिप्राय हो सकता है, यह पाठक ही विचार लें। ग्रिफथ ने यहाँ 'तृष्टा' का अर्थ बुरे स्वाद वाली ऐसा न जाने कैसे किया है।

४

यह वाणी सब में आग लगा देती है।

निर्वै क्षत्रं नयति हन्ति वर्चोऽग्निरिवारब्धो
विदुनोति सर्वम्।
यो ब्राह्मणं मन्यते अन्नमेव स
विषस्य पिबति तैमातस्य॥

रोकी गई ब्राह्मण की वाणी (वै क्षत्रं निःनयति) राष्ट्र में से क्षत्र को निकाल देती है (वर्चः हन्ति) तेज का नाश कर देती है और (आरब्धः अग्निः इव) सुलगाई हुई आग की तरह (सर्वं वि दुनोति) सब कुछ जलाने लगती है। इसलिये (यः ब्राह्मणं अन्नं एव मन्यते) जो राजा ब्राह्मण को खा जाने की चीज समझता है (सः तैमातस्य विषस्य पिबति वह धोखा हुआ विष पीता है या साँप का विष पीता है।

बहुत से वैद्य और रोगी शरीर में से निकलना चाहते हुए वात, पित्त आदि दोषों के अंशों को, या विजातीय द्रव्यों (foreign matter) को औषधि के सेवन द्वारा या अन्य अप्राकृतिक उपचारों द्वारा दबा देने का यत्न किया करते हैं। पर ऐसे दबा देने का फल केवल इतना होता है कि ये उस रूप में नहीं निकल सकते तो दूसरे किसी रूप में फूट पड़ते हैं। यही बात ब्राह्मण वाणी को दबा देने से होती है। राजा यदि ब्रह्मण-वाणी को बोलने नहीं देता, दबाता है तो यह भी अन्य रूप में फूट निकलती है। वाणी को (अन्दर के भाव के प्रकाशन को) सर्वथा रोका नहीं जा सकता है, यह 'अनाद्या' है, 'अवन्धनीया' है। वाणी की आवाज़ को रोकने से या लेखन आदि द्वारा जो वाणी का प्रकाश होता है, उसे रोक देने से यह रुक नहीं जाती (जैसा हम आगे देखेंगे असली वाणी तो मानस वाणी है)। किन्तु जैसे वात, पित्त, कुपित हो जाते हैं, विकृत हो जाते हैं, रोग लक्षणों के रूप में प्रगट होते हैं; वैसे ही वाणी भी विकृत कुपित हो जाती है, विकृत रूप में फूट निकलती है।

अभी छठे मन्त्र में हम देखेंगे कि ब्राह्मण-वाणी अग्नि-रूप होती है। यही अग्नि रूप वाणी जब रोकी जाने के कारण विकृत हो जाती है तो विकृत अग्नि का रूप धारण कर लेती है। शरीर का ही दृष्टान्त लें तो हम जानते हैं कि शरीर में शुद्ध, अविकृत अग्नि सदा रहती है, जिसके कारण हमारा शरीर कायम रहता है। भोजन के ठीक पचन आदि क्रियाओं द्वारा यह अग्नि सदा उत्पन्न होती रहती है और नाना तरह से अन्न का पचाना आदि शारीरिक कार्यों में व्यय होती रहती है तथा शरीर को स्वस्थ, पुष्ट रखती है। पर यही अग्नि जब विकृत हो जाती है तो शरीर में ज्वर (बुखार) को उत्पन्न कर देती है। तब सब शरीर जलने लगता है, शरीर का सब कार्य-संचालन बिगड़ जाता है, शरीर निर्बल हो जाता है, सहन शक्ति जाती रहती है, चित्त में उत्साह नहीं रहता, मन मुरझा जाता है, भूख मन्द हो जाती है या प्यास बहुत लगने लगती है इत्यादि बहुत से उपद्रव खड़े हो जाते हैं। यही हाल राष्ट्र में तब होता है जब कि राष्ट्र शरीर की अग्नि (ब्राह्मण वाणी) रुकने के कारण विकृत रूप में प्रगट होती है। राष्ट्र उस समय उपतप्त हो जाता है ('दु उपतापे') इस धातु से 'दुनोति' शब्द बना है), मानो ज्वर चढ़ जाता है, सब राष्ट्र

में आग लग जाती है। जैसे एक चिनगारी से सारे में आग फैल जाय, वैसे ही रोकी गई ब्राह्मण वाणी से रुकते हुए (अतएव अधूरे) निकले हुए उस राजा या राजप्रणाली के विरुद्ध विचार विकृत रूप में राष्ट्र में फैल जाते हैं उसके कार्यों के प्रति उत्तेजना या रोष फैल जाता है। राष्ट्र में विचारों की एक अनियन्त्रित क्रान्ति हो जाती है, सब कुछ जलने लगता है। बुरी बातों के साथ साथ बहुत-सी अच्छी बातें भी नष्ट कर दी जाती हैं। 'अग्निरिवारब्धो विदुनोति सर्वम्'।

ब्राह्मण वाणी को रोकने का परिणाम केवल इतना ही नहीं होता किन्तु जैसे बुखार चढ़ जाने पर शरीर की शक्ति निकल जाती है, शरीर निर्बल हो जाता है वैसे ही राष्ट्र शरीर में भी जब इस ब्राह्मण वाणी के कुपित हो जाने से राज्य के विरुद्ध उत्तेजना की अग्नि लग जाती है; तब राष्ट्र का क्षत्र, क्षात्र बल जो कि क्षत से त्राण करने वाला राष्ट्र का बल होता है) निकल जाता है। उस राजा या सरकार के प्रति जनता का विरोध जितना तीव्र होता है उतनी ही मात्रा में उसका 'क्षत्र' नष्ट हो जाता है। बहुत से क्षत्रिय लोग उस सरकार की सेवा करनी छोड़ देते हैं और जो थोड़े से क्षत्रिय सेवा करते हैं प्रजा उनके काबू में नहीं रहती। मतलब यह कि अराजकता आ जाती है। क्षत्र के विरुद्ध प्रजा यहाँ तक खड़ी हो सकती है कि राजा को गद्दी से उतार दे या सरकार को बदल दे; जैसे पुराने समय में वेणु राजा को गद्दी से उतार दिया था, जैसे कि इङ्गलैंड में चार्ल्स प्रथम और फ्रांस में लुई १६वें को सूली पर चढ़ा दिया गया था और जैसे अभी रूस की प्रजा अपने जार का अन्त बुरी तरह करके चुकी है।

प्रारम्भ में यह क्षत्र का होता हुआ नाश स्पष्टतया दिखाई नहीं देता। चारपाई पर ही पड़े रहने पर बहुत बार बुखार के बीमार को भी अपनी शक्ति के ह्रास का देर तक पता नहीं लगता, पर जब कभी वह बैठने या चलने का यत्न करे और गिर पड़े तब पता लगता है कि वह कितना निर्बल हो गया है। इसी तरह ऐसे विप्लवित राष्ट्र पर जब कोई परराष्ट्र आक्रमण करे या कुछ और घटना हो तब वह राष्ट्र खड़ा नहीं रह सकता क्योंकि उस समय के राजा के साथ प्रजा की सहानुभूति न रहने से देशवासी उस सरकार का साथ नहीं देते। तब राजा को पता लगता है कि वह कितना निर्क्षत्र हो गया है और राष्ट्र को ऐसी निर्क्षत्र-अवस्था में तब तक रहना पड़ता है जब तक कि वहाँ नया शासन स्थापित नहीं हो जाता। ब्राह्मण-वाणी के रोकने का यहाँ तक दुष्परिणाम होता है।

और जैसे बुखार की कृत्रिम गर्मी चढ़ने पर मनुष्य का स्वाभाविक तेज क्षीण हो जाता है वैसे ही उस अवांछित राज्य के विरुद्ध आन्दोलन की अग्नि भड़क उठने पर उस राज्य का आतंक उठ जाता है, उसका तेज (Prestige) मिट जाता है और कई बार मनुष्य को निस्तेजस्कता बुखार उतर जाने पर स्पष्ट दीखती है बुखार के समय नहीं; वैसे ही ऐसे शासन का तेजोनाश भी सधार में कभी-कभी कुछ देर बाद प्रगट होता है।

क्षत्र के साथ ही क्षत्र का तेज रहता है। क्षत्र के नाश के साथ तेज भी नष्ट हो जाता है यह स्वाभाविक है। उस समय जहाँ बाहर के राष्ट्र उस पर विश्वास नहीं करते, उससे मैत्री नहीं चाहते परन्तु उसे दबाने की चेष्टा करते हैं, वहाँ उसके अन्दर भी ज्यों ज्यों यह क्षत्र और तेज अधिक अधिक नष्ट होता जाता है त्यों-त्यों यह अग्नि और भड़कती जाती है। जो सामान्य लोग पहिले राज्य के आतंक के कारण डरे रहते थे वे भी अब राज्य-शक्ति के ह्रास के कारण खुल्लमखुल्ला विरोधी में सम्मिलित होने लगते हैं। इस तरह यह अग्नि प्रचण्ड रूप धारण करती जाती है जब तक कि प्रजा विरोधी शासन का बिल कुछ स्वाहा नहीं कर देती।*

---

* पाठक यह इन सब मन्त्रों में देखते जायें कि यदि यहाँ गाय का ही वर्णन ठीक हो तो ये अर्थ कहाँ तक संगत होते हैं।

राष्ट्र पर यह सब आपत्ति ब्राह्मण वाणी को रोकने से आती है। यदि उसे रोका न जाय बल्कि उसे सुना जाय तो राजा और प्रजा दोनों का लाभ हो। राजा उसे सुनकर या शुद्ध हो जाय या शासन छोड़ दे; प्रजा को इतना कष्ट न हो। सच्चे ब्राह्मणों की वाणी में सदा तेज होता है स्वाभाविक अग्नि होती है, क्योंकि वे बिलकुल निःस्वार्थ तपस्वी होते हैं। यद्यपि साधारण लोग तो ब्राह्मण वाणी की शक्ति का तभी अनुभव करते हैं जब कि इस द्वारा किसी विकृत आग को देश में भड़कती देखते हैं (जैसे कि हम लोग देह की अग्नि को बुखार चढ़ने पर ही स्पष्ट देखते हैं), पर ब्राह्मण की वाणी रूपी अग्नि को यदि वह रोकी न जाय तो निरन्तर ही चुपचाप बड़ा भारी काम करती रहती है। इस वाणी के तेज से जो राष्ट्र में शान्ति क्रान्ति हो जाती है उस में राजा और प्रजा दोनों का कल्याण होता है। अतः ब्राह्मण-वाणी कभी रोकनी नहीं चाहिए। यदि रोकी जायगी तो वह दूसरे रूप में फूट कर निकलेगी।

इसके बाद इस मन्त्र के उत्तरार्द्ध में जो कुछ कहा है वह स्पष्ट ही है राजा ब्राह्मण को* अन्न (खा जाने की चीज) समझता है वह घोला हुआ विष पीता है। घोला हुआ विष जल्दी असर करता है। अन्य साधारण लोगों की वाणी रोकना भी विषपान है, पर ब्राह्मण की वाणी का रोकना घोला हुआ† (तैमात) विष पीना है। ब्राह्मण-वाणी का प्रभाव भी सब पर और एक दम होता है।

यों कहना चाहिए कि जैसे कोई अज्ञानी विष खाता हुआ यह समझे कि मैं भोज्य अन्न खा रहा हूँ, इससे मेरी पुष्टि होगी। वैसे ही मूर्खता का काम वह राजा कर रहा होता है, जो कि ब्राह्मण को (प्रजा के सच्चे नेता को) दबाने, मारने, नाश करने में, अपनी पुष्टि—अपने शासन (Government) की पुष्टि—समझता है।

* यह तो यहाँ दुहराने की जरूरत नहीं कि इस मन्त्र में तथा अगले मन्त्र में जो ब्राह्मण को खा जाने की बात कही है, उसे तो कोई भी रूढ़ि अर्थ में लेकर 'चबा जाना' ऐसा मतलब नहीं निकलेगा ? तो इसी तरह जहाँ साथ के मन्त्रों में ब्राह्मण की जगह ब्राह्मण वाणी के खा जाने की बात आई है, वहाँ भी उसका अर्थ मुँह में चबा कर पेट में ले जाना यह नहीं है। अतः खा जाने का शब्द आ जाने से ही गौ का अर्थ भी 'गाय' न समझ लेना चाहिए।

† "तिमि क्लेदने" से तैमात शब्द बना है।

५

ऐसे राजा को अन्दर या बाहिर कहीं भी शान्ति नहीं मिलती

य एनं हन्ति मृदु मन्यमाना
देवपीयुर्धनकामो न चित्तात्
सं तस्येन्द्रो हृदयेऽग्निमिन्ध
उभे एनं द्विष्टो नभसी चरन्तम्॥

(यः) जो (देवपीयुः) देव भाव का नाशक (धनकामः) धनलोभी राजा (न चित्तात्) नासमझी के कारण (मृदु मन्यमानः एनं हन्ति इस ब्राह्मण को कोमल, दुर्बल समझ कर हनन करता है, (तस्य हृदये) उस राजा के हृदय में (इन्द्रः) इन्द्र (अग्निं सं इन्धे) आग जला देता है, और (एवं चरन्तं) जब यह चलता है—या आचरण करता है,

काम करता हुआ होता है तब (उभे नभसी) द्यौ और पृथ्वी दोनों ही—अर्थात् इन लोकों में स्थित सब देवता (द्विष्टः) इससे द्वेष करते हैं।

पिछले मन्त्र में कहा है ऐसा राजा मूर्खता से नासमझी से विष को अन्न समझता है—ब्राह्मण के पीड़न को अपना घातक समझने की जगह अपना पोषक समझता है। पर यह नासमझी (न चित्तात्) उस में क्यों आती है ? इसका हेतु है 'धन काम'। उसे धन की इच्छा होती है। उसे धन की क्यों इच्छा होती है ? क्योंकि वह 'देवपीयु' होता है। 'देवपीयु' का अर्थ पाठक पहिले समझ लें। यह शब्द अगले मन्त्रों में भी प्रयुक्त होगा और १३ वें मन्त्र में तो वह मुख्य शब्द होगा 'देवपीयु' का अर्थ है देवों का हिंसक। देवपीयु वह राजा होता है जो अपने राज्य में, अपने शासन में देव भावों को नष्ट कर देता है। जैसे पहिले कहा है कि इस जगत् पर देवाधिदेव परमात्मा अपने अग्नि आदि देवों द्वारा अटल और पूर्ण शासन कर रहे हैं। जैसे ये भगवान् के राज्य के पदाधिकारी देवता लोग बिल्कुल निःस्वार्थ हो कर पूर्णता के साथ अटल नियमों में बँधे हुए शासन करते हैं वैसा ही जिस मनुष्य—राजा का शासन होता है, अर्थात् उन्हीं नियमों का यथाशक्ति अनुसरण जहाँ होता है वह शासन 'देव-शासन कहा जा सकता है, पर जो राजा अपने शासन में अपना कर्तव्य छोड़ कर स्वार्थरत हो जाता है, उस राज्य में देव-भाव मारा जाता है, और आसुर भाव आ जाता है। ऐसे राजा को वेद में 'देवपीयु' कहा है। संक्षेप में, अपना कर्तव्य न पालन करने वाले अर्थात् प्रजा पीड़क स्वार्थी राजा का नाम 'देवपीयु' है।

ऐसा स्वार्थी, प्रजा के प्रति अपना कुछ कर्तव्य न समझने वाला, प्रजा का कुछ ध्यान न रखने वाला राजा 'अक्ष द्रुग्ध' हो जाता है, विलासी, विषयी हो जाता है। अपने इन विषयों का ही सदा ध्यान करते करते उसमें उन विषयों की पूर्त्ति में साधन-भूत दीखने वाले 'धन' के प्रति 'काम' पैदा हो जाता है। उसे धन की तीव्र इच्छा हो जाती है। यह इच्छा इतनी अन्धी हो जाती है कि इस इच्छा के सामने उसे और कुछ नहीं सूझता। जिस किसी तरह धन मिले केवल यही बात उसे सूझती है अन्य किसी तरफ उसका ध्यान नहीं जाता। जब 'धन काम' के कारण वह इतना अन्धा हो जाता है—गीता के शब्दों में कहे तो 'काम' के कारण 'संमुग्ध' और स्मृति भ्रष्ट हो जाता है, तब वह ब्राह्मण को 'मृदु'—दुर्बल—समझता है, इसे खा जाना बड़ा आसान और निरापद समझता है।

ऐसे राजा की आन्तरिक अवस्था कैसी होती है इस बात का वर्णन इस मन्त्र में है। इसमें कहा है कि इन्द्र उसके हृदय में अग्नि जला देता है और दोनों लोक आकाश और पृथ्वी उसे चलते हुए को द्वेष करते हैं। वह जब ठहरता है, अकेला होता है तब तो उसके अन्दर इन्द्र द्वारा जलाई आग इसे तपाती है, और वह जब चलता है—लोगों के साथ सम्पर्क में आता हुआ काम में लगा होता है तो ऊपर नीचे सब संसार उसे कोसता सा है। अर्थात् न अकेला होने में और न हीं काम में लगे रहने पर, कभी भी उसे शान्ति नहीं मिलती। अकेले में उसे चिन्ता की अग्नि या पश्चात्ताप की अग्नि जलाने लगती है—अन्तःकरण उसे काटता है—(अन्तःकरण का वासी उसका आत्मा 'इन्द्र' उसे जलाता है), तो इससे बचने के लिए यदि वह बाह्य कार्यों में लग जाता है और दुनिया से मिलता है तो वहाँ भी उसे अपनी निन्दा सुनाई देती है या अपने प्रति घृणा के भाव दिखलाई देते हैं। लोगों में उसके प्रति घृणा के भाव आ चुके होते हैं और वे किसी न किसी प्रकार प्रकट होते ही हैं। एवं अन्दर-बाहर उसे कहीं चैन नहीं मिलता।

असल में बाहिर जो कुछ है सब अन्दर की ही छाया है। प्रत्येक व्यक्ति की दृष्टि से संसार में दो ही चीजें होती हैं (i) आत्मा (Self)=स्व=अन्दर और (ii) अनात्मा (Not Self)=पर=बाहिर। सब अनात्म (बाहिर) प्रत्येक व्यक्ति के लिये उसके 'आत्म' अन्दर ही की प्रति-

कृति होता है। व्यक्ति में 'आत्म' (अन्दर) का केन्द्रस्थान हृदय है। हृदय में सब संसार मौजूद है। यह ही इन्द्र का (आत्मा और परमात्मा का) स्थान है। अतएव इस 'आत्म' (अन्दर) का वर्णन इस मन्त्र में "हृदय में इन्द्र आग जलाता है" इस तरह किया है, और शेष सब जगत् (अनात्मा) को इस मन्त्र में 'उभे नभसी' शब्द से कहा है। ऐसे 'देवपीयु' राजा ने अपने अन्दर (आत्मा) में देवों का नाश किया होता है अतएव वह बाहिर (सब संसार) के सब देव उससे द्वेष करते हैं—प्रतिकूल होते हैं। इसलिये अब उस राजा का सुधार भी अन्दर से ही हो सकता है, अतएव 'इन्द्र' * (उसका आत्म या परमात्मदेव) उसके अन्दर के केन्द्र-स्थल हृदय में पश्चात्ताप या दुःख की अग्नि जला देते हैं, जिससे कि पीड़ित होकर वह अपने पहिले के अन्दर के 'आत्म राज्य' की महिमा को समझे—अपने में देवों का राज्य फिर से स्थापित करे। बाहिर जो सब जगत् उससे द्वेष करता है उसको देखकर भी उसे यही शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये कि वह 'देव-पीयु' की जगह देव बन्धु बन जाय, अपना क्षुद्र स्वार्थ छोड़कर प्रजा-पालन के कर्तव्य में अपना स्वार्थ समझे।

पाठक यहां यह देखें कि यहां पर ऐसे राजा को 'प्रजा-पीयु' कहने की जगह 'देव-पीयु' कहा है और 'सब प्रजा उससे द्वेष करती है' इसकी जगह 'दोनों लोक अर्थात् सब देवता उससे द्वेष करते हैं' ऐसा कहा है। सब जगत् को देवमय देखने की वेद की शैली है। वैदिक वायुमण्डल में रहने वाले की सर्वत्र देव-भावना हो जाती है। प्रजा के जितने मनुष्य हैं वे सब देव हैं ऐसा राजा समझे वेद में "पञ्चजन" नाम से इस प्रजादेवता की स्तुति की गई है। अतः प्रजाद्रोह 'देवद्रोह' है। अधिक ठीक शब्दों में कहें तो प्रजाद्रोह 'देवद्रोह' इसलिये है क्योंकि वह राजा प्रजा का पीड़न करता है, केवल प्रजारूपी देवता के प्रति पाप नहीं करता अपितु वह देवों के प्रति (परमात्मा के प्रति) पाप करता है। वेद में इस उच्चाशय से उसे 'प्रजापीयु' की जगह 'देवपीयु' शब्द से पुकारा है। इसी तरह प्रजारूप देवता उसके विरुद्ध हो जाती है इतना ही नहीं किन्तु जगत् के सब लोकों के देवता इसके विरुद्ध हो जाते हैं, क्योंकि वह प्रजापीड़न कर जगत् के (परमात्मा के) नियमों का भंग करता है। जैसे ब्राह्मण की वाणी देवों ने राजा को दी है। (देखो मन्त्र १) वैसे ही प्रजा भी पालन के लिये देवों ने (परम देव परमात्मा ने) दे रखी है। अतः यह केवल प्रजा-देवता के प्रति पाप नहीं, किन्तु परम देवता परमात्मा के प्रति भी पाप है। पाठकों को यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिये।

इसके विपरीत जो उपर्युक्त प्रकार का ब्राह्मण है उसके प्रजा अनुकूल होती है इतना ही न कह कर वेद अपने अगले मन्त्र में यह कहेगा कि सब देवता उसके अनुकूल होते हैं और इन देवों की अनुकूलता के कारण ब्राह्मण असहाय, दुर्बल, 'मृदु' नहीं होता जैसा कि 'देवपीयु' राजा उसे समझता है, किन्तु वह तो सब देवताओं की महती शक्ति से सुरक्षित होता है अतएव महाबली होता है। यह बात अब पाठक अगले मन्त्र में देखें।

---

* यहां परमात्मा को खास इन्द्र रूप से क्यों स्मरण किया है इसका स्पष्टीकरण पाठक अग्रिम मन्त्र की व्याख्या में देखेंगे।

६

ब्राह्मण स्वयं अग्नि रूप है और उसके सहायक सब देवता हैं

न ब्राह्मणो हिंसितव्योऽग्निः प्रियतनोरिव।
सोमो ह्यस्य दायाद इन्द्रो अस्याभिशस्तिपाः॥

(प्रियतनोः अग्निः इव ब्राह्मणः न हिंसितव्यः) प्यारे शरीर की अग्नि की तरह ब्राह्मण होता है अतः उसकी हिंसा नहीं करनी चाहिये। (अस्य) इस ब्राह्मण का (सोमः हि) सोमरूप जगदीश्वर (दायादः) सम्बन्धी है और (इन्द्रः) इन्द्ररूप परमेश्वर (अभिशस्तिपः) हिंसा से बचाने वाला है।

ब्राह्मण की हिंसा इसलिए नहीं करनी चाहिये क्योंकि ऐसा करना आत्मघात करना है। सब को अपना शरीर प्यारा होता है। उसमें जो गर्मी है, प्राण है, जान है वही शरीर को प्यारा बनाती है। गर्मी निकल जाती है तो शरीर मुर्दा हो जाता है। जैसे शरीर में इस अग्नि को ठंडा कर देना आत्मघात कर लेना है, वैसे ही ब्राह्मण को मारना राष्ट्रीय आत्मघात करना है। क्योंकि ब्राह्मण प्यारे राष्ट्रीय शरीर की अग्नि होता है।

इस मन्त्र में पहली बात यह कही है कि ब्राह्मण अग्नि है। वैदिक साहित्य में ब्राह्मण का अग्नि से सम्बन्ध सुप्रसिद्ध है। जहां विराट् पुरुष के मुख से आधिभौतिक क्षेत्र में ब्राह्मण पैदा हुआ है [ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्], वहां आधिदैविक क्षेत्र में इस पुरुष के मुख से अग्नि पैदा हुई है [मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च], और आध्यात्मिक क्षेत्र में वही अग्नि वाक् (वाणी) हुआ है [अग्निर्वाक् भूत्वा मुखं प्राविशत्] देवताओं का जहां वर्णविभाग कहा है वहां भी अग्नि देवता ब्राह्मण है। इस प्रकार अग्नि, ब्राह्मण और वाणी का परस्पर सम्बन्ध—इनका एकत्व—वैदिक साहित्य में माना गया है। इसके बहुत से प्रमाण दिये जा सकते हैं। यहां तात्पर्य इतना है कि शरीर की अग्नि के नाश के समान ब्राह्मण नाश करना भी आत्मघात है।

इस मन्त्र के उत्तरार्द्ध में दूसरी बात यह कही है कि सोम ब्राह्मण का दायाद है और इन्द्र इसको हिंसा से बचाने वाला है। इसलिये इसे असहाय दुर्बल-नहीं समझना चाहिये। इसके साथी दो बड़े-बड़े देवता हैं। साधारण लोगों को इतना जानना पर्याप्त है कि सोम और इन्द्र ये दोनों परमात्मा के ही दो नाम हैं जो कि दो भिन्न-भिन्न दृष्टि से दिये गये हैं। अभिप्राय यह कि सब जगत् का एक मात्र राजा परमात्मा उस ब्राह्मण का इन दो रूपों से रक्षक होता है। परन्तु विचारक सज्जनों को इस सूक्ष्मता में भी जाना चाहिये कि 'सोम' और 'इन्द्र' परमात्मा की किन शक्तियों का नाम है, और ये 'अग्नि' के साथ 'दायाद' और 'रक्षक' के सम्बन्ध से क्योंकर हैं?

इस सम्पूर्ण सूक्त में अग्नि, सोम और इन्द्र इन तीन देवताओं ही का नाम दो-तीन जगह आया है, जगदीश्वर की जगत् में काम करती हुई तीन प्रधान शक्तियों की दृष्टि से इन तीन नामों से (तीन देवों के रूप में) परमात्मा को इस

सूक्त में देखा गया है। इन्हीं तीनों में शेष सब देवता समा जाते हैं। यह त्रिदेवत्व (Trinity) सब धर्मों में प्रसिद्ध है।

पाठक निम्नलिखित कोष्ठक को जरा ध्यान से देख लें :—

	ब्रह्म		क्षत्र
१	अग्नि	सोम	इन्द्र
	अग्रणीभवति	सुनीतेः	इन्दञ्छत्रूणां दारयिता
२	उन्नति (वृद्धि)	स्थिरता (पुष्टि)	रक्षा (शत्रुनाशन)
३	ब्रह्मा (उत्पत्ति)	विष्णु (स्थिति)	महेश (संहार)
४	Progress	Permanance	Protection
५	Legislature (व्यवस्था)	Judicial (न्याय)	Executive (शासन)
६	पिङ्गला	इडा	सुषुम्ना
७	पित्त	कफ	वात
८	नाभि	शिर	हृदय

इस कोष्ठक की पहिली तीन संख्यायें इन देवों के सामान्य सम्बन्ध को बताती हैं। ४, ५ संख्या में तीनों देव आधिभौतिक क्षेत्र में (समाज व राष्ट्र में) जिस एक विशेष रूप में प्रकट होते हैं, वह दिखाया है एवं ६, ७, ८ संख्यायें इन देवों के रूप को वैयक्तिक शरीर में दिखलाती हैं।

पहिले हम अग्नि और सोम के परस्पर सम्बन्ध को विचारें। "अग्निषोमौ" यह अग्नि और सोम का द्वन्द्व जगत् में प्रसिद्ध है। अग्नि उन्नति, वृद्धि का द्योतक है तो अग्नि द्वारा जो कुछ उन्नति हुई है, उसे स्थिर करना, पुष्ट करना 'सोम' का काम है। अग्नि 'अग्रणी' अर्थात् आगे ले जानेवाला होता है, सोम उसमें रस भर देता है। केवल अग्नि और केवल सोम अपर्याप्त होते हैं। ये दोनों मिल कर ही जीवन को चलाते हैं। एक दूसरे के ये पूरक (Complimentary) हैं। उन्नति आगे बढ़ना भी होना चाहिए और उन्नति में स्थिरता भी आनी चाहिए। अग्नि की वृद्धि को सोम पुष्ट करता है। अतएव अग्नि का सोम दायाद है—उसके दिये हुये (दाय) का ग्रहण (आदाय) करता (दायम् आदत्ते इति दायादः) है। इनका यह परस्पर दायाद सम्बन्ध पाठक समझे होंगे।

तत्ववेत्ता मिल ने शासन (Government) का उद्देश्य Progress और Permanance इन दो शब्दों में बताया है। राष्ट्र को उन्नत करना और उसकी उन्नति को स्थिर और पुष्ट करना। पर ये दोनों बातें आन्तरिक कल्याण को बताती हैं। यदि बाहर का जगत् बिलकुल न हो, तब तो इन दो बातों में सब उद्देश्य आ जाय, पर ऐसा नहीं है। अन्दर की उन्नति में बाहर से बाधा पड़ सकती है। तब इन दो में 'मिल' की तीसरी शक्ति Protection (रक्षण) मिलती है। पहिली दोनों मिलकर एक वस्तु होती है। इस एक 'अग्निषोमो' के साथ में दूसरा 'इन्द्र' होकर यह एक और द्वन्द्व बनता है। राष्ट्र में (आजकल के शब्दों में) इस द्वन्द्व को कानूनी (Civil) और फौजी (Military) कह सकते हैं। वेद में ये ब्रह्म और क्षत्र कहलाते हैं। Civil (ब्रह्म) में Progress और Permanance दोनों आ जाते हैं—व्यवस्था और न्याय दोनों आ जाते हैं। इन्द्र का अर्थ 'इन्दन् शत्रूणां दारयिता' यास्क मुनि ने किया है। ऐश्वर्य करता हुआ शत्रु का नाश करनेवाला देवता इन्द्र है। व्यवस्था (Lagislature) [जिसका कि पति ब्राह्मण होता है] को राष्ट्र में न्याय होते रहने से स्थिरता प्राप्त होती है, व्यवस्था राष्ट्र में कायम रहती है। परन्तु क्योंकि मनुष्य में एक ऐसा तत्त्व भी होता है, जो कि अपने बनाये नियमों के पालने में—न्याय कराने में—स्वयं प्रवृत्त नहीं होता या इसका विरोध शत्रुता तक करता है। अतएव न्याय को कार्य्यान्वित करने के लिये इन्द्र (क्षत्र) Executive की जरूरत होती है।

जगत् में ये तीनों देव प्रसिद्ध पौराणिक त्रिदेव 'ब्रह्मा, विष्णु और महेश' नाम से कहे जा सकते हैं।

इस मन्त्र में "प्रियतनोरिव" कह कर वैयक्तिक शरीर की उपमा दी गई है अतः हमें आध्यात्मिक में भी इन तीनों देवों का रूप देख लेना चाहिये। योग विज्ञान के अनुसार हमारे शरीर में दाईं तरफ पिंगला नाम की मुख्य नाड़ी है (इसे सूर्य भी कहते हैं) जो कि उन्नति और गति में प्रभाव करती है, बांई तरफ 'इडा' नाड़ी है (इसे चन्द्र भी कहते हैं) जो कि स्थिरता लाती है। इन दोनों के बीच में दोनों को मिलाने वाली सुषुम्ना नाड़ी है। इसी तरह आयुर्वेद की दृष्टि से पित्त और कफ का द्वन्द और इन दोनों का संचालक 'वात्' प्रसिद्ध है। मतलब यह है कि शरीर में भी ये अग्नि सोम और इन्द्र तीनों देव काम कर रहे हैं। अग्नि शारीरिक जीवन को उत्पन्न करती है, शरीर में उष्णता रूप में प्राण-जीवन लाती है, सोम रस पैदा करता हुआ उस उष्णता को प्रतितुलित रखकर इस जीवन को शरीर में स्थिर रखता है और इन दोनों से प्राप्त जीवन की रक्षा करता है। शरीर में इन्द्र वह शक्ति है जो कि स्वभावतः शरीर को रोगों से लड़ाती है। शरीर में जो यह प्रकृति है कि वह रोगों को हटाने का प्रयत्न अन्तिम समय तक करता रहता है वही इन्द्रशक्ति है। भौतिक शरीर में इन तीनों देवों का स्थान योग-विज्ञान के अनुसार इस प्रकार है। अग्नि नाभि में रहती है (यही वाणी का मूल स्थान है), इसके मुकाबले में ऊपर सिर में अधोमुख 'सोम' है। ये दोनों आपस में क्रिया प्रतिक्रिया करते रहते हैं। पर इन दोनों के मध्य में शरीर के केन्द्र (मुख्य) स्थान पर—इन्द्रदेव रहता है, यहां से सब शरीर का कार्य सञ्चालन करता है। इसीलिये गत मन्त्र में कहा था कि इन्द्र हृदय में आग जला देता है। हृदय इन्द्र का स्थान है और दण्ड देकर सुधारना उसका काम है।

इन तीन देवों का स्वरूप और सम्बन्ध कुछ विस्तार से इसलिये लिखा है क्योंकि यह १३ वें मन्त्र के समझने में भी काम आवेगा।

अब पाठक परमात्मा के अग्नि, सोम और इन्द्र इन तीनों शक्तियों का चित्र अपनी आँखों के सामने ला सकते होंगे कि वे कैसे सब जगत् में सब जगह काम कर रही हैं। इनमें से अग्नि (उन्नति के देवता) का प्रतिनिधि ब्राह्मण होता है। और क्योंकि यह ब्राह्मण देवपीयू नहीं होता (किन्तु देवबन्धु होता है) अर्थात् इन देवों के (जगत् के) सत्य नियमों के अनुकूल ही चलता हुआ परमात्मा की अग्निशक्ति का सच्चा प्रतिनिधि बनने का सदा यत्न करता है, अतएव परमात्मा की सोमशक्ति उसका दायाद हो जाती है, उसकी सोची हुई हर एक उन्नति को पोषित करने के लिये—स्थिर करने के लिये—तैयार रहती है, एवं परमात्मा की इन्द्र शक्ति उनके कार्य में आने वाली हर एक बाधा को दूर करने के लिये तैयार रहती है। इस प्रकार परमात्मा अनन्त शक्ति इन तीनों रूपों में सच्चे ब्राह्मण की सहायता कर रही होती है। तात्पर्य यह हुआ चूंकि वह अपने को परमात्मा के अग्नि रूप का सच्चा उपासक बनाता है, तो परमात्मा का सोमरूप और इन्द्ररूप भी उसका सदा साथ देता है। एवं परमात्मा की अनन्त शक्ति उसकी पृष्ठपोषक हो जाती हैं।

७

निगल तो जाता है, पर हज़म नहीं कर सकता

शतापाष्ठां निगिरति तां न शक्नोति निःखिदन्।
अन्नं यो ब्रह्मणां मल्वः स्वाद्वद्मीति मन्यते ॥

(यः मल्वः) जो अपनी धारणा शक्ति का अभिमान करने वाला राजा (ब्रह्मणां अन्नं स्वादु अद्मि इति मन्यते) ब्राह्मणों को [सताता हुआ] मैं स्वादु अन्न खा रहा हूँ ऐसा समझता है वह (शतापाष्ठां) सैकड़ों आपदों से भरी हुई इस वस्तु को (निगिरति) निगल तो जाता है पर (निःखिदन् न शक्नोति) इसे हज़म नहीं कर सकता।

धारण करने का या सब कुछ हज़म कर जाने का अभिमान करने वाला, उपर्युक्त प्रकार का राजा ब्राह्मण को सताता है और इस सताने में मज़ा लेता है। जब उसकी आज्ञा से ये ब्राह्मण* सत्याग्रही सताये जा रहे होते हैं, जेल में भेजे जा रहे होते हैं, इनका माल असबाब ज़ब्त किया जा रहा होता है या उन्हें पीटा जाता है तो इस सब को देखकर वह प्रसन्न होता है, वह समझता है कि मैं इस प्रकार मजे से ब्राह्मणों को खतम किये देता हूँ, मेरा अच्छा शिकार हो रहा है, मुझे मजेदार स्वादु भोजन मिल रहा है। पर वेद राजा को बतलाना चाहता है कि यह ब्राह्मण को खाना स्वादु भोजन नहीं है किन्तु सैकड़ों आपदों का समूह है। निगलने में चाहे यह स्वादु लगता है, पर पेट में जाकर हज़म नहीं हो सकता इसलिये पेट में पहुँच कर तो सैकड़ों उपद्रव खड़े कर देगा।

ऐसा राजा अपने को बड़ा धारण करने वाला अर्थात् हज़म करने वाला 'मल्व'* समझता है, पर ब्राह्मण को सता कर वह इसे हज़म नहीं कर सकता। जैसे कोई मनुष्य जीभ को स्वाद लगने वाली कुछ ऊटपटांग अभक्ष्य चीज खा जाय तो वह पेट में शूल पैदा कर देने (इस शूल के इलाज के लिये कोई तीव्र औषधि खा लेने पर) उसके सारे शरीर में फोड़े फुन्सी निकल आवें, वमन तथा दस्त लग जायँ या हिचकी बंध जाय व वह पगला हो जाय; वैसे ही जब सत्याग्रही ब्राह्मण सताये जा रहे होते हैं तब वे बदले में राजा को कुछ सताते तो हैं नहीं, सब कुछ सहते जाते हैं अतएव तब तक राजा इस घटना का स्वाद लेता है पर पीछे से उनके इन बलिदानों से जब देश में उत्तेजना फैल जाती है नाना उपद्रव हो जाते हैं तो उन्हें वह सम्भाल नहीं सकता। उसकी हालत उपर्युक्त प्रकार के रोगी की सी बड़ी बेचैनी की हो जाती है जिसे एक तरफ दस्त लग रहे हों, पेट में असह्य दर्द भी हो, वमन भी होता हो, सिर में चक्कर आते हों। क्योंकि उसके विरुद्ध अति उत्तेजित हुए लोग सरकारी स्थानों को नष्ट करने या राजकर्मचारियों को छिप कर वा सामने हत्या करने तक के घोर कृत्य करने को तैयार हो जाते हैं, यदि वह इन्हें किसी तरह दबा देता है तो दूसरी तरफ़ सत्याग्रहियों के प्रभाव में आकर कहीं की सेना विद्रोह कर

---

* 'ब्राह्मण और ब्रह्मन् शब्द पर्यायवाची है। अभी तक के मन्त्रों में ब्राह्मण शब्द ही आया था, पर इस ब्रह्मन् शब्द का प्रयोग हुआ है और यह शब्द भी बहुवचन में प्रयुक्त हुआ है। एकवचनान्त 'ब्राह्मण' या 'ब्रह्मा' शब्द का इस सूक्त में आशय (जैसे कि प्रारम्भिक विवेचना में हम देख आये हैं) "सत्याग्रही प्रजानेता" है तो ब्राह्मणः (जिसकी षष्ठी 'ब्रह्मणाम' है) इस बहुवचनान्त का अर्थ "ब्रह्मन् लोग" अर्थात् उस सत्याग्रही नेता के "सत्याग्रही सिपाही" ऐसा समझना चाहिये।

* "मल मल्ल धारणे" इस धातु से 'मल्व' शब्द बना है।

देती है, तो कहीं के नौकर हड़ताल कर देते हैं, कहीं से खबर आती है कि इतने कर्मचारियों ने इस्तीफे दे दिये हैं, कहीं हजारों सत्याग्रही जेलों को इतना भर देते हैं कि जेलों में जगह ही नहीं रहती, उनको खिलाने को रुपया नहीं रहता; कहीं किसान कर देना बन्द कर देते हैं; यह सैकड़ों उपद्रव खड़े हो जाते हैं। इस तरह वह राजा सत्याग्रहियों को सताना शुरू तो कर देता है, पर इसे हज़म नहीं कर सकता।

हज़म कैसे करें? हज़म करने वाली अग्नि को ही वह दबा देता है। पिछले मन्त्र में बतलाया ही है कि राष्ट्र-शरीर की अग्नि ब्राह्मण है। जठराग्नि मारी जाय तो भोजन कैसे पचे? असली बात यह है कि राजा जिन-जिन बातों को हज़म करता है, वह सब लोकमत के बल पर करता है। अच्छा राजा राष्ट्र में बड़े बड़े उलट फेर करने में भी समर्थ होता है, क्योंकि उनके अनुकूल लोकमत होता है। लोकमत को बतानेवाली ब्राह्मण की वाणी होती है। यही अग्नि है जिससे कि प्रजापालक राजा बड़े बड़े कठोर काम करके भी उन्हें हज़म कर लेते हैं; राष्ट्र में कुछ आन्दोलन नहीं मचाता, बल्कि पूरी सहानुभूति होती है। वे इस प्रकार कठोर भोजन को भी पचा लेते हैं और प्रजा को लगातार कठोर शासन (Discipline) में रखकर राष्ट्र को तेज़ी से उन्नत करते हैं। पर जिसने इस अग्नि को दबा दिया हो उस बिचारे की क्या गति होगी?

८

ब्राह्मण किस धनुष से देवपीयु का नाश करता है

जिह्वा ज्या भवति कुल्मलं वाङ्,
नाड़ीका दन्तास्तपसाभिदिग्धाः ।
तेभिर्ब्रह्मा विध्यति देवपीयून,
हृद्बलै र्धनुर्भि र्देवजूतैः ॥

जिस धनुष में (जिह्वा ज्या भवति) जीभ डोरी [प्रत्यंचा] होती है, (वाक् कुल्मल) उच्चारित शब्द वाणदण्ड होता है, (नाड़ीकाः दन्ताः) नाड़ियां (ज्ञानतन्तु) वाणाग्र (वाण के दांत) होते हैं, [तपसा अभिदिग्धः] जो कि दांत (आग की जगह) तप से तीक्ष्णीकृत होते हैं [तेभिः] ऐसे उस [देवजूतः] देवों से प्रेरित हृद्बलैः धनुभिः] हृदयबल रूपी धनुष से [ब्रह्मा] ब्राह्मण (प्रजा-नेता सत्याग्रही) [देवपीयून देव-द्रोही प्रजापीडक राज्याधिकारियों को [विध्यति] वेध करता है।

पाठकों को यह मन्त्र विशेष मनन करना चाहिये। यह इस सूक्त का मुख्य मन्त्र है। पीड़ित प्रजा के पास जो अस्त्र होता है वह इस में बतलाया है। इस धनुष का स्वरूप हमें अच्छी तरह समझ लेना चाहिये। यह ब्राह्मण का वाणीरूपी धनुष है।

इस में जीभ डोरी का काम देती है। जीभ से निकलता हुआ शब्द वाण होता है। वाण की नोंक (दांत) जोकि चुभती हैं प्राणनाड़ियाँ हैं। और जैसे आम-तौर पर वाण की नोकें विषदिग्ध (विष में बुझी) या अग्निदिग्ध (आग में तपा कर तेज की हुई) होती हैं, वैसे ये वाणी-धनुष के वाणाग्र 'तप' (कष्ट सहन) से तेज किये हुए होते हैं। धनुष की डोरी तो बतला दी, शेष जो धनुर्दण्ड है वह हृदय का बल है। यह धनुष ब्राह्मण के हृदय में बसने

वाले देवों से (देव से) प्रेरित, सञ्चालित होता है। इस धनुष से प्रजा-नेता ब्राह्मण प्रजा-द्रोही देवपीयू अधिकारियों को बेधता है। इस अलंकार को पाठक साथ में लगे चित्र द्वारा भी अपने हृदय में अङ्कित कर लें।

इस रूपक को ठीक तरह से समझने के लिये अर्थात् यह समझने के लिये कि वाणी द्वारा यह शत्रु का वेधक कैसे होता है, हमें जरा वाणी के स्वरूप को ठीक तरह जान लेना चाहिये। वाणी के स्वरूप और सामर्थ्य के विजय में यदि हमारे विचार और संस्कार ठीक हो जायेंगे तो वेद के इस रूपक को हृदयंगम करना हमारे लिये आसान हो जायगा।

(१) वाणी का स्वरूप

साधारणतया हमलोग ऐसा समझते हैं कि 'जीभ से शब्दोच्चारण करना' यही वाणी का स्वरूप है ; और वाणी का सामर्थ्य इतना समझते हैं कि इसके द्वारा हम अपना ज्ञान दूसरे तक पहुँचा देते हैं। पर असल में वाणी इससे अधिक गहरी और इससे अधिक विस्तृत वस्तु है। वेद में 'वाक्' देवता और संस्कृत साहित्य का 'वाणी' शब्द गहराई में और विस्तार में दोनों प्रकार से अधिक व्यापक अर्थ रखता है।

पहिले गहराई की दृष्टि से देखें तो हमारे यहाँ वाणी का प्रारम्भ जीभ से नहीं होता, किन्तु इसका मूल मूलाधार में है। जीभ में तो वाणी का सबसे मोटा, सबसे परिमिततम रूप प्रकट होता है। जीभ तक पहुँचने तक तो असली वाणी चार कदम चलकर परिमित हो चुकी होती है। वाणी निम्न चार कदमों (क्रमों) द्वारा अपने स्थूल रूप में पहुँचती है। अतएव 'चतुष्पदा' कहलाती है। इसके प्रत्येक पाद को ऋषियों ने भिन्न-भिन्न नाम से पुकारा है। मूलाधार में रहनेवाली वाणी 'परा' कहलाती है। इस वाणी में ज्ञान का कोई आकार या प्रकार नहीं होता, अतएव यहाँ सब ज्ञान अपरिमित और सामान्य रूप से (निर्विशेष निराकार रूप में) रहता है। एक कदम आगे चलकर वाणी में ज्ञान का प्रकार तो आ जाता है सामान्य की जगह विशेष ज्ञान बन जाता है, पर उसका आकार कुछ नहीं होता। इसे 'पश्यन्ती' वाणी कहते हैं। इसका स्थान नाभि है। तीसरे क्रम में यह हृदय में पहुँचती है, यहाँ इसका नाम 'मध्यमा' वाणी है या मानस वाणी है। वहाँ पर ज्ञान एक प्रकार के आकार से भी परिमित हो जाता है अर्थात् ज्ञान भाषा का सूक्ष्म शरीर धारण कर लेता है। मन में जब हम विचार करते हैं तब भाषा का प्रयोग कर रहे होते हैं—मन मन में शब्द, पद, वाक्य बनते हैं। ये शब्द, पद, वाक्य उच्च ध्वनि में नहीं होते, पर मन-मन में बड़े वेग से बोले जाते हैं। यहाँ हम शब्द संकेत का उपयोग का प्रारम्भ करते हैं। पहिली दो वाणियों 'परा' और 'पश्यन्ती' तो आकार-रहित होती हैं, अतः उनके रूप को हम अच्छी तरह समझ भी नहीं सकते, किन्तु इस तीसरी वाणी (मध्यमा वाणी) को हम समझ सकते हैं। वेद में इस वाणी पर बहुत विचार किया गया मिलता है। इसके बाद चौथी वाणी जो 'वैखरी' कहलाती है, वह प्रसिद्ध वाणी है, जो कि जीभ द्वारा ध्वनि (आवाज) रूप में बोली जाती है। वाणी का मूल हृदय में है। इस बात को हम आसानी से समझ सकते हैं, क्योंकि हम जानते हैं कि हृदय में पहिले विचार होता है, उसे हम फिर जीभ से बोल देते हैं। दर असल वाणी का स्थान हृदय (मध्य स्थान) में भी नहीं अपितु और अधिक नीचे मूलाधार स्थान पर है। सब वाणी वहीं से उठती है। वहीं पर वाणी की विस्तृत और दृढ़ जड़ है।

यह तो बात गहराई की हुई, विस्तार में भी वाणी शब्दोच्चारण मात्र नहीं है। शब्द-संकेत (भाषा) का उपयोग हम केवल बोलने में ही नहीं किन्तु लिखने में भी करते हैं। लिपि के आविष्कार से और अब छापेखाने के आविष्कार से वाणी का क्षेत्र बहुत बढ़ गया है। बोला हुआ ही नहीं, किन्तु सब लिखा हुआ भी वाणी है। (सब Press और Platform वाणी हैं)। लिखा हुआ भी अक्षरों में ही नहीं किन्तु सब आलेखन, चित्र, व्यङ्गचित्र ये भी वाणी है। इसी तरह बोलने में भी केवल वर्णों का बोलना नहीं, किन्तु हंसना, रोना, गाना, बजाना, सीटी बजाना आदि ध्वनियां

वाणी है। सब इशारे, झण्डियों के संकेत, नाचना, व्याख्याता का हाथ मारना, प्रदर्शन करना यह सब वाणी हैं। जिस किसी भी प्रकार से हम अपना अभिप्राय प्रकट करते हैं वही वाणी है। कईबार 'मौन' हो जाना बहुत ही बड़ी वाणी होती है, बड़े भारी अभिप्राय का प्रकाशक होती है। मुख की नाना आकृतियाँ, आँखों का रङ्ग बदलना भी वाणी का काम करता है। चुपचाप कुछ करना भी वाणी हो जाता है, अस्तु।

पुराने लोग पिछली वाणियों को संग्रह कर रखने के लिये अपने अन्दर की स्मृति-शक्ति का उपयोग किया करते थे। वेद-वेदाङ्ग इसी तरह रक्षित रखे गये हैं। पर आज-कल हम छापेखाने द्वारा वाणी को स्थिर रखने का काम लेते हैं। बल्कि ग्रामोफोन द्वारा ध्वनिमय वाणी का भी स्थिर करने का ढङ्ग हमने निकाल लिया है। इसी तरह वाणी को बड़ी जल्दी एक जगह से दूसरी जगह पहुँचाने के लिये भी आजकल टेलीफोन, तार, बेतार का तार आदि आविष्कारों को करके हमने वाणी के उपयोग को बहुत ही अधिक बढ़ा दिया है। दिन में कईबार निकलनेवाले अखबारों का और विज्ञापनबाजी का एक विज्ञान बन गया है।

(२) वाणी की शक्ति

पर वाणी का जो यह आजकल विस्तार हुआ है, उससे वाणी की सामर्थ्य बढ़ गई है यह बात नहीं है। सामर्थ्य तो उल्टा घट गई है। वाणी शक्ति कितनी कैसी है, यह तो हम आज लगभग भूल गये हैं। यह वाणी की शक्ति हमें ठीक तरह समझ लेनी चाहिये, क्योंकि हम तभी वाणी का अस्त्रत्व (अस्त्रपना) समझ सकेंगे। आजकल वाणी का सामर्थ्य विस्तार में (प्रचार में) समझा जाता है। अपने शत्रु के विरुद्ध खूब प्रचार (Propaganda) करना भारी हथियार माना जाता है। पर असल में वाणी की गहराई में जो महान् शक्ति है, उसके मुकाबिले में यह विस्तार का बल कुछ भी नहीं है। जैसे कि आकर्णान्त खींच कर चलाया गया तीर दूर तक प्रहार करता है, वैसे जिसकी वाणी जितनी गहराई से निकली होती है, उतनी ही अधिक प्रभावशालिनी होती है। हम जब कहते हैं कि 'वह सच्चे दिल से बोलता है' उसके अन्तस्तल (From the bottom of his heart) से निकले ये शब्द हैं' तो हम इसी सत्य को प्रकट कर रहे होते हैं कि सचाई से कहे गये कथन में बल होता है। हृदय की गहराई और कुछ चीज नहीं है, यह 'सचाई' है। हृदय जितना सच्चा होगा, जितना शुद्ध होगा, उतना ही बलवान होगा। हृदय बल को इस मन्त्र में धनुष कहा है तो इसका मतलब है 'शुद्ध और सच्चा हृदय।' इस गहराई में भी आगे कुछ और चीज है यह भी हम स्वीकार सा करते हैं, जब कि हम बोलते हैं, 'यह उसकी आत्मा से निकलती हुई आवाज है।' हृदय तक की मानसिक वाणी का तो हम कुछ अनुभव करते हैं, पर नाभि और मूलाधार की 'पश्यन्ती' और 'परा' का अनुभव साधारण लोगों के लिये कठिन है। पर यदि हम इसी शुद्धता और सचाई को अपने मन में और अधिक-से-अधिक लावें तो हमें इस 'पश्यन्ती' से उठी वाणी और 'परा' से उठी वाणी का भी अनुभव हो सकता है। यही सच्ची आत्मा की आवाज होती है। इस मन्त्र में इसे 'देवजूतः' शब्द से कहा है। जो वाणी देवों से प्रेरित हुई है, वह पश्यन्ती से उठी है और जो परमदेव (परमात्मा) से प्रेरित है, वह परा वाणी है। देव का अर्थ देवता है, पर अन्त में तो परमात्मा ही एक देव है। हमारी वाणी पश्यन्ती से उठे या परा से उठे, इसका एकमात्र साधन यह है कि हमारा हृदय शुद्ध हो अर्थात् सत्यमय हो, उसमें असत्य के मेल का, असत्य की बाधा का लवलेश न हो!

'सत्येन पन्था विततो देवयानः'

'यह देवयान (देवों के गमन) का मार्ग सत्य से ही बना हुआ है।' इसीलिये यदि हम हृदय में देवों को बसाना चाहते हैं, देवयान के पथिक हैं (जिससे हमारी वाणी पश्यन्ती व परा की गहराई से निकले) तो हमें सत्य का सेवन करना चाहिये। सत्य, सत्य, केवल सत्य। वाणी की सब शक्ति सत्य में ही निहित है। वाणी की असली शक्ति को

पतञ्जलि मुनि जानते थे, जिन्होंने कहा है :—

'सत्य प्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्'

और व्यास मुनिजी जानते थे, जिन्होंने इस योग सूत्र का अर्थ करते हुए कहा है कि जो मनुष्य अपने में सत्य को प्रतिष्ठित करता है, उसकी वाणी में यह सामर्थ्य आ जाती है कि वह जो कुछ कहता है, वह पूरा हो जाता है।

'धार्मिको भूया इति भवति धार्मिकः;
स्वर्गं प्राप्नुहीति स्वर्गं प्राप्नोति,
अमोघस्य वाग्भवतीति।'

अर्थात् ऐसा आदमी यदि किसी को कहता है कि 'तू धार्मिक हो जा' तो यह क्रिया हो जाती है वह मनुष्य सचमुच धार्मिक हो जाता है, वह यदि किसी को कहता है 'स्वर्ग को प्राप्त हो जा' तो यह फल उसे मिल जाता है वह स्वर्ग को प्राप्त हो जाता है। मतलब यह कि 'अमोघा अस्य वाग्भवति' उसकी वाणी अमोघ हो जाती है, वह कुछ कहे और वह पूरा न हो यह हो ही नहीं सकता। सत्यमय वाणी की इतनी शक्ति है। जरा पाठक इसे सोचें, विचारें, इसे हृदय में सम्भालें।

हम लोगों में असत्य इतना घुसा हुआ है कि हमें तो पतञ्जली तथा व्यास ऋषि के इस कथन पर विश्वास आना कठिन होगा। परन्तु यदि हम सत्य पर विश्वास न करें तो सचाई का कुछ नहीं बिगड़ेगा, हमारा ही बिगड़ेगा। सत्य-वाणी में तो यह शक्ति है कि उससे जो बोला जायगा, वह तुरन्त पूरा हो जायगा। हम यदि सत्य की तरफ देवयान मार्ग पर बढ़ेंगे तो हमें इस सत्य की सचाई का पता लगता जायगा। आजकल के महासत्यनिष्ठ गान्धी जब ऐसी बात कहते हैं।

'भारतवर्ष में आज एक भी पूरा सच्चा पुरुष हो तो वह भारतवर्ष को आज ही स्वराज्य दिला सकता है; क्योंकि वह जो कुछ कहेगा उसे लोगों को उसके वाणी के तेज के कारण मानना पड़ेगा।'

तो यह पतञ्जलि मुनि के कथन को ही अपनी भाषा में और अपनी परिस्थित के अनुसार कहता है। अर्थात् इस सत्य का अनुभव गांधी भी करते थे क्योंकि वे स्वयं बड़े सत्यनिष्ठ थे।

अतः प्यारे भाइयों! वाणी की शक्ति उसकी गहराई में है, उसके देवप्रेरित होने में है। प्रचार (Propaganda) में नहीं है, झूठे Propaganda में तो बिलकुल नहीं है। यह मत भूलें कि इस जगत् पर अन्तिम शासन तो परमदेव का है जो कि सत्य-स्वरूप है। उसके राज्याधिकारी अग्नि आदि देव सत्यमय अटल नियमों से जगत् का शासन कर रहे हैं। वेद में इन नियमों को 'ऋत' शब्द से पुकारा गया है। 'ऋत' का अर्थ भी सत्य है। देवताओं का वेद में जगह-जगह 'ऋतावृधः' (सत्य को बढ़ाने वाले), 'ऋतावानः' (सत्यमय) आदि विशेषणों से वर्णन किया गया है इसलिये इस संसार पर तो सत्य का ही राज्य है। जो लोग सत्य का आश्रय लेते हैं उन्हें तो उस ब्रह्माण्डाधिपति की अनन्त-शक्ति का सहारा मिला होता है, उनका कोई बाल बांका नहीं कर सकता है। पर जो सत्य का सहारा छोड़ते हैं उन्हें जगत्पति का द्रोह करके—'ऋत' नियमों का उल्लङ्घन करके—कैसे सफलता मिल सकती है! इसलिए उठो! असत्य से क्षणिक सहायता मिलती देखकर भ्रम में मत पड़ो। अनुभवी ऋषियों के वचनों पर विश्वास करो। सब समयों के सन्तों ने सत्य की इस महिमा को अनुभव किया है। सत्यमय वाणी का सचमुच ऐसा ही महान् सामर्थ्य है। उसके सामने कोई 'प्रोपेगण्डा' नहीं ठहर सकता।

वाणी तो सब जगत् को हिलानेवाली शक्ति है। हम समझते हैं कि वाणी का काम केवल दूसरों तक ज्ञान और विचार पहुँचाना है। किन्तु असल में 'शक्तिरूप ज्ञान' पहुँचाना है ऐसा कहना चाहिये। क्योंकि ज्ञान (विचार) संसार को चलानेवाली एक महाशक्ति है और इस महाशक्ति को भी एक जगह से दूसरी जगह ले जाने वाली शक्ति यह वाणीशक्ति है। अतः वाणी ही सब जगत् को चलाने वाली

शक्ति है। इसलिए वेद में 'वागाम्भृणी' सूक्त में (जिसमें वाणी का बड़ा ही उदात्त प्रभावशाली आत्मवर्णन है) परमात्मा की परावाणी ने कहा है—

'मुझ में ही सब देवताओं का वास है। मैं सबका पालन-पोषण करती हूँ। मैं ही सब जगत् को हिलाती हूँ। मेरे ही आश्रय से सब कुछ चल रहा है। सब ज्ञान, सब कर्म को मैं ही प्रेरित करती हूँ..'

ऋ० १०-१२५

इस प्रकार भगवान् की परावाणी ही सब कुछ करती है। सभी धर्मों वाले शब्द से जगत् की उत्पत्ति की तरफ जो इशारा करते हैं वह यही बात है। भगवान् के 'शब्द' (वाणी) में जो आता जाता है, वह होता जाता है। इसी तरह जगत् बना है और चलता है। असल में हम उसकी वाणी को समझ ही नहीं सकते। हम अपनी वाणी में रचना शक्ति देखकर उसकी वाणी की भी कुछ कल्पना करते हैं। हमारा तो शायद इस पर भी विश्वास न जमे कि जगत् में ऐसे 'सत्य-संकल्प' महात्मा भी होते हैं जो कि जो संकल्प करते हैं वही पूरा हो जाता है (सत्य हो जाता है)। उन्हें बोलने के लिये जीभ का प्रयोग करने की भी जरूरत नहीं होती, वे मध्यमा (मानस) वाणी का ही प्रयोग करते हैं मन में संकल्प उठता है और वह पूरा हो जाता है। ऐसे 'सत्य-संकल्प' महात्माओं का वर्णन करते हुए उपनिषद् में कहा है :—

'स यदि पितृलोककामो भवति संकल्पादेवास्य पितरः समुत्तिष्ठन्ति, (छन्दोग्य ८ २ १)

'वह पितृलोक की इच्छा करता है तो संकल्पमात्र से उसे पितृगण प्राप्त हो जाते हैं।" वाणी की इस अपार शक्ति से हम कितनी दूर हैं, यही कारण है कि हमें असत्य में भी कुछ बल दिखलाई देता है।

सत्य को पूरी तरह ग्रहण करना बेशक बड़ा कठिन है। पर जो जितना सत्य को ग्रहण करता है, वह उतनी ही गहराई में जाकर सत्यमय देव के नज़दीक पहुँचता है, और उसकी वाणी में उतनी ही अमोघता होती है। जिन दुर्लभ सत्य-संकल्प महात्माओं का आत्मदेव उस सत्यमय देव से सम्बद्ध होता है, उनकी वाणी तो 'परा' की गहराई से उठती है और अतएव इसका प्रभाव प्रकृति के परले सिरे तक होता है, अर्थात् उनकी वाणी से सीधा जड़ प्रकृति में भी परिवर्तन हो सकता है जो योगी परतत्व तक तो नहीं जुड़े होते पर फिर भी इतने सत्यमय होते हैं कि उनकी वाणी 'पश्यन्ति' से सम्बद्ध होती है, उनकी यह वाणी भी सीधा पशुओं तक (नीचे प्रकार की चेतना तक) अपना प्रभाव करती है। ये लोक वाणी द्वारा पशुओं में भी परिवर्तन ला सकते हैं। इसके बाद तीसरी सीढ़ी पर वे लोग होते हैं, जो कि इतने मात्र सच्चे होते हैं कि वे वही बोलते हैं जो उनके हृदय में होता है। पूरे सत्य को वे नहीं समझ सकते व पा सकते, किन्तु सत्य को जितना जैसा समझते हैं, बिल्कुल वैसा ही बोलते हैं। इनकी वाणी हृदय से उठती है और अतएव अधिक नहीं तो चेतन मनुष्यों के हृदय तक तो अपना असर जरूर करती है। इसके भी बाद हम आम लोग हैं, जो कि इतने स्थूल सत्य का भी पालन नहीं करते कि जो हमारे हृदयों में है, ठीक वह ही बोलें—प्रकट करें। ऐसों की वाणी हृदय से भी नहीं निकलती, किन्तु जीभ से ही उठती है और इसलिये यह दूसरे मनुष्यों के अन्दर (हृदय में) भी नहीं घुसती, कानों तक ही पहुँचती है।

सुन्दर और रोचक बोलने वाले दुनिया में बहुत से मिल जायेंगे, उनका कथन उस समय आनन्द भी देता है, किन्तु उसका कुछ भी चिरस्थायी असर हृदय पर नहीं रहता। दूसरी तरफ लोकमान्य तिलक वक्तृत्व की दृष्टि से बड़ा खराब बोलने वाले थे, पर उनका कथन लोगों के हृदयों में तीर की तरह घुस जाता था और स्थिर प्रभाव करता था।

इसी तरह आजकल लोग बहुत अधिक बोलते हैं और इसी में वाणी की शक्ति समझते हैं। किन्तु बहुत मात्रा मे बोलने का भी प्रभाव नहीं है, गहराई से बोलने का ही प्रभाव है। प्राचीन ऋषि लोग सूत्रों में बात किया करते थे।

नैपोलियन थावा बोलने से पहिले अपने सैनिकों से बहुत थोड़े से शब्द बोला करता था और उनके द्वारा उनमें जान फूँक देता था। महात्मा गांधी के थोड़े से शब्दों में कितनी शक्ति होती है। जिसकी वाणी में जितना तेज बढ़ता जाता है, उसे उतना ही कम बोलने की आवश्यकता होती है। अतः जो सत्य-संकल्प होते हैं, वे 'बैखरी' वाणी बोलते ही नहीं। यहाँ पर पाठक मन में की गई हार्दिक प्रार्थना की महाशक्ति को भी समझ गये होंगे। वेदों में जो इतनी प्रार्थनायें भरी पड़ी हैं, उनका प्रयोजन यही है। मनुस्मृति में कहा है कि वाचिक जप से उपांशु जप और उपांशु-जप से मानस जप हजार गुणा अधिक प्रभावशाली होता है।

इसलिये यदि हम रोचक बोलने और बहुत बोलने की जगह हृदय से सचाई के साथ थोड़ा बोलें तब ही हमें वाणी की शक्ति का कुछ अनुभव हो जाय। इटली के लोग कहते थे कि 'मेज़िनी की क़लम में जादू है।' लोग कहते हैं कि गांधीजी बातचीत करके लोगों पर जादू कर देते थे। पर यहाँ जादू कुछ नहीं है ; सत्य बोलना, जैसा अनुभव करना वैसा ही बोलना, बस यही जादू है। मतलब यह कि वाणी की शक्ति गहराई में है और कहीं नहीं।

अत इस वाणी रूपी धनुष को जितना अपनी तरफ खींच कर 'वाक्' तीर छोड़ा जायगा उतना दूर तक यह प्रभाव करेगा।

(३) वेदोक्त धनुष

अब पाठक इस वाणीरूप धनुष की रचना को भी समझ लें। धनुर्दण्ड 'हृदयबल' है। जो सत्य बोलता है उसे कोई भय नहीं होता। सत्य के साथ निर्भयता जुड़ी हुई है।

सत्यान्नास्ति भयं क्वचित्

जब हृदय में सत्य और निर्भयता होती है तो हृदय में बड़ा बल होता है। हृदय की 'दैवी सम्पद्' की गणना 'अभयं सत्त्वसंशुद्धिः' इस तरह श्रीकृष्णजी ने शुरू की है। यही हृदय-बल रूपी धनुर्दण्ड है जिसमें कि जीभ की डोरी लगी हुई है। इससे शब्द रूपी वाण छोड़े जाते हैं। जैसे डोरी से तीर छूटते हैं वैसे ही जीभ से शब्द निकलते* हैं, जैसे खाली डोरी में तीर को दूर तक फेंकने की शक्ति नहीं होती अतः डोरी को एक दण्ड में बाँधा जाता है जिसे धनुर्दण्ड कहते हैं, इसी तरह जीभ यूँही नहीं बोल सकती, हृदय से अभिप्राय और उसके बोलने की इच्छा पैदा होती है तभी जीभ हिल सकती है। जीभ हृदय के आश्रित है। अतः इसे धनुर्दण्ड बताया है। पाठक यह तो समझ गये होंगे कि हृदय भी वाणी का ही अंग है—वाणी का मध्यम स्थान है। जैसे धनुर्दण्ड और धनुष की डोरी इन दोनों के ठीक तरह मिलने पर इनके द्वारा तीर छूटता है वसे ही हृदय-बल और जीभ इन दोनों के द्वारा शब्द निकलता है। शब्द तीर में जो अर्थ है उसे हृदय प्रेरित करता है और जो ध्वनि (आवाज) है उसे जीभ प्रेरित करती है। इस तरह शब्द-तीर छूटता है।

इस शब्द-तीर की नोकें क्या है जोकि जाकर लक्ष्य में चुभती हैं? यह हैं प्राणावहा नाड़ियाँ जिनके लिये आधुनिक शब्द 'ज्ञानतन्तु' (nerves) है। आज-कल के विज्ञान के अनुसार हम यह तो जानते हैं कि शब्द का ग्रहण (सभी इन्द्रियों के विषयों का ग्रहण) ज्ञान तन्तुओं (Nerves) द्वारा होता है। हमारा भेजा हुआ शब्द दूसरे

---

* यहाँ पर 'जीभ' और 'शब्द' ये दोनों शब्द उपलक्षण हैं। मन्त्र में तो इनके लिये क्रमशः 'जिह्वा' और 'वाक्' शब्द पढ़ा है। निघण्टु में ये दोनों शब्द, बल्कि 'नाडिकाः' शब्द भी वाणी के नामों में गिनाये हैं। अतः 'जिह्वा' और 'वाक्' का 'जीभ' और 'शब्द' यह अनुवाद करना अपूर्ण अनुवाद है। अतः पाठकों को उपलक्षण कह कर समझना होगा। वाणी द्वारा जैसा भी प्रभाव हम दूसरे तक पहुँचाना चाहते हैं उन सबका उपलक्षण वाक् (शब्द) है और भिन्न-भिन्न साधनों से (पुस्तक लिपि आदि से भी) वह प्रभाव पहुँचाया जाता है उन सबका उपलक्षण 'जिह्वा' है।

के ज्ञानतन्तुओं पर असर करता है तो उसे पता लगता है कि मुझे यह ज्ञान हो रहा है। एवं वक्ता के ज्ञानतन्तुओं का प्रभाव श्रोता के ज्ञान-तन्तुओं पर होता है। वक्ता ने जितनी वेदना (Feeling) के साथ शब्दोच्चारण किये होते हैं श्रोता के अन्दर भी वे उतनी ही वेदना को पैदा करते हैं—feeling को उठाते हैं। अतः शब्दरूपी तीर के अग्रभाग (नोक) प्राणनाड़ियाँ (Nerves) बताई है। हमारे औपनिषद विज्ञान के अनुसार तो यह कथन और भी स्पष्ट है। जैसे कि उपनिषदों में मन सर्वव्यापक माना गया है, वैसे ही प्राण भी सर्वव्यापक है। जब हम किसी भाव के साथ कुछ बोलते हैं तो हमारे शरीर के प्राण की लहरें इस सर्वव्यापक प्राण के माध्यम द्वारा श्रोता के प्राण में पहुँच कर उसमें वैसी ही लहरें पैदा करती हैं। इस प्रकार हमारे शब्दों के साथ भेजी हमारी प्राण लहरें श्रोता के प्राण में जाकर चुभती हैं। यही प्राण-लहरें हमारे (अस्त्र के) बाण के दांत (नोकें) होती हैं।

यदि ये बाण की नोकें हमने समझ ली है तो अब यह समझना आसान है कि इसमें तीक्ष्णता कैसे आती है—यह शब्द बाण की नोकें तेज कैसे की जाती हैं जिससे कि जोर से चुभें। लोहे के बाण की नोकें तो आग में डालकर और इसे विष में बुझा तेज बनाई जाती है जिससे कि यह शत्रु के शरीर के अन्दर घुस जायें और उसे अपने विष द्वारा मार दें। पर हमारे धनुष के बाणाग्र तो तपसाऽभिदिग्धा' (तप से तीक्ष्णीकृत) होते हैं। इसमें तेजी तप से आती है। तप का अर्थ है कष्टसहन। हमने स्वयं जितनी तपस्या की होगी हमारे द्वारा कहे जाते हुए सत्य में उतना ही तीव्र भावावेश (Emotion) पैदा होता है जो कि श्रोता को जा करके चुभता है। हमारे इस शस्त्र में तो (दूसरे को कष्ट देने की जगह) अपने आप कष्ट सहने से तीक्ष्णता आती है। जिस सत्य को हम दूसरे तक पहुँचाना चाहते हैं—दूसरे के हृदय को बदल कर उसे वह सत्य स्वीकार करवाना चाहते हैं—उस सत्य के लिये हमने यदि कष्ट सहे होंगे तो उस हमारे कहे सत्य में तेज आ चुका होगा। जैसे रगड़ने से किसी चीज में तीक्ष्णता आती है, वैसे कष्ट सहने से उस सत्य में तीक्ष्णता आती है। अतएव हम देखते हैं कि जिन्होंने देश के लिये कष्ट सहे होते हैं उनकी वाणी श्रोताओं को अधिक चुभती है।

इस धनुष को चलाता कौन है? इसे गति कहाँ से मिलती है? इसे यहाँ 'देवजूतं' शब्द से कहा है। ब्राह्मण के हृदय में रहने वाले देव (अभय, पवित्रता, सत्य आदि देव भाव) धनुष में "बल" वेग को देते हैं। पाठक देखेंगे इस बाण-धनुष की मुख्य वस्तु "देवजूत हृदय बल" है। अतः हृदय-बल को ही इस मंत्र में धनुष कहा है "हृद्बल-धनुर्भिः" आज-कल की भाषा में बोलें तो हृद्बल का अर्थ "संकल्प-बल या मनोबल (Willpower)" है। हृदय-बल ही मुख्य वाणी है—अन्दर की (मानस आदि) वाणी है। इसे हम हृदय वाणी भी कह सकते हैं। यह हृदय-वाणी ही ब्राह्मण का मुख्य धनुष है; शेष जीभ, वाक्, नाड़ियाँ आदि इस धनुष के अंग हैं और इसे गति देनेवाले हृदयवासी देव हैं या देव है। यही देवजूत हृदय-वाणी(Willpower) रूपी धनुष है जिससे कि ब्राह्मण देवपीयुओं का विनाश करता है—उनके हृदयों को बदल देता है।

(iiii) यह धनुष पकड़ लो

सत्याग्रहियों का यही अस्त्र है। मनु ने ब्राह्मण को कहा हथियार 'आथर्वण श्रुति' बतलाया है। ऐसी हार्दिक वाणी बोलने वाले—इस हथियार से शत्रु को परास्त करने वाले—तपस्वी पुरुष हमेशा सब देशों में सब कालों में रहे हैं। इन तेजस्वी लोगों की अन्दर से निकली वाणियों ने देशों में क्रान्तियाँ ला दी हैं। इन महापुरुषों की वाणी के इशारों पर हजारों-लाखों लोग आज्ञा पालने के लिये उठ खड़े होते हैं। वाणी के इस महान् अस्त्र के मुकाबले में तोप बन्दूक क्या हैं? वल्लभभाई की वाणी को बारदोली के किसानों ने सुना

क्योंकि उसकी वाणी में वह तेज था कि उसे बिना माने वे रह नहीं सकते थे, अतः अंग्रेजी विशाल साम्राज्य की सब तीर-तोपें धरी रह गयीं। गान्धीजी भी यदि अपनी वाणी को सम्पूर्ण भारत को सुना सकें अतः भारत देखते-देखते स्वाधीन हो गया। गान्धीजी की वाणी के बल से सन् १९२१-२२ में हजारों लोगों ने खुशी-खुशी बड़े-बड़े दुःख सहे थे। यह एक पुरुष के हृदय वाणी रूपी देवजूत धनुष का प्रधान था पर यदि हम सभी अपने अन्दर रखे इस हथियार को उठा लें तो कितना महान् कार्य सम्पन्न हो जाय। हम संसार को इस वेदोक्त अस्त्र का सफल प्रयोग करके दिखला दें। दुनिया को एक नया अस्त्र दीख जाय, जिससे कि तोपों मैशीनगनों और विषैली गैसों की चिन्ता में दबी और ईर्षा, द्वेष, घृणा से दुःखी यह दुनिया कुछ सुखी हो जाय। क्या हम असत्य को नहीं छोड़ सकते? हृदय को शुद्ध नहीं कर सकते! बस इतने से ही यह देवजूत (दिव्य धनुष बन जाता है। इसे ही क्यों नहीं पकड़ते? हमारे पास बन्दूक-पिस्तौल नहीं है तो क्या हुआ? भगवान् ने यह दिव्य धनुष तो हम सब को प्रदान कर रखा है और स्वयं हमारे हृदयों में इस अस्त्र को चलवाने के लिये तैयार होकर बैठे हैं।

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन! तिष्ठति।

यह हृदयवासी देव इस धनुष को प्रेरित कर सकें—इसे 'जय' (गति) प्रदान कर सकें इसके लिये एक ही बात की आवश्यकता है कि हम हृदय को बिलकुल शुद्ध कर लेवें, उसमें असत्य का लवलेश भी न रहे। द्वेष, हिंसा, भय कायरता इनका स्पर्श तक न रहे। जितना हम हृदय को इन मलों से खाली करेंगे हृदय के उतने ही अंश में ये सत्यस्वरूप देव अपना निवास कर इस धनुष को देवजूत बनायेंगे और उतनी ही अधिक दूर तक यह धनुष मार कर सकेगा। इस अस्त्र का सफल प्रयोग करने के लिये इस धनुष को देवजूत बना लेने के बाद जिस दूसरी वस्तु की जरूरत है वह अपने वाण को तेज करने की है वाण जोर से छूटेगा भी, किन्तु यदि वह तेज न हुआ तो उसका वेग वृथा है। अतः दूसरा काम यह करना है कि अपने वाणों को 'तपसाऽभिदिग्धा' बनाना है। हम तप करें। स्वाधीनता के अपने महान् सत्य के लिये सब कष्ट सहने के लिये उद्यत हों। ज्यों-ज्यों हमारा तप बढ़ेगा त्यों-त्यों हमारे वाण तीक्ष्ण होते जायेंगे और उनके द्वारा हमारे देशवासियों के हृदयों में स्वाधीनता का प्रकाश फैलने लगेगा और उधर हमारे अंगरेज भाइयों के हृदय का स्वार्थान्धकार निकलने लगेगा।

याद रखो कि हमने इस हृदयवाणी के धनुषों का प्रहार पहले अपने ही देश-भाइयों पर करना है। अंगरेज भाइयों पर असर तो फिर पड़ेगा। हमें अपने देशवासियों के हृदयों में स्वाधीनता का सन्देश पहुँचाना होगा, उनमें पूर्ण स्वाधीनता की प्यास लगा देनी होगी। इस तरह अपने बहुत से भाइयों का और फिर अंग्रेज भाइयों का हृदय परिवर्तन करना होगा।

यह सब हृदय-वाणी का दिव्य धनुष कर सकता है। हृदय से निकली वाणी अवश्य हृदय परिवर्तन कर सकती है। केवल इस धनुष को उठा लेने वाले वीरों की जरूरत है। हम सभी के अन्दर यह धनुष पड़ा हुआ है—अनुपयोग के कारण रद्दी हुआ बिगड़ा पड़ा है। इसे उठा लो, और इसे साफ करके ग्रहण कर लो। इसे उपयोग में लाने के लिये केवल उन्हीं दो उपर्युक्त बातों की जरूरत है। हृदय, जीभ, शब्द, नाड़ियाँ आदि तो हम सब को प्राप्त हैं अर्थात् धनुर्दण्ड, ज्या, बाण आदि सभी के पास विद्यमान हैं। जरूरत है केवल (i) धनुष को देवजूत बनाने की और (ii) वाणों को तप से तीक्ष्ण करने की। ये दोनों काम बेशक कठिन हैं, पर इस अस्त्र की शक्ति भी अपरिमित है। वीरता की परीक्षा भी तो इन कठिन कामों के करने में ही है। इन दोनों बातों को हम जरा और अच्छी तरह समझ लें।

(१) अपने धनुष को पूरा देवजूत (देवप्रेरित) बनाने वाला तो एक ही महापुरुष काफी है। जो महापराक्रमी 'परा' वाणी तक इस धनुष को खींच सकता है, वह तो केवल एक बार की प्रार्थना से भारत को स्वाधीन कर सकता है। 'भक्तजन के संकट क्षण में दूर करे' यह जो हम गाते है वह झूठ नहीं है। यह प्रार्थना यदि पूरी गहराई से निकले तो भगवान् सचमुच क्षण-भर में ही सङ्कट दूर करते हैं। पुराने ब्राह्मणों ने वेणु राजा को हुँकार से ही नष्ट कर दिया था, यह कुछ असम्भव बात नहीं है। प्राचीन ऋषि लोग वेदवाणी से प्रार्थना करके अपने मनोरथ सिद्ध किया करते थे। पर यदि हमारे हृदय में इतना बल नहीं है कि हम में असत्य, द्वेष आदि मल का लेश तक न रह सके, अतएव हम में से कोई इस धनुष को आकर्णान्त न खींच सके, तो भी कुछ बात नहीं है। ऐसे परावाणी तक खींचने वाले महात्मा तो बिरले ही होते हैं जो कभी-कभी जन्मते हैं। पर तो भी हम जहाँ तक खींच सकें, उतना तो खींचें और इसे अधिक से अधिक देवप्रेरित बनायें, सत्य और प्रेम से हृदय को भर लें। तो हम देखेंगे कि उन्नति के लिये हमारे हृदयों की व्याकुलता हमारे सब देशवासियों में फैल जायगी। सब देश जाग कर खड़ा हो जायगा।

(२) यदि फैलने में देर लगेगी तो कारण यही होगा कि हमारे वाण में तप की तीक्ष्णता की कमी होगी। इसके लिये हमें ठहर कर तप करना होगा, अपने वाणों को तेज करना होगा। तप की तीक्ष्णता वह तीक्ष्णता है जो कि वज्र को भी काट सकती है, फिर मनुष्यों के हृदयों को बदलना उसके लिये क्या मुश्किल है। वीर पुरुष धैर्य नहीं छोड़ता। हमारे अस्त्र का प्रभाव होने में जो कुछ देर होगी वह इन्हीं दो त्रुटियों से होगी। या तो धनुष देवजूत न होगा या तप की कमी से वाण में तीक्ष्णता न होगी। यदि हृदय से देव का आसन हिल जाय तो उसे फिर-फिर बिठाना होगा और तप की कमी पता लगे फिर-फिर तप करना होगा। सामने जो भी कुछ कष्ट आवें उन सबको सहना होगा। तप करते-करते शरीर को भी हँसते-हँसते त्याग देना, पर भगवान के दिए इस अस्त्र को कभी नहीं त्यागना। सच्चा वीर कभी मरता नहीं। वीरों की मृत्यु शरीर के त्यागने से नहीं होती किन्तु ग्रहण किये हथियार के त्यागने से होती है। जो मनुष्य दुःख, कष्ट, मृत्यु से डरता है वह कायर इस दिव्य हथियार को उठा नहीं सकता, सब के लिये मर-मिटने का सामर्थ्य जिसमें है वही वीर इस धनुष का चिल्ला चढ़ा सकता है।

इसलिये 'हृदय-शुद्धि' और 'तप की तीक्ष्णता' ये दो सम्पत्तियाँ जिन वीरों के पास हैं वे इस धनुष का चिल्ला चढ़ा कर आगे बढ़ें, और शेष सब लोग भी यथा-शक्ति अपने में इन दोनों गुणों को लाने का यत्न करते हुए पीछे पीछे चलें, तो हम देखेंगे कि भगवान की अपार-शक्ति हमारे साथ है— सब जगत् को प्रेरित करने वाली उस देव की परावाणी (शक्ति) हम भारतवासियों के साथ है। तब संसार एक देवों के देखने योग्य दृश्य होगा।

६

यह अस्त्र अमोघ है

तीक्ष्णेषवो ब्राह्मणा हेतिमन्तो,
यामस्यन्ति शरव्यां न सा मृषा।
अनुहाय तपसा मन्युना चोत,
दूरादेव भिन्दन्त्येनम् ॥

(हेतिमन्तः) इस हृद्बलरूपी धनुष वाले (तीक्ष्णेषवः) और इन तपः तीक्ष्ण बाणों वाले (ब्राह्मणः) ये ब्राह्मण (यां शरव्या अस्यन्ति) जिस बाणसमूह को छोड़ते हैं (न सा मृषा) वह कभी चूकता नहीं। (तपसा उत मन्युना च) तप से और मन्यु से (अनुहाय) पीछा करके वे इस तरह (एनं) इस देवपीयु को (दूरात्) दूर से ही (अव भिन्दन्ति) भेद देते हैं।

इस मन्त्र में जो विशेष बात कही है वह यह है कि ऐसे हृदयवाणी (Will-power) रूपी धनुष को धारण करने वाले ब्राह्मण जिस बाणसमूह को छोड़ते हैं वह कभी व्यर्थ नहीं जाता—चूकता नहीं—जरूर विरोधी को परास्त करता है। इसमें उसी अमोघता का वर्णन है जिसे कि व्यासजी ने 'अमोघा अस्य वाग् भवतीति' इन शब्दों से कहा है। इस व्यास-वाक्य के जनक इस वेद वचन पर भी क्या हमारी श्रद्धा न जमेगी? इसमें यदि हमारी श्रद्धा हो तो हम में बड़ा भारी बल आ जाय, हम में सत्यनिष्ठ होने के लिये बड़ा वेग पैदा हो जाय। क्योंकि जिसे अपने अस्त्र की अमोघता पर विश्वास है वह उसे त्रिकाल में भी छोड़ नहीं सकता। यह ठीक है कि हम पूरे सत्यनिष्ठा के आदर्श तक एकदम नहीं पहुँच जायेंगे, पर श्रद्धा से अपनाया हुआ यह वेद वचन इस मार्ग पर हमारा प्रत्येक पद पर सहायक होगा। क्योंकि हम में जितनी सत्यनिष्ठा होगी, (इस देवजूत धनुष से छोड़े) तीर उतने तो अवश्य ही असर करेंगे। मतलब यह कि थोड़ी भी सत्यनिष्ठा व्यर्थ नहीं जायेगी, वह उतना अच्छा असर अवश्य पैदा करेगी। इस तरह पूरी सफलता तो बेशक देर में (क्रमशः) मिलेगी, पर वह इस मार्ग से ही मिलेगी और जरूर मिलेगी यही बात वेद हमें बताना चाहता है। इस तरफ किया गया हमारा स्वल्प भी प्रयत्न व्यर्थ नहीं जायगा। तोप-गोला के हिंसक युद्ध में बहुत सा गोला-बारूद व्यर्थ जाता है। गत योरोपीय महायुद्ध में बहुत गोला-बारूद व्यर्थ गया, जो कि किसी शत्रु पर नहीं पड़ा। हिसाब लगाने वालों ने इस व्यर्थ गये गोला-बारूद का बहुत अधिक प्रतिशतक बतलाया है। पर सत्यमयी वाणी से छूटा बाण कभी निरर्थक नहीं जाता। यह 'रामबाण' होता है। 'रामबाण' की जगह यहाँ 'देवजूत बाण' (देव-परमात्मा से प्रेरित बाण) कहिये। हम अपनी निर्बलता के कारण चाहे इस अस्त्र द्वारा एकदम सफलता न पा सकें, परन्तु इसी अस्त्र से हमारी शक्ति के अनुसार जल्दी या कुछ देर में हमें सफलता मिलनी निश्चित है। इस तरह इस अस्त्र की अमोघता को हमें अच्छी तरह समझ लेना चाहिये। इसके समझ लेने पर बहुत कुछ आश्रित है। क्योंकि जिनको इस अस्त्र की अमोघता पर विश्वास न होगा, वे इस दिव्य अस्त्र को भी ग्रहण करने के लिये उद्यत नहीं होंगे या उद्यत होकर बीच में ही छोड़ देंगे। इसलिये यह अमोघ है 'न सा मृषा' (यह कभी झूठ नहीं साबित होता), यह अन्त तक जरूर पहुँचाने

चोखा है, बल्कि यदि हम में सत्यनिष्ठा की इतनी सामर्थ्य हो कि हम इस अस्त्र को पूरा खींच सकें तब तो यह एकदम सफलता देनेवाला है, इस प्रकार का विचार हमें हृदयाङ्कित कर लेना चाहिये। 'न सा मृषा' ये शब्द तो हमारे अन्दर रम जाने चाहिये।

यह अस्त्र अमोघ क्यों है ? क्योंकि इस अस्त्रवाले ब्राह्मण अपने विरोधी का तप और मन्यु द्वारा पीछा करके उसे जरूर भेदन कर देते हैं। बाहर के हिंसक युद्ध में भी जब शत्रु को बिलकुल नहीं छोड़ना होता तो उसका पीछा किया जाता है—पैदल या किसी सवारी पर उसके पीछे पीछे पहुँचा जाता है। जैसे हम दो पैरों से (या दोनों तरफ लगे पहियों की किसी सवारी आदि से) पीछे जाते हैं, वैसे यहाँ 'तप' और 'मन्यु' इन दो साधनों द्वारा पीछा किया जाता है। इन द्वारा हम विरोधी के हृदय में प्रविष्ट हो जाते हैं। चूंकि इस तरह 'तप' और 'मन्यु' द्वारा यह अस्त्र हमारी पहुँच विरोधी के हृदय में करा देता है, अतएव यह अमोघ है।

तप का कुछ उल्लेख गत मन्त्र में आ चुका है। मन्यु का अर्थ है 'बुराई को दूर करने की उत्कट, ओजस्वी इच्छा।' साधारणतया मन्यु का अर्थ 'श्रेष्ठ प्रकार का क्रोध, बिना द्वेष-भाव के सर्वथा हित-कामना से निकला हुआ क्रोध, परमात्मा का बिलकुल निर्द्वेष क्रोध' ऐसा किया जाता है। परन्तु चूंकि 'क्रोध' शब्द के साथ द्वेष का भाव हमारे मनों में घनिष्ठता के साथ जुड़ा हुआ है, अतः मन्यु को किसी प्रकार का क्रोध कहना भ्रमजनक हो जाता है। अतएव मन्यु का अर्थ हम ठीक-ठीक जिन शब्दों में प्रकट कर सकते हैं, वे ये हैं 'बुराई को हटाने की तीव्र, उत्कट किन्तु निर्द्वेष और क्रोध रहित इच्छा।' यदि हम सचमुच बिना द्वेष-भाव के दूसरे के हृदय से कुछ असत्य हटाने की इच्छा रखते हैं और वह इच्छा बड़ी उत्कट है तो हम इसके लिये सब कष्ट सहने के लिये भी जरूर तैयार होंगे। यह कष्ट सहने को तैयारी ही दूसरी वस्तु है, तप है, हमारा दूसरा पैर है। जैसे दोनों पैर मिलकर काम करते हैं, वैसे ही तप और मन्यु दोनों मिलकर हमें अपने विरोधी के हृदय में पहुँचाते। केवल 'तप' हमें कहीं ले जायगा, पर उसके हृदय में ही नहीं। उधर ही हम 'मन्यु' के कारण जाते हैं और तप द्वारा उसके समीप होते जाते हैं। केवल मन्यु से हृदय पकड़ा नहीं जाता। विरोधी के लिये कष्ट सहने (तप) से ही उसके हृदय का रास्ता हमारे लिए खुलता है। बुराई हटाने की जितनी तीव्र इच्छा होगी और जितनी उसके लिए कष्ट सहने की शक्ति होगी, उतना ही हम अपने प्रतिद्वन्द्वी के हृदय में पैठ जायेंगे। उदाहरण के लिए अपने देश की अवस्था को लेवें। गुलामी की बुराइयों को हम जितनी तीव्रता से अनुभव करते होंगे, उतना तीव्र 'मन्यु' का भाव हममें उठेगा और हम गुलामी से छूटने के लिए व्याकुल होकर उतना ही अधिक कठोर-से-कठोर तप करने को उद्यत होंगे। यदि भारतवर्ष में आज कोई महापुरुष देश की गुलामी को इतनी तीव्रता (मन्यु) से अनुभव करता है कि इसे हटाने के लिए केवल अपना सांसारिक सुख, धन, मान आदि को ही छोड़ने को उद्यत नहीं, किन्तु (स्वाधीनता की इतनी कीमत समझ) उसके लिए अपने प्राणों के छोड़ने की भी इतनी तैयारी रखता है कि उसे यदि लाखों जन्म मिलें तो वह उन सबको ही 'स्वाधीनता देवी' की भेंट चढ़ाने में ही तृप्ति अनुभव करेगा तो ऐसा पुरुष भारत को आज ही स्वराज्य दिला सकता है—अपने तप और मन्यु से अंग्रेजों के हृदयों को तुरन्त पलट सकता है।

ये तप और मन्यु हमें विरोधी की आत्मा से मिला देते हैं, फिर वह विरोधी चाहे कितीनी दूर रहता हो। 'दूरादव-भिन्दत्येनम्'। इस अन्तरीय युद्ध में बाहिरी (भौतिकी) दूरी कुछ बाधा नहीं डाल सकती। अभी तक निकली बड़ी से बड़ी तोप का गोला अधिक से-अधिक ४०-५० मील तक वार कर सकता है। पर यह हृदय वाणी का अस्त्र न केवल सात समुद्र पार इङ्गलैंड के वासियों पर अपना वार कर सकता है, किन्तु यदि कहीं हमारे अस्त्र का विषय किसी दूसरे लोक में बसता

ही तो इस अस्त्र को लेकर तप और मन्यु द्वारा हमारी आत्मा की पहुँच उस लोक तक भी हो सकती है। अस्तु।

इस अस्त्र का प्रकरण समाप्त करते हुए हमें एक बार सिंहावलोकन कर लेना चाहिए कि इस सबका क्या मतलब हुआ? इस अमोघ अस्त्र को जो उपयोग में लाना चाहते हैं वे क्या करें? वे हृदय को शुद्ध (सत्यमय) बनावें तथा तप करें, इतना गत मन्त्र में कहा जा चुका है। इससे तो ठीक हथियार तैयार हो जायगा, पर इस हथियार का सफल उपयोग करने के लिए हमें कुछ और भी शर्त पूरी करनी चाहिए। हमें हृदय तो शुद्ध करना ही चाहिए, पर फिर उस शुद्ध हृदय में विनाशनीय असत्य के प्रति 'मन्यु' भी पैदा होना चाहिये। उसके हटाने के लिए हृदय में उत्कट इच्छा भी होनी चाहिए और हमें तप केवल अपनी वाणी की तीक्ष्णता के लिए ही नहीं कर रखना होगा, किन्तु विरोधी के हृदय में पहुँचने के लिए भी तप करते जाना आवश्यक होगा। मतलब यह हुआ कि हमें अपने शुद्ध हृदय में बुराको को हटाने की तीव्र इच्छा रखते हुए तप का अनुष्ठान करना होगा।

हमें जो कुछ करना है, वह तो तप ही है। इस वाणी-रूपी शस्त्र को उठाने का मतलब कोई यह न समझे कि 'तो हमें खूब बोलना चाहिये।' यह तो कहा जा चुका है कि वाणी को अस्त्र बनाने के लिए वाणी का संयम करना आवश्यक होता है। अतः बहुत बोलना तो हमें प्रारम्भ में ही त्यागना होगा। फिर यह संयम करना होगा कि जो हमारे हृदय में हो, ठीक वही वाणी में आवे। इसके बाद यह यत्न करना होगा कि हमारे हृदय में भी वही आवे, जो कि वास्तव में सत्य हो। इस तरह धीरे-धीरे परमात्मा की इच्छा के विरुद्ध कोई भी इच्छा हमारे हृदय में न पैदा हो, इतनी संयम की अवस्था लानी होगी। ये सब संयम करना बड़ा भारी तप है। पर वाणी में अपार शक्ति भी इसी संयम से आती है।

इसी तरह क्योंकि यह धनुष हृदय-बल (Will Power) रूपी है, इसलिए इसका मतलब कोई यह भी न समझे कि 'तो हमें चुपचाप बैठकर केवल मनोबल लगाना चाहिए।' वह अवस्था तो तब होती है—और तब स्वभावतः होती है—जब कि हमारे हृदय में पूरा बल आ चुका होता है। हमलोगों को तो वह हृदय-बल प्राप्त करना है। इसके लिए भी हमें तप ही करना चाहिए। तप से ज्यों-ज्यों हृदय के मल नष्ट होते जायेंगे, त्यों-त्यों हमारे हृदय में बल आता जायगा। यूँही खाली बैठने से बिना तप किये बल न आयगा। और बल के बिना आये हम मनोबल क्या लगायेंगे?

इसलिए हमें वाणी के संयम के लिए तप करना है, और हृदय में बल लाने के लिए भी तप करना है। इस तरह हमारे तैयार हृदय में यदि स्वभावतः कभी किसी असत्य के हटाने के लिए मन्यु उत्पन्न होगा तो चूंकि हम उसके लिए सब कष्ट सहने को (तप करने को) भी तैयार होंगे, अतः वह असत्य जरूर नष्ट हो जायगा। इसमें सफलता न हो, यह असम्भव है।

भारत के वैदिक युग के ऋषि लोग तप और सत्य से अपने को तैयार करके वैदिक वाणी (वेद-मन्त्रों) द्वारा अपनी सब सफलताएँ प्राप्त किया करते थे। आज यदि हममें भी हमारे मन तो अपनी हृदय की वाणी से स्वाधीनता के मन्त्र का जप करते होंगे और हमारे शरीर सब कष्ट सहने को तैयार होंगे तो अब भी (इस युग में भी) परमात्मा उसी तरह हमें सफलता प्राप्त करायेंगे, इसमें कुछ सन्देह नहीं है।

इस सूक्त की वेद-वाणी हम भारतवासियों को परमात्मा का आशीर्वाद पहुँचावे।

१०

वैतहव्यों का विनाश

ये सहस्रमराजन्नासन् दशशता उत।
ते ब्राह्मणस्य गां जग्ध्वा वैतहव्याः पराभवन्॥

(ये सहस्रं अराजन्) जो सहस्रों पर राज्य करते थे (उत दशशतः आसन्) और स्वयं सैकड़ों थे (ते वैतहव्याः) वे वीतहव्य (राष्ट्रयज्ञ की कर-रूपी हवि को खा जाने वाली) सरकार के कर्मचारी लोग (ब्राह्मणस्य गां जग्ध्वा) ब्राह्मण की वाणी को खा जाने के कारण (पराभवन्) पराभूत हो गये।

वैतहव्य का अर्थ प्रारम्भिक विवेचना में स्पष्ट किया जा चुका है। 'शत' और 'सहस्र' का अर्थ 'बहुत से—बहुत अधिक संख्या में' यह है। वेद के निघण्टु में इनका अर्थ 'बहु' ही लिखा है। अतः इन शब्दों द्वारा यहां कोई संख्या नहीं गिनाई गई है, किन्तु वह प्रकट किया गया है कि वैतहव्य बहुत बड़ी प्रजा पर हुकूमत करते थे और उनकी अपनी संख्या भी बहुत थी। तो भी चूँकि वे राज्य-कर को अपने भोग के लिये इकट्ठा करते थे एवं राष्ट्रयज्ञ की इस हवि को स्वयं खा जाने का बड़ा पाप करते थे अतः वे नष्ट हो गये।

धन की लोभी यह सरकार जब कि यहां तक उतर आई कि इस राष्ट्र-हवि को खा जाने में भी इसे कुछ शंका लज्जा न होने लगी तो देश के ब्राह्मण ने देश में होते हुए इस अन्याय को अधिक देर तक देख न सकने के कारण इसके विरुद्ध अपनी आवाज उठायी, तब उन वैतहव्यों ने इस विचारी वाणी की भी गो-हत्या कर डाली। यही उनके विनाश का कारण हुआ।

इस पाप के कारण वैतहव्य कैसे नष्ट हो गये यह बात पाठक अब तक अच्छी तरह समझ चुके हैं। इसे ही वे अब अगले दो मन्त्रों में स्वयं वेद के शब्दों में सुन लें।

११

मारी जाती हुई ब्राह्मण-वाणी ही उन्हें मार डालती है

गौरेव तान् हन्यमाना वैतहव्यां अवातिरत्।
ये केसरप्राबन्धायाश्चरमाजामपेचिरन्॥

(ये) जो वैतहव्य (केसरप्राबन्धायः) सुख-प्रसार के किये बन्धनरहित इस वाणी की (चरमाजां) अन्तिम चेतावनी को भी (अपेचिरन्) पचा गये, हज़म कर गये अर्थात् उसे भी नहीं सुना तो (तान् वैतहव्यान्) उन वैतहव्यों को (हन्यमाना गौः एव) मारी जाती हुई ब्राह्मण वाणी ने ही (अवातिरत्) परास्त कर दिया।

ब्राह्मण अपनी वाणी के इस तपोमय अमोघ-अस्त्र को चलाने से पहिले विरोधी को बार-बार सावधान करता है। अन्तिम लड़ाई या अन्तिम प्रहार करने से पहले भी वह और

अन्तिम बार उसे सावधान करता है कि वह अब भी समझ जाय—सँभल जाय। पर जब उस 'चरमाजा' अन्तिम चेतावनी* का भी वह मदोन्मत्त राजा अनसुनी कर देता है तब उस पर वह अस्त्र गिरता है और तब उसे बाधित होकर झुकना पड़ता है। कल जो ऐंठता था वही आज ब्राह्मण वाणी की सम्पूर्ण बात मानने को बाधित होता है। वह तो अपनी तरफ से उस वाणी को मार चुका होता है इसीलिये इसने उस समय तो उसकी 'चरमाजा' (अन्तिम चेतावनी) की तरफ भी ध्यान नहीं दिया था, पर अब पीछे से हार कर उसे इसकी एक-एक बात स्वीकार करनी होती है। इस तरह मारी जाती हुई यह वाणी उसे हरा देती है।

यदि ये वैतहव्य उसकी अन्तिम चेतावनी को सुन लेते तो बहुत अच्छा होता; पर ये लोग उसकी वाणी की कीमत को नहीं समझते। वह वाणी तो 'केसरप्राबन्धा'* होती है अर्थात् वह सदा सब के सुख के लिये प्रवृत्त होती है और कभी बन्धन में नहीं डाली जा सकती—कभी पराधीन नहीं बनती।

* चरमा=अन्तिमा, अजा=अजनम् चेष्टनम्। अजा का अर्थ यास्क मुनि भी 'अजनम्' करते हैं। पर पाश्चात्य लोग 'अज' का अर्थ सिवाय बकरे के और नहीं जानते।

* 'केसरप्राबन्धायाः' यह एक स्त्रीलिङ्गी शब्द का षष्ठी रूप है। यह यहां स्पष्ट वाणी का ही विशेषण है। के सुखे सुखनिमित्त सराय सरणाय प्रकर्षेण अबन्धा बन्धनरहिता।

१२

प्रजाद्रोही राजा

एकशतं ता जनता या भूमिर्व्यधूनुत।
प्रजां हिंसित्वा ब्राह्मणीमसंभव्यं पराभवन्॥

(ताः जनतः एकशत या भूमिः व्यधूनुत) वह जन-समूह सैकड़ों का था जिसे कि भूमि ने कम्पित कर दिया। (ब्राह्मणी प्रजां हिंसित्वा) ब्राह्मण की प्रजा को सताने के कारण वे वैतहव्य (असम्भव्यम्) बिना सम्भावना के ही (पराभवन्) परास्त हो गये।

सत्य पर आरूढ़ राजा की आज्ञाओं का पालन जो प्रजा नहीं करती वह राजद्रोही होती है; इसी तरह जो राजा सत्यारूढ़ प्रजा के लोकमत के विरुद्ध शासन करता है वह राजा प्रजा-द्रोही होता है। ऐसा राजा उस प्रजा को 'अपनी' नहीं कह सकता। ऐसी प्रजा तो अपने आपको उस राजा की समझती ही नहीं, वह तो ब्राह्मण की—अपने रक्षक नेता की—अपने को समझती है।

ब्राह्मण की अपने आप को मानने वाली, ब्राह्मण को अपनी शरण देखने वाली, इस प्रजा को हिंसन करके—सता करके वैतहव्य लोग अपने को पूरा प्रजाद्रोही बना लेते हैं। अतः वे यद्यपि सैकड़ों होते हैं तो भी भूमि उन्हें कम्पित कर देती है अर्थात् प्रजा की इस मातृभूमि में एक ज़बरदस्त क्रान्ति हो जाती है जिस में कि ये वैतहव्य हार जाते हैं। वैतहव्यों की बाह्य-शक्ति इतनी प्रबल होती है कि किसी के भी मन में यह सम्भावना नहीं होती कि ये कभी हार सकते हैं; परन्तु वे ब्राह्मण के महान् तप के सामने सहज में ही हार जाते हैं और सर्व साधारण लोग आश्चर्य करते रहते हैं। इसी भाव को प्रकट करने के लिये यहां 'असम्भव्यम्' शब्द पढ़ा है।

१३
देवपीयु और देवबन्धु

देवपीयुश्चरति मर्त्येषु,
गरगीर्णो भवत्यस्थिभूयान्।
यो ब्राह्मणां देवबन्धुं हिनस्ति,
न स पितृयाणमप्येति लोकम्॥

(देवपीयुः) देवभाव का द्वेषी मनुष्य (मर्त्येषु गरगीर्णो चरति, अस्थिभूयान् भवति) लोगों में विष पिये हुये की तरह फिरता है और उसकी तरह हड्डी-हड्डी वाला हो जाता है। (यः) ऐसा जो देवपीयु (देवबन्धु ब्राह्मण हिनस्ति) दैवभाव के पालक ब्राह्मण का हिंसन करता है (सः पितृयाणं लोकं अपि न एति) वह पितृयाण-लोक को भी नहीं प्राप्त होता।

ब्राह्मण "देवबन्धु" होता है, और प्रजा-द्रोही राजा "देवपीयु" होता है। तो यदि ब्राह्मण ऐसे राजा को सहज में हरा देता है तो इसमें क्या आश्चर्य? देव के विरोध में दुनिया में कौन ठहर सकता है? देवबन्धु होने के कारण जहाँ ब्राह्मण का हृदय देवदूत बनता है, उसके हृदय में महान देव-बल सञ्चारित होता है और इस तरह वह अमोघ अस्त्र का काम देता है (मन्त्र ८); तो दूसरी तरफ देवपीयु के हृदय में इन्द्र आग जला देता है। (मन्त्र ५)। तो फिर देवबन्धु क्यों जीतेगा? देवबन्धु के विरोध में देवपीयु की और क्या-क्या दशा होती है, यह इस मन्त्र में वर्णन की है।

संसार में मनुष्य की गति के दो मार्ग प्रसिद्ध है, (i) देवयान और (ii) पितृयाण। वैदिक साहित्य में इनका बहुत वर्णन है। संक्षेप में इन्हें समझने के लिये पाठक निम्न वर्गीकरण को ध्यान से देख लें:—

	देवयान	पितृयान
१	अपवर्ग आध्यात्मिक उन्नति	भोग भौतिक उन्नति
२	ब्रह्मचर्य द्वारा आत्मतेज बढ़ाना	संयमपूर्वक सन्तानोत्पत्ति करना
२	गहराई	विस्तार

ये दोनों मार्ग स्वाभाविक है। यद्यपि देवयान पितृयाण की अपेक्षा बड़ा उच्चमार्ग है, पर पितृयाण भी है स्वाभाविक। जीव स्वभावतः भोग की तरफ जाता है, और फिर धीरे-धीरे भोग की तुच्छता का अनुभव कर स्वभावतः अपवर्ग की तरफ लौटता है। इस मन्त्र में कहा है कि देवपीयु पितृयाण-लोक को भी नहीं प्राप्त होता। इसका मतलब यह हुआ कि वह भोग भी स्वभाविक रूप से नहीं भोगता। वह भोग में इतना आसक्त हो जाता है कि भोजन के सामान्य नियमों का भी पालन नहीं करता, अतः उसका भोज भोज्य के भोजन की जगह विष का भोजन हो जाता है अतएव उसकी (शारीरिक) भौतिक उन्नति भी नहीं होने पाती। इसे ही प्रकट करने के लिये यहाँ 'अस्थिभूयान्' कहा है। विष के कारण शरीर का सब सार, सत्व, श्रेष्ठ भाग जल जाता है या बनना बन्द हो जाता

है, उसके शरीर में हड्डी ही हड्डी हो जाती है। एक बार रवीन्द्र ठाकुर ने पाश्चात्य सभ्यता का अनुकरण करने वाले जापान को भारत का संदेश सुनाते हुए कुछ ऐसी ही उपमा दी थी। उन्होंने कहा था कि अपनी संस्कृति, मानवता, न्याय, धर्म आदि सार वस्तुओं को गँवा कर कमाया हुआ धन निर्जीव होता है, हड्डियों का ढेर होता है। यह ऐसा होता है जैसे कि रस, रुधिर, शुक्र, तेज आदि का नाश करके शरीर में हड्डियों का बढ़ाना। देवपीयु की दशा ऐसी ही होती है।

यह दशा उसकी इसलिये होती है, क्योंकि वह देवों का (दैव नियमों का) हिंसन करता है, क्रियात्मक रूप में इनके विरोध में खड़ा होता है। इसे दिखाने के लिये इस मन्त्र में कहा है कि "देवबन्धुं ब्रह्मणं हिनस्ति"। यदि वह देवयान-मार्ग पर न चल सके तो इसमें कुछ हर्ज नहीं, वह देवयान का विरोध न करता हुआ पितृयाण पर ही चले। पर वह तो देवयान का विरोध करता है। वह देव चाहे न बने, पर वह जो देव का हिंसक (देवपीयु) बनता है तो इससे उसके अभीष्ट पितृयाण की भी जड़ कट जाती है। वह भोग बेशक करे, पर वे भोग उसे दैव नियमों का उल्लंघन न करते हुए भोगने चाहिये। अर्थात वह यदि देवबन्धु न बने को देवपीयु भी न बने। तो इन दोनों में बीच के एक ऐसे 'पितृबन्धु' की भी हम कल्पना कर सकते हैं जो कि देवपीयु भी नहीं होता। इन तीनों का लक्षण हम यों समझ सकते हैं।

देवबन्धु वह होता है जो कि देव का—जगत् में काम करने वाले "ऋत" नामक देव के नियमों का—पूरी तरह पालन करता है। उनसे अपने को बांध कर "देवयान" मार्ग पर जाता है।

पितृबन्धु वह होता है जो कि देव के इन नियमों का उल्लंघन न करता हुआ अपने को पितृलोक के नियमों से बाँध कर "पितृयाण" मार्ग पर जाता है।

देवपीयु वह होता है जो कि देव के इन नियमों का उल्लंघन करके पितृयाण पर जाना चाहता है अतः वह पितृयाण मार्ग पर भी नहीं चल सकता। अस्तु—

अब इनके विपरीत देवबन्धुओं की दशा कैसी होती है इसे पाठक अगले मन्त्र में देखें।

१४

सताये जाते हुए ब्राह्मण किस भाव में रहते हैं ?

अग्निर्वै नः पदवायः सोमो दायाद उच्यते।
हन्ताभिशस्तेन्द्रस्तथा तद् वेधसो विदुः॥

(अग्नि वै नः पदवायः) अग्निरूप प्रभु निश्चय से हमारा आगे ले जाने वाला[1] पथप्रदर्शक है और (सोमः दायादः[2] उच्यते) सोमरूप प्रभु हमारा दायाद है, (इन्द्रः अभिशस्ता हन्ता) इन्द्ररूप प्रभु हमारी हिंसा से रक्षा करने वाला है (तत् तथा वेधसः विदुः) सचमुच इसी तरह ज्ञानी ब्राह्मण लोग अनुभव करते होते हैं।

देवबन्धु ब्राह्मण लोग राजा की इतनी भारी शक्ति देख कर भी क्यों ज़रा भयभीत नहीं होते ! इतने घोर कष्टों को पाकर भी वे क्यों कभी विचलित नहीं होते ! वे दुःख, पीड़ा, ग़रीबी, कारावास, मृत्यु इन सब को क्यों निमन्त्रण देते हैं ! और इन्हें ऐसी प्रसन्नता से क्यों झेलते हैं ! इस सबका रहस्य इस मन्त्र में प्रदर्शित उनका विश्वास है। उन्हें यह सदा दीख रहा होता है कि भगवान् अपने तीनों (अग्नि, सोम और इन्द्र) रूपों[3] में सदा उनके सहायक हैं।

इस विश्वास का कुछ हिस्सा भगवान हमें भी प्रदान करें।

१ पदं प्राप्तव्यस्थानं वाययति गमयतीति पदवायः।

२ 'दायाद' सम्बन्ध का अर्थ छठे मन्त्र की व्याख्या में देखिए।

३ भगवान् के इन तीनों रूपों का विस्तृत व्याख्यान छठे मन्त्र की व्याख्या में देखिए।

१५

उपसंहार

इषुरिव दिग्धा नृपते! पृदाकूरिव गोपते!
सा ब्राह्मणस्येषुर्घोरा तया विध्यति पीयतः ॥

(नृपते !) हे मनुष्यों के पालक राजा ! (दिग्धाः इषुः इव) ब्राह्मणवाणी विषबुझे तीर का काम करती है, (गोपते !) हे गौ के पालक राजा ! (प्रदाकूः इव) ब्राह्मणवाणी सर्पिणी की तरह हो जाती है। (सा ब्राह्मणस्य घोरा इषुः, तया पीयतः विध्यति (ब्राह्मण का उसकी वाणी ही उत्कट हथियार है जिससे कि वह देवहिंसकों का वेधन कर देता है।

अन्त में राजा को 'नृपते' और 'गोपते' इन दो विशेषणों से सम्बोधित करके वेद इस विषय का उपसंहार करता है। राजा का काम ही 'नृपति' होना—मनुष्यों का पालक होना—है; और राजा तो 'गोपति' होने के लिये बिचारी गौ का पालन करने के लिए ही बनाया जाता है। पृथ्वी, गाय, वाणी (विशेषतया, ब्राह्मण-वाणी) इन सब गौओं की (देखो, प्रारम्भिक विवेचना पृष्ठ ११) तथा अन्य रक्षणीयों की रक्षा के लिये ही राजा की जरूरत होती है। क्योंकि ऐसा राजा ब्राह्मणी प्रजा की भी हिंसा करता है (मन्त्र १२) और ब्राह्मण की वाणी 'गौ' की हिंसा करता है। (मन्त्र २, १०); अतः उसे अन्त में 'नृपते' और 'गोपते' नामों से पुकार कर जगाना ही इस अन्तिम मन्त्र की विशेष बात है।

यह ब्राह्मण की वाणी रूपी गौ का वर्णन समाप्त है।

इस ब्राह्मण की गौ को जो सदा मङ्गलरूपा, कल्याणी होती हुई भी कभी विषदिग्ध इषु का भी काम करती है, जो ब्राह्मण की गौ कभी भयंकर सर्पिणी के रूप में भी दीखती है और जो कि चमत्कारिणी ब्राह्मण की गौ असुरों का ध्वंस करने के लिए एक अमोघ दिव्य धनुष का भी रूप धारण कर के कभी चमकती है, फिर भी जो असल में सदा शिव-रूपा अभयदायनी है उस इस ब्राह्मण की गौ को हमारा बार-बार प्रणाम है।

|| ओ३म् ||

तार : SAVABHAW

दूरभाष : कार्यालय : २२-५२५०
घर : ३३-७६३०
गद्दी : ३३-०८४४

आर्य समाज कलकत्ता के ८७ वें वार्षिकोत्सव के उपलक्ष में

हमारी हार्दिक शुभकामनायें

सत्यनारायण खराकिया

हैसियन, बोरा सूतली के व्यापारी तथा
कमीशन एजेण्टस्

१३५, कैनिंग स्ट्रीट,
कलकत्ता - १

॥ ओ३म् ॥

टेलीफोन नं० ३३-५२२२

गोविन्दराम भगवानदास

(थोक एवं खुदरा मसाला व गल्ला व्यवसायी)

आर्य समाज कलकत्ता के ८७वें वार्षिकोत्सव के उपलक्ष में

हमारी हार्दिक शुभ कामनायें :

१६७, नेताजी सुभाष रोड,
(राजा कटरा, रूम नं० १६८)
क ल क त्ता - ७

|| ओ३म् ||

Gram : 'ASSAM ROAD' Phone : 34-8756

ASSAM ROADWAYS

THE LEADING TRANSPORTERS FOR ASSAM & NORTH BENGAL.

Head Office :

8, MADAN MOHAN BURMAN STREET,
CALCUTTA-7.

Branches :

Sevoke Road, SILIGURI.
Jail Road, Fancy Bazar, GAUHATI.
Police Hospital Road, NOWGONG.
Raja Maidan Road, JORHAT.
Thagal Bazar, IMPHAL.

Main Road, SIBSAGAR.
Radhabari, DIBRUGARH.
Majid Patti, TINSUKIA.
G. S. Road, SHILLONG.
N. B. Road, TEJPUR,
Dhekiajuly.

ALL OVER ASSAM & NORTH BENGAL.

॥ ओ३म् ॥

Gram: 'SRISADAN' Phone : 33-2126

साभिनन्दन

जगन्नाथ जीतमल

(इम्पोर्टर्स एण्ड एक्सपोर्टर्स)

३७, आरमेनियन स्ट्रीट,
कलकत्ता - १

विक्रेता :—

श्री तापड़िया टैक्सटाईल्स फैब्रिक्स
युनिवर्सल टैक्सटाईल्स फैब्रिक्स

॥ ओ३म् ॥

तार : नीर सत्य दूरभाष : ३४-६०२८

आर्यसमाज कलकत्ता के ८७वें वार्षिकोत्सव पर

हार्दिक शुभकामना

प्रकट करते हैं।

रोयल बेयरिंग कारपोरेशन

जी० पी० ओ० बक्स नं० २०३८, कलकत्ता-७००-००१

रजिस्टर्ड आफिस : २२, सरकार बाई लेन,

कलकत्ता-७००-००७

❀ ओ३म् ❀

छोटी बचत की लाभप्रद योजना के अन्तर्गत पाँच वर्षों तक :—

ग्रुप - ए : ५०) रु० प्रतिमाह
पारिवारिक ग्रुप : १०) रु० प्रतिमाह
देकर सदस्य बनें

पुरस्कार एवं आपकी कुल जमा रकम वापस * ६१ बार पुरस्कार प्राप्त पाने का सुअवसर * पुरस्कार प्राप्त करने पर भी अगले हर ड्रा में शामिल * ऋण प्रदान करने को व्यवस्था।

पूर्ण विवरण एवं एजेन्सी के लिए सम्पर्क करें :

आर्यावर्त सेविंग्स युनिट प्रा० लि०

पंजीकृत कार्यालय :

२०५, रवीन्द्र सरणी,
(फूलकटरा)
कलकत्ता - ७.

फोन : ३३-८८६२

ओ३म्
S I
स्पेयर्स इन्डिया
पी.५० प्रिंसेप स्ट्रीट.कलकत्ता-१३

ओ३म्

Phone :
Office : 35-1701
Resi : 35-4699
Shalimar Godown : 67-3406
Baghbazar ,, : 55-3478

AJODHARAM MATHURARAM

Regd. Stockist of :

IRON, STEEL & HARDWARE MERCHANTS
& GENERAL ORDER SUPPLIERS

77, KAILASH BOSE STREET,
CALCUTTA-6.

ओ३म्

Phone : 35-3149

Shital Prasad Bindhyachal Prasad

IRON & STEEL MERCHANTS & GENERAL ORDER SUPPLIERS

77, KAILASH BOSE STREET,
CALCUTTA-6.

आर्य-समाज १९, विधान सरणी, कलकत्ता-६ के लिये पं० उमाकान्त उपाध्याय, एम० ए० द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित तथा रत्नाकर प्रेस, ११-ए, सैय्यदसाली लेन, कलकत्ता-७ में मुद्रित।

ओ३म्

वर्ष २० अंक ७

आर्य-संसार

आश्विन-कार्तिक २०३५

आर्य समाज कलकत्ता
का
मासिक मुख-पत्र

अक्टूबर, नवम्बर १९७८

सबको अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिए किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

आर्य समाज का नवाँ नियम

मूल्य :
एक प्रति २५ पैसे
वार्षिक ३ रुपये

सम्पादक :
उमाकान्त उपाध्याय, एम० ए०

सह-सम्पादिका :
सुनीति देवी शर्मा

आर्य-समाज कलकत्ता
१९, विधान सरणी,
कलकत्ता-६
फोन : ३४-२८०३

९१वें वार्षिकोत्सव का निमन्त्रण-पत्र
एवं

प्रोगाम

(२३-१२-७८ शनिवार से ३१-१२-७८ रविवार तक)
आप से सानुरोध प्रार्थना है कि आप अपने मित्रों सहित सम्मिलित होकर
उत्सव की शोभा बढ़ावें।

दिनांक २३-१२-७८ शनिवार—७ से ९ ऋग्वेद पारायण यज्ञ, ९ से १० भजन उपदेश; १० झण्डोत्तोलन, २॥ बजे से नगर कीर्तन (आर्य समाज मन्दिर से प्रस्थान कर मुहम्मद अली पार्क में समाप्त)।

दिनांक २४-१२-७८ रविवार—प्रातः ७ से ९ यज्ञ, ९ से ११ साप्ताहिक सत्संग, २॥ से ५ तक स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान दिवस, सन्ध्या, भजन एवं व्याख्यान।

दिनांक २५-१२-७८ सोमवार—प्रातः ७ से ९ तक यज्ञ, भजन, एवं उपदेश, ६ से सन्ध्या, भजन एवं व्याख्यान।

दिनांक २६-१२-७८ मंगलवार—प्रातः ७ से १० यज्ञ भजन, उपदेश। २॥ बजे से ५ बजे तक आर्य कन्या महा विद्यालय का कार्यक्रम ६ से १० सन्ध्या, भजन एवं व्याख्यान।

दिनांक २७-१२-७८ बुधवार—७ से १० यज्ञ, भजन एवं उपदेश। २॥ से ५॥ आर्य महिला सम्मेलन केवल महिलाओं के लिए।

दिनांक २८-१२-७८ वृहस्पतिवार—७ से १ यज्ञ, भजन, उपदेश सायं ७ बजे से आर्य संस्कृति सम्मेलन।

दिनांक २९-१२-७८ शुक्रवार—प्रातः ७ से १० यज्ञ, भजन उपदेश। सायं ६ से सन्ध्या; ६॥ से भजन, ७ से १० व्याख्यान

दिनांक ३०-१२-७८ शनिवार—प्रातः ७ से १० यज्ञ, भजन उपदेश सायं ३ से ५॥ तक वेद सम्मेलन, व्याख्यान।

दिनांक ३१-१२-७८ रविवार—प्रातः ९ बजे यज्ञ की पूर्णाहुति तथा सामूहिक साप्ताहिक सत्संग।

अपराह्न—२॥ से ३॥ बालसत्संग; ३॥ से ५। शंका समाधान; रात्रि ६॥ धन्यवाद आरती, शान्ति पाठ।

वार्षिकोत्सव के अवसर पर बाहर से पधारने वाले निम्नलिखित विद्वानों के आने की सम्भावना है।

... सरस्वती

स्थानीय विद्वान

(१) श्री पं० उमाकान्त उपाध्याय
(२) श्री पं० प्रियदर्शन सिद्धान्तभूषण
(३) श्री पं० शिवाकान्त उपाध्याय
श्री पं० शिवनन्दन प्रसाद वैदिक
आत्मानन्द शास्त्री

ओ३म्

सम्पादकीय

प्रचार कला में अन्तराल

● भोजन का अभाव

● तकनीक का पिछड़ापन

आर्य समाज के संगठन का उद्देश्य वैदिक धर्म का सम्पूर्ण विश्व में प्रचार है। वेद धर्म का प्रचार मुख्य उद्देश्य है, साध्य है; अन्य जो कुछ भी उद्देश्यरूप में दिखाई पड़ता है, वह सब साधन है। प्रचारक और अधिकारी को यह साध्य-साधन-सम्बन्ध अच्छी तरह हृदयंगम कर लेना चाहिए। साधारण रूप में कोई इस संगठन का अधिकारी क्यों बनता है, यह उसे विदित ही होना चाहिए। इसी प्रकार प्रत्येक प्रचारक को यह ध्यान रखना ही चाहिए कि वह किस वस्तु का प्रचार कर रहा है और उस प्रचार का क्या उद्देश्य है? आज के युग में मिशन के प्रति समर्पित जीवन और निष्ठा सम्पन्न कितने अधिकारी और प्रचारक हैं या शेष रह गये हैं, इसका अतिरञ्जित चित्र भ्रम भ्रान्ति की कोटि में नहीं अपितु आत्म प्रवञ्चना की कोटि से भी ऊपर उठकर 'आत्मघात' की स्थिति में पहुँचा सकता है। निरर्थक ग्लानि, निष्प्रयोजन आत्मधिक्कार भी आत्मघाती ही होता है। किन्तु इस भय से वस्तु स्थिति का यथा-मतिविश्लेषण करना भी अक्षम्य है, तटस्थ रहना कापुरुषता है, सर्वप्रियता का मुलम्मा पाप है, महापाप है। श्री दिनकर की निम्न पंक्तियाँ रह रहकर अन्तःकरण को कचोट लेती हैं—

"समर शेष है, नहीं पाप का भागी केवल व्याध,
जो तटस्थ हैं, समय लिखेगा उनका भी अपराध।"

कम से कम तटस्थ रहने का पाप न लगे, कर्त्तव्य च्युति का अपराध न हो जाय, इसलिए प्रत्येक विचार-शील व्यक्ति को अपने-अपने स्तर पर प्रयासशील रहना चाहिए।

(१)

आज का युग योजनाओं का युग है; तकनीक का युग है। संसार की गति बड़ी तीव्र हो गई है। बैलगाड़ी और घोड़ागाड़ी से आज के विश्व के गति का अनुमान नहीं हो सकता। आज विमान का युग है। संसार इतना लघु-सकीर्ण, सुगम हो गया है कि एक सौ वर्ष पूर्व इसका अनुमान भी नहीं लग सकता था। आज संसार के किसी भी कोने में पहुँचने के लिए चौबीस घण्टों की आवश्यकता नहीं रह गई है। परिवहन अवरोध नहीं सुयोग हो गया है। देश के अन्दर भी ट्रेनों, बसों और टैक्सियों का जाल सा बिछा हुआ है।

जनसम्पर्क के साधन आज जिस प्रकार सुलभ हैं यह पचास वर्ष पूर्व भी कल्पनागम्य नहीं था। आकाशवाणी और दूरदर्शन समय की गति के साथ पग पर पग मिलाये जा रहे हैं।

लेखन, मुद्रण, प्रकाशन इत्यादि का पक्ष बहुत आगे निकल गया है। अपने देश में भी प्रगति ठीक ही है।

बड़े-बड़े कार्यों की योजनाएँ बनानी ही चाहिए। कार्यकारी या अधिकारी यह बता दें कि उन्हें क्या करना है, उद्देश्य (target) क्या है और साधन (resources) धन के भी और व्यक्ति के भी, साथ

ही यदि आवश्यक हो तो अन्य आवश्यक निर्देश कर दें। उसके पश्चात् योजनामण्डल को सदस्यगण काम पर जुट जाँय। योजनाएँ अल्पकाल के लिए हों और दीर्घकाल के लिए भी हों, फिर दोनों में परस्पर सामञ्जस्य हो।

योजनाएँ Vertical लम्बरूप एवं Horizontal समतल भी बनती हैं। योजनाओं का रूप केन्द्र से इकाइयों की ओर या फिर इकाइयों से केन्द्र की ओर हो सकता है। हर प्रकार से सामञ्जस्य, सहयोग की भावना बनी रहे।

योजनाएँ काल सापेक्ष्य, उद्देश्य सापेक्ष्य और साधन सापेक्ष्य होती हैं। इन सबका भी समन्वय, सामञ्जस्य होना ही चाहिए।

जहाँ तक आर्य समाज की कार्य पद्धति का प्रश्न है, हमें किसी प्रकार के योजनाबद्ध प्रचार का ज्ञान नहीं है। संगठनात्मक रूप में हम अपने पूर्वजों की सूझ-बूझ पर अवश्य गर्व कर सकते हैं। आर्य समाज का संगठन नीचे से ऊपर और ऊपर से नीचे; इकाई से केन्द्र और केन्द्र से इकाई तक पूर्ण सामञ्जस्य समन्वय पर खड़ा है। व्यावहारिक शिथिलता अथवा दलबन्दी के निकृष्टतम दलदल की हम चर्चा नहीं करना चाहते; किन्तु संगठन का ढाँचा अपने में काफी ठीक है; समय के साथ परिवर्तन का तो कालक्रम और युगकर्म का सम्बन्ध है। अतः संगठन का ढाँचा और नियमोपनियम कार्य निर्वाह की दृष्टि से ठीक ही है। यत्र-तत्र थोड़े परिवर्तन संशोधनों की गुञ्जाइश तो सर्वत्र बनी रह सकती है।

किन्तु संगठनात्मक रूप में कोई योजना बनाई ही नहीं जाती। सम्भव है हमारा मत किसी पूर्वाग्रह पर आधारित हो किन्तु हमें यह कहने में अधिक संकोच नहीं है कि हमारे संगठन के कर्तृपक्ष में योजना समिति के सदस्यों की आवश्यक योग्यता के कितने व्यक्ति होंगे, यह गणना अधिक उत्साहवर्धक नहीं होगी। यह भी ठीक है कि नेता के लिए योजना तकनीक की जानकारी आवश्यक नहीं है। किन्तु योजनाबद्ध कार्य का महत्व तो नेताओं के ध्यान में भी सुस्पष्ट होना चाहिए।

हमारी संगठनात्मक सूझ-बूझ भी कुछ निराली ही है। हम अस्वस्थ होते हैं तो हम सुयोग्य डाक्टर वैद्य के पास जाते हैं, चाहे वह आर्यसमाजी नहीं भी हो। हम जब कानूनी दांव पेंच में उलझते हैं तो किसी विधि विशेषज्ञ वकील के पास जाते हैं। वह आर्य समाजी है या नहीं, यह कोई विचारणीय मुद्दा नहीं है। इसी प्रकार हम एकाउण्टेण्ट, इन्जीनियर और दूसरे लोगों से सहायता लेते हैं। यही बात हम संगठन के बारे में सोचने में असमर्थ हो जाते हैं।

वैसे तो आर्य समाज का यह सौभाग्य है कि आर्य जगत में अच्छी संख्या में सब योग्यता के लोग मिल सकते हैं। यद्यपि यह भी सच है कि विशिष्ट योग्यता सम्पन्न व्यक्ति दलीय निकृष्टता में कम रुचि लेते हैं, और बहुत दूर तक इसीलिए संगठन संयन्त्र से पृथक् से पड़े रहते हैं। किन्तु यदि योजना निर्माण करने के लिए आर्य समाजी या दूसरे लोगों की समिति नेतृमण्डल के उद्देश्य और साधन की परिधि के भीतर योजना प्रस्तुत करे तो कार्य को एक दिशा मिलेगी। साथ ही उचक उचक कर चुनाव चक्र चलाने वालों को भी अगले निर्वाचन में उत्तर देने के लिए क्रियाशील रहना पड़ेगा। आज तो जो बन जाता, है वही कार्य है, जो हो जाता है. वही प्रचार है।

विदेशियों की योजनाएँ, अल्पकालिक और दीर्घ कालिक हमारे सामने निखर कर खड़ी हैं। पाकिस्तान एक लम्बी योजना का फल था और बन कर रहा। हम गर्दन झटक झटक कर नारे लगाते रहे, माइक तोड़ते रहे, प्रचार का दम भरते रहे, लाख-लाख कण्ठों की पुकार थी—

"पाकिस्तान भले हो जावे,
बन सकता पाकिस्तान नहीं।"

किन्तु पाकिस्तान बन गया। डा० राजेन्द्र प्रसाद जी ने 'विभाजित भारत' नामक एक अति योग्यता पूर्ण ग्रन्थ लिखकर विभाजन की कठिनाइयाँ और दोष बताये। किन्तु यह एक योजना थी और सफल हो गई। छोटा नागपुर और असम के क्षेत्रों में ईसाई प्रचार की योजनाएँ रंग लाने लगी हैं। हमारा सांस्कृतिक कार्य हो या धार्मिक, राष्ट्रीय हो या अन्तर्राष्ट्रीय किसी की योजना कम ही बनती है।

आज योजना पद्धति बहुत विकसित हो गई है। आवश्यकता है कि हमारी भी बहुमुखी योजनाएँ बनें और उन्हें पूर्ण करने का उत्तरदायित्वपूर्ण नेतृत्व उभाड़ा जाय।

(२)

भारतवर्ष की गणना आज भी पिछड़े, अर्वोन्नत, उन्नतिशील देशों में है। यह उन्नत देश नहीं माना जाता।

उन्नत देशों में तकनीक की उन्नति बहुमुखी हुई है। रेडियो, टेलीफोन, दूरदर्शन, प्रकाशन आदि का बड़ा सुलझा हुआ प्रयोग हो रहा है। किन्तु हम अभी बैलगाड़ी या पैर गाड़ी के दुराग्रह से उबर नहीं सके हैं।

उद्योग धन्धों के क्षेत्र में बात कुछ और है। विदेशों की तुलना में हमारे यन्त्र और यन्त्र तकनीक तथा उत्पादन बहुत पीछे है। इस पीछड़ेपन का ध्यान करके आरम्भ से ही हमने तकनीक के विदेशी विशेषज्ञों से सहायता ली है। उत्पादन के क्षेत्र में यह तकनीकी अन्तराल काफी दूर तक आज भी बना हुआ है। फिर भी हम अपने विद्यार्थी भी विदेशों में भेजकर उन्हें सीखने का अवसर देते हैं और विदेशी विशेषज्ञों को यहाँ बुलाते भी हैं; साथ ही विदेशी पूँजी, मशीन, तकनीक विशेषज्ञ, इनको सब को हम भारत करते हैं

यह तकनीकी की पिछड़ापन धार्मिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में भी पैठा हुआ है। इसे भी दूर करने का प्रयास हमारे सौभाग्य क्षेत्र से बाहर है। हमारे बहुत से मिशनरी प्रचारक विदेशों में प्रतिवर्ष जाते हैं। अपनी अपनी रीति नीति से वे काम करते हैं। कभी कभी कोई विदेशी पद्धति हमारे आँखों में गड़ जाय, ध्यान में धँस जाय, यह अलग बात है; नहीं तो हमारे विदेश प्रचार का अर्थ केवल इतना ही है कि भारत के लोग यहाँ से उखड़ कर वहाँ जा जमे और अब छिन्नमूल को कुछ भारतीय पद्धति, कुछ हवन यज्ञ, कुछ कथावार्ता आदि मिलता रहे। हमारे प्रचारक जो विदेश में जाते आते रहते हैं वे प्रायः साधु वृत्ति के हैं। प्रचार संयन्त्र और प्रचार तकनीक का वे अध्ययन नहीं करते। उनके सामने कोई केन्द्रीय प्रचार योजना नहीं रहती। वे व्यक्तिगत, व्यक्तिशः प्रचारक का काम करते हैं।

दो तीन वर्ष पूर्व एक विदेश यात्रा पर कोई १८-२० व्यक्तियों के एकदल के साथ हम भी विदेश यात्रा पर थे। मन में बहुत कुछ लेकर निकले थे। किसी केन्द्रीय बृहत प्रचार योजना के एक खण्ड या अंश के रूप में हम न थे। [illegible] आने वालों ने क्या किया है और हमें क्या करना है; हमारे पीछे जो आयेंगे उन्हें क्या करना होगा, यह सब प्रश्न ही सामने न था। हमने स्वीटजरलैण्ड में जनेवा में रहते हुए वहाँ आर्य समाज की स्थापना तो की थी किन्तु फिर क्या हुआ का हमें कुछ पता नहीं। हम सत्यार्थ प्रकाश और सत्यसंग की पुस्तकें दे आये किन्तु पीछे से उस आरम्भ किये हुए प्रयास का क्या हुआ (Follow up action) अनुगामी कार्य के रूप में कुछ हो न सका होगा। वैसे हमने शिरोमणि सभा की सूचना दे दी थी।

पर जो रोग हर इकाई में है उससे केन्द्र कहाँ तक बच कर रहेगा, या बचकर रहने की चेष्टा करेगा। लन्दन में तो दो एक पारिवारिक सत्संगों का व्यक्तिगत स्तर पर आयोजन हो सका। संगठन से सम्पर्क करने में ही हमारे सो दो सो रुपये लग गये किन्तु काम कुछ न बना। इस तरह के प्रसङ्ग सामञ्जस्य, समन्वयहीन योजना तकनीक के फल हैं।

यह अलग अलग की स्थिति स्वदेश में भी है। बड़े बड़े शहरों में कई कई समाज होते हैं, किन्तु उनकी कोई समन्वित सम्मिलित योजना नहीं है।

आवश्यकता है कि आज की उन्नत स्थिति को ध्यान में रखकर प्रत्येक स्तर समन्वित सामञ्जस्य पूर्ण कार्य किया जाय। काल की गति तीव्र हो गई है। शताब्दियाँ दशाब्दियों में और दशाब्दियाँ वर्ष महीनों में समा रही हैं।

—उमाकान्त उपाध्याय

●

पुरोहितों के प्रति हीन दृष्टि क्यों ? तथा वेद पारायण-यज्ञ अनुचित क्यों ?

ले०—डा० योगेन्द्र कुमार शास्त्री एम० ए० पी० एच० डी०
(प्रधान, आर्य प्रतिनिधि सभा, जम्मू, काश्मीर)

२८ अप्रेल १९७८ को जो नवम आर्य महा सम्मेलन बंगाल प्रान्तीय प्रतिनिधि सभा का सम्पन्न हुआ उसमें श्री स्वामी सत्यप्रकाश जी का जो अध्यक्षीय भाषण हुआ उसे मैंने भी पढ़ा। उसमें पुरोहित वर्ग के प्रति जो उन्होंने विचार व्यक्त किये हैं वे विचार पूज्य स्वामी जी के अन्तःकरण की अभिव्यक्ति है। इन विचारों से पता चलता है कि स्वामी जी का दृष्टिकोण भी पुरोहित वर्ग के प्रति सम्मानजनक नहीं है।

यह तो ठीक है कि मूर्खों का और दुष्टों का संगठन नहीं होना चाहिये परन्तु पुरोहितों के किसी संगठन के बनने से स्वामी जी क्यों परेशान हुए हैं। यह समझ में नहीं आता। मेरी दृष्टि में तो सम्पूर्ण विश्व के आर्य पुरोहितों और विद्वानों का संगठन होना चाहिए। क्योंकि वर्तमान समय में जितना आर्य समाज का प्रचार पुरोहित वर्ग कर रहा है उतना और कोई वर्ग नहीं कर पा रहा है। पुरोहित अमीर के भी जाता है और गरीब के भी जाता है। संस्कारों के समय वे नर-नारी भी उपस्थित होते हैं जो आर्य समाजी नहीं होते। आर्य समाज के भवनों में ये लोग बुलाने पर भी नहीं आते। उन सबको वैदिक विचार सुनाने का अवसर पुरोहित को मिलता है। जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त तक के संस्कारों में पुरोहित अपने व्यक्तित्व से, योग्यता से, तथा प्रभावशाली कर्मकाण्ड से आर्येतर जनता को भी वैदिक धर्म के प्रति आकर्षित करता है।

पुरोहितवर्ग आर्य समाज की रीढ़ की हड्डी है। यह वर्ग ठोस प्रचार करता है। आर्य समाज के सिद्धान्तों की रक्षा करता है तथा उनका प्रचार करता है। यदि यह वर्ग संगठित होकर समय-समय पर सम्मेलनों में युगानुरूप संस्कारों को प्रभावी बनाने के लिए तथा वैदिक सिद्धान्तों के प्रचार की युगानुरूप योजना बनाने के लिये विचार-विनिमय किया करे तो आर्य समाज के लिये श्रेयस्कर सिद्ध हो सकता है।

पुरोहित के विषय में संस्कार विधि में लिखा है—"धर्मात्मा, शास्त्रोक्त विधि को पूर्णरीति से जानने हारा विद्वान, सद्धर्मी, कुलीन, निर्व्यसनी, सुशील, वेदप्रिय, पूजनीय, सर्वोपकारी, गृहस्थ की पुरोहित संज्ञा है।"

महर्षि दयानन्द सरस्वती का दृष्टिकोण पुरोहितवर्ग के प्रति सम्माननीय है।

आर्य समाज के पुरोहित आर्थिक कठिनाइयों से निश्चिन्त होकर आर्य समाज की सेवा कर सकें तदर्थ उनका वेतन स्तर बहुत अच्छा होना चाहिये उन्हें भरपूर दक्षिणाएँ मिलनी चाहियें। उनके परिवार के सुख दुःख में ऐसे ही सामिल होना चाहिये जैसे वे अपने यजमानों के सुख दुःख में शामिल होते हैं। पुरोहित एक गृहस्थी है अतः उसका रहन-सहन का स्तर अच्छा होना चाहिए। वह आर्थिक दृष्टि से परमुखापेक्षी न रहे। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने गृहस्थ की पुरोहित संज्ञा की है। एक गृहस्थी को अनेक प्रकार की आवश्यकताएँ होती है अतः पुरोहित आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न होना चाहिये। जो आर्यसमाजी यह सोचते हैं कि पुरोहित को त्यागी होना चाहिये; उसे दक्षिणा कम लेनी चाहिये। ऐसे व्यक्ति पुरोहितों का शोषण करते हैं। उन्हें यह पता नहीं है कि महर्षि दयानन्द सरस्वती इस शोषण के पक्ष में नहीं थे। उन्होंने तो संस्कार विधि में लिखा है कि ऋत्विक वरण में यजमान पुरोहित को सोने के कुण्डल, अंगूठी, वस्त्र और एक गाय देवे। देखिये संस्कार विधि के सामान्य प्रकरण में—

ऋत्विग्वरणार्थं कुन्डला ङ्गुलीयक वासांसि।
वरार्थं चासत्रो गाव:।

वेदपारायण यज्ञ का औचित्य अनौचित्य

आध्यात्मिक दृष्टि से आर्यसमाज में यदि यज्ञों की परम्परा समाप्त कर दी जाये तो आर्य समाज में आत्मिक उन्नति का साधन ही न रहेगा। क्योंकि यज्ञ में पाँच महायज्ञों की गणना है। सन्ध्या, योग साधना; स्वाध्याय, ये भी ब्रह्म यज्ञ में गिने जाते हैं। शेष चार देव, पितृ, अतिथि, बलिवैश्य ये सभी यज्ञ नित्यकर्मों में गिने गये हैं। यह ठीक है कि यज्ञ वैज्ञानिक रीति से तथा विधिपूर्वक करने चाहिये। सामग्री भी ऋतु के अनुकूल तथा उद्देश्य के अनुकूल ही होनी चाहिये। परन्तु वेदपरायण यज्ञ को श्री स्वामी सत्यप्रकाश जी के द्वारा पौराणिक ढकोसला मात्र या अनुचित कहना कहाँ तक उचित है। यह विचारणीय विषय है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने संस्कार विधि के सामान्य प्रकरण में 'यज्ञ कुण्ड परिमाण' प्रकरण में लिखा है—"एक लक्ष आहुति करनी हो तो" ऐसा कुण्ड बनावें इत्यादि। प्रश्न उठता है कि यह एक लाख आहुति किसकी देनी है। यह भी निश्चय है कि यज्ञ मन्त्रों से ही होना चाहिये। ऐसी अवस्था में यदि पारायण यज्ञ किये जाते हैं और उस समय आर्य समाज के इस नियम का पालन होता है कि वेद का पढ़ना और सुनना और सुनाना सब आर्यों का परमधर्म है। तब तो पारायण यज्ञों का औचित्य ही दिखाई देता है। इन यज्ञ कर्मों से आर्य समाज श्रद्धा का पात्र बना रहता है। अतः यह पारायण यज्ञ अवश्य होने चाहिये। केवल उपदेश देने से या उपदेश सुनने से आत्म तत्व की प्राप्ति नहीं होती है। क्रियात्मक जीवन से ही वस्तु की उपलब्धि होती है। पारायण यज्ञों से सैकड़ों नर-नारी अपने अन्तःकरण की

शुद्धि करते हैं और वेदों का श्रवण करते हैं, यह क्या कुछ कम महत्व की बात है।

क्या किसी आर्य समाजी यजमान ने महर्षि के इस विधान का पालन किया है?

यह ठीक है कि आर्य समाज में गुरुडम नहीं होना चाहिये परन्तु आर्य समाजियों को गुरु का महत्व तो स्वीकार करना ही चाहिये। उपनिषद् में लिखा है कि—"समित्पाणि गुरुमेवाभि गच्छेत्" अर्थात् जिज्ञासु समिधाएँ हाथ में लेकर गुरु के पास जावे। दीक्षान्त भाषण में 'आचार्य देवोभव' कहा गया है कि अपने गुरु को देवता मानो। तब तो पुरोहित क्यों समाज में रहकर ज्ञान देता है वह गुरु क्यों नहीं? वस्तुतः पुरोहित आर्य समाज के सभी सदस्यों का गुरु होता है। परन्तु देखा यह जाता है कि समाज के अधिकारी पुरोहित को समाज की नौकरी करने वाला एक व्यक्ति मात्र समझते हैं। कहीं कहीं तो समाज के प्रधान और मन्त्री यह भी इच्छा रखते हैं कि पुरोहित हमें अभिवादन करे। जब समाज के अधिकारी ही अपने पुरोहित का सम्मान नहीं करेंगे, तो दूसरे व्यक्ति कैसे करेंगे। समाज में मर्यादाएँ होनी चाहिये। पुरोहित के आसन पर ही अधिकारी बैठ सकें उस पर हर एक को बैठने का अधिकार नहीं होना चाहिए। संस्था के सभी पदों से पुरोहित का पद ऊँचा है अतः उस पद का सम्मान होना चाहिये। जब तक पुरोहितों के प्रति सम्मान की भावना नहीं होगी और पढ़े लिखे पुरोहितों को आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न नहीं बनाया जायगा। तब तक अच्छे पुरोहित समाजों को नहीं मिलेंगे। वैसे तो देश की अधिकांश समाजों में ताले लगे हुए हैं। सप्ताह के बाद एक दो अधिकारी और एक दो देवी यज्ञ करने के लिए आ जाते हैं और बाद में ताला लगाकर चले जाते हैं। वस्तुतः पुरोहित से समाज में जागृति बनी रहती है परन्तु पुरोहित वर्ग के प्रति उपेक्षा का भाव देखकर ही कोई पठित व्यक्ति पुरोहित बनने को तैयार नहीं। न ऐसी अवस्था में कोई अपने बच्चों को पुरोहित बनाना चाहता है। सम्भव है कि भविष्य में आर्य समाज को पुरोहित ही न मिलेंगे तो सम्भवतः ऐसे ही मिलें जिनसे समाजें सेवक का भी काम लेने लगें।

"चार वैदिक प्रश्न और उनके उत्तर"

१—पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः। य० २३-६१ मैं त्वा तुझसे पृथिव्याः पृथिवी का परम्- अन्तम् परं परला अन्त सिरा या भाग कौन सा यह पूछता हूं। मान लीजिए आचार्य अपने शिष्य से पूछ रहे हैं; बताओ इस पृथिवी का परला भाग या अन्तिम भाग कौन सा है? क्योंकि भूमि गोल है। गोल वस्तु का परला भाग कोई नहीं सकता। शिष्य विचारमग्न है क्या उत्तर दे। वह हाथ जोड़कर पूछता है भगवान् मैं नहीं जानता कृपा करके आप ही समझाएँ।

आचार्य उत्तर देते हैं—

इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्याः। य० २३-६२।

वह वेदि-यह पृथिवी का परम् अन्त है। परं का

अर्थ सर्वश्रेष्ठ और अन्त का अर्थ है भाग। तो अर्थ हुआ यह वेदि इस भूमण्डल सर्वश्रेष्ठ स्थान है। व्याकरण के अनुसार वेद और वेदि एक ही परिवार के शब्द हैं। विद धातु से ये दोनों शब्द बने हैं। तो वेदि का अर्थ होता है वह स्थान जहाँ बैठकर सद्ज्ञान प्राप्त किया जाय। जहाँ स्थिर होकर आत्मैश्वर्यों का लाभ हो। विद सत्तायाम्—जहाँ स्थित होकर मानव की अच्छी स्थिति बने वह श्रेष्ठ मानव बन जाय। विद विचारणे—जहां बैठ कर नए नए विचारों का स्फुरण हो। ऐसी श्रेष्ठ यज्ञस्थली ही पृथिवी का सर्वश्रेष्ठ स्थान है।

हमारे घरों में पाकशाला, भोजनशाला, शयन कक्ष, शौचालय, स्नानागार, यान कक्ष, बैठक (ड्राइंग रूम) आदि अनेक कक्ष होते हैं परन्तु पृथिवी का सर्वोत्तम स्थल वेदि बहुत कम घरों में पृथक् रूपेण बनाया जाता है। वेद माता वेद भक्तों का इस ओर ध्यान दिला रही है। जो आर्थिक दृष्टि से समर्थ हैं वे सर्वश्रेष्ठ स्थान जहाँ बैठकर हम आत्मचिन्तन करते हैं, आत्मोन्नति के लिए सोच सकते हैं जहां बैठकर हम श्रेष्ठम कर्म यज्ञ करते हैं उसे अपने-अपने घरों में बनाना न भूलें। वेदि के अतिरिक्त और सभी कक्ष केवल इस भौतिक देह के आराम के लिए हैं आत्मिक उन्नति या आत्मशान्ति प्राप्त करने का स्थान तो यह वेदि ही है।

लाखों रुपया लगाकर हम भवन बनाएं और उस में वेदि कहीं पर भी न हो तो उस भवन को हम पशुशाला ही कहेंगे क्योंकि आहार-निद्रा-मैथुन आदि पशुओं और मनुष्यों के समान ही है। मानव की विशेषता तो धर्मानुष्ठान या यज्ञानुष्ठान में ही है। हमारे घरों में एक प्रकोष्ठ ऐसा अवश्य होना चाहिए जो पूर्ण रूपेण शुद्ध पवित्र हो। इस में वेद तथा वैदिक स्वाध्याय के ग्रन्थ रक्खे हों। यह कक्ष वेद सूक्तियों से सुसज्जित हो। इसमें जूता आदि अपवित्र वस्तु न जाने पावे। यहाँ बैठकर सारे गृह सदस्य मिलकर या अलग अलग यज्ञ करें स्वाध्याय करें आत्म चिन्तन करें। वे सद्गृहस्थ सौभाग्यशाली हैं जिन्होंने अपने घरों में वेदि का निर्माण कराया है।

वेदि शब्द का दूसरा अर्थ है यह मानव देह। निःसन्देह हमारा यह मानव शरीर इस संसार की सर्वश्रेष्ठ रचना है। सर्वोत्तम सम्पदा है, सुसंस्कृत, परिष्कृत, पवित्र जीवन ही इस भूमि का परम अन्त है। सम्पूर्ण रचनाएं रचाने के पश्चात् ही उस परब्रह्मने इस सर्वोत्तम देह की रचना की है। मानव देह के द्वारा ही हम सर्वोत्कृष्ट ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। उत्तमोत्तम ऐश्वर्यों का लाभ कर सकते हैं। इस देहस्थ मस्तिष्क में ही एक से एक नूतन विचारों का परिस्फुरण होता है। इसी देह में मानव—प्रकाण्ड विद्वान्, महाकवि, महान् वैज्ञानिक, योगी, मुनि, ऋषि, महर्षि आदि उत्तमोत्तम पदवियों को पा सकता है अतः हम वेदि के मूल्य को समझें और इसके द्वारा आत्मोत्थान करें।

क्रमशः।

सुव्रतानन्द सरस्वती

उठो! जगमगाओ!

राधेश्याम 'आर्य' एडवोकेट मुसाफिर खाना, सुलतानपुर (उ० प्र०)

मगन सूर्य बनकर नवल प्रात लाओ!
अमर ज्योति बनकर उठो! जगमगाओ!!

घिरी है मही दनवी वृत्तियों से,
भरी मेदनी दानवी व्यक्तियों से,
घनीभूत है तम गगन में जगत के,
मनुजता चरण आज मानव न करते,

बढ़ो तुम धरणि का अँधेरा हटाओ!
अमर ज्योति बनकर उठो! जगमगाओ!!

कहीं घूसखोरी, अनाचार बढ़ता,
कहीं पर मनुज दल है भूखों तड़पता,
कहीं मर रहे हैं गरीबी से बच्चे,
कहीं चट रहे कर मनुज मांस कच्चे,

तड़पते हुओं को उठो! तुम बचाओ!
अमर ज्योति बनकर उठो! जगमगाओ!!

मुखर हो उठी है अनैतिक कथाएं,
बढ़ी जा रही है मनुज की व्यथाएं,
दिशाओं में उठते रहे हैं करुण स्वर,
बढ़ा है मनुज में कटुक स्वार्थ का स्वर,

चलो इन कुतत्वों को सत्वर भगाओ!
अमर ज्योति बनकर उठो! जगमगाओ!!

गिरा जा रहा मूल्य मनुजत्व अविकल,
भटकता रहा चित्त मानव का चंचल,
घिरा अति अंधेरा धरा पर घना है,
मनुज मन भरत भूमि पर अनमना है,

दया प्रेम का, शान्ति दीपक जलाओ!
अमर ज्योति बनकर उठो! जगमगाओ!!

आर्यसमाज नेरोबी की स्वर्ण-जयन्ती तथा आर्य-प्रतिनिधि-सभा ईस्ट-अफ्रिका का रजत-जयन्ती-समारोह (२१ सितम्बर १९७८) पर आयोजित

अन्तर्राष्ट्रीय आर्य-महा-सम्मेलन

में

विद्यामार्तण्ड डॉ० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

(भूतपूर्व संसद्-सदस्य तथा कुलपति गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय)

का

अध्यक्षीय-भाषण

आर्य बन्धुओ तथा बहिनो !

अर्यसमाज नेरोबी की स्वर्ण-जयन्ती तथा आर्य-प्रतिनिधि-सभा ईस्ट अफ्रीका की रजत-जयन्ती के इस शुभ अवसर पर एकत्रित आप भाई-बहनों को मैं उन आर्य-बन्धुओं का नमस्कार भेंट कर रहा हूँ जो कारणवश शरीर से हमारे इस समारोह में भाग लेने के लिये उपस्थित नहीं हो सके, परन्तु जिनकी आत्मा हमारे साथ है।

नेरोबी के भाई बहिनो ! मैं १९२४ में आचार्य रामदेव जी के साथ गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के लिये धन-संग्राहार्थ इस देश में आया था। तब से आज आधी शताब्दी का समय बीत गया। उस समय आर्यसमाज नेरोबी अपनी शैशवावस्था मे था। उस समय के कुछ आर्य बन्धुओं के नाम मुझे आजतक स्मरण हैं। श्री बद्रीनाथ जी और श्री मथुरादास जी उस समय की आर्यसमाज के स्तम्भ थे। सेठ नानजी कालिदास ने अपने जीवन-काल में अफ्रिका में आर्यसमाज के पौधे को जी-जान से सींचा। आज इसका जो भव्य रूप दीख रहा है उसमें आप सब लोगों का मुख्य हाथ है—इसलिये सभी धन्यवाद के पात्र है। इस अवसर पर मैं विशेषतौर पर श्री सत्यदेव जी भारद्वाज विद्यालंकार को बधाई देना चाहता हूँ जिन्होंने इस देश में आकर गुरुकुल का नाम उज्जवल किया और स्नातक होते हुए जनसामान्य के इस भ्रम को तोड़ दिया कि गुरुकुल के स्नातक दुनियां की दृष्टि से असफल होते हैं, और अगर सफल होते हैं तो आर्यसमाज को भूल जाते हैं।

बन्धुओ ! आपकी समाज अपने जीवन के ७५ वर्ष पूरे करने जा रही है। मैं जीवन की इस पटड़ी पर आपकी समाज से ५-६ वर्ष आगे दौड़ रहा हूँ—शायद यह देखकर आपने मुझे आयु की दृष्टि से इस सम्माननीय पद पर आसीन किया है यद्यपि मुझ से अधिक योग्य व्यक्ति आपके पास मौजूद हैं। मैंने अपने जीवन-काल में वैदिक-संस्कृति तथा वैदिक-विचारधारा के स्पष्टीकरण में जो थोड़ा-बहुत कार्य किया है वह भी आपके मेरे प्रति प्रेम का कारण हो

सकता है। मैं आपके इस प्रेम के लिये आप सब का अत्यन्त आभारी हूँ। मैं आपको विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि वैदिक-विचारधारा का अध्ययन तथा उसका स्पष्टीकरण करना मेरे जीवन का मुख्य लक्ष्य रहा है और जबतक यह जीवन रहेगा तबतक यह लक्ष्य बना रहेगा।

आइये, हम देखें कि मानव-समाज के जीवन में जो चारों तरफ असन्तोष तथा अशान्ति फैल रही में—इस समस्या का हल करने में ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में वैदिक-विचारधारा का क्या स्थान है।

(१) विश्व की समस्या

सृष्टि के प्रारम्भ से मानव-समाज दो परस्पर-विरोधी मनोभावों में बंटा रहा है। कुछ को हम प्रेम करते हैं, कुछ के साथ हम घृणा करते हैं। जिनके साथ हमारे स्वार्थों का टकराव नहीं होता, जिनके साथ हमारी विचारधारा मेल खाती है। उनके साथ हमारा मैत्री का सम्बन्ध बना रहता है। जिनकी साथ हमारे स्वार्थ टकरा जाते हैं, हमारी विचारधारा मेल नहीं खाती। उनके साथ हम लड़ते झगड़ते हैं। व्यक्ति, समूह, परिवार, धर्म देश—सभी क्षेत्रों में ये ही दो विचार काम करते हैं। छोटे-छोटे क्षेत्रों में लड़ाई-झगड़े और बड़े-बड़े क्षेत्रों में युद्ध इसी मनोवृत्ति के परिणाम हैं।

परन्तु इस में भी सन्देह नहीं कि अन्ततोगत्वा हम असन्तोष, अशान्ति, लड़ाई-झगड़ा, युद्ध नहीं चाहते हमारा ध्येय सन्तोष तथा शान्ति है। जो लोग लड़ते-झगड़ते हैं वह भी इसलिये कि इन लड़ाई झगड़े या युद्ध में से ऐसा रास्ता निकल आयं जिससे झगड़नेवालों में किसी प्रकार का झगड़ा न रहे, द्वेष भाव से प्रेम भाव उत्पन्न हो जाये। झगड़ने तथा युद्ध करने वालों का अन्तिम लक्ष्य युद्ध नहीं शान्ति है अनेकता नहीं एकता है, द्वेष नहीं प्रेम है। परन्तु प्रश्नों का प्रश्न यह है कि जिस लक्ष्यको पाने के लिये मानव-समाज सदा से व्याकुल रहा है, उस समस्या को वह हल कर सका है या नहीं। अगर नहीं, तो उसका क्या कारण है ?

ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाय; तो इस समस्या को हल करने के लिये मानव ने अबतक चार रास्ते अपनाये हैं :

(क पहला रास्ता जोर-जबंदस्ती का, युद्ध से संसार को एक बना देने का है,

(ख दूसरा रास्ता राज्य शक्ति पर अधिकार प्राप्त कर आर्थिक या सामाजिक विषमता को मिटाकर एकता स्थापित करने का है,

(ग) तीसरा रास्ता अर्ध-धार्मिक है जिसमें संसार में जबर्दस्ती एक धर्म स्थापित कर के मानव-समाज में एकता को स्थापित किया जाय

(घ) चौथा रास्ता प्रेम द्वारा मानव के मन को जीत कर विश्व में वैदिक संस्कृति की एकता स्थापित करना है।

आइये, इतिहास को पृष्ठ भूमि में इन चारों पर विचार कर लें कि किस मार्ग पर चलने से हमें कहां तक सफलता मिली या मिल सकती है।

(२) युद्ध द्वारा विश्व में एकता स्थापित करना

लड़ाई झगड़ा मिटाने तथा शान्ति स्थापित करने की सब से पहली शर्त है 'एकता' स्थापित करना। इस एकता को लाने के लिये दुनिया के शक्तिशाली व्यक्तियों ने सैन्य-शक्ति का सहारा लेकर 'विषमता' को मिटने का प्रयत्न किया। जैसे रास्ते के कांटे मिट जायें तो रास्ता साफ हो जाता है, उन कांटों को प्रेमालप से नहीं हटाया जा सकता, उन्हें एकदम भस्म कर दिया जाता है, इसी प्रकार संसार में एकता स्थापित करने में देश-देश की भिन्नता देश-देश की स्वार्थ बाधक हो जाता है। सारे संसार में जब एक ही देश होगा तो कौन किस से लड़ेगा, कौन किस से

करदेगा। इस तथ्य को लेकर, सदियां गुजर गईं, सिकन्दर अपनी सेनाओं को लेकर विश्व विजय के लिये निकला था, इसी भावना को लेकर नैपोलियम दुनियां को जितने निकला था, यही भावना हिटलर के मन में थी। परिणाम क्या हुआ? युद्ध से युद्ध बढ़ता गया, मानव एक न हो सका।

दूर की बात को छोड़ें, अपने जीवन काल में हम क्या देखते हैं? हमारे देखते-देखते १९१४ तथा १९३८ में दो विश्व-युद्ध हो लिये। १९१४ के युद्ध के बाद युरोप के राजनीतिज्ञों को समझ में आ रहा था कि हिंसा तथा युद्ध से मानव-समाज में एकता स्थापित नहीं हो सकती। संसार के बड़ेरों ने मिलकर लीग आफ नेशन्स' की स्थापना की और यह तय किया कि आगे से कोई युद्ध नहीं करेगा, परन्तु इतिहास के विद्यार्थी जनते हैं कि प्रथम विश्व-युद्ध के प्रारम्भ के (१९१९ तथा १९४५ के बीच। बीच के समय में सब देश युद्ध कि तैयारी में ही लगे रहे और १९३८ में हिटलर ने युद्ध द्वारा दुनियां के सब देशों को एक करने का धावा बोल दिया। इस युद्ध के बाद भी दुनियां के सयाने मिल कर बैठे, उन्हें फिर दोबारा समझ पड़ गया कि हिंसा तथा युद्ध के द्वारा विश्व में एकता स्थापित नहीं हो सकती। उन्होंने 'लीग अफ नेशन्स' को असफल पाया और उसकी जगह 'युनाइटेड नेशन्स' ऑर्गेनिजेशन' की स्थापना की जिसमें सब मिल बैठकर सोचें कि संसार में अमिट एकता कैसे स्थापित की जा सकती है।

परन्तु इसका क्या फल निकला? पाकिस्तान ने भारत पर तीन बार हमला किया। पहला १९४७ में यू० एन० ओ० के बनने के ठीक बाद, दूसरा १९६५ में, तीसरा १९७१ में। चायना ने १९६२ में भारत पर अकारण आक्रमण कर दिया। अन्य देशों में भी लगातार युद्ध होते रहे हैं। ईजिप्ट और इजराइल, उत्तरी तथा दक्षिणी वीयतनाम कम्बोडिया और लाओस—इन सब मे यू० एन० ओ० के बावजूद युद्ध जारी रहे और जारी हैं। यू० एन० ओ० के बावजूद एटम बॉम्ब का ढेर बढ़ता जा रहा है। हम कान्फ्रेंसों में बैठ कर शान्ति तथा एकता की चर्चा करते हैं, घर जाकर लड़ाई की तैयारी करते हैं। यू० एन० ओ० में जो देश शारीरिक-दृष्टि से जितने पास होते है मानसिक दृष्टि से वे एक-दूसरे से उतने ही दूर होते हैं जितने उनके देश एक-दूसरे से दूर।

शान्ति स्थापित करने की अनन्त कान्फ्रेंसों के होने पर भी आज के मानव-समाज के मानस-पटल पर भय का आतंक छाया हुआ है। कोई नहीं कह सकता कब एक धड़का हो जायेगा और हमारी आंखों के सामने हिरोशीमा और नागासाकी का दृश्य फिर से नाचने लगेगा।

(३) कम्यूनिज्म द्वारा आर्थिक तथा सामाजिक विषमता दूर करके विश्व में एकता स्थापित करना

संसार में विषमता दूर कर एकता स्थापित करने का दूसरा रास्ता है—सामाजिक तथा आर्थिक ऊंच-नीच को मिटा देना। यह रास्ता कार्ल मार्क्स ने ढूंढा। उसने कहा कि जिस प्रकार की सामाजिक व्यवस्था चल रही है उसमें अमीर ज्यादा अमीर होते जा रहे हैं, गरीब ज्यादा गरीब होते जा रहे हैं। मनुष्य मनुष्य में दूरी बढ़ती जा रही है। दुनियां के राज्य इस विषमता को कायम रखने में सहयोग दे रहे हैं क्योंकि उनका अस्तित्व भी इसी आधार पर टिका हुआ है। मानव-मानव को एक करने का एक ही तरीका है—धनी निर्धन का वर्ग-संघर्ष हो बड़े बड़े पैमानों पर देशों का युद्ध होने के स्थान में गली कूचे में, घर-घर में लड़ाई हो। सामाजिक तथा आर्थिक विषमता को जबर्दस्ती मिटा दिया जाय और जन-समुदाय का राज्य हो जाय। इस बात को लेकर भी भिन्न-भिन्न देशों में

संगठन बने। रशिया तथा चायना में तो आज ही पलट गये। अन्य देशों में भी वह लड़ाई जो फौजों, तोपों, बन्दूकों से लड़ी जाती थी, काम रोको, घेराओ—कभी-कभी फैक्टरियों को आगजनी से लड़ी जा रही है। पहले देश देश का शत्रु था, आज अमीर—गरीब की शत्रुता उभर आयी है। सिकन्दर, नैपोलियन, हिटलर जिस हिंसा पर उतर आये थे वही हिंसा जन-जन में फैल गई है। रशिया तथा चायना जिस स्वर्ग की कल्पना कर रहे थे वह खंड-खंड हो गई है, और विश्व में एकता का साम्राज्य स्थापित करने वाले ये दोनों देश भी एक-दूसरे के खून के प्यासे हो गये हैं। कारण क्या है? कारण यही है कि इन सब को हिंसा के अतिरिक्त कोई दूसरा रास्ता ही नहीं दिखता जिससे विश्व में एकता स्थापित हो सके। एकता सभी चाहते हैं, परन्तु इनके हाथ में तोपें और तलवारें ही हैं।

बर्टरन्ड रसल तो विश्व में अशान्ति देखकर, निराश होकर यहां तक कहने लगे थे कि अगर जोर-जबर्दस्ती, सेना और तोप बन्दूक के जोर पर ही विश्व में एकता स्थापित हो सकती है, तो इंग्लैंड तथा अमरीका को मिलकर ऐलान कर देना चाहिये कि हम अपने आप एक ऐसे सैन्य राज की स्थापना करने लगे हैं जिसके भीतर हर देश को हर हालत में सम्मिलित होना होगा, जो नहीं होगा उसे सर्वथा मिटा दिया जायगा। अगर यह धमकी कामयाब हो जाय तो ठीक, नहीं तो उस देश को लल्लोपत्तो करने के स्थान में उस पर जबर्दस्ती कब्जा कर लिया जाय। बर्टरन्ड रसल का कहना था कि यह काम इंग्लैंड तथा अमरीका को अपने हाथ में लेना चाहिये, अगर वे ऐसा न करें, तो भले ही रशिया इस काम को अपने हाथ में ले—परन्तु संसार में अशान्ति को दूर सिर्फ एकता स्थापित करने से ही किया जा सकता है—दुनियां एक राज्य में रहे—सिविल हो, मिलिटरी हो—अंग्रेजों का हो, एशिया का हो—किसी का हो, परंतु एक का हो।

(४) धर्म-धार्मिक संस्थाओं द्वारा विश्व में एकता स्थापित करना

संसार में एकता स्थापित करने का तीसरा रास्ता ईसाइयत तथा इस्लाम ने अपनाया। ईसा ने अपने चेलों को विश्व-भ्रातृत्व का सन्देश लेकर संसार के कोने कोने में भेज दिया। ईसाइयों को बहुत हद तक सफलता मिली, मानव मानव का भेद मिटा। परन्तु ज्यों ज्यों ईसाइयत का प्रचार बढ़ा, चर्च की स्थापना हुई, त्यों त्यों ईसाइयत पीछे हटती गई, चर्च आगे आता गया। चर्च के संगठन में ईसा की शिक्षाओं के स्थान पर चर्च के अध्यक्ष पोप का हुक्म चलने लगा। चर्च धर्म के प्रचार का केन्द्र होने के स्थान में भौतिक-शक्ति का केन्द्र हो गया। पोप का भी धार्मिकता के नाम पर एक दुनियावी राज्य हो गया। इसके विरुद्ध आवाज उठी। लूथर ने विद्रोह का झंडा खड़ा किया। रोमन कैथोलिक और प्रोटेस्टेन्टों का कुरुक्षेत्र छिड़ा गया। दोनों आपस में लड़ मरे। इनकी आपसी लड़ाई ने इतना उग्र रूप धारण किया कि पोप ने जिलेटीन की स्थापना की। जो रोमन-कैथोलिक-धर्म को नहीं मानता था वह सूली पर लटका दिया जाता था। लेटीमर नाम के प्रोटेस्टेन्ट पादरी को रुई से लपेट कर आग की लपटों की भेंट कर दिया गया क्योंकि पोप के हाथ में राज्य सत्ता कैसे अधिकार आ गये थे। राजाओं ने भी पोप की शरण ली थी, इसलिये ईसाइयत के विरुद्ध जिनके विचार पाये जाते थे, उन्हें सहन नहीं किया जाता था। ब्रूनो कहता था कि सूर्य पृथ्वी के गिर्द नहीं घूमता, पृथ्वी सूर्य के गिर्द घूमती है। उसे खूंटों से बांध कर जिन्दा जला दिया गया। गैलिलियो कहता था कि पृथ्वी चपटी नहीं है, गोल है। उससे पूछा गया कि अगर पृथ्वी

गोल है, के नीचे के लोगों के सिर नीचे होने चाहियें, पैर ऊपर। गैलिलियो को जेल में डाल दिया गया। जो ईसाइयत संसार में भ्रातृभाव का सन्देश लेकर उठी थी उसका अन्त हिंसा तथा असहनशीलता में जा पहुँचा।

इस्लाम का नारा भी भाई-भाई का था। सब खुदा के बन्दे हैं। परन्तु इस्लाम ने भी तलवार उठा ली। जहां ईसाइयत ने क्रूसेड से, जोर-जबर्दस्ती एकता लाने की कोशिश की, वहां इस्लाम ने भी जिहाद बोल कर मानव समाज में एकता लाने का प्रयत्न किया। आज ईसाई देशों से लड़ रहे हैं, मुसलमान देश मुस्लिम देशों से लड रहे हैं। ईसाईयत तथा इस्लाम ने ठीक रास्ता पकड़ा था, परन्तु रास्ते पर चलते चलते भटक गये। भ्रातृभाव का नारा लगा कर ये चले थे, परन्तु रास्ते में ही भ्रातृभाव का नारा भूल कर लौकिक-साम्राज्य स्थापित करने लगे—संसार को एक बनाने का स्वप्न इनका भी स्वप्न होकर ही रह गया क्रूसेड और जिहदा में ये अपना लक्ष्य छोड़ बैठे।

(५) वैदिक संस्कृति तथा धर्म द्वारा विश्व-बन्धुत्व स्थापित करना

जैसा हमने कहा, संसार में एकता स्थापित करने से ही मानव समाज की मूल-समस्या—शान्ति तथा सन्तोष-हल हो सकती है, परन्तु इस दिशा में अबतक जितने प्रयास हुए सब विफल हुए हैं संसार में सिर्फ एक ही देश है जिसने विश्व-बन्धुत्व की दिशा में बाहु-बल के स्थान में आत्म-बल का प्रयोग किया, सैन्य-बल के स्थान में धर्म-बल का प्रयोग किया, दूसरों का खून बहाने के स्थान में अपना बलिदान देने का मार्ग अपनाया। व देश है—भारतवर्ष। भारत ही वह देश है जिसने अपने सैनिक अन्य देशों पर आक्रान्ता के रूप में भेजने के स्थान में विश्व की आत्मा को जीतने के लिये अपने धर्म गुरु भेजे। दो हजार वर्ष पहले भारत के सम्राट अशोक ने विश्व को एकता के सूत्र में पिरोने के लिये शान्ति का सन्देश घर-घर पहुंचाने के उद्देश्य से जिस सन्देश को अपने शान्ति दूतों के हाथ भेजा था उसमें कहा गया था "अब तक मनुष्य मनुष्य का शत्रु रहा है। उसने मानव समाज को भिन्न-भिन्न टुकड़ों में बांट दिया है। ऐसी अवस्था हो गई है कि एक धरातल पर खड़े होकर हम एक स्वर में एक बात नहीं बोल सकते। इस मार्ग पर चल कर मानव को घृणा, ईर्ष्या, द्वेष, कलह युद्ध के सिवाय कुछ हाथ नहीं आया। समय आ गया है जब हमें जाति भेद देश-भेद को त्याग कर एक सूत्र में बंध जाना है। हमें स्मरण रखना होगा कि संपूर्ण विश्व हमारा देश है और संपूर्ण मानव-समाज हमारा है।"

ईस्वी सन् से तीसरी शताब्दी पहले अशोक ने मानव समाज को अहिंसा का यह सन्देश सुनाया था। इस सन्देश में स्वार्थ तथा अहंकार नहीं, निःस्वार्थ तथा विनय निहित था। जिस प्रकार का महासम्मेलन आप यहां कर रहे हैं कुछ इसी प्रकार की महासभा का आयोजन अशोक ने पुष्पलिपुत तिष्य की अध्यक्षता में किया था जिसमें देश विदेश से विद्वान एकत्रित हुए थे। इस महासभा में विचार विनिमय हुआ। यह सोचा गया कि संसार को शान्ति-धाम बनाने के लिये क्या उपाय किये जाने चाहियें। इस महासभा का निर्णय था कि मनुष्य यह भूल गये हैं कि वे सब एक ही स्रष्टा की सन्तान हैं भाई भाई हैं। इस सन्देश को लेकर अशोक अपने पुत्र महेन्द्र तथ पुत्री संघमित्रा को श्रीलंका भेजा। इसके बाद अहिंसा, सत्य अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह का सन्देश लेकर परिव्राजकों की टोलियों पर-टोलियां संसार के कोने-कोने में घूमने लगीं। ये लोग आसाम, बर्मा बाली, कम्बोडिया, जावा, सुमात्रा, चीन, जापान, तिब्बत पूर्वी एशिया पश्चिमी एशिया, पूर्वी तुर्किस्तान, अफगानिस्तान—सब जगह पहुंचे। इनका

सन्देश तलवार का नहीं आत्मा का सन्देश था, भाईचारे का सन्देश था।

ह्वेन्त्सांग एक प्रसिद्ध चीनी यात्री हुआ है। वह ६३० ईस्वी में राजा हर्ष के समय भारत आया था। बारह वर्ष भारत में रह कर उसने यहाँ के बहुमूल्य ग्रन्थों का संग्रह किया था जिन्हें वह अपने देश ले जा रहा था। चीन लौटते समय जब वह बंगाल की खाड़ी के समुद्र से गुजर रहा था तब उसके साथ जहाज में दो बौद्ध भिक्षु थे ज्ञानगुप्त तथा त्यागराज। इस यात्रा में एक दिन भयंकर तूफान उमड़ पड़ा। जहाज के कप्तान ने आदेश दिया कि यात्रियों की जान बचाने के लिए जहाज के बोझ को हल्का करना होगा। जिस-जिस के पास जरूरत से से ज्यदा बोझा हो वे उसे समुद्र में फेंक दें। ह्वेन्त्सांग के पास सैकड़ों पुस्तकें थीं जिन्हें वह अपने देश ले जा रहा था। वह उन सब पुस्तकों को समुद्र के गर्भ में फेंकने ही वाला था कि ये दोनों भिक्षु बीच में पड़ गये। उन्होंने ह्वेन्त्सांग को कहा कि इन पुस्तकों को मत फेंको। इसमें जो ज्ञान भरा पड़ा है वह हजारों आत्माओं को जीवन का सन्देश दे सकता है। इसके बजाय कि इन पुस्तकों को समुद्र में फेंक कर जहाज का बोझा हल्का किया जाय, बेहतर होगा कि वे दोनों अपने को समुद्र के हवा लेकर दें। ह्वेन्सांग इस बात को नकारने ही वाला था कि वे दोनों छलांग मार कर समुद्र की लहरों में विलीन हो गये। यह दृश्य देख कर ह्वेन्त्सांग विचारों में डूब गया। उसने उस भूमि को नमस्कार किया जिसने ऐसे नर रत्नों को उत्पन्न किया था जो विश्व में शान्ति का सन्देश गुंजा देने के लिये जान पर भी खेल गये थे।

बुद्ध का सन्देश भारत के सन्त-महात्माओं का सन्देश था, ऋषि-मुनियों का सन्देश था, वह सन्देश जिसे मुनि पतजलि ने योग-दर्शन में 'अहिंसा-सत्य अस्तेय-ब्रह्मचर्य-अपरिग्रह' का नाम दिया था। यह वेदों का सन्देश था जो सदियों से भारत में लुप्त हो चुका था, जिसे १९वीं शताब्दी में ऋषि दयानन्द ने फिर से पुनरुज्जीवित किया था। आर्यसमाज का उद्देश्य उसी सन्देश को विश्व के कोने कोने में पहुंचाना है।

मनु ने लिखा था:

एतद् देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः

स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवा.।

भारत को सीख चरित्र का निर्माण करना था भारत का सन्देश ऐसे युवकों का निर्माण करना था जो संसार के बड़े से बड़े प्रलोभनो के सामने भी न डिगें — चरित्र शिक्षेरन्' का यही अर्थ है। जब चरित्रवाले व्यक्ति देश में होंगे —ऐसे व्यक्ति जो यम-नियम की साधना में से गुजरे हों—वे सरकारी नौकरी करें व्यापार करें शासन करें, ऐसे व्यक्ति जिन के चरित्र पर कोई आंच नहीं आ सकती, तब किसी व्यक्ति, समाज, धर्म, या देश की कोई समस्या बनी नहीं रह सकती। आज हम अपने-अपने देशों की आर्थिक तथा सामाजिक उन्नति की हो बड़ी बड़ी बातें हांकते है, परन्तु हर समाज तथा हर देश के नवयुवक जो भावी पीढ़ी का निर्माण करने वाले हैं स्पष्ट शब्दों में चरित्र हीन होते जा रहे है। वेदों का आदेश था

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

वैदिक विचार धारा के अनुसार किसी भ समाज या देश का सब से पहला काम देश की जनता को 'आर्य' बनाना है—आर्य अर्थात् शुद्ध चरित्र का व्यक्ति। आज हमारे पास सब कुछ है. धन है सम्पति है, मकान हैं मोटरें है, हवाई जहाज है. परन्तु हम सब अनार्य हैं स्वार्थ में इतने गड़े हैं कि सब कुछ होते हुए भी भाई भाई का नहीं देख सकता देश देश को नहीं देख सकता। सब कुछ पाकर हमने चरित्र का खो दिया है। यही कारण है कि वह प्रेम भावना कहीं नहीं जो मानव मात्र में एक-सी आत्मा को

देख सके। संसार में वैदिक-संस्कृति ही एक संस्कृति थी जिसने मुक्त स्वर से यजुर्वेद ११-५ के शब्दों में उद्घोष किया था—

श्रृण्वन्तु सर्वे अमृतस्य पुत्राः—ऐ दुनिया के लोगो ! तुम सब अजर अमर भगवान की सन्तान हो भाई-भाई हो, भाई-भाई की तरह ही एक दूसरे के साथ व्यवहार करो।

ऋग्वेद (१०,१९२, २) में कहा है—

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्
देवाः भाग यथा पूर्वे संजानाना उपासते।

सम्पूर्ण मानव समाज कदम-से कदम मिलाकर चले, सब मिलकर विचार-विमर्श करें, एक हो जायें। बुजुर्गों कहना है कि मनुष्य से देवत्व प्राप्त करने का यही रास्ता कहा है। अथर्व वेद (३,३,६ में कहा है—

समानी प्रपा सह वो अन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवा-भितः।

तुम सब का खाना-पीना साथ-साथ हो तुम सब इस प्रकार रहो मानो भगवान् ने तुम्हें एक साथ जोड़ दिया है। जैसे रथ के पहिये में अर एक नाभि-स्थल में जुड़े होते हैं इसी प्रकार तुम्हारे समाज को रचना हो। यजुर्वेद (४०,६) में कहा है—

यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानुपश्यति
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विचिकित्सति।

जो सब प्राणियों को अपने समान तथा और अपने को सब प्राणियों के समान देखता है उसका मन शान्त हो जाता है, उसे कोई संशय जीवन में डांवाडोल नहीं करता। अथर्ववेद (१९, ५१, १ में बड़ा अद्भुत वर्णन मिलता है—

अयुतोऽहम् अयुतो म आत्मा अयुतं मे चक्षु अयुत मे श्रोत्रम् अयुतो मे प्राणः अयुतो व्यानः अयुतोऽहम् सर्वः

मैं एक नहीं हूँ सहस्त्रों हूँ, लाखों-करोड़ों व्यक्तियों में मैं अपने को ही देखता हूँ, ये विश्व की लाखों-करोड़ों आंखें, कान, जीवन मानो मेरा ही जीवन है, मैं मानव समाज हूं, मानव-समाज मैं हूं। अथर्ववेद (१९, १५, ६) में इसी भाव को बिना अलंकार की लाग लपेट के स्पष्ट शब्दों में कहा गया है—

'विश्वा आशा मम मित्रं भवन्तु'— मैं जिस दिशा में देखूं सब में मुझे मित्र-भाव ही दिखाई दे, पूर्व में, पश्चिम में, उत्तर में, दक्षिण में सब मित्र-ही-मित्र हों।

अथर्ववेद (३-३०) में एक सूक्त है जिसका नाम हो 'सांमनस्य, सूक्त है 'सांमनस्य' का अर्थ है—एक मन हो जाना, समाज में समता उत्पन्न कर देना। यह सारा का सारा सूक्त मानवमात्र में प्रेम-भाव का स्रोत बहाने के लिये लिखा गया है। यहां ऐसे मानव-समाज की कल्पना की गई है जिसमें भगवान् का आदेश है कि समाज के हर व्यक्ति का हृदय समाज के हृदय के साथ मन समाज के मन के साथ, द्वेष-भाव को छोड़कर एक हो जाय— सहृदयं सांमनस्यं अविद्वेषं कृणोमि वः। इतना ही नहीं, यह भी स्पष्ट शब्दों में आदेश दिया गया है कि भाई भाई भाई बहन, मनुष्य मनुष्य का जीवन ऐसा हो वे एक दूसरे से प्रेम में ऐसे बधे जैसे गाय अपने बछड़े से प्यार करती है

'मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन् मा स्वासारमुत स्वसा—
अन्योऽन्यम् अभिहर्यत वत्सं जातम् इव अघ्न्या।

अथर्ववेद (१२, १, ४५) में एक आदर्श मानव-समाज का वर्णन करते हुए कहा है :

जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसम् नाना धर्माणं पृथिवी यथौकसम्
सहस्त्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेव धेनुः अनपस्फुरन्ती।

जैसे एक गृहस्थी में भिन्न-भिन्न स्त्री पुरुष भिन्न-भिन्न विचारों को रखते और भिन्न-भिन्न भाषाओं को बोलते हुए एक जुट होकर रहते हैं - यथौकसम्'— इसी प्रकार संम्पूर्ण मानव-समाज को भिन्न-भिन्न विचारों तथा भिन्न-

भिन्न भाषाओं के होते हुए भी एकता के सूत्र में बंधे रहना चाहिये। ऐसा होगा तो जैसे गौ अचल खड़ी रह कर दूध की सहस्रों धारायें दे डालती है, वैसे ही पृथ्वी माता धन-धान्य को सहस्रों रूपों में देकर मानव का कल्याण करेगी। (अथर्ववेद १२, १, ६०) में कहा है—भुजिष्यं पात्रं निहितं गुहा यत् आविर्भोगे अभवत् मातृमद्भ्यः—पृथ्वी के गर्भ में जितनी सम्पत्ति छिपी पड़ी है वह उस प्रत्येक प्राणी के लिये है जिसने माता के पेट से जन्म लिया है—'मातृमद्भ्य'।

वेदों का यह एक नवीन तथा अद्भुत विचार है कि माता की हर सन्तान का यह जन्म-सिद्ध अधिकार है कि भूमि माता ने जो-कुछ उत्पन्न किया है वह उसे भरपूर मिले।

अथर्ववेद (१२, १, १) में उन आधारभूत सिद्धांतों का उल्लेख है जो मानव-मात्र को एक सूत्र में बांधे रख सकते हैं। वहां लिखा है—

'सत्यम् ऋतम् दीक्षा तपः ब्रह्म यज्ञः पृथ्वीं धारयन्ती' विश्व में शान्ति रखने के ये छः सूत्र हैं—सचाई से काम लेना, ईश्वरीय अखंड नियम का पालन करना समाज सेवा का व्रत लेना, विलासिता में न पड़कर तपस्यामय जीवन बिताना विश्व का नियन्त्रण करने वाली दैवीय-शक्ति में विश्वास तथा दूसरों की भलाई में अपने स्वार्थ का उत्सर्ग। इसका यह अर्थ है कि झूठा, बेईमानी, ईश्वरी-नियमों का उल्लंघन, जन-सेवा, विलासी-जीवन, दैवीय-शक्ति में अविश्वास और स्वार्थ समाज में अशान्ति तथा उपद्रव के कारण हैं। आज संसार में उथल पुथल क्यों मची हुई है? क्या कारण है कि हम शान्ति-शान्ति चिल्लाते हैं और अशान्ति हमारे हाथ आती है? इसका कारण यही है कि हम सचाई की तो दुहाई देते हैं किन्तु झूठ हमारी रग रग में बसा हुआ है, हम दूसरों को समाज सेवा का उपदेश देते हैं किन्तु जहां हमारा सवाल आता है वहां अपनी पेट पूजा में लग जाते हैं, दूसरों से तपस्विता तथा त्याग के जीवन की आशा करते हैं किन्तु स्वयं विलासिता का जीवन बिताते हैं, हम ईश्वर में विश्वास की बात करते हैं, किन्तु हमारा क्रियात्मक जीवन नास्तिकता का नमूना है।

युनेस्को के विधान की भूमिका में कहा गया है: "क्योंकि युद्धों का श्रीगणेश मनुष्यों के मन में होता है इसलिये विश्व शान्ति की नींव भी मानव मन में गाड़ कर रख देने से संसार में शान्ति हो सकती है।" बिल्कुल ठीक युनेस्को के विधान निर्माताओं ने बीमारी को ठीक से पहचाना है। इसमें सन्देह नहीं कि युद्धों का सूत्रपात मानव मन में होता है, निदान ठीक है परन्तु उसका उपचार कहाँ हुआ? राष्ट्र-संघ में सैकड़ों देशों के जो प्रतिनिधि आकर बैठते हैं, वे देखने को तो एक दूसरे के निकट बैठे होते हैं, परन्तु उनके मन एक दूसरे से इतने ही दूर होते हैं जितने उनके देश एक दूसरे से दूर हैं। ऐसी अवस्था में वे जबान से शान्ति की बात कहें तथा मन से अशांति का काम करें, तो आश्चर्य ही क्या है?

वेदों को जो जानते हैं उन्हें मालूम है कि प्रतिदिन के यज्ञ में उन मंत्रों का पाठ किया जाता है जिनमें कम से कम २५ बार 'शान्ति'—शब्द को दोहराया गया है। एक मन्त्र तो ऐसा है जिसकी टेक ही शान्ति है। इसमें मानव-समाज की ही शान्ति की प्रार्थना नहीं की गई बल्कि जड़ जंगम सब जगह शान्ति-ही-शान्ति की कामना की गई है। वह मन्त्र है—

ओं द्यौः शान्तिः अन्तरिक्षं शान्तिः पृथ्वी शान्तिः आपः शान्तिः औषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिः विश्वेदेवाः शान्तिः ब्रह्म शान्तिः सर्वं शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि। ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

मानव-समाज के लिये अन्तरिक्ष में शान्ति हो, पृथ्वी में शान्ति हो, जलों में शान्ति हो, वनों की औषधियां

तथा वनस्पतियां मानव को शान्ति प्रदान करें, हर प्राणी के अंग प्रत्यंग में शान्ति हो, परमात्मा हमें ऐसे मार्ग पर चलाये कि सब जगह शान्ति-ही-शान्ति बरसे। सदियां बीत गईं जब उपनिषदों के ऋषियों ने हिमालय की चोटियों से मानव-समाज-कल्याण के लिये घोषणा की थी—'मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति'—भेद-भाव मानव के लिये मृत्यु का मार्ग है यजुर्वेद (४०-७) मे लिखा है:

यस्मिन् सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूत् विजानतः
तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वं अनुपश्यतः।

वेदों का सन्देश यह है कि जो व्यक्ति दूसरों में अपने को और अपने को दूसरों में देखता है, जो यह समझ जाता है कि जैसा मैं अनुभव करता हूं वैसा दूसरे भी अनुभव करते है, जब व्यक्ति या समाज सिर्फ अपने दृष्टि कोण से न देखकर दूसरे के दृष्टि कोण से भी देख लेता है तब उसकी सब समस्याओं का समाधान हो जाता है, उसे किसी बात की उलझन नहीं सताती।

(६) उपसंहार

संयुक्त-राष्ट्र के विशाल भवनों में शान्ति तथा भ्रातृ-भाव के लच्छेदार भाषणों के बावजूद विश्व में शान्ति का वातावरण उत्पन्न नहीं हो रहा क्योंकि अशान्ति, लड़ाई झगड़ा, युद्ध-भूमि में नहीं लड़े जाते, मनुष्य की मनोभूमि में लड़े जाते हैं। भारत के ऋषियों का कहना था कि वेदों का —'तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु—का सन्देश विश्व के कोने-कोने में पहुंचा कर ही इस समस्या का हल निकल सकता है। आज के युग में जब वेदों तथा वैदिक संस्कृति का हम नाम मात्र लेने लगे थे, वेद क्या कहते हैं—यह भूल गये थे ऋषि दयानन्द ने फिर से उस सन्देश को जगाया। ऋषि दयानन्द ने घोषणा की कि मानव-समाज 'कृण्वन्तो विश्व-मार्यम्' के राह पर चल कर ही भौतिक-वाद के ध्वंसकारी परिणाम से बच सकता है। इसी उद्देश्य से आर्य समाज की स्थापना हुई। ऋषि दयानन्द के चरण-चिन्हों तथा उनके दिखाये वैदिक-मार्ग पर आर्य-समाज चल रहा है। ऋषियों का सन्देश जन-जन तक पहुंचाना आर्य समाज का ध्येय है। आज हम जिस लक्ष्य को लेकर यहां एकत्रित हुए हैं वह लक्ष्य संसार के कोने कोने में भारत के ऋषियों-महर्षियों की आवाज को पहुंचाना है। सदियों से जिस मार्ग पर विश्व चलता चला आ रहा है उस पर चलते-चलते अब यह थक चुका है, हाथ इसके कुछ नहीं आया।

दो हजार वर्ष पहले मानव समाज की दूषित मनोवृत्ति को पलटने के लिये सम्राट अशोक ने एक महासभा का आयोजन किया था। उस महासभा के बाद संसार के कोने कोने में शान्ति के दूत यह सन्देश लेकर चल पड़े थे कि अबतक भौतिकवाद का शिकार होकर मनुष्य मनुष्य का शत्रु रहा है, इससे संसार में दुःख, अशान्ति, पीड़ा ही बढ़ी है भौतिकवाद के इस रास्ते को छोड़ने में ही मानव का कल्याण निहित है। परमात्मा आशीर्वाद दें, ताकि जिस अन्तर्राष्ट्रीय आर्य महासम्मेलन में आज हम सब एकत्रित हुए हैं वह अशोक की महासभा की तरह एक दूसरी महासभा का काम कर और जो काम अशोक के शान्ति का सन्देश ले जाने वाले भिक्षुओं ने किया था, वह काम ऋषि दयानन्द के वैदिक-संस्कृति के सैनिक बनकर हम सब करें, और विश्व में इस संस्कृति की गूंज उस दृश्य को सामने लाकर खड़ा कर दे जिस दृश्य का आर्यसमाज के संस्थापक ऋषि दयानन्द ने सपना लिया था।

सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

डब्ल्यु ७७ए ग्रेटर कैलाश (१)
नई दिल्ली—४८ भारत)

●

"महर्षि दयानन्द या मार्क्स और गांधी"

लेखक—लोकनाथ चौधरी, प्रधान, आर्य युवा छात्र वाहिनी

आधुनिक युग का श्री गणेश प्रायः १९वीं सदी से माना जाता है। १९वीं सदी से ही विश्व मे औद्योगिक और भौतिक उन्नति की होड़ सी लगी हुई है। और विश्व की मान्यता प्राप्त शक्तियां एक दूसरे को प्रत्येक क्षेत्र में पछाड़ने में लगी हुई है। इस सदी में ही विश्व में तीन महापुरुष और विचारक उत्पन्न हुये भारत में जन्मे महर्षि दयानन्द पहले दूसरे थे महात्मा गांधी तथा तीसरे थे यूरोप के चकाचौंध में जन्मे कार्ल मार्क्स ने यूरोप के परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुये धर्म को अफीम घोषित कर भौतिकवाद को प्रश्रय दिया और दुनियां के मजदूरो को भौतिक सुविधाओं को प्राप्त करने हेतु एक जुट होकर आन्दोलन करने की प्रेरणा दी और 'दुनियां के मजदूर एक हो' का मनोहर नारा दिया।

मजदूर क्रान्ति व वर्ग संघर्ष को प्रश्रय दिया। दूसरी और भारत में जन्में महर्षि दयानन्द ने भारत के अध्यात्म व वैदिक दर्शन के अध्ययन के पश्चात् विश्व के सारे पाखण्ड मतों का खंडन कर शारीरिक (भौतिक) उन्नति के साथ ही आत्मिक और सामाजिक उन्नति का नारा दिया और विश्व के श्रेष्ट पुरुषों को एक जुट होने का सदेश दिया तथा कृण्वन्तो विश्वमार्यम् का उद्घोष किया। एक ऐसे श्रेष्ट व्यक्तियों के श्रेष्ट समाज की स्थापना को वेदों के प्रमाणों द्वारा प्रमाणित कर उपस्थित किया जिसमें वर्ग सघर्ष और कुटिलता आदि का कोई स्थान ही न रहा। जिसमें कर्म और ज्ञान की प्रधानता ही मुख्य रही।

तीसरे महापुरुष हुए महात्मा गांधी जो राष्ट्रपिता के नाम से जाने गये और अहिंसा और शान्ति का उपदेश दिया। हिन्दु मुस्लिम एकता और हरिजन उत्थान के प्रति रुचि दिखाई।

अब प्रश्न उठता है तीनों महापुरुषों के द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों को मानवता और तर्क के कसौटी पर रखकर परखने पर खरा कौन उतरता है और क्रान्ति का अगुआ किसे कहा जाय किसने सर्वांगीण क्रान्ति को प्रश्रय दिया है। और किसके रास्ते से मानव जीवन के संम्पूर्ण पहलुओं पर प्रकाश पड़ता है।

अब प्रत्यक्ष रूप से देखने पर हमें ज्ञात होता है कि विश्व की आधी जनसंख्या मार्क्स के विचारों पर चलनेवाली सरकारों द्वारा घोषित हो रही है। पर मार्क्स द्वारा प्रभावित देशों का सम्पूर्ण अध्ययन करने पर हम देखते है कि मार्क्सवाद बर्बरता की उपज बनकर रह गई है। मार्क्सवाद जहाँ भी गया उसने वर्ग संघर्ष के नाम पर लाखों लोगों को समाप्त किया। एक दूसरे को एक दूसरे के विरूद्ध उभार कर खूनी क्रान्ति को प्रश्रय देकर एक दल-विशेष का शासन कायम कर शासन सूत्र एकदल के कुछ लोगों को हाथ में ला दिया और उसी का नाम हो गया समाजवाद या साम्यवाद इसने समाज को व्यवस्थित करने के बजाय एक ऐसे समाज की रचना की जहाँ मनुष्य कैदी के जीवन से बदतर जीवन जीने लगा और उसी में अपने को सपूर्ण मान बैठा। मार्क्स की क्रान्ति ने राजनैतिक

संचित को तो अपने हाथों में केन्द्रित किया ही सेना और पुलिस को तो अपने हाथों में लिया ही इसने सारे आर्थिक साधनों पर भी अधिपत्य कर लिया और तो और इसने मनुष्य के रोटी, कपड़ों और झोपड़ों पर भी अपना अधिपत्य कायम कर लिया। पति, पत्नि, माता-पिता, भाई-बहन, सारे सरकार के अंतर्गत एक हो गये। मानसिक विकाश और स्वतंत्र चिन्तन समाप्त हो गया। हां कुछ लोगों का भला हुआ लेकिन अधिकांश एक रस्से में बंध गये।

दूसरी ओर महात्मा गाँधी के विचार के अनुरुप भारत में समाज की रचना को प्रश्रय देने का प्रयत्न किया गया। पर वह आज तक असफल रहा। गांधीजी ने हिन्दू और मुसलमान सम्प्रदाय को एक करने का प्रयत्न किया, पर दोनों मे मौलिक सिद्धान्तों में ही मतभेद होने के फलस्वरूप वह प्रयत्न आज तक असफल रहा। कमजोर और उपेक्षित वर्ग को प्रश्रय देने हेतु उन्होंने हरिजन नामक एक वर्ग पैदा कर दिया और आज यह सुन्दर शब्द अपने अर्थ से अनर्थ की ओर बढ़ चला। गाँधीवाद को मानने वाले लोगों ने कभी गाँधी के आदशो को माना नहीं। केवल अपने लाभ के लिए गाँधी-गाँधी करते रहे पूरे भारत वर्ष में अगर आचरण के नाम पर गाँधी वादियों को एकत्र किया जाय तो कुछ लोगो से अधिक न होंगे। हाँ खादी पहनने वालों की संख्या मिल जायगी।

तीसरे महर्षि दयानन्द हुये महर्षि दयानन्द में शासन और सत्ता की ओर ध्यान न देकर व्यक्ति के निर्माण की ओर ध्यान किया और श्रेष्ठ व्यक्तियों के श्रेष्ठ समाज की रचना की मौलिक कल्पना की और वैदिक समाज के कायम करने का व्रत लिया। इसी हेतु उन्होंने आर्य समाज की स्थापना की और समाजिक उन्नति को प्रश्रय दिया। इस प्रकार मानवजीवन के संपूर्ण पहलुओं को ध्यान में रखकर श्रेष्ठ समाज की रचना की ओर उन्मुख किया। भौतिक उन्नति के साथ साथ आत्मिक और समाजिक उन्नति की भावना को बलवत बनाने की घोषणा की। आर्थिक मामले में उन्होंने साफ साफ कहा कि अपनी ही उन्नति मे नहीं बल्कि सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये। उन्होंने सबकों उन्नति की ओर अग्रसर होने के लिये समान अवसर की बात कही। यहाँ तक कहा कि राजा अर्थात् धनपति का पुत्र और एक गरीब का पुत्र दोनों एक साथ ही एक पाठशाला में अध्ययन अनिवार्य रूप से करे और पठन पाठन की व्यवस्था राज्य द्वारा की जाय। न्याय और दण्ड की व्यवस्था को बताते हुये कहा कि शासक को अधिक कठिन दण्ड की और शासित अर्थात् जन साधारण को समान गलतियों के लिये कम दण्ड मिलना चाहिये।

व्यवहारिक जीवन को ध्यान में रखकर उन्होंने सीधा उद्घोष किया और कहा कि सबसे प्रीति पूर्वक, धर्मानुसार यथा योग्य वर्तन चाहिये। हम सब बातों का ज्ञान मोटी पाथियों और पुस्तकों के पढ़ने से नहीं केवल आर्य समाज के दस नियमों के पढ़ने पर ज्ञात हो जायेगा। कर्म की प्रधानता समान अवसर की प्रधानता यह महर्षि की ही कल्पना थी। उन्होंने ही सर्वप्रथम ज्ञान और कर्म को महत्व दिया और कहा कि सामाजिक और आर्थिक स्थिति मे पिछड़ा व्यक्ति भी यदि अपने कर्मों के द्वारा ऊंचा होता है तो उसे महान बनने का अधिकार है। अगर आज विश्व मे अथवा किसी भी एक निश्चित स्थान मे स्वामी जी द्वारा कल्पित समाज ठीक ढ़ंग से बन जाय तो सही माने में शोषण मुक्त समाज होगा। जहां काले गोरे का रंगभेद ऊंच नीच की भावना की बीमारी तथा कथित जाति-पाति के झगड़े नहीं होगे सबके सब आर्य होगें यज्ञोपवीत धारी होगें सबकों समान अवसर उन्नति का प्राप्त होगा और समान शिक्षा की व्यवस्था होगी। चरित्र हीनता, शराब खोरी नशा खोरी

का नाम न होगा । असहाय और मूक पशुओं की बलि न होगी स्वार्थी तत्वों का नाम निशान न होगा, वह मानव जीवन की सम्पूर्ण क्रांति होगी ।

आज एक छोटा सा सवाल हमारे सामने जनसंख्या का है अगर स्वामी दयानन्द की बात मान ली जाय तो वह अपने आप में हल हो जायेगी और शहरों की भीड़ भाड़ स्वार्थ समाप्त नजर आयेगी । महर्षि दयानन्द ने आश्रम व्यवस्था को प्रश्रय दिया और कहा कि पचीस वर्ष तक के बालक को विद्यार्थी जीवन व्यतीत करना चाहिये और और इस हेतु उन्होने निर्देश दिया कि विद्यालय शहरों से दूर जंगलों के पास शांत वातावरण में रहे पठन पाठन की व्यवस्था सरकार करें । छब्बीस से पचास वर्ष तक के आयु वाले परिवारिक जीवन बितावे और सारे आर्थिक कार्य भार को देखें । इकावान से पचहत्तर वर्ष वालों के लिये वाणप्रस्थ का विधान किया और कहा कि ये व्यक्ति अपनी योग्यता का प्रयोग अध्यात्म चिन्तन और लोक कल्याण में करें नगरों को छोड़ देवें तथा छिहत्तर से सौ वर्ष वालों को पूर्ण रुप से ईश्वर चिन्तन की उन्मुत रहने का विधान किया । आज अगर महर्षि की बात मान ली जाय तो बेकारी की समस्या, बच्चों के भविष्य निर्माण की समस्या, शहरों में बढ़ती आबादी की समस्या अपने आप समाप्त हो जाय । इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर महर्षि ने सत्यार्थ प्रकाश ऐसे महान ग्रन्थ की रचना की। और वेदों और शास्त्रों का निचोड़ प्रस्तुत किया ।

अतः आज जब हम क्रान्ति की बात सोचते हैं तो मानव जीवन के संपूर्ण पहलुओं को ध्यान में रखते हुये सर्व-जन हित को सोचकर क्रान्ति की ओर उन्मुख होगें तो महर्षि दयानन्द को ही सम्पूर्ण क्रांति का मसीहा और आर्य समाज को ही उनका उत्तराधिकारी पायेगें, और तभी संपूर्ण विभेद की समाप्ति होगी ।

गाँधीवाद और मार्क्सवाद के दलदल में फंसे रहने पर केवल कुछ लोगों का सामूहिक लाभ तो होगा संपूर्ण का नहीं । क्योंकि आज अपने अपने स्थान पर दोनों असफल सिद्ध हो रहे हैं । इनका उद्देश्य ही एकांकी रहा है सर्वांगी नहीं ।

यज्ञों द्वारा वेद का सम्यक् प्रचार

विज्ञानानन्द सरस्वती, संपादक, यज्ञ योग ज्योति (रोहतक)

अप्रेल १९७८ के 'आर्य संसार' में श्री स्वामी सत्य प्रकाश जी सरस्वती का कलकत्ता आर्य सम्मेलन के अवसर पर पढ़ा गया अध्यक्षीय भाषण पूरा छपा हुआ मुझे पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । मैं चूँकि ४० वर्ष से ही वेद पारायण यज्ञ कराता चला आ रहा हूँ, स्वर्गीय वन्दनीय महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज का मुख्य शिष्य हूँ । १९३२ से उनका परिचय जब हुआ मैं तब वकालत करता था । उनके कथनानुसार १९४१ में मैनें एक मास के अदर्शन मौन के बाद वकालत को तिलाञ्जलि दे दी । और उनके चरणों में रहकर २५ वर्ष पूरे उनके साथ सैकड़ो बार ब्रह्मपारायण वेद (चतुष्टय) के प्रायः पृथक २ और कभी २ पूरे २-२ मास तक और कई बार अखण्ड यज्ञ दिन रात

चलते वाले भी कराए । मार्च १९६७ में उन्होंने चोला छोड़ा और तब से बराबर ज्यादा नहीं तो दो सौ पारायण यज्ञ ब्रह्म रूप में कराए। प्रत्येक यज्ञ के यज्ञमान, व्रती व उनका संक्षिप्त दैनिक विवरण मेरे पास है।

उन यज्ञों से पता चल सकता है कि कितने परिवारों का सुधार हुआ है, कितनो ने मांस, शराब, तम्बाकू, और कई प्रकार की बुराइयों का प्रतिज्ञा रूप में परित्याग किया, और नित्य कर्म, संध्या, हवन व गायत्री जाप की प्रतिज्ञा की।

कई बार वर्षा के यज्ञ किए वर्षा बन्द करायी। उन सब प्रकार के यज्ञों पर विधि विधान सहित अपनी अनुभूतियों के आधार पर अध्यात्म सुधा —४ (सामाजिक यज्ञ पद्धतियां) लिखीं; जो ४०० से अधिक पृष्ठो पर छंटा संस्करण छपकर समाप्त होने को है। सारी की सारी पद्धति स्वामी वेदानन्द जी तीर्थ की रची हुई है। सार्वदेशिक सभा में एक बार पारायण यज्ञों की मान्यता पर प्रश्न उठा, पं० धर्मदेव जी विद्या मार्तण्ड धर्मार्य सभा के मंत्री थे, हमसे प्रमाण मांगा, हमने यजुर्वेद १—३० का भावार्थ बताया। पं० वैद्यनाथ शास्त्री ने इस पर ट्रैक्ट लिखा, सभा को स्वीकार करना पड़ा।

पं० रामदयालु शास्त्रार्थ महारथी अलीगढ़ ने आर्य संसार में यज्ञ के सम्बन्धी आपत्ति उठाई, जिसका उत्तर तीन लेखों में यज्ञ योग ज्योति में छपा। उनको भेजा भी गया।

इससे पूर्व श्री पं० गंगा प्रसादजी उपाध्याय ने परायण यज्ञो पर आपत्ति कर लेख उर्दू के साप्ताहिक पत्र रीफारमर में १५ मई १९४९ को छपवाया, रीफार्मर का सम्पादक श्री सन्त राम विद्यार्थी मेरा मित्र था, उसने मुझे दिखाया परन्तु मेरा उत्तर अपने समाचर पत्र में न छापा, इस पर मैने 'देव यज्ञ मर्यादा' यथार्थ में क्या है इस पर पुस्तक लिखी जो दो संस्करण छपी वेद के और महर्षि के प्रमाणों से वेद के सम्पूर्ण यज्ञ के करने के सम्बन्ध में पुष्टि की।

अब ३० वर्ष बाद "इतिहास अपने आप को दोहराता है।" ऐसा प्रतीत होता है।

जिन पुस्तको का ऊपर मैने संकेत किया है आप चाहेंगे तो आपके पास भेज दूंगा और यदि स्वामी जी महाराज के एक २ शंका का उत्तर चाहेंगे तो वह भी यथा सम्भव दे सकूंगा।

आर्य समाज का नियम "वेद सब विद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना आर्यों का परम धर्म है।" शायद श्री स्वामी जी को उस समय विस्मृत हो गया था। "पारायण" का भाव यह नहीं है कि दूसरा पढ़े और तुम सुनो तो खण्डित हो गया।

मुझे श्री स्वामी जी के विचारों से भेद है। यदि किसी ने पूर्णाहूति की क्रिया ठीक नहीं करायी तो सारी समाज पाखण्ड फैलाने वाली बन गयी। पुरोहित का आदर सत्यकार न हो, अधिकारी उन्हें कुली समझकर घर का कार्य करावे तो कोई आपति नहीं पुरोहित तनिक आवाज उठाये तो दुकानदारी है। यह विचित्र प्रकार की युक्ति है।

विदित हो कि वेद प्रचार का ठीक और प्रभावशाली प्रचार केवल यज्ञों द्वारा ही हो सकता है।

●

"बढ़ते जाना सत्वर"

राधेश्याम आर्य

दृढ रहना है अपने पथ पर
निर्भय तुम्हें निरन्तर

चाहे रवि शशि नियम तोड़ दे
जलधि तोड़ दे निज मर्यादा।
सिंह रोक ले मार्ग तुम्हारा
पथ पर आए घोर आपदा।

बाधाओं को लांघ तुम्हें!
बढ़ना है, बना निरन्तर।

धरा हिले, अम्बर हिल जाए,
हिल जाए चाहे ब्रह्माण्ड।
अवरोधित करने पथ तेरा,
झंझा उठे असीम प्रकाण्ड।

धर्म समन्वित पथ पर फिर
भी बढ़ते जाना सत्वर।

तुम्हें दिशाओं को लय देना
करना वातावरण प्रशुद्ध।
महिमण्डल में नव्य चेतना
करना निश्चय तुम्हें प्रबुद्ध।

बन अजेय कूदो समरांगण
धूल धूसरित बैरी को कर।

आर्य समाज कलकत्ता

श्रावणी उपाकर्म (रक्षा बन्धन) आर्य पर्वो में महत्व-पूर्ण पर्व है। यह प्राचीन काल से ज्ञानार्जन एवं व्रत लेने का पुनीत पर्व है। यज्ञोपवीत परिवर्तन के पश्चात् प्रत्येक आर्य इस पावन पर्व पर यज्ञानुष्ठान एवं वेद मंत्रों का पाठ करता है। भविष्य के लिए स्वाध्याय और नियमित वेद पढ़ने का व्रत लेता है। आर्य समाज कलकता में इस वर्ष श्रावणी उपाकर्म के अवसर पर वेद प्रचार सप्ताह का आयोजन किया। १८ अगस्त से २६ अगस्त तक ऋग्वेदी मन्त्रों से यज्ञानुष्ठान किया। आचार्य उमाकान्त उपाध्याय के पौरोहित्य में पंडित शिवनन्त प्रसाद वैदिक पण्डित प्रिय दर्शन सिद्धान्त भूषण पण्डित आत्मानन्द और पण्डित शिवाकान्त उपाध्याय ने प्रातः काल ७ से ९ तक वेद पाठ में भाग लिया। अन्तरग के प्रायः सब सदस्यों तथा अन्य आर्य सदस्यों ने सपत्नीक यजमान बनकर यज्ञ को सफल बनाया। प्रतिदिन यज्ञ की समाप्ति पर लाभप्रद प्रवचन होता था इस महान पुनीत यज्ञ की पूर्णाहुति के अवसर पर सभी यजमान एवं स्थानीय विविध आर्य समाजों के अधिकारी सम्मानित किये गये।

श्री कृष्ण जन्मोत्सव:

गीता के उपदेष्टा महान् राजनितिज्ञ एवं योगिराज भगवान श्री कृष्ण की जयन्ती आर्य समाज के सुसज्जित सभागार में आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री गजानन्द आर्य की अध्यक्षता में दिनांक २६-८-७८ को मनायी गई। भगवान कृष्ण के उदात्त जीवन एवं कार्यो प्रकाश डाला गया। रघुमल आर्य विद्यालय के छात्रों ने गीता पाठ किया और भगवान् कृष्ण के चरित्र पर अपने अपने विचार प्रकट किये। इस अवसर पर विशेष वक्ता डाक्टर हीरा लाल चोपड़ा और विशेष अतिथि श्री शान्ति स्वरूप गुप्त ने गीता और भगवान के कार्य कलापों पर तर्क-पूर्ण उत्तम विचार व्यक्त किया। तदनन्तर अध्यक्षीय भाषण के पश्चात् सभा विसर्जित हुई।

पारितोषिक वितरणोत्सव:

भारत वर्षीय आर्य विद्या परिषद् अजमेर द्वारा महर्षि के पावन वैदिक सिद्धान्तों के प्रचारार्थ विद्या विनोद विद्या रत्न, विद्या विशारद और विद्या वाचस्पति परीक्षाएं संचालित होती हैं। इनका केन्द्र भारत के कोने कोने में तथा तथा सुदूर मारिसस, केनिया आदि आदि विदेशों में भी स्थापित है। विगत १० वर्षों से कलकता आर्य समाज के आर्थिक सहयोग से रघुमल आर्य विद्यालय में केन्द्र स्थापित है। नियमित रूप से उक्त परिक्षार्थियों को पढाया जाता है इस वर्ष २६ छात्र विविध परिक्षाओं में सम्मिलित हुए थे। परिक्षाफल शत प्रतिशत रहा। वसन्त कुमार सोनी नामक छात्र ने विद्या विनोद परीक्षा में सर्वद्वितीय स्थान प्राप्त किया। आर्य प्रतिनिधि सभा बंगाल के प्रधान श्री गजानन्द आर्य ने उत्तीर्ण छात्रों को प्रमाण पत्र एवं पुस्तकों से पुरस्कृत किया।

अन्तर्राष्ट्रीय-आर्य महासम्मेलन नैरोबी

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधिसभा दिल्ली के अन्तर्गत पूर्वी अफ्रीका मे केनिया प्रदेश स्थित नैरोबी आर्य समाज के विशेष निमन्त्रण पर १० से २४ सितम्बर १९७८ तक उसके हीरक जयन्ती समारोह के साथ अन्तर्राष्ट्रीय आर्य महासम्मेलन का भी आयोजन हुआ इस सम्मेलन की अध्यक्षता शिक्षा शास्त्री पण्डित सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार (भूतपूर्व उपकुलपति गुरुकुल विश्व विद्यालय कांगड़ी ने की है। इस सम्मेलन मे कलकता आर्य समाज के कई सदस्य गये। जिन मे श्री छबील दास सैनी, श्री मती सुनीति देवी शर्मा आचार्य उमाकान्त उपाध्याय आदि प्रमुख हैं।

—राधाकृष्ण ओझा

९२ वें वार्षिकोत्सव १९७७ के अवसर पर

दान दाताओं की सूची

५१४०) आर्य स्त्री समाज
२१००) श्री लाल चन्द वाहरी चेरिटेबुल ट्रस्ट
२१००) ,, भोरुका चैरिटेबुल ट्रस्ट
१४००) ,, घनश्याम दास गोयल
१६३१) ,, आर्य कन्या विद्यालय
११०० ,, जयनारायण पोद्दार ट्रस्ट
११००) ,, रामचन्द्र पोद्दार स्मारक निधि
११००) ,, अनन्दी लाल पोद्दार चैरिटेबुल ट्रस्ट
७२६) ,, रघुमल आर्य विद्यालय (प्रा० वि०)
६६३)५० ,, यज्ञ वर थाली से प्राप्त
५०१) ,, चोपड़ा मशीन कारपोरेशन
५०१) ,, इन्डस्ट्रियल गेसेस लिमिटेड
५०१) ,, सूरजमल बैजनाथ
५०१) ,, महादेवी विरला चैरिटेबुल ट्रस्ट
५०१) ,, सीताराम आर्य
५०१) ,, दयानन्द आर्य
४६६) ,, सूर्य प्रकाश खट्टर
४०१) ,, जयभारत फेब्रिक्स
३०१) ,, पटना ट्रान्सपोर्ट एजेन्सी
२५१) ,, भगवानदास गुप्ता राजा कटरा
२५१) , सुन्दरलाल एण्ड सन्स
२५१) ,, एस० एम० चोपड़ा एण्ड सन्स
२५०) ,, किसन चन्द अग्रवाल
२५१) ,, हीरा लाल आर्य
२५१) ,, लिलुआ स्टील एण्ड वायर मिल्स प्रा०लि०
२५१) ,, ओम प्रकाश धीया
२५१) ,, देवी प्रसाद मस्करा (वचन)
२५१) ,, ईश्वर चन्द आर्य
२५१) ,, देहली आयरन सिन्डीकेट प्रा० लि०
२५१) ,, शान्ति स्वरुप खन्ना
२५१) ,, सूरज स्टोर्स
२५१) ,, श्रीनाथ ब्रादर्स
२५१) श्री गणेश विन्देश्वरी प्रसाद
२५१) ,, राजाराम जायसवाल
२५१) ,, विजय कुमार सैनी ग्लोब ट्रेडिंग)
२५१) ,, मोहन लाल अग्रवाल
२५१) ,, गणेश प्रसाद जायसवाल
२५१) ,, अलगू राम वर्मा
२५१) ,, आर० आर० गम्भीर एण्ड कम्पनी
२५१) ,, देवराज आर्य
२०१) ,, मोहम्मद मुस्लिम
२२५) ,, गया प्रसाद मिश्री लाल
२०१) , यशपाल वेदालंकार
२०१) ,, मु० कलीम
१५१) ,, भवानी दास रामगोविन्द
१५१) ,, मेवा लाल सुरेश कुमार

१५१) श्री सुदर्शन सिल्क हाउस
१५१) ,, हंसराज बड़ुआ
१५१) ,, फूलचन्द्र आयसवाल
१५१) ,, जगन्नाथ रामनाथ
१५१) ,, सदावगी ट्रेडर्स
१५१) ,, सूर्यप्रकाश खट्टर
१०१) ,, बलदेवदासचैरिटेबुल ट्रस्ट
१०१) ,, परमानंद अग्रवाल
१०१) ,, जयदेव अग्रवाल
१०१) ,, डी० एन० बक्शी एन्ड सन्स
१०१ ,, राधाराम मोहन लाल
१०१) ,, राजगढ़िया एजेन्सी
१०१) ,, जग नाथ गुप्ता एण्ड सन्स
१०१) ,, नेशनल कार्गो मूवर्स
१०१) हासीवाला इन्डास्ट्रीयल कारपोरेशन
१०१) ,, ज्योति स्टोर्स
१०१) ,, गुगन रामदास प्रेताप
१०१) , टीकम चन्द्र मनूलाल
१०१) , शालिकराम मुन्नालाल
१०१) श्री श्री नाथ दास गुप्ता मंत्री
१०१) ,, स्काईलेन्ड ट्रान्पोट क०
१०१) ,, गीताराय एण्ड स्पोर्टस सेन्टर
१०१) ,. रामयश आर्य
१०१) ,, युधिष्ठिर नागिआ
१०१) ,, रविन्द्रनाथ गुप्त
१०१) ,, ग्लेमर होजरी
१०१) ,, पूनमचन्द आर्य
१०१) ,, बनारसी दास अरोड़ा
१०१) ,, नेशनल नावेल्टी स्टोर्स
१०१) ,, राम प्रसाद कपूर एण्ड सन्स
१०१) श्री मु० सादिक
१०१) ,, राम चरित्र साह
१०१) ,, लक्ष्मन प्रसाद यादव
१०१) ,, हरिवन्स लाहोटी
१०१) ,, अंगनू राम साव
१०१) ,, मु० कयूम
१०१) ,, मु० सफी
१०१) ,, मु० अयाज
१०१) ,, काकू बाबू पनागढ़
१०१) ,, पुस्कर लाल आर्य
१०१ ,, जवाहरलाल सिलीगुड़ी
१०१) . लक्ष्मी नारायण सिल्वरमार्ट
१ १ . धर्मप्रकाश अग्रवाल ट्रासपोर्ट
१०१) ,, ओमप्रकाश रोलावाले
१०१) ,, बनारसी दास अरोड़ा न्यू अलीपुर
१०१) ,, हिन्दुस्तान लेमिन्टर्स
१०१) ,, सुखदेव शर्मा
१०१) ,, लक्ष्मण सिंह
१०१) ,, श्रीराम खट्टर
१०१) ,, आर० एस खेतान
१०१) ,, प्रेम कुमार भाटिया
१०१) ,, सेठ सत्यनारायण साव
१०१) ,, हलकम्पीराम बद्री प्रसाद
७१) ,, बसन्त ब्रादर्स
५१ ,, विक्टोरिया कारपोरेशन [इन्डिया]
५१) ,, लाल प्रसाद सीताराम
५१) ,, बरकत राम प्रेमचन्द्र
५१) ,, कृष्ण लाल खट्टर
५१) ,, गुलाब परफ्यूमरी हाउस
५१) ,, मेकानिकल प्रोडक्टस

५१) श्री क्वालिटी स्वीट
५१) ,, लाला बैजनाथ अरोड़ा
५१) ,, जानकी दास नरुला
५१) ,, नन्द किशोर अरोड़ा
५१) ,, जमुना दास राम किशन
५१) ,, राम चरित्र आर्य
५१) ,, हरनाम दास
५१) ,, हरबन्श लाल मनचन्दा
५१) ,, मेहरबान सिंह
५१) ,, एस० पी० गुप्ता एण्ड कम्पनी
५१ ,, कलकत्ता स्टील ट्यूब कारपोरेशन
५१) ,, राम प्रकाश पाण्डया
५१) ,, श्रीमती अंगूरी देवी
५१ ,, मोतीराम तस्वीर वाले
५१) ,, ट्रान्सपोर्ट डेवलपमेन्ट कारपोरेशन
५१) ,, जयराम साव
५१) ,, राम दुलार सूर्यनारायण
५१) ,, वृन्दावन तिवारी
५१) ,, राम किशन गुप्ता
५१) ,, मती विमला आर्या
५१) ,, मंजू देवी आर्य
५१) ,, राम सत्यप्रकाश
५१) ,, देवकरण दास
५१) ,, लेलैण्ड आटोहिल्स
५१) ,, मनरज राम अचरज राम
५१) ,, रामधनी जायसवाल
५१) ,, राम चरित्र आर्य
५१) ,, राम अवध राम प्रताप
५१) ,, प्यारे लाल मनचन्दा
५१) ,, हरबन्श लाल बर्म्मन

५१) श्री रघुनाथ प्रसाद गुप्ता
५१) ,, जगदीश तिवारी
५१) ,, सुभाष चन्द्र
५१) ,, प्रेमपाल
५१) ,, आर पी० खोसला
४०) ,, कलकत्ता स्पोर्टस कम्पनी
३१) ,, मान सरोवर होटल
३१ ,, कलकत्ता जनरल स्टोर्स
३१) ,, हिन्द स्टोर हाउस
३१) ,, राजीव टेक्सटाइल
३१) ,, कन्हैया लाल केजरी वाल
३१) ,, दुलाल एण्ड कम्पनी
३१) ,, गौर गोपाल क्लाथ हाउस
३१) ,, चांद रतन दम्माणी
३१) ,, अशोक ट्यूब कम्पनी
३१) ,, शिव नन्दन प्रसाद
३१) ,, ललित किशोर दवे
२५) ,, हरीप्रसाद गुप्ता दुर्गापुर
२५) ,, सहदेव राम आर्य
२५) ,, रामकिशन लालचन्द जायसवाल
२५ ,, बंशी प्रसाद साव
२५) ,, ताराचन्द
२५) ,, किशोरी लाल दवे
२५) ,, जयसिंह करसन दास जी
२५) ,, रिलेबुल वेरिंग ट्रेडर्स
२५) ,, ब्रह्मदेव साह
२५) ,, कुमार इलेक्ट्रिक एण्ड इन्जीनियरिंग क०
२५) ,, राम निधि अयोध्या प्रसाद
२५) ,, चन्द्रबली प्रसाद गुप्ता
२५) ,, सुखदेव जायसवाल

२५) श्री आसुतोष कुमार जायसवाल
२५) ,, सुरेश कुमार बजरंग लाल
२५) ,, राम चरण जायसवाल
२५) ,, सत्यनारायण जायसवाल
२१) ,, गौरंग प्रसाद दास
२१) ,, राम किशोर गुप्ता
२१) ,, राधेश्याम जी
२१) ,, शंकर लाल जी
२१) ,, जनता स्टोर
२१) ,, श्याम ब्रादर्स
२१) ,, सेठी ब्रादर्स
२१) ,, दीपक स्टोर्स
२१) ,, नन्दलाल जी अरोड़ा
२१) ,, वासुदेव गुप्ता
२१) ,, प्रकाशचन्द सूद
२१) ,, दयाराम एण्ड सन्स
२१) ,, शिवलाल बजाज
२१) ,, मुकुन्द लाल एण्ड सन्स
२१) ,, पन्ना लाल राजकुमार
२१) ,, लक्ष्मी ट्यूब क०
२१) ,, श्रीमती शान्ति देवी
२१) ,, चुन्नी लाल एण्ड सन्स
२१) ,, विनोद टेक्सटाइल
२१) ,, राम उजागिर साहू
२१) ,, दीना नाथ साह
२१) ,, वंशीलाल साह
२१) ,, राम चन्द्र शुक्ला
२१) ,, हजारी प्रसाद साहू
२१) ,, कन्हैया लाल अवतारराम साह
२१) ,, सीताराम साह
२१) ,, अमर सिंह सैनी
२१) ,, श्रीदेवी प्रसाद शुक्ला
२१) ,, सुमेर शर्मा
२१) ,, जयचन्द मलहोत्रा

२१ श्री साँवल राम जी
२१) ,, पुष्पा गुप्ता
२१) ,, राज
२१) ,, राम विलास अग्रवाल
२१) ,, दीपक गोयल
२१) ,, वासुदेव रामगुप्ता
२१) ,, पन्नालाल नन्हकूराम
२१) ,, सत्यपाल सिंह
२१) ,, दयाराम जायसवाल
२१) ,, मंशाराम वर्मा
२१) ,, सावल मल जी गोयल
२१) ,, बलवीर जी खोसला
२१) ,, रोशन लाल खट्टर
२१) ,, सत्यनारायण सेठ
२१) ,, एम० एस० फिटिंग मैनूफेकचरिंग क०
२१) ,, राजाराम ओम प्रकाश
२१) ,, शिव नाथ शाह
२१) ,, सीताराम राम आसरे
२१) ,, उमराव बाबू हबड़ा
२१) ,, मिस डोली खन्ना
१५) ,, राम चन्द्र साव
१५) ,, एम० पी० ब्रादर्स
१५) ,, कल्पनाथ जायसवाल
१५) ,, मुन्नीलाल हीरालाल
१५) ,, मदन लाल राजेन्द्रलाल
१५) ,, शालिकराम जायसवाल
१५) ,, हिन्दूस्तान स्टील इन्डस्ट्रीज
१५) ,, स्टील ट्यूब कम्पनी
१५) ,, भगवती प्रसाद
१५) ,, शिव ट्रेडिंग कम्पनी
११) ,, इन्द्रलाल अग्रवाल
११) ,, काशी प्रसाद
१०) ,, प्राननाथ डे
१०) ,, बजाज ऊल हाउस
११) ,, बिहारी लाल सचदेव

११) श्री विजय स्टोर
११) ,, किशन कुमार नारंग
१०) ,, प्यारेलाल खन्ना
११) ,, बैजनाथ जी
११) ,, आरोड़ बन्धु प्रेस
१० ,, रामहार्ड वेयर स्टोर
११) ,, दम्पु ट्रंक कम्पनी
१०) ,, ओम प्रकाश बजाज
१०) ,, जयन्त ट्यूब कारपोरेशन
१०) ,, संजय कुमार सैन
११) ,, पी० के० सट्टी
१०) ,, जगदीश शर्मा
११) ,, राम अवतार साहू
११) ,, राम किशन साहू
११) , राजेन्द्र प्रसाद सिंह
११) ,, चतुर्भुज झाझरमल
११) ,, मोहन प्रसाद
१०) ,, बाबूलाल ठाकुर
११) ,, इन्द्रादेवी पर्कालिया
११) ,, माताजी द्वारा महेश
११) ,, डा० राम प्रसाद जी
११) ,, श्री मती सुशीलादेवी आर्या
११) ,, मदन गोपाल मेहता
११) ,, शंकरलाल झुनझुन वाला
११) ,, रतन लाल जी
११) ,, परमा नन्द जी
१०) ,, गुप्त दान
१०) ,, आर० सी० ए० के० खेतान
११) ,, सीताराम हरीलाल, इन्दराज, रामहित
१०) ,, सुख देवराम आर्य
११) ,, यमुना लाल मिश्री लाल
१०) ,, केवल सिंह

११) श्री कन्हैया लाल
११) ,, पन्ना लाल ताड़क साव
११) ,, श्रीमती रमारानी
११) ,, राजेन्द्र कुमार
११) ,, देवेन्द्र सिंह
११) ,, मेवा लाल
११) ,, हीरालाल साव
११) ,, चन्द्र देव लाल
११) ,, शम्भू नाथ आर्य
११) ,, श्री मती बिमलादेवी सैनी
११) ,, श्री शीला देवी सैनी
११) , मदन लाल प्रधान आर्य समाज बासवेरिया)
११) , राधा कृष्ण अरोड़ा
१०) ,, चौथी प्रसाद जायसवाल
१०) ,, रनजीत
१०) ,, अर्जुन प्रसाद आर्य
१०) ,, ओम प्रकाश बजाज
११) ,, कलकत्ता वेयरिंग कारपोरेशन
११) ,, आर बी० ट्रेडिंग कम्पनी
११) ,, टी० के० झा
११) ,, राजपति
११) ,, डायमन्ड चेन कारपोरेशन
११) ,, हरवंश प्रसाद जायसवाल
११) , मेवा लाल
११) ,, राम अवध राम साव
१०) ,, खजान चन्द
११) ,, ग्लोब ट्रान्सपोर्ट
१०) ,, रामेश्वर प्रसाद मिस्त्री
११) ,, विश्वम्भर जड़िया
११) ,, मिस्टर जैन
१०) ,, शिव कुमार नन्दी
१०) ,, जगन्नाथ साव

O

॥ ओ३म् ॥ दूरभाष ३४-१८०३

आर्य समाज, कलकत्ता

१८, विधान सरणी, कलकत्ता-७००००६

अपील

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपने तर्कपूर्ण विचारों से प्राचीन हिन्दू-धर्म को पाखण्ड तथा रूढ़िवाद के गहरे गर्त से बचाया और वैदिक धर्म के रूप में उसके यथार्थ को प्रकट करके बुद्धिवाद के इस युग में उसे अमरता प्रदान की। उन्होंने सारे भारत में भ्रमण करके अपने भाषण तथा लेखों से पाखण्ड के खण्डन और सत्यमत के मण्डन के लिये एक आन्दोलन चलाया, जो आर्य समाज के नाम से सुगठित होकर स्वल्प काल में ही अपने देश तथा विदेशों में भी स्थापित हो गया। कलकत्ता महानगर में भी सन् १८८५ में आय समाज की स्थापना हुई। गत ९३ वर्षों से यह महर्षि दयानन्द के मन्तव्यों के अनुसार कुरीति निवारण, सद्धर्म प्रचार और जन-सेवा का कार्य कर रहा है। आर्य समाज सत्यसनातन वैदिक धर्म के लिये हिन्दी, बंगला तथा अन्य भाषाओं में भी विद्वानों के भाषण तथा उत्तम लेखों का प्रकाशन करता है। 'आर्य संसार' नामक मासिक पत्र का प्रकाशन करता है। एक सुन्दर पुस्तकालय तथा वाचनालय भी चलाता है। दो विशाल शिक्षा-संस्थाओं—'आर्य कन्या महाविद्यालय' और 'रघुमल आर्य विद्यालय' का सञ्चालन करता है। जनता के हितार्थ दातव्य चिकित्सालय तथा एक प्याऊ का १९, विधान सरणी में संचालन कर रहा है आर्य समाज प्रति वर्ष की भाँति इस वर्ष भी ता० २६ दिसम्बर से ३१ दिसम्बर १९७८ तक अपना ९३ वाँ वार्षिकोत्सव मुहम्मद अलीपार्क में बड़े समारोह से मना रहा है। इस उत्सव पर स्थानीय विद्वानों के अतिरिक्त बाहर से निम्नलिखित विद्वान पधार रहे हैं। श्री पं० बाल दिवाकर हंस (गाजियाबाद) श्री पं० सूर्यबली पाण्डेय (जौनपुर) श्री मती प्रज्ञादेवी व्याकरणाचार्य (वाराणसी) श्री ओम प्रकाश वर्मा भजनोपदेशक। आर्य समाज के पास कोई स्थायी आय का साधन नहीं है। अतः आर्य समाज के सम्पूर्ण आयोजनों को सुचारु रूप से चलाने के लिए आप दानी महानुभावों का उदार दान ही अपेक्षित है। इस वर्ष की योजनाओं को पूर्ण करने के लिए आनुमानिक व्यय ७०,००० रु० (सत्तर हजार रु०) होगा। अतः आप से सप्रेम याचना है कि अपने सात्त्विक दान से इस यज्ञमें आहुति प्रदान करें। आपके सहयोग के लिए हम सदैव आभारी हैं।

प्रधान मंत्री

पूनमचन्द्र आर्य श्री नाथदास गुप्त

कन्या गुरुकुल महाविद्यालय द्वारा जन्माष्टमी अनुष्ठित

कन्या गुरुकुल सासनी) हाथरस में श्रावणी पर्व, संस्कृत दिवस और जन्माष्टमी के आयोजन सोत्साह मनाये गये। सप्ताह भर यजुर्वेद पारायण यज्ञ हुआ। संस्कृत दिवस को सभा में ब्रह्मचारिणियों ने व्याख्यान, संगीत, सांकेतिक गायन और सम्वाद प्रस्तुत किये। प्रि० महेन्द्र प्रताप शास्त्री कुलपति जी ने संस्कृत प्राचीनता एवं उसकी भाषा, व्याकरण और साहित्य की विशेषताओं पर प्रकाश डाला।

जन्माष्टमी के दिन हुयी सभा में ब्रह्मचारिणियों के योगिराज कृष्ण के सम्बन्ध में व्याख्यान एवं संगीत हुए। कुलपति जी ने श्रीकृष्ण जी राजनीतिक, समाजिक एवं राजनीति सम्बन्धी कार्यों का वर्णनकर भगवद्गीता का महत्व दर्शाया।

वृक्षारोपण सप्ताह में १६० नवीन पौधे लगाये गये। गुरुकुल में इस वर्ष से ग्यारहवीं कक्षा में गृहविज्ञान की पढाई आरम्भ हो रही है।

निवेदिका,

कृते अक्षय कुमारी शास्त्री

आर्य समाज १९, विधान सरणी कलकत्ता-६ के लिए पं० उमाकान्त उपाध्याय एम० ए० द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित तथा युको प्रेस, १, राजा गुरुदास स्ट्रीट, कलकत्ता-६ में मुद्रित।

वर्ष १८ अङ्क २

ओ३म्

आर्य-संसार

आर्य-समाज कलकत्ता

का

मासिक मुख पत्र

फाल्गुन २०३२

फ रवरी १९७६

वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

आर्य-समाज का तृतीय नियम

मूल्य :
एक प्रति २५ पैसे
वार्षिक ३ रुपये

आर्य-समाज कलकत्ता

१९, विधान सरणी,

कलकत्ता—६

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की ओर से इस वर्ष का पं० लेखराम पुरस्कार डा० भवानीलाल भारतीय को उनकी पुस्तक 'आर्य समाज के आन्दोलन की भावी परिकल्पना' पर प्रदान किया गया है। पुरस्कार की राशि दो सहस्र रुपये है। जो डा० भवानीलाल भारतीय को अगामी ७ मार्च को पं० लेखराम बलिदान दिवस पर कादियां (पंजाब) में आयोजित एक बृहत्समारोह में प्रदान किया जाएगा। इस अवसर पर डा० भारतीय आर्य युवक सम्मेलन की अध्यक्षता भी करेंगे।

भवदीय
कविराज धर्म सिंह कोठारी

आर्य संसार के स्वामित्व आदि का विवरण

१.	प्रकाशन स्थान १९, विधानसरणी, कलकत्ता-६	आर्य समाज मन्दिर
२.	प्रकाशन की अवधि	मासिक
३.	मुद्रक का नाम	यूको प्रेस
	क्या नागरिक भारतीय है	भारतीय
	पता	१, राजा गुरुदास स्ट्रीट कलकत्ता-६
४.	प्रकाशक	उमाकान्त उपाध्याय
	क्या भारतीय है	भारतीय
	पता	१९, विधानसरणी, कलकत्ता-६
५.	सम्पादक का नाम	उमाकान्त उपाध्याय
	क्या भारतीय है	भारतीय
	पता	१९, विधानसरणी, कलकत्ता ६
६.	स्वामित्व	आर्य-समाज कलकत्ता १९, विधान सरणी, कलकत्ता-६

मैं, उमाकान्त उपाध्याय, एतद् द्वारा घोषित करता हूं कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गये विवरण सत्य हैं।

ह० उमाकान्त उपाध्याय
प्रकाशक

ओ३म्

आध्यात्मिक डायरी :—

सजगता एवं सावधानता का महत्त्व प्रत्येक क्षेत्र में आवश्यक है। अपने व्यक्तिगत जीवन के उत्थान में भी सतर्क रहने की बड़ी आवश्यकता रहती है। आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य है— "संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है। अर्थात् शारीरिक आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।" जब तक किसी की आत्मिकउन्नति न हुई हो, उसे सामाजिक कार्यों में दायित्वपूर्ण नेतृत्व के स्थानो पर नहीं लाना चाहिए। आज की चरित्र हत्या की राजनीति, स्वार्थ की गुटबन्दियाँ, कृतमधुरमुख समर्थक, लाञ्छनों के लाञ्छित उत्तर-प्रत्युत्तरों की सडाँघ से वातावरण की स्वस्थता लुप्त सी हो रही है। जो जहाँ अधिकार में आ गाया वहीं बरगद का ऐसा पेड़ बन बैठता है कि उसके नीचे और कोई पौधा पनप न सके।

इन समस्याओं के व्यापक निदान की बात हम आज नहीं कर रहे हैं। आज तो इतना ही उद्देश्य है कि प्रत्येक आर्य को अपनी आध्यात्मिक डायरी भरते रहना चाहिए। आज आर्य समाजों में कभी-कभी ऐसे चेहरे भी उजागर होकर सम्मुखीन हो जाते है, जिन्हें संन्ध्या स्वाध्याय इत्यादि से कोई प्रयोजन नही, कालक्रम और तिकड़म बाजियों से ऐसे लोग अधिकार के स्थानों पर भी जा बैठते हैं। और धीरे से समाजों की धारा आध्यात्मिक वातावरण से शून्य हो जाती है। संध्या हवन आदि गौड़ पुरोगम बन जाते हैं। और मुख्यता व्याख्यानों की हो जाती है, उसमें भी चटक मटक राजनीति आलोचना, टेबुल तोड़ लेक्चर बाजियों की प्रतिष्ठा अधिक बढ़ जाती है।

इन सारी बातों पर विचार करके हमने आर्य समाज कलकत्ता के लिए एक प्रश्नावली के रूप में स्वनिरीक्षण का पत्रक तैयार किया है। अन्य समाजों और सज्जनों को लाभ हो सके इसी उद्देश्य से उसे प्रकाशित किया जा रहा हैं।

ओ३म्

प्रार्थना

ओ३म्। अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तत्ते प्रब्रवीमि तच्छकेयम्।
तेन र्ध्यासमिदमहमनृतात्सित्यमुपैमि ॥

हे अग्ने प्रभो! आप व्रत पति हैं और मै व्रत का अनुष्ठान करूंगा।
इससे आपसे प्रार्थना करता हू कि मै व्रत पालन में समर्थ होऊं।
मैं समृद्धियुक्त होऊं। मै असत्य का त्याग कर सत्य को प्राप्त होता हूं।

संध्या

१- मैं संध्या करता हू / नहीं करता हू / करुंगा।
 क— नियमित करता हूं / नियमित नहीं करता हूं / नियमित करूंगा।
 ख- दोनों समय करता हू / एक समय प्रातः/सायम् करता हू / दोनों समय करूंगा।

२- संध्या में मेरा मन लगता है / नहीं लगता है।

क- मैं अर्थ का भी पाठ करता हूं / नहीं करता हूं / करूंगा।

ख- मुझे संध्या मन्त्रों का अर्थ आता है / नहीं आता है ।

ग- मन्त्रों के अर्थ का चिन्तन करता हूं / नहीं करता हूं / करूंगा।

३- मुझे संध्या करने में ··············· मिनट लगते हैं।

४- मैं प्राणायाम करता हूं / नहीं करता हूं / करूंगा ।

क- प्राणायाम के समय मन्त्र का जप करता हूं / नहीं करता हूं / करूंगा ।

५- आध्यात्मिक साधना में मेरी रुचि है / नहीं है ।

६- यदि आर्य समाज कलकत्ता में प्रात, : ··················· बजे संध्या प्राणायाम, मन्त्रों के अर्थ आदि सिखाने की व्यवस्था हो तो मैं उसमें सम्मिलित होनें का इच्छुक हूं ।

७- अपने सम्बन्ध में संध्या सम्बन्धी कोई अन्य सूचना देना चाहते हो तो यहां लिखें ।

क : ________________________________

ख : ________________________________

ग : ________________________________

अग्निहोत्र

१. मैं अग्निहोत्र नित्य करता हूं : / नहीं करता हूं ।

२. मेरे परिवार में अग्निहोत्र नित्य होता है / नहीं होता है।

३. मुझे विश्वानिदेव आदि प्रार्थना मन्त्रों का अर्थ आता है / नहीं आता है।

४. मुझे यज्ञ मन्त्रों का अर्थ आता है / नहीं आता है।

५. यज्ञ में मेरी श्रद्धा है / श्रद्धा नहीं है।

६. यज्ञ के भौतिक लाभों में मेरी आस्था है / नहीं है।

७. यज्ञ के आध्यात्मिक लाभ में मेरी आस्था नहीं है / है।

स्वाध्याय

१. स्वाध्याय में मेरी रुचि है / नहीं है ।

२. मैं नित्य स्वाध्याय करता हूं / नहीं करता हूं / करूंगा।

३. मैं आध्यात्मिक / दार्शनिक / सामाजिक / साधारण / ग्रन्थों के स्वाध्याय में रुचि रखता हूं ।

४. मै ________________ (समय) स्वाध्याय करता हूं।

५. मैं ________________ ग्रन्थों का स्वाध्याय करता हूं ।

मैं आर्य समाज ··················· सदस्य हूं ।

नाम ·······································

पता ·······································

फोन ·······································

(इच्छा न हो तो नाम पता न लिखें)

ईमानदारी से ये आंकड़े तैयार किये जांय। आलोचना उद्देश्य नहीं होना चाहिए, सुधार और केवल सुधार ही उद्देश्य हो। कभी-कभी समाज के प्रधान, मन्त्री, अन्य अन्तरङ्ग सदस्य भी संध्या करवायें। आपस में मन्त्रों के अर्थों की चर्चा करें। अपने स्वाध्याय से एक दूसरे को लाभान्वित करें।

पाठकों, विद्वानों सुचिन्तकों से प्रार्थना है कि इस दिशा में यदि और भी कोई सुझाव दें तो अति सुन्दर हो।

●

एक मौलिक शंका समाधान

पं रामदयालु शास्त्री तर्क शिरोमणि
महोपदेशक-३, कृष्णाटोला, अलीगढ़

आर्य-समाज समस्तीपुर (बिहार) के मंत्री श्री प्रभुदीय प्रसाद वर्मा ने आर्यप्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश लखनऊ के पास निम्न शंका भेजो है। सभा ने मेरे पास समाधान के लिये भेजा है। तदनुसार शंका का समाधान आर्यसंसार के पाठकों के लाभार्थ प्रस्तुत है।

शंका १-संस्कार विधि गृहस्थ प्रकरण में महर्षि दयानन्द सरस्वती ने मनुस्मृति के अध्याय ४ श्लोक ८५ का अर्थ करते हुए लिखा है कि दशहत्या के समान चक्र अर्थात् कुंम्हार तथा गाड़ी से जीविका करने हारे दशचक्र के समान ध्वज अर्थात् धोबी (तथा) मद्य को निकालकर बेचने हारे, दशध्वज के समान वेश अर्थात् वेश्या, भड़वा, भौंड़ दूसरे की नकल अर्थात् पाषाण मूर्त्तियों के पूजक (पुजारी) आदि और दशवेश के समान जो अन्यायकारो राजा होता है, उनके अन्न आदि का ग्रहण अतिथि लोग कभी भी न करें।

स्वामी दयानन्द जी महाराज के इस कथन से यह मालूम पड़ता है कि कुम्हार, गाड़ीवान, तथा धोबी को जीविका त्याज्य है। क्योंकि इन वृत्तियों को करने वाले हत्यारे होते हैं। अतः कुम्हार धोबी और गाड़ीवान् का अन्न अतिथि को ग्रहण न करना चाहिए।

कृपया व्याख्या के साथ स्पष्ट करें कि किस प्रकार ये हत्यारे हैं और इन तीनों वृत्तियों को शुद्ध और लोकोपकारो बनाने के लिए आर्यसमाज का क्या सुझाव है?

मनुस्मृति के इसी मंत्र का अर्थ श्री स्वा० दर्शनानन्द सरस्वतो के किये अनुवाद वाले मनुस्मृति में कुम्हार तथा धोबी के स्थान पर तेली तथा कलाल किया है। कृपया इस घोटाले को भी स्पस्ट करें।

उत्तर—मानव धर्मशास्त्र सर्वप्रथम विधि ग्रन्थ है। उसमें ब्राह्मण क्षत्रिय आदि वर्गों के लिये वृत्ति का विधान करते हुए इस बात का विशेष निर्देश दिया गया है कि जीविकोपार्जन में कोई अन्याय अधर्म न किया जाये, तभी, लोग सुखसे जीवन व्यतीत कर सकेगें। इसीलिये म० अ०-४ श्लोक ११ में लिखा है "गृहस्थ जीविका के लिये कभी-२ शास्त्र विरुद्ध लोकाचार का वर्त्तमान न करें। किन्तु जिसमें किसी प्रकार की कुटिलता मूर्खता मिथ्यापन वा अधर्म न हो उस वेदोक्त धर्म सम्बन्धी जीविका को करें" इसके पश्चात् उन छोटी से छोटी बातों का भी निषेध करते गये जिनमें किसी प्रकार के अधर्म का आभास हो सकता है जैसे ब्राह्मण के लिये दूध, दही आदि रसों का बेचना। दूध दही मनुष्य के लिये उपयोगी एवं उत्तम खाद्य पदार्थ हैं किन्तु बछड़ा बछड़ी के प्रति अन्याय की संभावना हो सकती है। जो द्विज ब्रह्मवर्चस् कामनावाले के लिये उपयुक्त नहीं है। मनुजी ने अ० ३ श्लो० १०४ में लिखा है यदि गृहस्थ पराया अन्न खाता है वह उसका पशु बनता है। अतः गृहस्थ को भी पराये घर भोजन की इच्छा नहीं करनी चाहिए। दूसरे के घर भोजन करना अतिथि का ही काम है। महर्षि दयानन्द जी के

शब्दों में, "धार्मिक परोपकारी, सत्योपदेशक, पक्षपातरहित शान्त सर्व हितकारी विद्वान् ही अतिथि हो सकता है। चूंकि अतिथि धर्मोपदेष्टा होता है उसे पवित्राचार, निर्मल बुद्धि और उच्च विचारों की आवश्कता है।

महर्षि पतञ्जलि ने चरक सूत्र स्थान में "त्रयउपस्तम्भा इत्याहारः स्वप्नोब्रह्मचर्यमिति। स्वास्थ्य के तीन स्तम्भ आहार, निद्रा, ब्रह्मचर्य लिखें हैं। आहार पहिला है और निद्राव ब्रह्मचर्य का आधार है। छन्दोग्योपनिषद में "आहार शुद्धे सत्व, शुद्धि, सत्व शुद्धौध्र्वा स्मृतिः में संकेत किया है कि बुद्धि का अच्छा बुरा होना आहार पर निर्भर हैं। आहार शुद्ध दो प्रकार से होता है। १ सात्विक पदार्थ २ शुद्ध कमाई। गीता में सात्विक, राजस, तामस तीन प्रकार के भोजनों का उल्लेख है। तथा जैसा अन्न खायेगा उसका प्रभाव बुद्धि, मन पर पड़ेगा। द्रौपदी के साथ अन्याय होता हुआ देखकर भीष्मजी ने धर्माधर्म के विवेचन से इनकार कर दिया—वद्धोऽस्म्यर्थेन कौरवैः कहकर अपनी बुद्धि पर पापी कौरवों के अन्न का प्रभाव बताया।

स्मृतिकारों ने पाप से पैदा किये अन्न का निम्न शब्दों में वर्णन किया है—

अन्नंभुक्तातुयोयस्य पुनः पापं करोतिचेत्
अर्धोऽर्धंतस्य पापानां तस्मै दात्रे प्रयच्छति
अधर्मोपार्जित तैर्द्रव्ययैर्य करोत्यौर्ध्वं देहिकम्
नचतस्य फलं किञ्चित् नचतत्प्रेत्य नोइह ॥

किसी का अन्न खाकर जो पाप करता है उस पाप का आधाफल अन्नदाता को भोगना पड़ता है। अधर्म से पैदा किये धन से जो दानपुण्य किया जाता है। उसका फल न इस लोक में न परलोक में प्राप्त होता है। इसीलिये यह निर्देश किया की गृहस्थ को श्रेष्ठ आजीविका करनी चाहिये। जहाँ भी पाप के होने की संभावना दिखाई दी वहीं अन्न का निषेध कर दिया।

राजान्नं हरते तेज; शूद्रान्नं ब्रह्मवर्चसम्
स्वसुतान्नंच यो भुङ्क्ते स भुङ्क्ते पृथिवीमलम्।
शूद्रान्नेनतु भुक्तेन यो द्विजो जनयेत्सुताम्
यस्यान्नं तस्यते पुत्राः अनान्छुक्रस्य संभवः ॥

आंगिरस, आपस्तम्ब,

राजा का अन्न तेज को हर लेता है, शूद्र का अन्न ब्रह्मवचस् को हर लेता है। अपनी पुत्री का अन्न जो खाता है वह सारी पृथ्वी का मल पाप खाता है। शूद्र का अन्न खाकर ब्राह्मण जो पुत्र पैदा करता है। चूंकि अन्न से वीर्य की उत्पत्ति है। इसलिये जिसका अन्न है उसी को सन्तान।

राजा के अन्न में पाप की संभावना है इसलिये इन्द्रधुम्न सत्ययज्ञ उद्दालक ऋषियों ने अश्वपति का अन्न ग्रहण करने से इन्कार कर दिया। जिसको पढ़ने-पढ़ाने से कुछ न आवे, आर्यत्व के संस्कारो से भिन्न, सबकी सेवा वृत्ति करेगा। भक्ष्याभक्ष्य विवेक नहीं करेगा पुत्री का नाम दुहिता है उसका अन्न खाने से मर्यादा भंग हो जायेगी। इनके अन्न का निषेध करना बुद्धि की पवित्रता के लिये ऊंचा आदर्श है।

महर्षि दयानन्द जी महाराज ने सत्यार्थ प्रकाश दशम समुल्लास में लिखा है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य के घरों में शूद्र ही भोजन बनावें किन्तु शूद्र घर का अन्न और उसके पात्रों में आपत् काल में ही खावे। स्पष्ट है कि शूद्र अस्पृश्य नहीं है। किन्तु उसका अन्न और पात्र अस्पृश्य हैं। महर्षि ने चमार भंगी-जो मृत पशु का मांस खाते हैं मलमूत्र उठाकर उन्हीं हाथों से खा लेते हैं दूसरों का झूठा खाते हैं यवन, ईसाई गोमांस शूकर मांस खाते मद्य पीते हैं। मलमूत्रत्याग के बाद उसी पानी से हाथ मुंह धोते हैं। इनके पात्रों में और घर का अन्न खाने से आर्यों में भी दोष आ सकता है इसलिये महर्षि ने लिखा है—ईसाई मुसलमान आदि मद्य मांसाहारियों के हाथ के खाने में आर्यो को भी मद्यमांसादि खाना पीना अपराध पीछे लग पड़ता है" आगे लिखते हैं" काबुल-कंधार, ईरान अमेरिका यूरोप आदि देशों के राजाओं की कन्या गान्धारी माद्री उलोपी आदि भारत के राजाओं के साथ व्याही थीं। शकुनि आदि कौरवों के साथ खाते पीते थे। महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में भूगोल के राजा ऋषि-महर्षि-आये थे। एक ही पाकशाला से भोजन किया करते थे जब से मुसलमान आदि के मत-मतान्तर चले उन्होने मद्यपान, गोमांस आदि

का खाना पीना स्वीकार किया उसी समय से भोजनादि का बखेड़ा हो गया।" इससे यह स्पष्ट है कि महर्षि समस्त देशों के साथ विवाह सम्बन्ध और खानपान के पक्ष में थे, किन्तु अभक्ष्य पदार्थ न हो तथा अधर्म से पैदा किया हुआ न हो। चूंकि भोजन का प्रभाव मन, बुद्धि पर पड़ता है। वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर के महा० हरिराम जी को पशु मारने एवं मांस खाने के स्वप्न आये चूंकि दूकानदार ने तराजू के पलड़े में मांस तौला था उसीमें महा० हरिराम को आटा तोल दिया था। रणवीर जी (आनन्दस्वामी के पुत्र) को जेलखाने में एक कन्या को परेशान करने का स्वप्न इसलिये आया चूंकि जेल में उनका भोजन एक ऐसे कैदी ने बनाया था जो किसी कन्या का शीलभंग करने के अपराध में सजा काट रहा था। उड़िया बाबा के साथ बारह साधुओं को स्वप्न दोष इसलिये हो गया था चूंकि गृहस्थ ने सन्तान की कामना से उन्हें भोजन कराया था। अन्न का प्रभाव व्यापक रूप से मनुष्य के ऊपर पड़ता है। यह प्राचीन आचार्यों का और महर्षि दयानन्द का विश्वास था। गृहस्थ अपनी दिनचर्या में वृत्ति के लिय कोई पाप न करे किन्तु कुछ पाप बिना इच्छा के हो जाते हैं। महाराज मनु ने उनके लिए भी प्रायश्चित लिखा है

> पंचसूनागृहस्थस्य चुल्लिपेषण्युपस्करः
> कण्डिनी चोदकुम्भश्च बध्यते यास्तु वाहयन्
>
> अ० ३

अर्थात् झाड़ू, शिल, उलूखल मूलश रखने का स्थान, पात्र रखने का कुंड आदि स्थानों से जो पांच सूना हिंसा दोष बिना कारण लग जाता है। उसके लिए पंचयज्ञों में प्रायश्चित् लिख दिया है। महर्षि ने दैविक यज्ञ का लाभ बताया है। कि मनुष्य अपने शरीर से जितना दुर्गन्ध निकालकर सृष्टि में विकार पैदा करता है। उतना यज्ञ नित्य करना चाहिए। इस प्रकार के कार्यों से मनस्तोष, पापों की ओर से निवृत्ति होती है और वायु को सुगन्ध देकर दुर्गन्ध फैलाने के पाप का प्रायश्चित होता है। यह बात स्पष्ट हो गई कि वैदिक चर्या में, सात्विक भोजन और शुद्ध कमाई पर जीवन को आधारित कर दिया है। इसमें छोटे से छोटे पाप से भी बचने की प्रवृति का निर्देश किया गया है। कुम्हार, धोबी, तेली, गाड़ीवान् के लिए हत्यारा शब्द का प्रयोग सर्वथा अनुचित है। किन्तु जिस प्रकार गृहस्थ को बिना इच्छा के भी कुछ स्थानों पर हिंसा करनी पड़ जाती है। इसी प्रकार गाड़ीवान्, कुम्हार आदि को अपनी वृत्ति के साधनों से हिंसा लग जाती है। वेश्या मद्य बनाने बेचने वाले अपनी इच्छा से किसी का अनिष्ट नहीं करना चाहते किन्तु उनकी वृत्ति से अनिष्ट हो जाता है। ऐसे अन्न के ग्रहण करने से उस श्रेष्ठ गुण संपन्न अतिथि के मन-बुद्धि पर दूषित प्रभाव पड़ने की आशंका हो सकती है। सर्वश्रेष्ठ कर्मयज्ञ में यदि सामग्री समिधायें घुनी कीड़ेवाली होंगी तो पुण्य के स्थान में पाप हो जायेगा। शराब, वेश्या आदि की वृत्तिया त्याज्य हैं। संशोधनात्मक नहीं है किन्तु चमार भंगी आदि वृत्तियां संशोधनार्थं है। पुजारी, भाड़े भड़वे बिना श्रम अनुपयुक्त रूप से वृति पैदा करते हैं। अतिथ के ऊपर इनके अन्न का प्रभाव अच्छा नहीं होगा। गाड़ी चलाने वाले से बहुत सी हिंसा हो जाती है। कुम्हार के पात्र पकाने के आग में, तेली के कोल्हू में अनेकों जन्तु मरते हैं। धोबी जल को दूषित करके जलजन्तुओं को एवं अन्य प्राणियों को रोग का कारण बनाता है। इनका अन्न "धार्मिक परोपकारी, सत्योपदेशक पक्षपातरहित, शान्त सर्वहितकारी विद्वान् अतिथि की बुद्धि पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकता है। किन्तु इन सबकी वृति संशोधनात्मक है। किसी कारण भोजन त्याज्य होने से वह हत्यारा नहीं कहा जासकता। पुत्री, राजा का भोजन त्याज्य है किन्तु वे हत्यारे नहीं हैं। इसी कारण शूद्र, चमार, भंगी तेली, धोबी, गाड़ीवान् का अन्न अतिथि के लिए त्याज्य होने से इन्हें हत्यारा नहीं कहा जा सकता। गृहस्थ को नित्य चुल्ली पेषनी आदि द्वारा पंचसना हिंसा दोष लगता है। किन्तु वह हत्यारा नहीं है। इन्हें प्रासंगिक दोष और अपराध कहते हैं जिनका संशोधन और प्रायश्चित होता। जो स्वेच्छा से जानबूझकर हत्या करता है वह हत्यारा होता है उसके लिए दण्ड होता है। प्रायश्चित और संशोधन नहीं हो सकता। किसी कारण से किसी के अन्न का त्याज्य होना पृथक् है, हत्यारा होना पृथक् विषय है।

—घोटाला का भ्रम—

वैदिक वांङ्मय और लौकिक साहित्य में भी एक शब्द के अनेक अर्थ होते हैं। संस्कृत शब्दार्थ कोशों में चक्र-कुम्हार

को चाक, तेली का कोल्हू-चक्राङ्ग गाड़ी/तथा चक्री, चक्रजीवी चक्रोपजीवक का अर्थ कुम्हार तेली है। ध्वज-व्यवसायी कलाल तथा ध्वजी कलवार के लिए प्रयुक्त है। अतः स्वामी दर्शनानन्द जी के अर्थों में कोई अन्तर नहीं है।

उक्त समाधान मैंने अपने स्वाध्याय और बुद्धि के अनुसार किया है।

—o—

—: वृक्षों में जीव : एक भ्रांति :—

विद्याभूषण, पं॰ ओंकार मिश्र, "प्रणव" शास्त्री एम॰ ए॰
आर्य नगर फीरोजाबाद

"दयानन्द-सन्देश" संयुक्ताङ्क मास दिसम्बर जनवरी '७६ को पृष्ठ १३ १४ पर "वृक्षों में जीव एक तथ्य" शीर्षक लेख पं॰ सुघुम्न जी व्याकरणाचार्य एम॰ ए॰ रिसर्च स्कॉलिर इलाहाबाद यूनिवर्सिटी का प्रकाशित हुआ है। पं॰ सुघुम्न जी ने "वृक्षों में जीव नहीं" शीर्षक लेख के लेखक तर्क शिरोमणि पं॰ राम दयालु शास्त्री शास्त्रार्थ महारथी के दिए हुए चैलेञ्ज पर टीका टिप्पणी करते हुए लिखा है। "इतना बड़ा चैलेञ्ज कोरे अभिमान के अतिरिक्त कुछ नहीं"।

मेरा विचार है कि आदरणीय पं॰ राम दयालु जी शास्त्र कि विषय में उपर लिखित शब्द ही कोरे अभिमान के अतिरिक्त कुछ नहीं है। शांस्त्रार्थ महारथी चैलेञ्ज दिया ही करते हैं। असत्य एवं भ्रम निवारणार्थ चैलेञ्ज देना ही चाहिए। आप चाहें तो चैलेञ्ज स्वीकार कर पूज्य पंडितजी से शास्त्रीय विचार विमर्श कर सकते हैं।

आप वृक्षों में जीवमानते हुए लिखते है कि "वृक्षों में जीव भाव तर्क और प्रमाण दोनों से सिद्ध हो सकता है। आपके सम्पूर्ण लेख को विचार पूर्वक पढ़ने पर विज्ञपाठक इसी परिणाम परा पहूंचने कि लेखके प्रारम्भ में की हुई प्रतिज्ञा को पं॰ लक्षण ओर प्रमाणों से स्वंय ही सिद्ध नहीं कर पाये। तथा पं॰ जी स्वंय इस विषय में भ्रान्त है तभी तो वृक्षों में जीव भाव तर्क और प्रमाणों से सिद्ध हो सकता हैं,। ऐसा लिख रहे हैं। लिखते। जीवभाव सिद्ध हो सकता है, और सिद्ध है, इसमें बहुत अन्तर है।

आगे आप लिखते हैं—"सच यह है कि किसी में जीव है या नहीं इसका निर्णय गति या कम्पन के द्वारा नहीं हो सकता क्यों कि सभी निर्जीव मशीन हमसे अधिक गति करती हैं।

अर्थात् आप जीवधारी की गति और मशीन की गति को एक जैसा ही समझ रहे है। पंडितजी ? इतनी साधारण बात को तो सर्व साधारण भी जानता है, कि मशीन में गति स्वंय न होकर चेतन जीवधारी ड्राइवर के कला कौशल की देन हैं, जबकि जीवधारी मनुष्य पशु आदि प्राणियों में गति की विद्यमानता स्वंय अपनी देन है। फिर मशीन और जीवधारी की गति को समानता का उदाहरण देना केवल भ्रान्ति नहीं तो, क्या है। यद्यपि आप जीव की सत्ता की विद्यमानता को जीव-गत इच्छा द्वेषादि गुणों के आधार पर ही निर्णीत करते है। तदपि अग्रिम अनुच्छेद में ही आर्य जगत के मूर्धन्य दार्शनिक स्व॰ पं॰ गंगा प्रसाद जी उपाध्याय का यह जो प्रसिद्ध तर्क है कि "वृक्षों में इच्छा द्वेषादि कुछ नहीं पाये जाते इसलिए उनमें आत्मा नहीं हैं। इस सिद्धान्त से असहमति भी प्रकट कर रहे हैं। किन्तु चातुर्य यह है, कि आत्मा के लक्षण को स्पष्ट करने के लिए वैशेषिक दर्शन का सुप्रसिद्ध जो सूत्र :—

"प्राणापान निमेषोन्मेष जीवन मनोगतिन्द्रिय विकार सुखदुखेच्छाद्वेष प्रयत्नश्चात्मनो लिङ्गनि"।

प्रस्तुत किया है, इसकी व्याख्या करते हुए जीवात्मा के लक्षणों में केवल प्राण और आत्मा पर ही कुछ शब्द लिखे

है। सूत्र में समागत शेष निमेष, उन्मेष, जीवन मनोगति आदि लक्षणों पर तो कहीं विचार स्पर्श भी नहीं किया है। क्योंकि पं० जी स्वयं जानते है वृक्षों में जीव भाव सिद्ध करने के लिए उल्लिखित लक्षणों पर यदि विचार स्पर्श करते तो वे एक ऐसी उलझन में फंस जाते कि जिससे निकलना असम्भव ही होता। क्योंकि वृक्ष में निमेष, उन्मेष, जीवन मनोगति इन्द्रिय विकार सुख दुःख इच्छा द्वेष प्रयत्न तो आप वृक्षों या बीज में कभी भी सिद्ध नहीं कर पायेंगे। भला सोचिए जीवधारी प्राणियों के सदृश किसी वृक्ष या बीज में मन तथा इन्द्रियों का सक्षात्कार आज तक किसी ने किया है। जब इन्द्रियाँ औरे मन ही नहीं तो इनके गति और विकार प्रश्न ही नहीं उठता।

पं० जी! वृक्षों में जीव मानने से पूर्व वृक्षों को शरीर सिद्ध करना पड़ेगा। शरीर सिद्ध के पश्चात् निमेष, उन्मेष, मनोगति इन्द्रियादि को सिद्ध करना पड़ेगा। तदनन्तर वृक्षों को सजीव मानने वाले के समक्ष-एक प्रश्न तो समाधान के लिए सदैव अड़ा रहेगा। कि यदि सभी वृक्षों में जीव आपकी मान्यतानुसार सुषुप्ति दशा में है, इनको सुख दुःख का भोग नहीं होता तो फिर :—

"आत्मनो भोगायतनत्वंशरीरम्"

इस दार्शनिक मान्यता के आधार पर सुख-दुःख के भोग के अभाव में वृक्षों में जीव किस कारण से निवास कर रहा है। वैशेषिक दर्शन के उल्लिखित सूत्र से केवल प्राण शब्द को लेकर जो आपने "जहाँ-जहाँ प्राण होता है, वहाँ-वहाँ आत्मा होता है" इस व्याप्ति की मनगढ़न्त कल्पना की है, वह केवल आप अपने साथ ही नही बल्कि दर्शनकार कणाद् तथा इस सूत्र के साथ भी भूलरहे है। भलायह कौन सा 'धर्मग्राहक' मान है कि सूत्र में प्रतिपादित बारह लक्षणों में से केवल एक लक्षण को स्वीकार कर वृक्षों में आत्म तत्व की सिद्धि की जावे।

आगे समादरणीय पं० गंगा प्रसाद जी उपाध्याय के तर्क सङ्गत अनुमान कि "सभी प्राणियों में सुप्ति के बाद जागृत अवस्था देखी जाती है, इसलिए वृक्षों में भी देखी जानी चाहिए" का खण्डन करते हुए आप केवल इतना ही लिख सके कि "यह कोई जरूरी नहीं है"।

पं० जी उपर लिखित अनुमान अनुभूति के आधार पर स्वयं सिद्ध प्रमाण है। क्या आप इस तथ्य से असहमत हैं, कि प्रत्येक जीवधारी में प्राणी सुषुप्ति के बाद कभी-कभी कहीं न कही, किसी न किसी प्रकार जागृत अवस्था में अवश्य हो जाना चाहिए। क्योंकि शरीर में इन तीन दशाओं के होने के लिए जीव के स्थान विशेष नियुक्त है। इसके लिए देखिए महर्षिदयानन्द कृत सत्यार्थ प्रकाश अष्टमसमुल्लास पृष्ठ १२१ का (वैदिकयन्त्रालय अजमेर आवृत्ति ३१) लिखित प्रकरण

"देखो शरीर में किस प्रकार (ज्ञानपूर्वक सृष्टि रची हैं .... जीव के जागृत स्वप्न, सुषुप्ति अवस्था भोगने के लिए स्थान विशेषों का निर्माण। इस प्रकार यदि आप वृक्षों को शरीर मानते हैं, तो इन में जीव की विद्यमानता के लिए जागृत् स्वप्न सुषुप्ति दशा भोगने के लिए स्थान विशेष का तथा तीनों दशाओं का होना अनिवार्य है। आप इस प्रकरण में दार्शनिकता में भटकते हुए ईश्वर की सर्वज्ञता पर भी पिल पड़े। जो कि आपने अनुमान बना डाला कि "जहाँ-जहाँ आत्मत्व है, वहाँ-वहाँ अल्पज्ञत्व है, क्यों कि ईश्वर में भी आत्मा है, वह भी अल्पज्ञ होना चाहिए। इस का खन्डन बाध भी दोष मान कर ही हो सकता है, अन्य कोई उपाय नहीं।"

आपने इतना लिखने के पश्चात् भी बाध दोष की व्याख्या नहीं की। आपके उपर लिखित व्याप्ति-वाक्य के बाद में लिखे गये वाक्य ने जीवधारी प्राणियों को और ईश्वर को एक ही श्रेणी में लिटा दिया। विज्ञपाठक समझ सकेंगे कि जैसा जीवात्मा का शरीर के साथ आधार आधेय सम्बन्ध है, वैसा ईश्वर का नहीं। क्योकि ईश्वर निराकार है ईश्वर में आत्मा नहीं है, बल्कि ईश्वर आत्मास्वरूप है साथ ही—

"ज्ञानाधिकरणमात्मा सद्विविधि : जीवात्मा परमात्मा चेति। तत्रेश्वरः सर्वज्ञः परमात्मा एक एव जीवस्तु प्रतिशरीरं मियो विमुनित्यिश्च"।

दर्शन की इस मान्यता के आधार पर "जहाँ-जहाँ आत्मा है, वहाँ-वहाँ अल्पज्ञत्व हैं। ईश्वर के विषय में इस व्याप्ति को घटाने का अवसर ही उपस्थित नहीं होता। स्पस्ट तथा आत्मा अल्पज्ञ है, और परमात्मा सर्वज्ञ है।

वृक्षों में घटने बढ़ने की जो प्रतिक्रिया है, वह निश्चित रूपेण "रासायनिक" ही माननी चाहिए बढ़ने के लिए तो कङ्कड़ और पत्थर भी बढ़ते हैं। गत दो वर्ष पूर्व एक चमत्कारिक चपाती की चर्चा धर्मयुग पत्र में चली थी। मैंने स्वयं उस पदार्थ का परीक्षण किया था वह पदार्थ एक शकल के रूप में चीनी मिट्टी के वर्तन में पड़ा रहता था। उसमें प्रतिदिन बिना चीनी दूध के चाय का पानी डाला जाता था। वह पदार्थ पात्र के आकार में बड़ जाता था। तथा प्रति शुक्रवार को उसके किनारे में एक विभाजक रेखासी बन जाती थी। तथा उसमें से एक के दो, दो के चार, चार के आठ होते चले जाते थे। वह चपाती क्या पदार्थ था इसको कोई भी न बता न जान सका। इसी प्रकार का परीक्षण पं० वियादेव शास्त्री आ० स० मण्डलखेरा गढ़ आगर ने भी किया था तो क्या घढने बढ़ने की प्रतिक्रिया से उस पदार्थ में भी जीव की सत्ता मानी जावेगी।

वृक्षों के घटने बढ़ने की प्रतिकिया से जीव की सत्ता-सिद्धि में आपने जो प्रमाण उद्घृत किए है, जरा परीक्षण की कसौटी पर उनको कसकर देखलें।

आपने मुक्तावली के प्रमाण की केवल मात्र संस्कृत लिख दी उसका स्पष्टीकरण कुछ भी नही किया। इसके अतिरिक्त :

'अष्मजाण्डज जरायु जोन्द्रिज्ज साङ्कल्पिक सांसिद्धश्चति'। सांख्य दर्शन अ० ५, सूत्र १११।

जो सूत्र आपने प्रस्तुत किया है, इस पर भी कोई व्याख्या नहीं कर सके केवल इतना लिखा कि "चार प्रकार के स्थूल शरीरों में उद्भिज्ज नामक शरीर बताया है जिसके उदाहरण स्पष्टरूपेण वृक्ष है"।

कृपया इस सूत्र पर आर्य जगत् के वरेण्य दार्शनिक तर्कशिरोमणि स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज का स्पष्टीकरण देखने का कष्ट करें।

प्रश्न — सृष्टि कितने प्रकार की है ?

उत्तर— छः प्रकार की।

वस्तुतः उपरलिखित सूत्र में छः प्रकार की सृष्टि का वर्णन है, शरीरों का नहीं। जो कि निम्न प्रकार है।

(१) ऊष्मज=पसीने से उत्पन्न होने वाले प्राणी जूं, लीख आदि।

(२) अण्डज=अण्डे से उत्पन्न होने वाले प्राणी मुर्गी, कबूतर, तोता आदि पक्षी तथा सर्प, मगर, कछुआ आदि।

(३) जरायुज= झिल्ली से उत्पन्न होने वाले मनुष्य, पशु आदि।

(४) उद्भिज्ज=भूमि को फोड़कर उत्पन्न होने वाले वृक्ष; लता, वनस्पति आदि।

(५) साङ्कल्पिक=सृष्टि के प्रारम्भ में अमैथुनी क्रम से उत्पन्न होने वाली प्राणी।

(६) सासिद्धिक=हीरा, कोयला, सोना, ताँबा पेट्रोलियम आदि खनिज पदार्थ।

आपने उल्लिखित सूत्र के विज्ञान भिक्षुकृत भाष्य का अवलम्बन चार प्रकार के शरीरों की जो मान्यता स्थापित की है, वह सर्वथा साध्यकोटि में ही हैं। इस विषय में एक और स्पष्टीकरण पर ध्यान दीजिए। आपकी मान्यता के अनुसार उद्भिज्ज भी एक प्रकार का शरीर ही मान जावे तो भी अमैथुनी सृष्टि में तो सब चेतन और जड़ उद्भिज्ज ही होते है। क्योकि उद्भिज्ज शब्द का अर्थ ही है—"उत् ऊर्ध्वं भित्त्वा जायतेऽसौ उद्भिज्जः। अर्थात् भूमि को फोड़कर उपर निकलने वाले उत्पन्न होने वाले वृक्ष तथा प्राणी उभ्दिज्ज ही तो कहे जावेंगे।

तुष्यतु दुर्जन न्यायेन यदि उद्भिज्ज शब्द का अर्थ शरीर ही मात्र जावे तो सम्प्रति इस मैथुनी सृष्टि में भी ऐसे अनेक प्राणी है, जो कि भूमि की परतो को फोड़कर उत्पन्न होते है। इसके प्रत्यक्षीकरणार्थ आप वर्षा काल में खेतो में उत्पन्न होने वाले लाल रङ्ग के एक कृमि (राम की गुड़िया), केंचुए, गिजाई, मेंढ़क आदि की उत्पति को देख सकते हैं। सुदर्शन एक लम्बे और चोड़े पत्ते वाली औषधि-विशेष के पत्ते में इसी प्रकार का कभी-कभी एक कृमि उत्पन्न हो जाता है, जो कि यथा समय पत्ते परत को फाड़कर तितली के रूप में उड़ जाता है। इस आधार पर भी उभ्दिज्ज शब्द से वृक्ष में सजीवता मानने की आवश्यकता नहीं रह जाती हैं।

प्रस्तुत विषय में आपने जो सांख्य दर्शन के पाँचवे अध्याय का १२२ सूत्र "वृक्ष लतौषधि वनस्पति तृण वसिधा

दीना मपि मोत्य भोगायतनत्वं पूर्ववत्" । प्रस्तुत किया है उसमें भी अपने चालाकी से काम लिया है क्योंकि सम्पूर्ण सूत्र निम्न प्रकार है ।

नबाह्य बुद्धि नियमोवृक्ष गुल्म लतौषधि वनस्पति तृणवी रुधादीना मपि मोक्ृ भोगय तनत्वं पूर्णत" । क्यों कि आप विज्ञान भिक्षुकृत भाष्य के आधार पर वृक्षों में जीव भाव सिद्ध से पर तुले हुए हैं, इसी कारण आपने सूत्र के प्रथमांश "नबाह्यबुद्धि नियमः" को चुराकर अपने पास रख लिया और शेष सूत्रांश से लगे वृक्षों में जीव सिद्ध करने । कृपया इस सूत्र पर भी पूज्य स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज का पष्टी करण देखिए ।

प्रश्न—सुसुप्ति दशा में बाह्य पदार्थों का ज्ञान नहीं, इसकारण उस दशा में शरीर को भोगायतन मानना ठीक है, या नहीं ।

उत्तर—पढ़िए सूत्रार्थ—"जिसमें बाह्य बुद्धि होती है, उसको शरीर कहते हैं, यह नियम भी नहीं हैं क्यों कि मृतक शरीर में बाह्य बुद्धि नहीं होती तो क्या उसको शरीर नहीं कह सकते है । और वृक्ष, लता गुल्म, वनस्पति, तृण, आदि में बहुत से जीव भोग के निमित्त रहते हैं, और उनका बाहर के पदार्थों से कुछ भी सम्बन्ध नहीं रहता । यदि बाहर के पदार्थों के ज्ञान से ही शरीर माना जावे तो उन के शरीर को शरीर नहीं मानना चाहिए । इस स्थलपर स्पष्ट रुपेण उन कृमि कीरों का वर्णन है, जो कि वृक्षों में अनुशायी रुप में निवास करते हैं, अभिमानी रुप में नहीं । जैसे कि वट, गुलर आदि के फलों में अथवा चना,मटर आदि की कलियों में कृमि रहते हैं ।

"छान्दोग्योपनिषत्' के "अस्य यदेकांशाखां वा जहात्यथ साशुष्यति" ।

इस वाक्यको उद्घृत करते हुए आप लिख रहे है कि इस स्थल में वृक्षों में जीव भाव सूर्य के समान, स्पष्ट है । जब कि आपका सम्पूर्ण लेख वृक्षों में सजीवता सिद्ध करने के लिए घोर अमावस्या को रात्रि हो प्रतीत हो रहा है । जैसे कि आपने लिखा है" वृक्ष को जिम् शाखा को जीव छोड़ देता है, वह सूख जाती हैं" ।

रिसच स्कॉलर साहब ने यहाँ आपने रिसर्च में कमाल कर दिया । अर्थात् आप यह मानते हैं कि "वृक्ष में जीवात्मा उसके सम्पूर्ण अंश में विराजमान हैं, और जिस अंश को जीवात्मा छोड़ देता है, वह सुख जाता हैं" ।

तो क्या मनुष्यादि के शरीर में भी जीवात्मा सम्पूर्ण शरीर में रहता है । और लकवे आदि रोग के कारण शरीर के किसी अङ्ग-प्रत्यङ्ग में जब स्नायु शैथिल्य की स्थिति होतो है, तो क्या जीवात्मा उस अंश से पृथक चला जाता है । यदि आपकी यही कारण है, तो निश्चत ही यह वैदिक मान्यता के विपरीत है । क्यों कि जीवात्मा शरीर के हृद्देश में विराजमान, एकदेशी विभु है । सम्पूर्ण शरीर में नहीं ।

'वेदान्त परिभाषा' विषय परिचछेद पृष्ठ ३१६ का आप के द्वारा उद्घृत "वृक्षादीनामपि पाप फल भोगायतनत्वेन शरीर त्वम्" यह वाक्य तो आपको निग्रह-स्थान में ले पहुँचा । क्यो कि आपके मतानुसार (वृक्षों में जीव सुषुप्तिदशा में होंने के कारण सुख दुःख के भोग से रहित है, तो पाप का फल भोगना कहाँ रहा, तथा भोग के अभाव में शरीरत्व कहाँ रहा इसके अतिरिक्त भी वृक्षों में जीव मानने पर निम्नलिखित शङ्काएं आप से समाधान सिन्दूर की याचना करती है ।

(क) वृक्षों में जीव मानने पर मेंहदी, पाकड़, वट, शोशम, गुलाब, गन्ना, आदि अनेक वृक्षों की शाखाए काटकर आरोपण कर देने से वृक्षाकार हो जाती है, तो कृपया बताइए वृक्ष को शाखा काटने पर जीव वृक्ष में रहा अथवा शाखा में । अथवा कटी हुई शाखा में अन्य जीवात्मा घुसपैठिए के रुप में घुस बैठा । इसी प्रकार वृक्षेतर मनुष्य, पशु आदि के किसी अङ्ग को काट कर क्या मनुष्यादि को उत्पत्ति सम्भव हो सकती हैं ?

(ख, एक गिलोय की लता में कितने जीव रहते हैं, जब कि गिलोय को काट कर खूंटी पर लटका देने पर भी पत्तियाँ निकल आती हैं ।

(ग) शकरकन्द में जीव बेल में रहता है, अथवा शकरकन्द के भूमिस्थ भाग में । क्यों कि शकरकन्द से बेल

बढ़ती है, तथा बेल को बो देने ही शकरकन्द भूमि में उत्पन्न होते है।

(घ) क्या वृक्षादि को शरीर मानने पर उन में इन्द्रियां तथा इन्द्रियों के कार्य आप सप्रमाण सिद्ध कर सकेगे।

(ङ) "पत्थर चटा" एक प्रकार के चौड़े गोल और मोट पत्तेवाली औषधि विशेष में जीवात्मा कहाँ रहता है। जब कि इस औषधि के केवल मात्र पत्तां गाड़ देने पर ही वृक्षोत्पत्ति हो जाती है। यह अनुभूत प्रयोग है।

अन्त में लेख विस्तृति के लिए क्षमा याचना करता हुआ में उपर लिखित विचार विमर्श धरातल में स्पष्टतया लिखित चाहता हुँ, कि वृक्षों में जीव भाव की मान्यता केवल एक भ्रान्ति मात्र हो है। इसके समग्र स्पष्टी करण के लिए विद्याभास्कर पं० ओम्प्रकाशजी शास्त्री शास्त्रार्थ महारथी का ग्रन्थ वृक्ष जड़ हैं पठनीय एवं मननीय हैं।

ओ३म्

वैदिक अनुसन्धान

●

कलकत्ता में वैदिक अनुसन्धान न्यास का पंजीकरण कुछ महीनों पूर्व हो गया है। अनुसन्धानकर्त्ताओं एवं सुचिन्तकों को इस न्यास का कुछ परिपत्र मिल सके और अनुसन्धान को कुछ स्वस्थ दिशाएं मिल सकें, एतदर्थ वैदिक अनुसन्धान का प्रथम परिपत्र आर्य समाज स्थापना शताब्दी के अवसर पर दिल्ली के महाधिवेशन में वितरित किया गया था। चेष्टा यह थी कि परिपत्र सुधी समर्थ विद्वानों के हाथ में पहुँच सके। किन्तु कई लाख का जनसम्मर्द, जहाँ खोजे भी व्यक्ति का मिलना कठिन था, वहाँ वे परिपत्र सब विद्वानों को नहीं मिल सके होगें यह तो सुनिश्चित्त ही है। फिर भी कुछ विद्वानों को अवश्य ही परिपत्र मिला भी होगा ही। अभी तक आदरणीय विद्वान डा० श्री रामजी आर्य (कासगंज) का एक पत्र उस परिपत्र से सम्बन्धित एक विषय को लेकर आया है। उन्होने अपने एक परिचित वैद्य जी का पत्र भी अविकल रूप में भेजा है। हम दोनो पत्रो को अविकल प्रकाशित कर रहे हैं। साथ ही हम और विचारको से भी प्रार्थना करते हैं कि इस दिशा में हमारा मार्ग दर्शन करायें। हम दोनो पत्र लेखक विद्वानों का धन्यवाद करते हैं और भविष्य में सहयोग की प्रार्थना करते हैं।

पत्र (१)

कासगंज

ता० ४-२-७६

आदरणीय आचार्यजी नमस्ते।

दिल्ली महोत्सव पर आपके दर्शन हुए थे तथा आपने मुझे वैदिक अनुसन्धान का परिचय पत्र-१ भी दिया था। अनुसन्धान की सुविधा ट्रस्ट ने जुटा दी है। यह बड़ो उपयोगी बात है। यज्ञो पर अनुसन्धान किया जाना चाहिये मेरी इसमें विशेष रूचि है।

१. सन् ६९ के परोपकारी के किसी अंक में बम्बई के एक आर्य जन द्वारा अपने माल्दा आम के वृक्ष पर यज्ञ के प्रभाव का विवरण छापा था आपने भो देखा होगा कि वृक्ष के नोचे दैनिक यज्ञ करने व भस्मी को जड़ में डालने से वाझ वृक्ष मधुर आमों से लद गया था। यही नही वरन दस वर्ष तक न फलने वाला वृक्ष तीन या चार दिन यज्ञ करने से खूब फल देने लगा था।

२. हमारे निकट मे एक समाज मन्दिर के कुँएं में कीड़े जल में पड़ गये थे। मंत्री ने दैनिक यज्ञ की भस्मी

जल में ३ या ४ दिन डाल दो तो सभी कृमि नष्ट होकर जल शुद्ध हो गया था।

३. कुछ वर्षहुए गुरुकुल कांगड़ी के एक आयुर्वेदालंकार से मेरी भेंट हुई थी। मैने यज्ञ विषय पर उनसे चर्चा की थी तो उन्होंने उसके बाद कुछ परीक्षण किये थे और मुझे बताने वे मेरे पास स्वयं आये थे। हाल ही में मैने उनको पत्र लिखा था। उन्होंने उत्तर में जो अनुभव लिखे हैं, मैं आपको उनका वह पत्र भेज रहा हूँ। उससे आप को आगें और भी सोचने का अवसर मिलेगा।

कृषि को भूमि में जितना बीज डाला जाता हो उसका $\frac{1}{10}$ भाग बीज + उतना ही घृत + उससे द्वगनी यज्ञ सामग्री लेनी ठीक होगी सामग्री में बायविडङ्ग मिलाने से कृमियों का नाश होगा, सुगन्धित पदार्थों की मात्रा विशेष होने से फसल अधिक होगी, मधुर पदार्थ शकर आदि डालने से फल मीठा होगा, बीज डालने से फसल में दाना अधिक बनेगा। इस प्रकार सामग्री की औषधि योजना करना उपयुक्त होगा। फसल में रोग क्या हो सकते हैं, उनके निवारण की औषधियों को भी मिलाना उपयुक्त होगा। किस ऋतु में कौन रोग होता है उसके निवारण की आयुर्वेदिक दवाओं को भी डालना चाहिये किन्तु कड़वी-खट्टी दवायें नहीं डालनी चाहिये। पौधे या वृक्ष कोमल होने से उनको सहन नहीं करते हैं।

यज्ञ का समय सायंकाल सूर्यास्त के बाद रखना उपयुक्त होगा। क्योंकि उस समय वायु स्थिर होता है तथा यज्ञीय वाष्प या धूम खेतों में व्याप्त हो सकेगा, उड़कर दूर नहीं जावेगा। हवा का रुख भी देखना चाहिये ताकि यज्ञीय वायु खेतों की ओर ही जावे।

हमारे विचार से यज्ञ उस समय पहिले किया जावे जब बीज बोने पर कल्ले फटने लगें तथा कल्ले कुछ बड़े होने पर दूसरी बार व जब बाल में बीज पड़ने लगे तब तीसरी बार किया जावे। पहिला यज्ञ स्थल खेतों के मध्य में हो। दूसरी बार जिधर से वायु आ रही हो, उस ओर रखा जावे। खेत के मध्य में रखना सर्वदा उपयोगी रहेगा। एक खेत में थोड़ा-थोड़ा कई स्थानों पर यथा आवश्यकता यज्ञ किया जावे। यज्ञ की भस्म सारे खेत को स्वयं सुवासित करती रहेगी।

अनुभव से ऐसा ज्ञात हुआ कि वृक्ष वा खेती सुगन्धित यज्ञीय गैस को बहुत ग्रहण करते हैं।

इस विषय में आप अपने अनुसन्धान विभाग द्वारा विशेष परीक्षण करा सकेंगे।

यज्ञों के द्वारा रोग नाश का सिद्धान्त तो प्राचीन है। जिस रोग को निवारण करना है, उसको नष्ट करने वाली औषधियों का यज्ञ सामग्री में उपयोग करना चाहिये। यज्ञीय गैस के नासिका में जाने से वह औषधि फेफड़े में जाकर तत्काल रक्त में मिलकर समस्त शरीर पर प्रभाव करती है जब कि खाने से बहुत देर में असर करती है। किन्तु यज्ञ में धूम नहीं बनना चाहिये। तीव्र ज्वाला में थोड़ी औषधि डाली जावे। चिकित्सा की दृष्टि से विशेष सामग्री का निर्माण सुयोग्य वैद्य की देखरेख में किया जाना चाहिये जिसे पदार्थ विज्ञान को पूर्ण जानकारी हो।

हमने अपनी पुस्तक 'वैदिक यज्ञ विज्ञान' में इस विषय पर प्रकाश विस्तार से डाला है तथा यज्ञीय पदार्थों का भी आयुर्वेद विवेचन दिया है। पुस्तक की प्रति यदि आप ने न देखी होगी तो हम आपको भेज देंगे।

इस विषय में श्री पं० वीरसैन जी वेदश्रमी इन्दौर से भी विशेष अनुभव आप प्राप्त कर सकेगें।

आप की आर्य समाज ने यज्ञों पर अनुसन्धान का मार्ग प्रशस्त कर दिया है यह अतिउपयोगी कार्य हुआ हैं। आशा है आर्य विद्वानो के अनुभव आप मगाते रहेंगे तथा उनको आर्य संसार में प्रकाशित कर के सभी को आगे अनुसन्धान करने को प्रोत्साहित करते रहेंगे।
योग्य कार्य से स्मरण करते रहा करें।

—श्रीराम आर्य

पत्र (२)

ओ३म्

रा० आ० चि०, नरसैना
बुलन्दशहर
३१-१-७६

श्री भाई डा० श्री राम जी,

सप्रेम नमस्ते !

आशा के विपरीत अचानक आज दिनांक २९-१-७६ को आया आप का पत्र देखकर मन को संतोष हुआ कि आपने याज्ञिक कृषि के विषय में कलम उठाई है मैंने पहले भी मिलने पर आपसे कहा था कि याज्ञिक खेती की प्रेरणा मुझको सत्यार्थ प्रकाश पढ़ते हुए सत्यार्थ प्रकाश के इस वाक्य से मिली कि द्विजो को मल मूत्र के संसर्ग से उत्पन्न अन्न नहीं खाना चाहिए उसके बाद दान का अर्थ यज्ञ परक होने से दशांश दान का निकालना चाहिए इस मनुस्मृति के वाक्य से मुझे याज्ञिक खेती को स्फुरण हुई और नगले में किसानों को ईख बोने से पहले व वाद में कण्डो की धूनी खेतों पर ले जाते हुए देखकर यह यज्ञ का ही अपभ्रंश रूप है यह धारणा हुयी तथा वहीं मेरी प्रेरणा से एक किसान ने आपके पत्र में लिखी हुयी यज्ञ विधि से एक मन अनाज ज्यादा किया था पर वह याज्ञिक खेती अधूरी हो थी उसके वाद रामघाट में एक पास के गाँव वाले ने जिसने मोटर में मुझसे बात चीत की थी मुझको अचानक चिकित्सालय में आकर सूचना दी कि उसने एक एकड़ जमीन में जिसमें अंगूर भी बोये हुए थे यज्ञ विधि से कार्य दिया जिससे अंगूर को फसल दुगुनी हुयो तथा गेहूँ सवाया हुआ। अभी तक जो मै जान सका हूँ वह यह है। बीज का दशांश लेना चाहिए तथा उतना ही घो और सामग्री जिसमें मीठा, कपूर कचरी और बासा इत्यादि रोग नाशक दवाइयाँ हो तथा ढाक या आम की लकड़ी हो एवम् गोधूमाय च में इत्यादि जो मंत्र होली या दीवाली पर बोले जाते हैं उन मन्त्रों से बार-बार आहूतियाँ दी जावें। हवन कुण्ड खेत के बोच में तथा कच्चा हो ताकि हवन की गैस जमीन में फैल सके तथा उसका पानी भी यदि खेत में छिरका जा सके तो अच्छा रहेगा। ऐसा दिनांक २५-१-७६ के हिन्दुस्तान पेपर में भी मान्त्रिक खेती को देखकर समझ रहा हूँ आगे इसमें आवश्यक सामग्री उपयुक्त मंत्र तथा समग्री का चयन आपने करना है। इन निर्देशों के अन्दर की सामग्री में कृमि नाशक दवाइयाँ होनी चाहिए तथा बोये जाने वाले अन्न के वर्ग की बोटनीकल औषधियाँ आशा है कि परीक्षण एवं उसके परिणाम करने के बाद मुझको भी सूचित करेंगे तथा अखवार में छापकर जन साधारण का कल्याण भी।

—आयुर्वेदालंकार

पत्र (३)

डॉ० पुण्यमचन्द 'मानव'
एम.ए.,पी.एच.डी.
मिलट्री स्कूल, बंगलौर-२५
होली, १५-३-७६

श्री उपाध्याय जी,

नमस्ते।

'आर्य-संसार' जब भी प्राप्त होता है, अत्यधिक प्रिय लगता है। जनवरी '७६ के अंक में प्रकाशित "पुरुषार्थ प्रारब्ध से बड़ा है" "शताब्दी समारोह" के साथ-साथ पं० फूलचन्द्र शर्मा 'निडर'—द्वारा लिखित "आर्य समाज की सुदशा और दुर्दशा" विशेष रूप से हृदय ग्राही तथ्य-परक एवं युक्ति संगत लगे।

इन सुन्दर लेखों के लेखकों को मेरी हार्दिक श्रद्धा एवं सम्मान, कृपया पहुँचा दें।

"उस समय लंगोटी धारण करने वाले एक दयानन्द ने श्रद्धानन्द और लेखराम जैसे अनेक देश भक्तों देश के लिए बलिदान होने के लिए तत्पर कर दिया था, क्या वर्तमान के अनेक भगवें वस्त्र धारण करने वाले आर्य संन्यासी पुनः ऐसी ही धूम मचा सकते हैं। आपके विचार से निकट भविष्य में क्या ऐसी आशा की जा सकती है ?

यदि हो सके तो कृपया, आगामी किसी अंक में इस पर प्रकाश डालने का कष्ट करें।

आशा है आप स्वस्थ एवं प्रसन्न हैं। योग्य सेवान्, पुनः बधाई।

—डॉ० पुण्यमचन्द 'मानव'

आर्य गुरुकुल एटा में उत्तर प्रदेश के राज्यपाल श्रीयुत् एम० चैन्नारेडी का शुभागमन

१८ सितम्बर को माननीय राज्यपाल महोदय गुरुकुल भूमि में सपत्नीक पधारे।

१०८ कुण्डों की बृहद् यज्ञशाला में उन्होंने अत्यन्त श्रद्धा पूर्वक यज्ञ किया। गुरुकुल का समस्त कार्यक्रम जानकर तथा ब्रह्मचारियों का सस्वर वेदपाठ सुनकर बहुत प्रसन्न हुए।

अपना सुभाशंसन व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा है कि : "स्वतन्त्रता के पश्चात् स्वामी ब्रह्मानन्दजी दण्डी ने इस गुरुकुल की स्थापना कर देश की शैक्षणिक प्रगति में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के माध्यम से आप वैदिक संस्कृति को स्थायी रखने का सुन्दर प्रयास कर रहे हैं। यह बड़े दुःख की बात है कि विदेशी लोग संस्कृत भाषा को प्रश्रय दे रहे हैं, किन्तु हम अपनी प्राचीन भाषा तथा प्राचीन संस्कृति से अपरिचित होते जा रहे हैं।"

उन्होंने कहा कि "वेद केवल आध्यात्मिक विद्या के ही स्रोत नहीं हैं, अपितु समस्त ज्ञान-विज्ञान के भण्डार हैं। आज जिन सूक्ष्म यंत्रों का विकास चिकित्सा, आदि के क्षेत्र में हो रहा है उन सबका वर्णन हमारे प्राचीन ग्रन्थों में विद्यमान है।"

तेलगु भाषी होते हुए भी सुन्दर प्रवाह पूर्ण हिन्दी में वक्तव्य देते हुए उन्होंने कहा कि "हमारे महर्षियों ने जिन वर्णाश्रम -व्यवस्था का विधान किया था, जो व्यवस्था लम्बे समय तक समाज को सुगठित किये रही, उसका सुन्दर ढंग से पुनः संस्थापन होना चाहिए, यह काम आर्यसमाज ही कर सकता है। उन्होंने कहा कि "आर्यसमाज को मैं मजहबी या सम्प्रदायवादी संगठन नहीं मानता। आर्य समाज ही वह शक्ति है जो देश को ही नहीं अपितु समस्त विश्व को सही मार्ग बता सकता है।

अन्त में, मैं आशा करता हूँ कि गुरुकुल के ब्रह्मचारी राष्ट्र के अच्छे नागरिक बनेंगे तथा अध्यात्मिकता और भौतिकता के सुन्दर समन्वय के प्रतीक के रूप में संसार के सामने आयेंगे।"

गुरुकुल के प्रधानाचार्य श्री पं० ज्योतिः स्वरूपजी ने राज्यपाल महोदय को यजुर्वेद तथा सामवेद का हिन्दी भाष्य सत्यार्थ प्रकाश, महर्षि दयानन्द का जीवन-चरित्र इत्यादि ग्रन्थ भेंट किये।

॥ ओ३म् ॥

महर्षि दयानन्द मंदिर टंकारा

२९, फरवरी, १९७६

महर्षि दयानन्द सर्वप्रथम महान व्यक्ति थे जिन्होंने अमीर और गरीब, ऊंच और नीच, मजदूर और मालिक के बीच के अन्तर को दूर करने के लिए गुरुकुल के माध्यम से मन-वचन और कर्म से प्रयास करके शहादत पाई। इसलिए समाजवाद या साम्यवाद का प्रथम संदेश वाहक हम महर्षि दयानन्द को कह सकते हैं। उक्त शब्द सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के उपमन्त्री-आचार्य भगवान देवजी शर्मा ने शिवरात्रि महोत्सव के अवसर पर महर्षि दयानन्द की जन्म भूमि टंकारा में कहे।

श्री शर्मा जी ने कहा—महर्षि दयानन्द और कार्ल मार्क्स दोनो समकालीन महान व्यक्ति थे। दोनो ने मानव जाति के हो रहे शोषण को समाप्त करके उन्हें स्वतन्त्र विचारधारा के आधार पर चलकर जीवन के विकाश के लिए आगे बढ़ने की प्रेरणा दी। इन दोनों में अन्तर सिर्फ इतना था कि महर्षि दयानन्द मानवजाति के लिए आध्यात्मिकता आवश्यक समझते थे।

उन्होंने समस्त आर्य जनों से अपील की कि वे सरकार द्वारा किए जा रहे पाखण्ड विरोधी, सामन्त शाही के खिलाफ जो आन्दोलन चलाया गया है उसमें सरकार को पूर्ण सहयोग दें। सरकार द्वारा किए जा रहे उक्त कार्यों की प्रशंसा करते हुए उन्होने-शराब खोरी, दहेज प्रथा आदि को बंद कराने के लिए-तन तोड़ मेहनत की अपील की।

इस अवसर पर आचार्य भगवान देव जी शर्मा का—"योग मंदिर" मासिक पत्रिका के प्रकाशन करने पर अभिनन्दन किया गया।

गुजरात प्रान्तीय आर्य समाज स्थापना शताब्दी समारोह २३ से २५ [illegible] १९७६ को सूरत में मनाये जाने का निश्चय किया गया।

प्रचार विभाग
टंकारा

प्रेषक— आर्य समाज कलकत्ता
१९, विधान सरणी,
कलकत्ता-६

सेवा में
श्रीमान्

आर्य-समाज, १९, विधान सरणी, कलकत्ता-६ के लिए पं० उमाकान्त उपाध्याय, एम० ए० द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित तथा यूको प्रेस १, राजा गुरुदास स्ट्रीट, कलकत्ता-६ में मुद्रित।

ओ३म्

आर्य संसार

वार्षिक - विशेषाङ्क

महर्षि दयानन्द की देन

पौष
२०२७

दिसम्बर
१९७०

सम्पादक :
उमाकान्त उपाध्याय, एम० ए०

मूल्य : —
इस अंक का १ रु०
वार्षिक २ रु०

महर्षि स्वामी दयानन्दजी सरस्वती

आर्य-समाज कलकत्ता
१९, विधान सरणी,
कलकत्ता-६

ओ३म्

आर्य संसार

वार्षिक - विशेषाङ्क

पौष
२०२७

दिसम्बर
१६७०

सम्पादक :
उमाकान्त उपाध्याय, एम० ए०

मूल्य :—
इस अंक का १ रु०
वार्षिक २ रु०

महर्षि दयानन्द की देन

निबन्ध प्रस्तुति

* श्री स्वामी समर्पणानन्दजी सरस्वती
* श्री जा० पी० भट्टाचार्य
* श्री जयदेव एम० ए०
* श्री भवानीलाल भारतीय, एम० ए०, पी० एच० डी०
* श्री सुमेधा मित्र
* श्री चन्द्रप्रकाश आर्य एम० ए०
* शान्ति देवीजी शर्मा

आर्य-समाज कलकत्ता
१६, विधान सरणी,
कलकत्ता-६

प्रकाशकीय

तीन वर्ष पूर्व आर्य समाज कलकत्ता ने "महर्षि दयानन्द की देन" विषय पर एक सहस्र रुपये के पुरस्कार की घोषणा करके निबन्ध प्रतियोगिता का आयोजन किया था। इस प्रतियोगिता में हिन्दी, बंगला और अंग्रेजी भाषाओं में निबन्ध स्वीकार किये गये थे। अखिल भारतीय स्तर के उच्च कोटि के विद्वानों ने भाग लिया। आर्य समाज की अन्तरङ्ग सभा ने निम्नलिखित विद्वानों से निर्णायक बनने का अनुरोध किया :—

हिन्दी तथा अंग्रेजी के लिए—

डा० सत्यप्रकाशजी डी० एस० सी०
पं० सुखदेवजी विद्यावाचस्पति
प्रो० उमाकान्तजी उपाध्याय एम० ए०

बंगला के लिए—

श्री पं० दीनबन्धुजी वेद शास्त्री
डा० बुद्धदेव भट्टाचाय एम० ए० डी० फिल०
प्रो० उमाकान्तजी उपाध्याय एम० ए०

इन विद्वानों ने सानुग्रह इस भार को स्वीकार कर लिया। इनका निर्णय निम्न प्रकार था :—

श्री जी० पी० भट्टाचार्य	प्रथम
श्री स्वामी समर्पणानन्दजी सरस्वीती	द्वितीय
प्रो० जयदेवजी एम० ए०	„
श्री शान्तिदेवीजी	तृतीय

इस विशेषांक में इन पुरस्कृत निबन्धों के साथ कुछ अन्य प्रतियोगी निबन्ध भी प्रकाशित किये जा रहे हैं।

हम एतद्द्वारा सभी सम्बन्धित व्यक्तियों को आभार ज्ञापन कर रहे हैं—

—प्रकाशक

विज्ञापन-सूची

कभर पेज की सूची

॥ ओ३म् ॥

आर्य समाज कलकत्ता

१९, विधान सरणी की

वर्त्तमान वर्ष की गतिविधियों का परिचय

आलोच्य वर्ष में आर्य समाज कलकत्ता की कार्यावलियों का पर्य्यवेक्षण

(सन् १९७०-७१)

स्वामी दयानन्द सरस्वती के रूप में हमारे देश में क्रांति की जो छटा चहुँ ओर छिटक पड़ी थी वही कालान्तर में, आर्य समाज रूपी सरिता के आकार में बड़े तीव्र वेग से परिणत हो गई। "अज्ञानान्धस्य लोकस्य प्रज्ञानाञ्जनशलाकया। चक्षुरुन्मीलितंयेन तस्मै श्री ऋषये (दयानन्दाय) नमः।"

स्थान-स्थान पर आर्य समाज स्थापित हुये। विवेकी जनता में उत्साह की मात्रा उमड़ पड़ी। आज ९५ वर्षों का पुरातन ऐतिह्य हमारी पृष्ठ भूमि में है।

इस अवधि में हमारे त्यागी तपस्वी, आत्मवित्, क्रियाशील, पूर्ववर्त्ती आर्य जनों ने जो-जो आन्दोलन, अपने सिर-धड़ की बाजी लगाकर प्रारम्भ किये और उनमें साफल्य मण्डित भी हुए वे किसी से छिपे हुए नहीं हैं।

कलकत्ता महानगरी में भी आर्य समाज की नींव पड़ी। स्थानीय सभी श्रेणियों की जनता ने इसका हार्दिक स्वागत किया। विगत ८५ वर्षों के दीर्घकाल में हमारे पूर्वज, आज समाज के अनथक सेवकों ने वैदिक धर्म के प्रचार, प्रसार और जनता जनार्दन की निष्काम सेवा के विभिन्न अवसरों यथा घूर्णिवात्या मेदिनीपुर १९४२ प्रलयङ्कर दुर्भिक्ष पूर्वबङ्ग १९४३ नोआखाली नर संहार १९४६, देश विभाजन १९४७ के समय नो आखाली जिले के कई स्थानोंपर सहायता के केन्द्र जारी करके, त्रिपुरा राज्य में शरणार्थी सहायता, पार्वत्य अञ्चल में पार्वत्य प्रजा में जागृति लाकर, अहिन्दी भाषियों में हिन्दी प्रचार द्वारा, पुनः १९६४ से १९६९ तक कई अवसरों पर) कार्य करके सेवा सम्बन्धी कार्यों को जो चार चान्द लगाए हैं उनका प्रकाशन समाचार पत्रों तथा अन्य उपायों द्वारा सर्वसाधारण जनता के समक्ष समय-समय पर होता आया है। इन्हीं सब कार्यावलियों के आलोक में आर्यजन इस नाजुक समय में भी वैदिक धर्म, संस्कृति और सभ्यता के विस्तार के लिये यह ८५ वाँ वार्षिकोत्सव बड़े उत्साह से मना रहे हैं।

वर्त्तमान आलोच्य वर्ष में जो कुछ हुए, वे जहाँ वर्त्तमान अधिकारियों की लगन एवं परिश्रम के परिणाम हैं, वहाँ इनमें इन सबका योगदान है जिन्होंने अपने उदाहरणों से हमें अपने कार्य में आगे कदम बढ़ाने की प्रेरणा दी, जो कि अपने धन, अपने परामर्श एवं कार्यों से इन सेवा सम्बन्धी कार्यों में अंशीदार बने।

आर्य समाज के समक्ष इस समय कई समस्याएँ बड़े गम्भीर रूप में समुपस्थित हैं। इन सबको दृष्टिगोचर रखते हुए हम

चाहते हैं कि आर्य समाज द्वारा वैदिक सिद्धान्तों और मान्यताओं का अधिक प्रचार हो। इसके लिये नई से नई आयोजनाएँ प्रस्तुत करके उनको क्रियात्मक रूप देने का सतत प्रयत्न किया जायगा। आर्य समाज कलकत्ता स्थायी रूपसे जिन विविध क्षेत्रों में कार्य कर रहा है। हम उनका परिगणन निम्न प्रकार कर सकते हैं—

१ — शिक्षा संस्थायें :

आर्य समाज कलकत्ता के तत्वाधान में प्रत्यक्षतः दो विशाल उच्चतर विद्यालय : 'रघुमल आर्य विद्यालय' एवं 'आर्य कन्या महाविद्यालय' तथा अप्रत्यक्षतः अन्य अनेक आर्य विद्यालय शिक्षण सेवायें कर रहे हैं इनमें हमारी इन शिक्षा संस्थाओं की विशेषता यह है कि छात्र छात्राओं के चरित्र गठन, धार्मिक एवं सांस्कृतिक सम्प्रेषण एवं व्यापक आर्यत्व-निर्माण के द्वारा सुगठित जीवन-दर्शन के लिये विशेष दीक्षाएँ प्रदान की जाती हैं जिससे ये बालक अपने भावी जीवन के लिये अनुकूल प्रस्तुति प्राप्त कर सकें।

२ - पुस्तकालय :

आर्य समाज मन्दिर में प्रवेश करते ही वाम पार्श्व में अपना भव्य पुस्तकालय एवं वाचनालय है जिसका समय प्रातः ७ से ९ एवं सायं ६ से ९ बजे तक है। पुस्तकालय में मुख्यतः वेद, वैदिक साहित्य, धर्मशास्त्र, दर्शनशास्त्र, व्याकरण शास्त्र, साहित्य-शास्त्र एवं संस्कृत, हिन्दी, बंगला एवं अंग्रेजी भाषाओं में लिखित अनेकानेक विविध पुस्तकें सुसज्जित हैं। अध्ययन प्रेमी जन इन पुस्तकों से लाभ प्राप्त करते हैं।

पुस्तकालय में ही अन्तर्भुक्त वाचनालय है जिसमें देश-विदेश से विविध भाषाओं में प्रकाशित समाचार पत्रों एवं धार्मिक, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक, साहित्यिक एवं राजनैतिक पत्रिकाओं की सुविधापूर्वक सुव्यवस्था है।

पुस्तकालयाध्यक्ष महाशय श्री रघुनन्दनलालजी, जो स्वयं अनन्य धर्मनिष्ठ साहित्य प्रेमी विद्वान् अतएव आप्त पुरुष हैं; के निरन्तर निस्वार्थ प्रयासों से 'समाज' का यह 'पुस्तकालय-वाचनालय' उत्तरोत्तर प्रगति पथ पर अग्रसर है।

३ — दातव्य चिकित्सालय :

'महर्षि दातव्य चिकित्सालय', आर्य समाज मन्दिर, १९ विधान सरणी, वर्षों से रोग पीड़ित मानवों की निःशुल्क सेवा करता आ रहा है, जिसमें प्रतिवर्ष तीस हजार से अधिक रोगियों को सुचिकित्सा प्राप्त होती है। इस दातव्य चिकित्सालय की स्थापना सन् १९०९ ई० में हुई थी और तब से यह अपनी सेवाओं में निरन्तर अनुरत है। सम्प्रति रोगियों की दैनिक उपस्थिति १०० से २२५ तक हो रही है। चिकित्सालय को पं० श्री अमृतनारायणजी झा वैद्य, श्री कुमार ठाकुरजी कम्पाउन्डर तथा अन्य अनुसेवियों की नैष्ठिक सेवायें सम्प्राप्त हैं।

४ — सत्संग भवन एवं अतिथिशाला :

संगमरमरी दीवालों पर महर्षि श्री दयानन्दजी सरस्वती की आलोकमय उत्प्रेरक जीवनी के सजीव चित्रांकन (चित्रावली) से कलकत्ता आर्य समाज का भवन सर्वतः एक दर्शनीय स्थान बना हुआ है। महर्षि की जीवनी के भाव प्रवण चित्रांकन से चित्रकार श्री चारुचन्द्र खान की कलाकृति अमरत्व प्राप्त कर गयी है। समाज के इस विशाल भवन में उच्च व्याख्यान मंच, यज्ञशाला स्नानागारादि निर्मित हैं।

भवन की दूसरी मंजिल पर 'महारानी बिरला आर्य अतिथिशाला' है जिसमें वैदिक धर्म प्रेमी आर्य सिद्धान्त के अनुयायी अतिथियों के ठहरने का अधुनातन वास्तुकला-अन्य उत्तम प्रबन्ध है।

आर्यजनों के विवाहादि विशेष उत्सवों के आयोजनों की व्यवस्था भी भवन में होती है।

५—आर्य स्त्री समाज :

प्रति बुधवार २॥ बजे से ४ बजे तक आर्य समाज मंदिर में मातायें और बहिने हवन यज्ञ, सन्ध्यो पासना तथा प्रवचन का कार्यक्रम चला रही हैं। यातायात के साधनों के अभाव तथा नगर के दूर दूर के अञ्चलों में निवास करने के कारण सत्संग में पर्याप्त उपस्थित नहीं हो पाती थी। गत वर्ष माताओं तथा बहनों ने विचार विमर्श के बाद साप्ताहिक सत्संग को अधिक उपयोगी बनाने की योजना बनाई। हम देवियों को उनकी योजना को पूर्ण करने में सहयोग का आश्वासन देते हैं। और यह आशा करते हैं कि उनके नवीन प्रयत्न में उन्हें सफलता प्राप्त होगी। आर्य स्त्री समाज की बहनों का आर्य सामाजिक पर्वों, विशेष-विशेष अवसरों तथा वार्षिकोत्सव के प्रसंग में भी हमें सदा ही सहयोग उपलब्ध होता है। हमारे सभी समाजोन्नति सम्बन्धी कार्यों तथा धन संग्रह में श्रीमती विद्यावती जी समरवाल, श्रीमती विद्यावती जी दत्ता, श्रीमती सुनीति देवीजी शर्मा, श्रीमती शान्ति देवीजी सैनी, बहन प्रेमलताजी सहगल, मेवा देवी आर्य एवं श्रीमती शीलवतीजी बिशनोई आदि देवियों का पूर्ण सहयोग प्राप्त होता रहता है।

६—बालक सत्संग :

विगत कई वर्षों से आर्य समाज कलकत्ता ने आर्य बच्चों में धार्मिक प्रवृत्ति पैदा करने के लिये बाल सत्संग का आयोजन किया हुआ है। रविवार को प्रातः ९ से १० तक बच्चों को सन्ध्या अग्निहोत्र आदि सिखाया जाता है। बालक-बालिकाओं की उपस्थिति प्रायः ९० से १०० के लगभग हो जाया करती है। पं० प्रियदर्शनजी सि० भू० तथा पं० सदाशिव शर्माजी बच्चों को सिखाने का कार्य करते हैं। सर्वसाधारण से यह प्रार्थना है कि वे अपने बच्चों को इस सत्संग में भेज कर लाभ उठाएँ।

इस कार्य में हमें श्री हंसराजजी चड्ढा तथा श्री केशोरी लालजी दुबे का भी पूर्ण सहयोग मिलता रहता है। माताओं बहनों को भी इधर विशेष ध्यान देने की कृपा करनी चाहिए।

७—मासिक पत्रिका 'आर्य संसार' :

नवम्बर १९५८ ई० से आर्य समाज कलकत्ता की मासिक पत्रिका 'आर्य संसार' का नियमित प्रकाशन होता आ रहा है। पत्रिका को प्रो० पं० श्री उमाकान्तजी उपाध्याय, एम० ए० का सुसम्पादन प्राप्त है। अतएव 'समाज' की मासिक पत्रिका में वैदिक धर्म आर्य संस्कृति एवं सभ्यता तथा ज्ञान, विज्ञान एवं साहित्यक की विविध विद्याओं में परिणिष्ठित अभिव्यक्ति होती आ रही है। आशा है, लेखकों एवं पाठकों के समन्वित सहयोग से 'आर्य संसार' अधिक व्यापक हो सकेगा।

८—दैनिक तथा साप्ताहिक कार्यक्रम :

समाज मन्दिर में नित्य प्रातः ७ से ८ सन्ध्या, हवन तथा महर्षि प्रणीत सद्ग्रन्थों का पाठ होता है। रविवार प्रातः ८ से ११ तक सन्ध्या हवन के पश्चात् साप्ताहिक सत्संग, व्याख्यान एवं भजनोपदेश आदि होते हैं जिसमें आर्यों की अच्छी समुपस्थिति होती है। प्रति रविवार को पं० श्री उमाकान्तजी उपाध्याय एम० ए०, पं० श्री शिवकान्तजी उपाध्याय का महर्षि प्रणीत ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका की कथा एवं विविध आध्यात्मिक व्याख्यान अनुष्ठित होते हैं।

९—प्रचार कार्य (बंगला में) :

आर्य समाज कलकत्ता की ओर से पश्चिम बंगाल के विख्यात वैदिक विद्वान पं० श्री दीनबन्धुजी वेदशास्त्री, बी० ए० स्थानीय कालेज स्क्वायर पार्क में नित्य सायं ५-६ बजे धार्मिक व्याख्यान देते हैं।

१०—जलक्षेत्र :

'श्री सांवलदासजी चैरिटेबुल ट्रस्ट' की ओर से आर्य समाज मन्दिर के समक्ष एक प्याऊ वर्षों से नियमतः चलता आ रहा है। आगन्तुकों को शीतल जल से तृप्त किया जाता है।

इनके अतिरिक्त कलकत्ता आर्य समाज द्वारा समय-समय पर अन्य अनेक धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक आयोजन किये जाते हैं।

कलकत्ता आर्य समाज द्वारा गोरक्षा का विशेष कार्य

कलकत्ता आर्य समाज ने गोरक्षार्थ रचनात्मक अभियान आरम्भ कर दिया है। तदनुसार उसने पश्चिम बंग सरकार के दुग्ध आपूर्ति केन्द्र कल्याणी व हरिनघाटा से प्रतिवर्ष कसाइयों को नीलाम की जानेवाली गौओं को आधी दर पर खरीद कर कलकत्ता पिंजरापोल सोसाइटी को सौंप देने का नियमित कार्य आरम्भ किया है। एतदर्थ, 'समाज' को पश्चिम बंग सरकार एवं गो भक्त विभिन्न धर्म प्रेमी दाताओं का वांछित सहयोग प्राप्त हो रहा है। आशा है, भविष्य में भी इसी प्रकार सहयोगों से हम अपने इस धार्मिक अभियान को परिपूर्ण दे सकेंगे।

गोभक्त दानियों के दान से १० किश्तों में कुल २०६ सत्सव गौएँ लगभग १५०००० रुपयों में खरीद कर 'कलकत्ता पिंजरापोल सोसाइटी' को सौंप दी गई थीं।

अनन्तर आम जनता के सहयोग के लिये, "गोरक्षा जीव दया संघ" नामक संस्था श्री छोटेलालजी गांधी के संरक्षण में संगठित की गई। जिसने लगभग १६००, १७०० गौवों की प्राण रक्षा की और बिहार की कई गौशालाओं को भेज दी। इस कार्य के लिये भी जनता से लगभग १५०००० एक लाख पचास हजार रुपये की सहायता प्राप्त हुई। इसमें आर्य समाज से कार्यकर्ताओं का भी पूर्ण सहयोग था।

इसके लिए दानी तथा कार्यकर्ताओं का हार्दिक धन्यवाद है।

छबील दास सैनी
मंत्री
२९-११-७०

आर्य समाज से संश्लिष्ट संस्थाएँ :—

१. आर्य कन्या महाविद्यालय (स्थापित १६०२ ई०) २० विधान सरणी

२. रघुमल आर्य विद्यालय (स्थापित १६३६ ई०) ३३-सी, मदन मित्र लेन

३. वैदिक पुस्तकालय तथा वाचनालय (१६, विधान सरणी)

४. दातव्य औषधालय (स्थापित १६५६ ई०) १६, विधान सरणी

५. रानी बिरला आर्य अतिथिशाला (स्थापित १६६१ ई०) १६, विधान सरणी

गत वर्ष ६ जुलाई १६६६ को वार्षिक सभा के साधारण अधिवेशनों में चुने गए पदाधिकारियों तथा अन्तरंग सभासदों की सूची :—

क्रम	पद	नाम
१.	प्रधान	श्री रुलियाराम गुप्त
२.	उपप्रधान	,, ओम्प्रकाशजी गोयल
३.	”	,, पूनमचन्दजी आर्य
४.	मन्त्री	,, छबीलदासजी सैनी
५.	उपमन्त्री	,, दशरथलालजी गुप्त
६.	”	,, अमरसिंहजी सैनी
७.	प्रचार मन्त्री	,, सोमदेवजी गुप्त
८.	उपप्रचार मन्त्री	,, श्रीरामजी जायसवाल
९.	कोषाध्यक्ष	,, सत्यानन्दजी आर्य
१०.	पुस्तकाध्यक्ष	,, महाशय रघुनन्दनलालजी
११.	उपपुस्तकाध्यक्ष	,, सतीशजी श्रीवास्तव
१२.	आय व्यय निरीक्षक	, लक्ष्मण सिंजी
१३.	प्रतिष्ठित धन सदस्य	,, सेठ कृष्णलालजी पोद्दार
१४.	”	,, देवीप्रसादजी मस्करा
१५.	” विद्या सदस्य	,, उमाकान्तजी उपाध्याय
१६.	”	,, दीनबन्धुजी वेदशास्त्री
१७.	अन्तरङ्ग सदस्य	श्री हरिश्चन्द्रजी वर्मा
१८.	”	,, श्रीनाथदास गुप्त
१९.	”	,, सुखदेव शर्मा
२०.	”	,, राजेन्द्र सिंह मल्लिक
२१.	”	,, प्यारेलालजी मनचन्दा
२२.	” (न्यू अलीपुर)	,, बनारसीदासजी अरोड़ा
२३.	”	,, शिवदासजी गुप्त
२४.	”	,, वासुदेवजी शाह
२५.	”	,, कृष्णलालजी खट्टर (प्रि० रघुमल आर्य विद्यालय)
२६.	अन्तरङ्ग सदस्या	श्रीमती कमल सूद एम ए. बी.टी. (प्र० आ० आर्य कन्या महाविद्यालय)
२७.	अन्तरङ्ग सदस्या	,, विद्यावतीजी सभरवाल (प्रधाना, आर्य स्त्री समाज)

आर्य समाज कलकत्ता के नव निर्वाचित अधिकारी तथा अन्तरंग सदस्यों की सूची :—

आर्य समाज कलकत्ता १६, विधान सरणी की साधारण सभा का अधिवेशन ५ जुलाई, १६७० को सम्पन्न हुआ। इसमें नव वर्ष के लिये निम्नलिखित अधिकारी और अन्तरङ्ग सदस्य निर्वाचित हुए :—

१.	प्रधान	श्री बनारसीदासजी अरोड़ा
२.	उपप्रधान	" ओम्प्रकाशजी गोयल
३.	"	" प्यारेलालजी मनचन्दा
४.	मन्त्री	" छबीलदासजी सैनी
५.	उपमन्त्री	" दशरथलालजी गुप्त
६.	"	" श्रीरामजी जायसवाल
७.	प्रचार मन्त्री	" शिवदासजी गुप्त
८.	उपप्रचार मन्त्री	" वासुदेवजी शाह
९.	कोषाध्यक्ष	" श्रीनाथदास गुप्त
१०.	पुस्तकाध्यक्ष	" रघुनन्दनलालजी आर्य
११.	उपपुस्तकाध्यक्ष	" सतीश कुमारजी श्रीवास्तव
१२.	आय-व्यय निरीक्षक	" सत्यानन्दजी आर्य
१३.	प्रतिष्ठित धन सदस्य	" सेठ कृष्णलालजी पोद्दार
१४.	" "	" श्री हलियारामजी गुप्त
१५.	" विद्या सदस्य	" उमाकान्तजी उपाध्याय
१६.	" "	" दीनबन्धुजी वेदशास्त्री
१७.	अन्तरङ्ग सदस्य	" पूनमचन्दजी आर्य
१८.	"	" भगवानदासजी गिरधर
१९.	"	" सोमदेवजी गुप्त
२०.	"	" सुखदेवजी शर्मा
२१.	"	" रामस्वरूपजी खन्ना
२२.	"	" लक्ष्मण सिंहजी
२३.	"	" अमरसिंहजी सैनी
२४.	"	" हंसराजजी चड्ढा
२५.	"	" मिहिरचन्दजी धीमान
२६.	"	" किशोरीलालजी दवे
२७.	" (पदेन)	" कृष्णलालजी खट्टर (प्रधानाध्यापक रघुमल आर्य विद्यालय)
२८.	" (पदेन)	श्रीमती कमल सूद (प्रधानाध्यापिका आर्य कन्या महाविद्यालय)
२९.	" (पदेन)	" विद्यावतीजी सभरवाल (प्रधाना, आर्य स्त्री समाज कलकत्ता)

ओ३म्

महर्षि दयानन्द की देन

१

स्वामी समर्पणानन्द जी सरस्वती

प्रस्तुत निबन्ध के सम्बन्ध में हमारे एक सम्माननीय निर्णायक महोदय ने लिखा था :

"स्वामी समर्पणानन्दजी आर्य-जगत् के लब्ध-प्रतिष्ठ संन्यासी हैं। उनका लेख अपनी विशिष्ट शैली पर है। उसे औरों के तारतम्य में आँकना शोभा नहीं देता।"

दूसरे सम्मान्य निर्णायक महोदय ने लिखा था :

"स्वामीजी (स्वामी समर्पणानन्दजी) अपने ढंग के निराले विद्वान्, अद्भुत प्रतिभा के संन्यासी हैं। यह प्रतियोगिता की श्रेणी से ऊपर का लेख है।"

हम भी इस निबन्ध को सर्वप्रथम प्रकाशित करने का लोभ संवरण नहीं करना चाहते।

—सम्पादक

साधारण से साधारण अनपढ़ मनुष्य से लेकर आइन्स्टीन सरीखे मौलिक विज्ञान वेत्ता तक के प्रातः काल उठते ही आँख खुलने पर जो सबसे पहला प्रश्न हृदय में उठता है वह इस विश्वकी पहेली है। यह क्या है? मैं कौन हूँ? मेरा लक्ष्य क्या है? मेरा इस संसार से क्या सम्बन्ध है? यह सबसे बड़ी पहेली है। यह पहेलियों की पहेली है। इसका उत्तर दो अद्वैतवादी देते हैं। एक द्वन्द्वात्मक अध्यात्मवादी दूसरे द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी। एक कहता है कि यह सब कुछ आत्मा ही आत्मा है, दूसरा कहता है यह सब कुछ जड़ प्रकृति ही प्रकृति है। साधारण अनपढ़ मनुष्य से लेकर बड़े से बड़े कर्मयोगी महात्मा तक सब के लिये विश्व की पहेली का यह विचित्र समाधान पहेलियों की पहेली है। उसे यह समझ नहीं

आता कि अद्वैत में से द्वन्द्व कैसे पैदा हो गया? चेतन में से जड अथवा जड में से चेतन का विकास कैसे हो गया? वह कहता है कि कैसे हो गया? वैज्ञानिक देवता सिर हिला कर पाण्डित्य से लदी मुद्रा में कहता है—

'अजी बको मत, सिर मत खाओ। कह तो दिया कि बस हो गया।'

साधारण पुरुष कबीर के स्वर में स्वर मिलाकर कहता है तुम पढ़े हुओं से हम बेपढ़े अच्छे :

पोथी पढ़-पढ़ जग मुआ, पण्डित हुआ न कोय।
ढाई अक्षर प्रेम के, पढ़े से पण्डित होय॥

इसी बात को विद्वन्मूर्धन्य कृष्ण वार्ष्णेय कृष्ण द्वैपायन के मुख से इन शब्दों में कहता है अथवा कृष्ण द्वैपायन कृष्ण वार्ष्णेय के मुख से इस प्रकार कहलाता है—

क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षरउच्यते,

× × ×

यस्मात् क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः,
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रार्थतः पुरुषोत्तमः।

सब प्राणियों का देह तथा पञ्चभूतमय जड जगत् है। जगत् अर्थात् जड परिवर्तनशील जगत् है। प्राणियों में जीवात्मा कूटस्थ है जिसके आधार पर स्मृति खड़ी है।

इस क्षर तथा अक्षर (जीवात्मा) दोनों से ऊपर पुरुषोत्तम है।

इसमें व्याकरण का उत्तम पुरुष और जोड़ दीजिये, क्योंकि ज्ञाता होने की दृष्टि से 'मैं' का स्थान सबसे उत्तम है। परमात्मा तथा प्रकृति दोनों का प्रत्यक्षादि प्रमाणों द्वारा प्रमाण करने वाला प्रमाता, तथा जिन कर्मों का फल भगवान् देता है उनका कर्ता तो मैं ही हूँ। प्रकृति तथा पुरुषोत्तम तो प्रमेय अथवा उपास्य मात्र हैं। इस दृष्टि से पुरुषोत्तम को पुरुषोत्तम कहने वाला उत्तम पुरुष तो मैं ही हूँ।

इसलिये भगवान् ने उत्तम पुरुष के मुख से कहलाया -
योऽसा वादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्,

मेरी सूक्ष्म तथा स्थूल शरीर की दुनिया छोटी सी ही सही, परन्तु जिस प्रकार आदित्यादि लोकों में अधिष्ठाता होकर बसा है, इसी प्रकार अपनी छोटी सी दुनियाँ में मैं वही हूँ जो तू अपने इस आदित्य (उपलक्षण=आदित्यादिमय ब्रह्माण्ड) में है। अर्थात् अधिष्ठाता, निर्माता, प्रमाता।

इसीलिये भक्त भक्ति के आवेश में विभोर होकर कहता है तेरे आशीर्वाद तो तबही फलेंगे कि या तो मैं समर्पण द्वारा तू अर्थात्, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड शक्तियों का अधिष्ठाता बन जाऊँ अथवा तू वात्सल्यातिरेक में मेरे समर्पण को इतना स्वीकार कर ले कि मैं जो कुछ करूँ तन्मय होकर करूँ। या तो सर्वभूत हितकर भक्तियोग के बल से मैं सर्व शक्तिमान् बन जाऊँ अथवा समर्पण की पराकाष्ठा से वात्सल्य विभोर होकर तू मन्मय हो जा। तबही जानूँ कि हमारे मुह मांगे आशीर्वाद मिल गये। सुनिये वेद क्या कहता है—

यदग्ने स्यामहम् त्वं त्वं वा घास्याअहम्
स्युष्टे सत्या इहाशिषः

ऋ० ८-४४-२३

मैं हूँ, यह सर्वोत्तम ज्ञान है इसीलिये मैं उत्तम पुरुष है। मैं धोखा नहीं सचमुच की जीवित जागृत शाश्वत चेतना शक्ति हूँ। छोटा ही सही पर हूं! सचमुच हूँ जबरदस्त, जोरदार, सनातन सत्ता हूँ! और कुछ करके रहूँगा। या तो मैं कर्मयोग द्वारा वहाँ चढ़ जाऊंगा, या समर्पण योग द्वारा, जैसे दर्पण सूर्य को अपने में उतार लेता है, इस प्रकार उसे अपने में उतार लूगा। वह आशीर्वाद देनेवाला, मैं लेने वाला; या तो मैं लेके रहूँगा, या उसे देना पड़ेगा। कुछ कहलो बात एक ही है।

यह सीधा, सच्चा, सबकी समझ में आ जानेवाला, ब्रह्माण्ड की पहेली का निर्मल, उज्ज्वल प्रकाशमय, शान्तिमय, समाधान, इसका नाम है "त्रैतवाद", यह है दयानन्द की सबसे पहली देन। यह है परमात्मा का विष्णुरूप अर्थात् यज्ञरूप। यज्ञ का अर्थ है पूजक तथा पूज्य का पूजा साधन द्वारा सङ्गतिकरण। सो अद्वैत में संगतिकरण कैसा? यह है—

विष्णुस्त्र्यक्षरेण त्रींल्लोकानुदजयत्तानुज्जेषम् ।

(यजु० ९-३१)

यह है त्रेताऽग्नि, यह है पिता पुत्र सन्तान द्वारा सबसे छोटे पारिवारिक संगठन का मूल रूप ।

ऋषि दयानन्द कहते हैं अनादि पदार्थ तीन हैं—एक ईश्वर, द्वितीय जीव, तीसरा प्रकृति अर्थात् जगत् का कारण । इन्हीं को नित्य भी कहते हैं ।

स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश ६

सो मैं हूँ । 'वह बड़ा इन्द्र है, मैं छोटा इन्द्र हूँ' पर जब मुझे इन्द्रिय मिली है तो मैं इन्द्रियों का इन्द्र हूँ तथा इनके द्वारा इस पृथिवी के अन्त तक और सच पूछो तो पृथिवियों की पृथिवी प्रकृति के अन्त तक, जहाँ भी अपने कर्म यज्ञ की वेदी बना लूं, वहाँ का मैं ही राजा हूँ और मेरे लिये वह छोटा-सा यज्ञ ही संसार का केन्द्र है । शंकर के चेले कहते हैं 'तू परमात्मा है", मैं कहता हूँ 'मुझे झूठ बोलना न सिखाइये ।" "महाराज" वे कहते हैं, "अरे ! झूठ बिना संसार का व्यवहार नहीं चलता" ।

मैं हाथ जोड़ के कहता हूँ, परिस्थितिवादी कहते हैं कि "तू जड़ पदार्थ है और परिस्थितियों की कठपुतली है", मैं कहता हूँ, "धत् परे हट, जड़ होगा तू, मैं तो पूर्णतया चेतन हूँ । यह सारी पृथिवी मेरे बाप की दी हुई जायदाद है, जहाँ चाहूँ अपनी वेदि बनाऊँ, वही मेरा विश्व केन्द्र है । जब मैं पिता से विमुख होता हूँ तो मुझ में जड़ता आती है । पर जब मैं पिता की आज्ञा का यथावत् पालन करता हूँ तो बस फिर क्या पूछना ?"

इयंवेदिः परोऽन्तः पृथिव्या अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः

ऋग्वेद १, १६४, ३५

मैं परिस्थितियों का पुतला नहीं । पिता मेरी पीठ पर है, लक्ष्य सामने है, परिस्थितियों को चीरता हुआ अन्त को उससे जा मिलूंगा । मैं केन्द्र हूँ, परिस्थितियों के घेरे को चीरने के लिये पैदा हुआ हूँ । लक्ष्य है चार धाम की यात्रा द्वारा सारे मार्ग को आनन्द की धाराओं से आर्द्र करता इन्द्र तक पहुँचूँ । वह कह रहा है—

इन्द्रायेन्दो परिस्रव

मेरे चान्द, मेरे इन्दो, चारों ओर आर्द्रता पैदा करता हुआ प्रवाहित हो और मेरी गोद में आजा ।

जहाँ सब से कठोर हिंसक हों, वहाँ आर्द्रता पैदा करता हुआ आ ।

शर्यणावति सोमयिन्द्रः पिबतु वृत्रहा
बलं दधान आत्मनि करिष्यन् वीर्यम्
महदिन्द्रायेन्दो परिस्रव

ऋग्वेद ९-११३-१

इस यात्रा में चार धाम हैं—पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्यौ और स्वः । ऋ० १९०, ३

चौथा धाम स्वः है और पहिले तीन स्वर्ग ।

यजु० १३-३१

इस तुरीय धाम की कथा ऋग्वेद ९वम् मण्डल ९६ सूक्त १९ मन्त्र से आरम्भ होती है । ११३ सूक्त में कहा है यह तुरीय धाम वह लोक है, जहाँ परम सुख सुरक्षित धरा है ।

यस्मिन्लोके स्वर्हितम् ।

ऋ० ९, ११३-७

जब मैं आया उस दिन सबकी आँखों में आनन्दाश्रु थे । सब ने मुझे कहा इन्दो, फिर शैशव में इन्दु था ही । फिर दो इन्दु एक होकर इस रथ के पहिये बने । यात्रा आगे बढ़ी । जब मेरा घर इन्दुशाला बन गया मैंने और मेरी पत्नी ने कहा 'चलो अब संसार भरके इन्दुओं को अपने इन्दु मानने का अभ्यास करने चलें ।' पुत्र और पुत्र-वधू को अपनी इन्दु शाला से खेलने को छोड़ कर हम आगे बढ़ लिये—एक पहुँचे हुए के पास पहुँचना सीखना आरम्भ किया । अब पराए इन्दु मुझे अपने इन्दु लगते थे, मेरा मन उधर फँसने लगा । पहुँचे हुए ने कहा, सोम्य आगे बढ़, मैंने कहा कहाँ जाऊँ ?

कुलपतिजी बोले—

इन्द्रायेन्दो परिस्रव

इस तृतीय धाम में तप और श्रद्धा का उपार्जन किया है। अब यह तुम्हारा तृतीय सवन हो लिया। इस बार तुम श्रद्धा रस में भट्टी पर चढ़ाये गये हो—

ऋृतवाकेन सत्येन श्रद्धया तपसा
सुत इन्द्रायेन्दो परिस्रव

ऋ० ९-११३-२

अब तो मंजिल पर पहुँच गए, अब फँसो मत यह सूर्य की दुहिता श्रद्धा—

श्रद्धावै सूयस्य दुहिता

शतपथ १२. ७. ३. ११

तुझे यहाँ तक ले आई। ऊपर से धर्ममेघसमाधि में स्नान किया इस प्रकार प्रभु कृपा की जलधारा तथा प्रत्यक्ष दर्शन जन्य श्रद्धा की धूप में बढ़ कर यहाँ पहुँच गया। अब अटका तो भटका। तेरी किस्मत भी क्या कहेगी? प्रभु का गुण गान करने वालों ने तेरा स्वागत किया। उनसे तू और रसीला हुआ। किस्मत की खूबी देखिये—

टूटी कहाँ कमन्द? दो चार हाथ जब कि लबेबाम रह गया। इसलिये —

पर्जन्यवृद्धम् महिषम् तं सूर्यस्य दुहिता भरत्।
तं गन्धर्व्वाः प्रत्यगृभ्णन् तम् सोमे रसमादधुः
इन्द्रायेन्दो परिस्रव।

ऋ० ९-११३-३

जिस कुलपति के पास तू परिष्कृत होने आया था उसने तेरा परिष्कार कर दिया। अबतो—

ऋृतंवदन् ऋृत द्युम्न सत्यम् वदन् सत्यकर्मन्
श्रद्धां वदन्त्योम राजन् धात्रा सोम परिष्कृत
इन्द्रायेन्दो परिस्रव।

ऋग्वेद ९-११३-४

नपी तुली प्रत्यक्षादि प्रमाण सिद्ध सत्य ज्ञानमय बात बोलता हुआ उस ज्ञान को ही अपना सर्वस्व समझ कर लुटाता हुआ ईमानदारी से निष्कपट होकर बोलता हुआ, और उस सत्य वचन को कर्म में परिणत करता हुआ, सब में अपनी अनुभव जन्य श्रद्धा की बात कहता हुआ—

बहे चल मेरे रस भरे चन्दा।

देख भूलना नहीं! प्रभु का गान करने वालों ने जो रस तुम में भरा है उसका नाम वीर रस है। कहीं दब कर उस रस में विष न मिला देना। रसीले! यह उग्ररस है, और तू फव्वारा—

सत्य मुग्रस्य वृहतः सं स्रवन्ति सं स्रवाः
सं यन्ति रसिनो रसाः पुनानो ब्रह्मणा हर
इन्द्रायेन्दो परिस्रव

ऋ० ९-११३-५

यह उग्ररस असत्य की शिलाओं तक को फोड़ कर निकलना जानता है। यह वृहत् रस है सबको ऊंचा उठाने वाला है उसके सामने झुकना सीख। पर, दुष्टों के साथ अकड़ना भी सीख। इसके सोते चारों ओर फूट निकलते हैं तब वीररस के रसिक जानते हैं, कि आज कौन रसीला आया है। इसलिये सदा रसिको, हरियाली के तुल्य मन हरने वाले, अपने वेद ज्ञान के प्रवाहों से सबको पवित्र करता हुआ बहता चल! मेरे रस भरे चन्दा।

तर्क को धर्म गुरुओं ने गाली दी है। ऋषि दयानन्द की अद्भुत देन है "तर्क को उचित स्थान पर प्रतिष्ठित करना" वेद कहता है। चक्षोः सूर्यो अजायत (पुरुष सूक्त १२ मन्त्र) चक्षु आदि इन्द्रियों से प्राप्त प्रत्यक्ष ज्ञान ही तो वह सूर्य है जिसकी पुत्री श्रद्धा है। दयानन्द ने हमें तर्क की प्रतिष्ठा सिखाई और उसकी पुत्री श्रद्धा को भी उचित स्थान दिया इसलिये नपीतुली प्रत्यक्षादि प्रमाण विरुद्ध बात मत कह—

यत्र ब्रह्मापवमान छन्दस्यां वाचं वदन्।
ग्राव्णा सोमे महीयते सोमेनानन्दम्
जनयन्निन्द्रायेन्दो परिस्रव॥

ऋ० ९-११३-६

जहाँ चार वेदों के ज्ञाता विद्वान् सबको पवित्र करते हों, उस पवित्र सत्सङ्ग रूप सवन में नपीतुली बात बोलता हुआ, विद्वज्जनों के वाद संघर्ष में पीस कर यथार्थ परीक्षा पूर्वक

निकाले हुए ज्ञान रस से सबके लिये आनन्द उत्पन्न करता हुआ, बहता चल मेरे रस भरे इन्दो।

जहाँ अन्ध विश्वास का नाम नहीं है—

यत्रज्योतिरजस्रं यस्मिल्लोके स्वर्हितम्
तस्मिन् मांधेहि पवमानामृते लोके अक्षित
इन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥ ७ ॥

हे पवमान हम भक्त जन तेरे पास आए हैं विशेष कर मैं शिष्य होकर तेरे पास आया हूँ। मुझे उस लोक में पहुँचा जहाँ निरन्तर ज्योति जलती है, जहाँ नित्य आनन्द है। उस अक्षय अमृत के धाम में मुझे पहुँचा।

जहाँ वह सुव्यवस्था है जो आकाश में सौर मण्डल में देखने में आती है जहाँ द्यौः को प्राणायामादि द्वारा बाह्य आकाश से उतार कर मनुष्य अपने अन्दर रोक लेते हैं यह सम्पूर्ण मानव प्रजा (मनुष्य वा आपः-शत ७-३-१-२०) जिस ओर बह रही हैं हे पवमान उस अमृत धाम में मुझे भी पहुँचा

इन्द्रायेन्दो परिस्रवः ॥ ८ ॥

जिस कैवल्य में मनुष्य परम ज्योति के स्वरूप में अवस्थित होता है, इसलिये जहाँ सब लोग ज्योतिष्मान् हैं जहाँ शरीर बन्धन न होने के कारण जीव स्वच्छन्द विचरते हैं उस धाम में मुझे भी मृत्यु रहित करदे।

इन्द्रायेन्दो परिस्रवः ॥ ६ ॥

जहाँ कामनाएं और उनके निमित्त किये जाने वाले नियम सब सम्पूर्ण हो जाते हैं, जहाँ बड़ों से बड़े परमात्मा का धाम है। उस प्रभु प्रेम के बन्धन को मेरे लिये अमृत कर दो हे इन्दो—

इन्द्रायेन्दो परिस्रवः ॥ १० ॥

यत्रानन्दाश्चय मोदाश्च मुदः प्रमुद आसते
कामस्य यत्राप्ताः कामास्तत्र मा मृतं कृधि
इन्द्रायेन्दो परिस्रव ॥ १० ॥

जहाँ मानसिक और शारीरिक आनन्द दूसरों के साथ बातचीत का आनन्द तथा नाना प्रकार की कला कृतियों का प्रमोद सब इकट्ठे बसते हैं, जहाँ कामना की भी सब कामनाएं पूर्ण हो जाती है, उस प्रभु प्राप्ति के आनन्द में स्नान कराके मुझे भी मृत्यु भय रहित कर दे।

इन्द्रायेन्दो परिस्रवः ॥ ११ ॥

इस तर्क बुद्धि के सहारे ऋषि दयानन्द हमें दोनों ओर की खन्दकों से बचाता हुआ ले चलता है। न तो यहाँ अन्ध श्रद्धा है, न नास्तिकता। न तो अकर्मण्य भक्तिवाद है, न भक्तिहीन कर्मयोग। न तो तर्कहीन श्रद्धा है, न श्रद्धाहीन तर्क अर्थात् प्रत्यक्ष अनुभव को भी निषेध करनेवाला तर्क। न तो पलायनवादी वैराग्य है, न पलायनवादी विषय शक्ति। न तो अनन्त नरक है, न अनन्त मोक्ष। यह मनुष्य जीवन है, स्वर्ग नरक धाम है। यह जीवन ही कर्म भूमि है। राजयोग भक्तियोग सब कर्मयोग के साधन हैं। न वैष्णवों का रङ्गीलापन है, न नास्तिकों की रूक्षता। न जैनों की अहिंसा है, न कम्यूनिस्टों की हिंसा। न तो हिंसा रस के लिये हिंसा है, न लोक कल्याण विघातिनी अहिंसा। लक्ष्य सामने है—

इन्द्रायेन्दो परिस्रवः

साधन हैं इन्द्रियें तथा जीवन का समय। साधन है वर्णाश्रम व्यवस्था। इस व्यवस्था में न तो पूंजीवादी अर्थतंत्रता है, न कम्यूनिस्ट व्यक्तित्व नाशिनी परतंत्रता। लोक कल्याणकारी कार्य करना पड़ेगा, यह परतन्त्रता है। अविद्या अभाव अन्याय, अकर्मण्यता, किस शत्रु से लड़ना है। इस चुनाव में पूर्ण स्वतन्त्रता। यह अविचलित रूप से सीधा लक्ष्य की ओर ले जाने वाला सीधा मार्ग ही ऋषि की सर्वश्रेष्ठ देन है। न तो प्राचीन हर बात अच्छी है और न वेदों तक का परित्याग है। न देश मोह है, न देश द्रोह है। देश भक्ति है पर वह विश्व कल्याण का मार्ग बनाने वाली देश भक्ति है। दूसरे देशों को कुचल कर अपने देश का भला चाहने वाली स्वार्थमय क्रूर देश भक्ति नहीं जिसका ठीक नाम देश मोह है। हां दबाव में आकर अपने देश के जूते का भी अपमान वह सह नहीं सकता था।

मनुष्य के जन्म से लेकर मरण पर्यन्त तथा परिवार के संगठन से लेकर चक्रवर्ती सार्वभौम महाराज्य सभा के निर्माण तक कोई विषय उस ऋषि से नहीं छूटा इसलिये यदि उसकी सब देन एक शब्द में कहनी हो तो वह सत्यार्थप्रकाश है।

परन्तु इन सब देनों से बड़ी देन ऋषि का जीवन स्वयम् है। जो कहा सो करके दिखा दिया। खण्डन में स्वदेश विदेश किसी का पक्षपात नहीं किया। राष्ट्र तथा धर्म के विरोध में लड़ने के लिये सम्पूर्ण राष्ट्र को तय्यार किया। देश की एकता के निमित्त गुजराती का पक्षपात छोड़कर हिन्दी को अपनाया। परन्तु आर्य समाज के नियम बनाने के समय छठे नियम में स्पष्ट लिख दिया "संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य हैं।" गौण रूप से बचा खुचा समय विश्व कल्याण को, मुख्य उद्देश्य ऋषि दयानन्द ने ही बनाकर दिखाया।

परन्तु व्यक्तिगत रूप से जो उन्हें विष देने आया उसे मुक्त करवाते समय कहा "मैं संसार को कारागार में बन्द करने नहीं आया किन्तु कारागार से छुड़ाने अब आया हूँ" और अन्त में १३वीं बार विष खाकर विष देनेवाले को दयार्द्र होकर धन देकर विदा किया और दयानन्द इस नाम को सार्थक किया।

अन्तमें मृत्यु काल में सबसे बड़ी परीक्षा थी। इस मृत्यु ने गुरुदत्त सरीखे नास्तिक में भक्तिरस का संचार कर दिया। इसे मृत्यु कहें या जीवन शक्ति का स्रोत। ग्रन्थ भी देन, जीवन भी देन, और अन्त में मृत्यु भी देन।

देनेवाले बहुत देखे, पर ऐसा दिलदार नहीं देखा। वैदिक भाषा में देवता कहते हैं देनेवाले को, बस वह देवताओं का देवता था। कोई वस्त्र दाता, कोई धन दाता, कोई अन्न दाता, परन्तु ऋषि दयानन्द ने इस अभागे मानव समाज को उस की खोई हुई आत्मा फिर प्रदान की।

इसलिये, आत्मदा! तुझे बार बार प्रणाम हो !!

CONTRIBUTIONS OF MAHARSHI DAYANANDA

२

G. P. BHATTACHARJEE
Lecturer, International Relations Dept.,
Jadavpur University.

Historical Setting

Historical research has indisputably proved the existence of a highly developed civilization in India during the Vedic age. Due to various factors, not yet clearly explained by scholars, a process of decline set in in the Vedic civilization. During this period of social stagnation and spiritual decay various creeds and doctrines challenging the foundation of the vedic civilization arose. Meanwhile, overrun by the forces of Islam, India entered into a period of political uncertainty and social conflict. Though during this time there were a number of attempts for religious rejuvenation and reconciliation of various creeds, they remained confined to specific areas and attained very limited success. The old Vedic civilization remained burried under the debris of the past.

The British conquest of India later on brought about a new vigour and dynamism in the social, political and intellectual life of India. India was not only politically and economically unified but she also came in contact with the Western science, technology and ideas. Along with this current of western culture the past and almost forgotten civilization of India was also revived from oblivion by a galaxy of scholars, both western and Indian, through their researches on Indian antiquities. The interaction of these two cultural forces

one, rational, secular and science-oriented, imported from the west, and the other, spiritual and transcendental, revived from the past heritage of India, stirred an intellectual fermentation in the country and produced what is known as the Nineteenth Century Renaissance. This Renaissance was a multi-dimensional cultural movement and it connotes different, sometimes contradictory, thought-currents. One section of the people, extremely orthodox in character, however remained outside the influence of this Renaissance and tried to preserve the conventional customs and institutions. Another section was carried off their feet by the invigorating influence of the western ideas and they looked at the past calture of India with unconcealed disdain. The more sober section tried to bring about a reconciliation between the past heritage of India and the western science and technology.

India produced two outstanding personalities, one the eastern side and another on the western, to lead this school of reconciliation. Broadly speaking, Raja Rammohan Roy of Bengal and Maharshi Dayananda Saraswati of Gujarat belong to the same school. The difference between them was more one of degree and emphasis rather than fundamental. Raja Rammohan was a great scholar and knew a number of languages, both western and Indian, including Sanskrit. In those days a number of outstanding scholars came to India from England and the English language was making steady highway in the country. The age was in dire need of a man capable of interpreting the language of the vedic texts in its original and uncorrupted from. The Pandits of the age interpreted the Vedas in the light of the Puranic mythological stories. Their interpretation could not give a clear idea of the Indian civilization as developed in the Vedic age. The European Scholars learned Sanskrit from these Pandits and necessarily their veiws were also coloured by the interpretation made by them. It was Maharshi Dayananda who with extra-ordinary insight tried to liberate his outlook from the ballast of the Puranic stories and interpreted the Vedic texts in the literal sense. *His interpretation opened up a new vista about the nature of the Vedic civilization. Here in lies the*

basic role of Maharshi Dayananda in the nineteenth century cultural history of India. His contributions must be judged in the light of historical context and the specific historical need which he satisfied.

Brief life-sketch—
three phases of his life :

Born in 1824 in an orthodox Brahmin family of Morvi state in Kathiawar, Gujrat, Dayananda[1] developed a deep interest in religion in his young age. While still in his teens he lost his faith in the traditional practice of the Hindu religion and realised the futility and dangers of institutions like image-worship and polytheism. His unconventional ideas brought him in conflict with his father and Dayananda left the house of his father as the latter tried to force upon him a marriage when he was only twenty years of age. The career of Dayananda now entered into the second chapter. He broke off all relations with his home and took the life of an ascetic. He wandered on foot all over India and saw the details of the Hindu Society with his own eyes. This wide experience produced a rich harvest in the fertile soil of his mind irrigated by deep study and meditation. In 1860 he began studies under Swami Virajanand Saraswati at Mathura and continued it for two and a half years. In 1864 he started public preaching and thus entered into the third phase of his career. In his public preaching he, at first, used only the Sanskrit language which could not be understood by the broad mass of the Indian people. He, therefore, later on started preaching in vernacular. On April 10, 1875 he first established the Arya Samaj in Bombay. In 1877 the constitution of the Arya Samaj was finally prepared at Lahore. Dayananda was now fully absorbed in his mission of preaching the new gospel. He wrote a number of books, the most significant being Satyartha Prakash explaining his ideas and tried to organise people under the banner of the Arya Samaj. His mission proved very successful in the Western part of the country—Gujrat, the Punjab, U. P., and Rajasthan. On October 30, 1883, the earthly existence of the Maharshi came to an end.

Basic approach of Dayananda to Indian problems :

A man of iron will and versatile

1. His real name was Mul Shankar.

genius Dayananda left a deep impression upon the history of India. He gave the Indian people a new direction as well as a new dynamism and enriched diverse fields of our national life. An attempt may be made to assess his many-sided contributions by dividing them into three groups, namely, religious, social and political. This. division must not be taken in any rigid sense because his contributions to various fields were closely interrelated. He looked with dismay at the conversion of the Hindus to Christianity by the missionaries in the wake of the political subjugation of the country. The superstitions and evil practices existing in the Hindu community gave the Christian missionaries an opportunity to carry on their work of conversion successfully. Dayananda could not lend his support to the various evil practices in the Hindu society which, he found, were eating into the vitals of the Hindu civilization. India or Aryavarta, the land of the Vedic civilization, he feared, might loss her identity as a result of political subjugation and other evils. What was her political subjugation due to ? According to him the subjugation of India was due "to mutual feud, differences in religion, want of purity in life, lack of education, child marriage, ... indulgence in carnal gratification, untruthfulness and other evil habits.[2]" Social degeneration, in his view, was the cause of political subjugation. Political liberation, therefore, he thought, was conditional upon the removal of the social evils. And what was the basic cause of social evils among the people of Aryavarta ? It was due to their deviation from the original Vedic civilization. Restoration of original Vedic civilization, therefore, was the only remedy to all the social evils among the Hindus. Thus, in the eye of Dayananda, political liberation, social reform and revival of the Vedic Culture were causally connected. Restoration of Vedic civilization would lead to social reforms and prepare the country for political freedom. Thus in Dayananda we find a religious preacher, a social reformer and a political prophet combined in one. Though we shall discuss his contributions under three separate sections still this integrating factor must not be lost sight of.

2 Satyartha Prakash. Quated in V. P. Varma, Modern Indian Political Thought, P. 60.

Religious Reforms :

Swami Dayananda was an out-and-out religious man and he became an ascetic. His asceticism did not however lead him to ignore the society and go into seclusion for salvation of the soul. With a spirit of complete detachment he lived in society and worked for society.

Swami Dayananda found that the Hindu society of his time was entirely different from the Hindu society of the Vedic period. Supperstitious customs and institutions were maintained by the people in the name of the Hindu religion though they had no sanction in the Vedas. Polytheism, idolatry, untouchability etc. were regarded as essential features of Hinduism but none of them, he found, could be justified by the Vedic standard. He saw that a large number of people, repelled by the superstitous Hindu practices, were attracted towards Christianity. He tried to arrest this process by showing to the people the real character of the Vedic religion.

The degeneration of the Hindu civilization, Swami Dayananda analysed, started with the religious system of the Puranas. The mythology of the Puranas, which is the latest development of the Hindu thought, was the basis of the popular Hindu religion but this mythology could not, he pointed out, claim any support either from the law books or the Vedas. The commentators on the Vedas who arose during the Puranic period however tried to find in the Vedas sanction for their own ideas. Thererore, they interpreted the Vedas in their own way. Men like Sayana and Mahidhar belonged to this class of commentators. They belonged to what is usually called the mythological school of interpretation of the Vedas. They interpreted the Vedas to justify the Puranic mythology and thus they tried to give the present degenerate popular Hindu religion a Vedic sanction. The western scholars accepted these commentaries as authoritative and so their interpretation of the Vedas was also influenced by the writings of Sayana and Mahidhar and others of this school. Dayananda tried to interpret the Vedas on the basis of original texts without being influenced by the works of the commentators of the later age.

It is accepted by all that Yaska, the author of Nirukta, is the highest authority on the interpretation of the Vedas. He is quoted with respect by Sayana and Mahidhar also. Swami Dayananda tried to interpret the Vedas on the basis of the principles laid down by Yaska in his Nirukta. According to Yaska all the terms in the Vedas have been used in their jougika derivative or sense. It implies that there cannot be any proper names or historical reference in them. Yaska may, therefore, be regarded as the founder of the etymological school of the interpretation of the Vedas (also known as Nairuktik school) as opposed to the mythological school (also called Aitihasik school). Swami Dayananda by following the etymological school gave the Vedic mantras a meaning entirely different from the traditional one. The terms like *Agni, Vayu, Surya, Akasa* etc. used in the Vedas do not, according to the etymological school, refer to particular deities presiding over different departments of nature. They are used in two senses. Sometimes they indicate physical objects and forces and sometimes they refer to the Supreme Being. One Supreme Being is referred to by various terms. Words like *Agni, Vayu, Surya, Soma* are used to describe the indescribable whom the Vedas term *Om*. The sense in which these terms are used whether in the sense of physical objects or to describe the indescribable Supreme Being is to be judged by the context alone. By explaining the various terms used in the Vedas in their etymological sense Dayananda gave a highly interesting interpretation of the Vedic hymns. Urvasi, as for example, according to him, does not mean the heavenly nymph and a celebrated beauty in Indra's court but lightning. The Vedic mantras which appear as silly stories to many contain, according to Dayananda's interpretation, truth of profound significance.

By following these principles Swami Dayananda interpreted the Vedas which gives us the picture of a highly developed and scientific civilization in ancient India. His interpretation is found in his famous book *Satyartha Prakash* which he wrote in Hindi. The first ten chapters of the book deal with the explanation of the Vedic teachings. In the eleventh chapter he explains the religion of

the Puranas and the Tantras which, according to him, is a clear deviation from the Vedic teachings. In the twelth chapter the Buddhist, Jain and Charvaka views are explained and commented upon. The atheistic views of these schools led to the decline and fall of the Indian civilization and therefore Dayananda thought the recrudescence of these ideas should be checked by all means. The Vedic Scholarship of Swami Dayananda is clearly revealed in this book and no one, whether he agrees with him or not, can read this book without admiring the analytical power and depth of learning of the author. The main purpose of the book is to inspire the people to reconstruct the Indian life on the model of the ancient Vedic society "by a pruning of all the engrafted shoots upon the Vedas."[3]

In the book Satyartha Prakash Swami Dayananda tried to establish the thesis that the Vedic religion was absolutely monotheistic in nature. In the Vedas there are hymns which assert the unity of God but at the same time there are passages where many divine beings or devatas are referred to. This has led many to conclude that Vedic religion was polytheism in character. Max Muller considered henotheism as the most appropriate term to explain the Vedic religion. By polytheism, he pointed out, we understood an organised system of Gods, each occupying different positions and ranks in the hierarchy, under the authority of one Supreme God—either a Zeus or a Jupiter. Under the Vedic system he found no such hierarchy of position among the gods, and, therefore, Max Muller preferred the term henotheism to explain the Vedic religious system. Swami Dayananda could not agree with these views. He contented that the Vedas refer to only one Supreme God though He was given a large number of names. As the attributes of God are innumerable so also the names given to Him. The terms like *Agni, Vayu, Surya* which occur in the Vedas do not, according to Dayananda, refer to different gods ; they are different attributes of the same Almighty. Different namas which are given to the Almighty God are also names of different material objects, and the actual sense in which the terms are used must be judged, as we

3. MacDonald, *The Government of India*, p. 236.

have already pointed out, with reference to the context.

The interpretation of the Vedas as given by Dayananda appears to many as ridiculous. Some consider him to be a false interpretor of the Vedas. His interpretation is undoubtedly unconventional and it goes against the traditional faith and dogmas. But that is no reason why he should be dismissed summarily. His interpretation is based on a definite principle which he follows consistently. One should either show that the etymological principle of interpretation is itself wrong or that his interpretation is not justified by that principle. But no one has yet tried to cross sword with Dayananda on that level.

Social Reforms :

Along with his attempt to revive the original Vedic culture Dayananda tried to introduce a number of social reforms in the Hindu society. He found that a number of social practices among the Hindus which made the Hindu society vulnerable to the Christian attack had no Vedic sanction. He, therefore, tried to purge the Hindu society of these evils.

Dayananda was violently opposed to idolatry and brought as many as sixteen charges against it.[4] He raised his strong voice against the custom of traditional sacrifice and encouraged travels by the Hindus to foreign lands. Like Raja Rammohan Roy he stood for the emancipation of women. He found that contrary to the Vedic Principles a number of inhuman restrictions and taboos were imposed upon the Hindu women. He tried to remove these taboos and restrictions and championed the principal of equality of men and women. The system of child marriage was disapproved by him and no man below 25 and no woman below 16 should, in his opinion, be given in marrigge. He was a great advocate of female education and remarriage of widows.

Swamy Dayananda was opposed to the system of caste restriction in the form in which it existed the Hindu society. He however tried to revive the Vedic system of Varnashrama. According to the Vedic

4. For these charges see Swami Dayananda's *Satyartha Prakash.*

principles he thought that one's Varna should be determined not by birth but by capacities, psychological dispositions and actions. The society, according to him, should be divided into four castes only on this sound Vedic principle. He considered the innumerable castes and sub castes existing in the Hindu society on the hereditary basis as contrary to the fundamental spirit of the Vedic sociology. The system of untouchability as existed in the Hindu society was bitterly denounced by him and Mahatma Gandhi appreciating the outlook of Dayananda observed: "Among the many rich legacies that Swami Dayananda left to us, his unequivocal pronouncement against untouchability is undoubtedly one."

In the Suddhi movement Maharishi Dayananda introduced one revolutionary item in the programme of the Arya Samaj. He believed that 'lost' Hindus, that is the Hindus converted to other religions, should be brought back within the Hindu fold. This movement of re-Hinduising the fallen is known as the Suddhi movement. With Vedic liberalism and rationalism he believed that the door of Hinduism should not remain closed to those who once had left it for some reason or other.

Swami Dayananda tried to bring about a radical change in the educational system of our country. The system of education introduced into India by the British, whatever might be its advantages, had no relation with the past cultural heritage of the country. The products of this system became culturally alien to the general mass of the people. Swami Dayananda tried to change this system of education and he may rightly be considered as the precursor of the national system of education which became popular during the Swadeshi movement. He maintained that the people of India must study the old and uncorrupted culture of their land and for this purpose they must turn to Sanskrit and read the Vedas. The students must not simply acquire knowledge but also form their character and become good members of the community. The Dayananda Anglo-Vedic College was based upon the ideas of the Maharishi[5] and there, in addition

5. The split of the Arya Samaj inta two groups. one led by Lala Hans Raj and the other by Swami Sraddhananda (Munshi Ram) need not be discussed in this essay. It may however be men-

to the Sanskrit and the Vedas, English, Western Sciences, Western Philosophy, History etc. were also tought.[6] It is thus clear that Dayananda was not opposed to the study of Western science and the English language but he considered a thorough knowledge of the past Vedic culture of India and the Sanskrit language as essential for the national regeneration and social progress of India.

The Arya Samaj founded by Swami Dayananda is an important force in the social life of modern India. By constructive activities it has always been trying to lay the foundation of a new society in Aryavarta. Besides running a number of schools and colleges for both men and women, it has set up a number of orphanages and 'homes' for widows. The Samaj has its own depressed classes mission and it has raised thousands of downtrodden social pariahs to the status of higher classes. It has championed with steadfast devotion the cause of the emancipation of women and has brought comfort and happiness to a large number of child widows. The Samaj has also organised relief in times of social distress caused by natural calamities like famine and flood.[7]

Political reforms :

Swami Dayananda was not a political thinker in the technical sense of the term but a careful study of his views clearly reveals his political mind. He contributed immensely to the domain of political thought without himself being a politician. Thought a religious man par excellence he did not ignore the material side of human existence. No aspect of human life was alien to him and his mission was to bring the entire humah existence under the guidance of an all-pervading spiritual philosophy.

The most striking feature of his political philosophy that easily draws our attention is his contribution to the concept of nationalism. Nationalism in the modern sense is essentially a political concept but it draws its

tioned that the DAV College remained under the control of the first group and the latter group founded a new educational institution called the Gurkula near Hardwar.

6. Hans Kohn, *A History of Nationalism in the East*, p. 65.

7. See Introduction by Ghasi Ram to the Commentary on the Vedas by Swami Dayananda.
For a history of the Arya Samaj see the book of Lajpat Rai.

vitality from its cultural content. The British government by unifying the country through railways, telegraph, common laws and administration, created objective conditions for the rise of political nationalism. The role of Swami Dayanand was to introduce into this concept of nationalism a soul of its own. He tried to make the people proud of their own past Vedic culture by explaining to them its real nature and grandeur. The Oriental Scholars of the West did much to discover the past culture of India but they could not clearly differentiate the elements of pure Vedic culture from those of the decadent Puranic age. It was Swami Dayananda who first drew our attention to this vital aspect of the study of Indology. In this connection the observation of Dr. Mazumdar may appropriately be quoted. He writes : "In the seventies of the last century the religious prophets, like Sriramakrishna and Swami Dayananda, did much more than the Orientalists to make the people of India proud of their own culture.[8]"

8. Dr. Beman Behari Mazumdar, *History of Political Thought from Ram Mohan to Dayananda, Vol. I : Bengal*, p. 336.

The contributions of Sri Ramakrishna and Swami Dayananda towards making the Indian people, at least the mass of the Indian people, proud of their past culture is certainly greater than those of the Oriental scholars. But the difference between the outlook of Sri Ramakrishna and Swami Dayananda should not be lost sight of. Sri Ramakrishna tried to popularise the past Indian culture as a whole, but Swami Dayananda tried to revive the Vedic culture only to the exclusion of the Puranic culture. In fact, many of the superstitious ideas and practices prevailing among the Hindus which follow from the decadent age of Puranic mythology can by no means be supported. A more discriminating attitude distinguishes Swami Dayananda from Sri Ramakrishna.

Like Swami Dayananda Raja Rammohan Ray also tried to enrich the cultural content of Indian nationalism. A critical student of Indian nationalism cannot however ignore the difference in the outlook of these two outstanding products of the nineteenth century India. The attitude of Raja Rammohan and the Brahma Samaj was essentially

eclectic. Their attempt was to create a new synthesis taking elements from various civilizations like the Hindu, Muslim and the Christian. The role of Swami Dayananda, on the other hand, was to explain to the people the nature of the Vedic Culture in pure and unadulterated form. He exhorted the people of India to create a new civilization on the basis of the Vedic principles taking various elements from Western science and technology. Hans Kohn has rightly pointed out that though the Arya Samaj and the Brahma Samaj "were children of one and the same revolution" It was "the Arya Samaj which by reawakening the India of the past, did most to pave the way for the India of the 20th century"[9]. Mrs. Annie Besant, it may be mentioned here, dates "the undermining of the belief in the superiority of the White Races to the spreading of the Arya Samaj" (and the Theosophical society).[10]

Though Swami Dayananda's main contribution to the field of political thought lay in introducing the cultural content to the concept of Indian nationalism, he was not a narrow nationlist. He stood for national patriotism but was opposed to national arrogance. He in fact championed the cause of universalism but his concept of Universal Brotherhood did not go against the principal of national patriotism. Like Sri Aurobindo of the later period he held that national cultures of different states should instead of coming in conflict with one another contribute to the development of a cosmopolitan human culture. He proclaimed time and again : "The wall of isolation and prejudice set up by the nations of the earth will soon crumble down to the dust before the onrush of a tidal wave of a great idea and all the nations of the earth will take part in a joyous festivity of love.[11] Swami Dayananda did not support everything Indian nor did he condemn everything foreigner. He was the greatest critic of several elements of ancient Indian culture. He himself observed : "Though we are born in Aryavarta (India) and still live in

9. Hana Kohn, op. cit., p. 63

10. Mrs. Besant's Presidential Address to the annual session of the Indian National Congress in 1917.

11 Alokananda Mahabharati, *The Master's World-Union Scheme*, pp. 12-13.

it, yet just as we do not defend the evil d ctrines and practices of the religions prevailing in our own country—on the other hand expose them properly—in like manner we deal with alien religions. We treat the foreigners in the same way as we treat our own countrymen in recognition of our common humanity."[12] Swami Dayananda praised several traits of the British national character, such as, their better social efficiency, superior social institutions, self sacrificing and enterprising spirit, obedience to authority etc He found many good qualities in the western civilization and stood for a reconciliation between the two. There was no scope for any arrogance in his catholic outlook. Explaining the attitude of Dayananda, Acharya Pronobonanda wrote : "India is the home of Eastern culture and England is the type of western culture. Eastern culture is essentially spiritualistic, while Western culture is essentially materialistic Both are incomplete, one without the other. Perfection lies in the harmonious combination of both. It is through divine dispensation that India and England heve been united. Both cultures have met it India so that each may profit by the experience of the other, so that the imperfection of both may be healed."[13] A dispassionate study of his views clearly indicates that his mind was free from all narrowness and arrogance.

If we are to use any modern 'ism' to connote his philosophy, it is better to call him a humanist. His humanism was based upon the concept of spiritual man. Man represents a divine spark within him and this divinity unites the entire human race. An individual is not different from an animal if he remains under the control of his physical impulses only. By unfolding the potentialities of the divine spark inherent in every man, an individual can develop his humanity. Swamiji himself said : "Should a man act like an animal, which if strong oppresses the weak, and even puts them to death, he is more an

12. Introduction to *Satyartha Prakash* by Dayananda. The introduction is taken from *Light of Truth on an English Translation of the Satyartha Prakash of Dayananda* by Dr. Chiranjiva Bharadwaja, p. iv (introduction).

13. Acharya Pronobananda, *Thakur Dayananda and Arunachal Mission*. Quoted in Alokanand Mahabharati, op. cit., pp. 10—11

animal than a man. He alone can fitly be called a man who being strong protects the weak. He that injures others in order to gain his selfish ends can only be called a big animal."[14] Man can outgrow his animal existence only by developing the divine forces within him. He will then feel the unity of mankind and work not simply for his own gain but for general welfare. Swami Dayananda tried to elevate man to this spiritual level. He often told his disciples: "We have come to work for the good of the world, we must not look to our own happiness." Again he often said: "The good of the world must be placed above the good of one's own or even that of one's friends and relations."[15] In this connection we may refer to the ninth and tenth principles of the Arya Samaj as laid down by Swami Dayananda. The ninth principle stated: "Not to be content with promoting one's own happiness or well being but to consider one's welfare only in the welfare of all......" The tenth principle ran thus: "To have due regard to one's own individual freedom and development with the ultimate object of promoting general weal; or in other words, subordinating, disciplining and developing self so as to promote social welfare.[16]" Thus to promote social welfare of man was the utlimate objective of the Arya Samaj. Man should not be selfish but should work for others—this is the ultimate message of Dayananda whom we can possibly truly characterise as a great humanist.

Humanist outlook of Dayananda led him to dream of a new social order which one may call Moral Socialism. He had the vision of a cosmopolitan commonwealth of man. All countries would be free and equal and each national-unit would be a union of free individuals. In this ideal society neither money nor trade and commerce would exist in the traditional sense. There would take place only an exchange of goods between different centres. Railways, telegraph system, aeroplanes etc. would remain for the welfare of the community—as a whole. "Under the scheme, motive of 'gain' shall give place to motive of 'service' to the

14. Introduction to *Satyartha Prakash* by Dayananda taken from Dr Chiranjiva Bharadwaja, op. cit, p. iv (Introduction)

15. Alokananda Mahabharati, op. cit, p. 12.

16. Quoted by V. P. Varma, op. cit., p. 57.

whole community—each living for all and all for each.[17]" Like a true socialist Dayananda championed the interest of the submerged, downtrodden and exploited classes in society. He said : "In this New Era, God will manifest Himself amongst the submerged classes. Great religious teachers will rise from their ranks.[18]" But this new social order, he was firmly convinced, would not be established by force or by introducing changes in the social system only. What was necessary was a change in human outlook, a change of human nature. Referring to the activities of the socialists who were trying to establish a new social system by force he said. "They are pursuing a wrong track. Liberty, equality and fraternity shall never be established on earth by blood-shed. The only means to that end is spiritual force and love.[19] "Not common interest but love alone, according to Dayananda, can bring into existence a new social order without the frontier of nations and division of class.

Dayananda tried to apply these principles to the organisation of his Arya Samaj and the various Ashrams established under its auspices. The organisational structure of the Arya Samaj was based on the principle of democratic election. The Ashrams were regarded as the common property of all its members and everything was managed by them in cooperation. They were like so many religious republics.[20]

Though Dayananda had his utopia he was not an utopian thinker but a practical idealist. He believed that India, the cradle of the Vedic civilization, had a vital role to play in the world, But as long as India would remain enslaved she would not be able to play that role. He, therefore, wanted to make India free and supplied a dynamic philosophy to Indian nationalism. His role was to prepare the country socially and psychologically for freedom. He himself did not take any direct part in the political movement against the British but the British Government was immensely afraid of him and his

17. Alokananda Mahabharti, op. cit., p. 157. For details of the ideal society, as envisaged by Dayananda, see the chapter 'What is Thakur Dayananda's scheme of this book.

18. Ibid., pp. 30.31.

19 Ibid., p. 32.

20 Ibid., p. 32.

Arya Samaj. As Romain Rolland has put it : "He (Swami Dayananda) always claimed to be non-political and non anti-British but the British Government judged differently.[21]" Once when Swamiji was at Silchar (Assam) the police arrested him along with two of his disciples but they were later on released as there was no valid charge against them. The Government however always exercised pressure upon his disciples who were on Government service.[22] The British India, it is clear, understood the far-reaching and revolutionary implications of his teachings and activities. It is therefore, not surprising that Sir Valentine Chirol, who Visited India on behalf of 'The Times' to find out the causes of Indian unrest after 1907, considered the Arya Samaj as a serious menace to the British supremacy in India. The impact of the doctrines of Swami Dayananda and of the Arya Samaj founded by him is obvious though no detailed study on this topic has yet been made in our country. Zacharias has aptly remarked that "Tilak merely carried on the lines Dayananda had inaugurated"[23]. The political outlook of Lajpat Rai was besed upon the doctrines of the Arya Samaj.

Two common charges against Dayananda refuted :

After explaining his main contributions in broad outline let us refer to and comment upon the two charges that are usually brought against Dayananda. He is considered by some as 'reactionary'. anti-modern and revivalist. Secondly, his aggressive and militant posture is denounced by many. Zacharias, as for example, wrote : "with him (Dayananda) rowdyness had entered Indian public life".[24] Do these charges stand the test of logic and historical analysis ?

Dayananda, it is true, derived his inspiration for creating a new India from the Vedic past. But on that account he cannot be considered as more 'reactionary' than the pioneers of the Renai-sance and the Reformation movements of Europe. The Renaissance movement derived inspi-

21. Roma in Rolland, the life of Ramakrishna, 157-58.
22. Alokananda Mahabharati, op cit. pp. 67-68.
23. Zacharias, H. c F. *Renascent India*, p. 89.
24. Ibid., P. 39.

ration from the ancient Greek civilization. The Reformation movement returned to the original Bible to combat the corruption of the Christian Church. If these movements can lay the foundation of modern Europe, is it reasonable to hold Dayananda as 'reactionary, and anti-modern? Shri Durga Prasad has aptly described him as the "Luther of India".[25] Swami Dayanand, one should remember, found greatest opposition to his work from the orthodox Brahmins of country. He was neither a 'reactionary' orthodox nor was his vision dazzled by the glitter of the modern western civilization. He was therefore condemned both by the orthodox as well as by the blind worshippers of 'modernism'.

Let us now come to the second charge. Dayananda was full of energy, dynamism and vitality. He firmly believed that national regeneration could not be attained by a spirit of passivity, inertia and resignation. Courage of conviction and honesty of purpose made him assertive. His ideas and activities brought about a new energy and enthusiasm among the masses of the Indian people. He made his appeal "not to an English educated elite but to the broad masses of his fellow countrymen."[26] His messsage stirred the imagination of a section of the Indian people and brought in them a sense of pride in their culture. With him, therefore, entered not "rowdyism" but assertion of the self-respect by the Indian people. Moreover, as Dr. Varma has put it, "the militancy manifested by Dayananda and Arya Samaj was partly a counterpoise to the domineering attitudes of the two other semitic churches in India, Islam and Christianity."[27]

A detailed study of the life, ideas and activities of Swami Dayanada will fully justify the remark of Dr. K. P. Jayaswal that "in the nineteenth century there was nowhere else such a powerful teacher of monotheism, such a preacher of the unity of man, such a successful crusader against capitalism in spirituality."[28] A critical examination of his views will enable us to discover solutions of many of the evils modern India is suffering from. We can forget this savant of modern India only at our own peril

25. Durga Prasad, ***An English Translation of the Satyartha Prakash of Maharshi Swami Dayananda.*** See Introduction, P. xii.

26. B. B. Mazumdar, ***History of the Indian Reformation***, p. 68.

27. Dr. V. P. Varma, op. cit., p. 59.

28. K. P. Jayaswal's article in Dayananda Commemoration volum, pp. 162 63.

महर्षि दयानन्द की देन

३

श्री जी० पी० भट्टाचार्य

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

ऐतिहासिक अनुसन्धान ने यह निर्विवाद रूप से प्रमाणित कर दिया है कि वैदिक काल में भारतवर्ष में एक अति उन्नत संस्कृति वर्तमान थी। वैदिक संस्कृति में अनेक कारणों से अधःपतन आरम्भ हो गया, यद्यपि इन कारणों की समग्र सम्पूर्ण व्याख्या विद्वानों ने की नहीं है। इस सामाजिक गति हीनता और अध्यात्मिक पतन के काल में अनेक सम्प्रदाय सिद्धान्त वैदिक संस्कृति को ललकारते हुए खड़े हो गये। इसी बीच, इधर इस्लाम की शक्ति से आक्रान्त होने पर भारत में राजनीतिक अनिश्चय और सामाजिक संघर्ष का काल आरम्भ हो गया। यद्यपि इस काल में, धार्मिक पुनरुत्थान और विरोधी सिद्धान्तों में समझौते के अनेक प्रयास हुए, किन्तु वे एक निश्चित क्षेत्र में आबद्ध रहे और उन्हें अति सीमित सफलता मिली। प्राचीन वैदिक संस्कृति भूतके अवशेषों में ढ़की पड़ी रही।

ब्रिटेन की भारत विजय के कारण भारत के सामाजिक राजनीतिक, बौद्धिक जीवन में नवचेतना और गतिशीलता का जन्म हुआ। भारत न केवल राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से एक इकाई में बँध गया, वलिक इसका सम्पर्क पश्चिम के विचार, विज्ञान और तकनीक से हुआ। पश्चिम की इस धारा के साथ ही भारत के अतीत और विस्मृतप्राय संस्कृति का उद्धार विद्वानों के दल, पश्चात्य और पौरस्त्य, दोनों ने भारत के अतीत के सम्बन्ध में अपने अनुसन्धान के द्वारा, किया। इन दो सांस्कृतिक शक्तियों की क्रिया प्रतिक्रिया आरम्भ हुई। इनमें से एक पश्चिम से आयात, बुद्धिवादी, धर्मनिर्पेक्ष और विज्ञान के आधार पर थी और दूसरी आध्यात्मिक एवं श्रेष्ठ भारत की प्राचीन परम्परा से उद्भूत हुई। इन्होंने देश में एक बौद्धिक क्रान्ति का जन्म दिया जिसे उन्नीसवीं सदी का पुनर्जागरण कहते हैं। यह जागरण बहुपक्षीय सांस्कृतिक आन्दोलन था और विभिन्न विचार धाराएँ, और कभी कभी विरोधी विचारधाराएँ सन्निविष्ट हुई। कुछ लोग, जो सर्वथा परम्परावादी थे, इस पुनर्जागरण के प्रभाव से पृथक रहे और उन्होंने रूढ़िगत परम्पराओं और संस्थानों की रक्षा की चेष्टा की। एक ओर विचारधारा के लोग थे जो पश्चिमी विचारों के प्रवाह में बह गये और वे भारत के अतीत के प्रति अनावृत हीनता का दृष्टिकोण रखने लगे। अधिक शान्त लोगों ने भारत की अतीत परम्परा और पश्चिम के विज्ञान एवं तकनीक में ताल मेल बैठाने की चेष्टा की।

इस सामञ्जस्यवादी विचारधारा का नेतृत्व करने के लिये भारत के दो छोरों से दो महापुरुष पैदा हुए; एक पूर्वी भारत से, दूसरे पश्चिमी भारत से। समान्यतः बंगाल के राजा राममोहन राय और गुजरात के महर्षि दयानन्द सरस्वती का

सम्बन्ध इसी विचारधारा से है। उन दोनों में कोई मौलिक अन्तर न था; जो कुछ भेद था वह मात्रा और महत्व का था। राजा राम मोहन राय महान् विद्वान् थे। वे पाश्चात्य एवं पौरस्त्य, संस्कृत समेत, कई भाषाएँ जानते थे। उन दिनों ब्रिटेन से कई प्रसिद्ध विद्वान भारत वर्ष आये और इस देश में अंग्रेजी भाषा की निरन्तर प्रगति होतो जा रही थी। उस युग की यह एक महती आवश्यकता थी कि कोई ऐसा समर्थ व्यक्ति पैदा होता जो वेदों का भाष्य मौलिक और विशुद्ध रूप में करता। उस युग के पण्डितों ने वेद भाष्य किये थे किन्तु वे पौराणिक कथाओं के आलोक में थे। उनके भाष्य वैदिक काल की समुन्नत संस्कृति का यथोचित सुस्पष्ट ज्ञान नहीं दे सकते थे। योरोपीय विद्वानों ने इन्हीं पण्डितों से संस्कृत पढ़ी थी अतः अनिवार्यतः योरोपीय विद्वानों की भाषाओं में भी वही रंग चढ़ गया। यह महर्षि दयानन्द ही थे, जिन्होंने असामान्य अन्तर्दृष्टि से वेदों पर न्यस्त पौराणिक कथा भार से वेदों को मुक्त किया और वेदों का अर्थ वैदिक भाषा के दृष्टिकोण से किया। वैदिक संस्कृति की प्रकृति के सम्बन्ध में उनके भाष्य ने एक नूतन पथ का उद्घाटन किया। उन्नीसवीं शती में भारत के सांस्कृतिक इतिहास में महर्षि दयानन्द का आधारभूत कार्य छिपा है। इसी ऐतिहासिक परिवेश के आलोक में तथा जिस विशिष्ट ऐतिहासिक आकांक्षा की पूर्ति उन्होंने की, उसके परिप्रेक्ष्य में, महर्षि दयानन्द के अवदानों का मूल्याङ्कन होना चाहिये।

संक्षिप्त जीवन चित्र: उनके जीवन के तीन चरण

* महर्षि दयानन्द का जन्म १८२४ में मौरवी राज्य, कठियावाड़, गुजरात में एक कट्टर परम्परावादी ब्राह्मण परिवार में हुआ। छोटी अवस्था में ही उनमें धर्म के प्रति गहरी अभिरूचि का विकास हुआ। उनकी आयु अभी बीस वर्षों की भी न थी जब हिन्दुओं की धार्मिक परम्परा पर से उनकी आस्था हट गई और उन्होंने अनुभव किया कि मूर्तिपूजा और बहुदेवता वाद व्यर्थ तथा हानिकारक हैं। इनके परम्परा विरुद्ध विचारों के कारण इनकी अपने पिताजी से अनबन रही। अभी दयानन्दजी की आयु केवल बीस वर्षों की ही थी जबकि इनके पिताजी ने बलात् इनकी इच्छा के विरुद्ध इनका विवाह करना चाहा और दयानन्द जी अपने पिताजी का घर छोड़ने के लिये बाधित हो गये। यहाँ से दयानन्द जी के जीवन का द्वितीय चरण आरम्भ होता है। उन्होंने घर से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया और संन्यास ले लिया। उन्होंने सम्पूर्ण भारत का भ्रमण किया और अपनी आँखों हिन्दु समाज का विस्तार से अध्ययन किया। उनके उर्वर मस्तिष्क में, उनके गम्भीर अध्ययन और साधना के फलस्वरूप इस विस्तृत अनुभव ने बहुत सुन्दर परिणाम उत्पन्न किया। सन् १८६० ई० में उन्होंने मथुरा में गुरू स्वामी विराजानन्द जी के पास अध्ययन आरम्भ किया और यह अध्ययन का क्रम ढ़ाई वर्षों तक चलता रहा। सन् १८६४ ई० में उन्होंने जनता में प्रचार करना, उपदेश देना आरम्भ किया। इस प्रकार उनके जीवन के तृतीय चरण का आरम्भ हुआ। इन अपने जन प्रवचनों में वे संस्कृत भाषा का ही प्रयोग किया करते थे, अतः साधारण जनता का विशाल भाग उसे समझ न पाता था। अतः पीछे उन्होंने जन भाषा + में प्रवचन आरम्भ किया। १० अप्रैल १८७५ ई० को इन्होंने सर्वप्रथम बम्बई में आर्य समाज की स्थापना की। सन् १८७७ ई० में लाहौर में आर्य समाज के विधान को अन्तिम रूप दिया गया। स्वामी दयानन्द जी इस समय अपने सन्देश के प्रचार में पूर्णरूप से तल्लीन हो गये थे। उन्होंने कई पुस्तकें लिखीं। इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण सत्यार्थ प्रकाश है। इनमें इन्होंने अपने विचारों की व्याख्या की है और इन्होंने लोगों को आर्य समाज की पताका के नीचे संगठित करने की चेष्टा की। देश के पश्चिम भाग में गुजरात, पंजाब, उ० प्र०, और राजस्थान में इनका सन्देश विशेष रूप से सफल हुआ।

* इनका वास्तविक नाम मूल शंकर था।

+ स्वामी दयानन्द जी इसे 'आर्य भाषा' के नाम से अभिहित करते हैं। सम्पादक

३० अक्टूबर १८८३ ई० को महर्षि के पार्थिव शरीर का अन्त हो गया।

भारतीय समस्याओं के प्रति महर्षि दयानन्द के मौलिक विचार

महर्षि दयानन्दजी सुदृढ़ इच्छा और बहुमुखी प्रतिमा के व्यक्ति थे। उन्होंने भारत के इतिहास पर गहरा प्रभाव डाला है। उन्होंने भारतीय जनता को एक दृष्टिकोण और नूतन गतिशीलता दी। उन्होने हमारे राष्ट्रिय जीवन को बहुविध समृद्ध किया। उनके बहुपक्षीय अवदानों का मूल्यांकन उन्हें तीन वर्गों में विभक्त करके किया जा सकता है: धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक। उनके अवदान परस्पर बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध रखते हैं अतः इस वर्गीकरण को बहुत दृढ़ता से नहीं पकड़ना चाहिये। राजनीतिक परतन्त्रता के परिप्रेक्ष्य में ईसाई धर्म-प्रचारकों द्वारा हिन्दुओं के धर्म-परिवर्त्तन को स्वामी दयानन्द ने बड़ी चिन्ता से देखा। हिन्दू समाज में प्रचलित अन्धविश्वास और कुरीतियों ने ईसाई धर्मप्रचारकों को अच्छा अवसर दिया और वे बड़ी सफलता से हिन्दुओं को ईसाई बना रहे थे। भारत या आर्यावर्त्त की हिन्दू सभ्यता की चेतना को चरने वाली कुरीतियों को दयानन्द का समर्थन नहीं मिल सका। स्वामी दयानन्द को भय था कि वैदिक सभ्यता की यह भूमि राजनीतिक परतन्त्रता और अन्य बुराइयों के कारण अपना स्वत्व खो बैठेगी। यह राजनीतिक परतन्त्रता क्यों थी? स्वामीजी के विचार से भारत की राजनीतिक परतन्त्रता का कारण था, "परस्पर ईर्ष्या, द्रोह, मतमतान्तर, जीवन में अपवित्रता, शिक्षा का अभाव, बालविवाह... . भौतिक सुखों में आसक्ति, असदाचार और अन्य कुरीतियाँ।"२ इनके विचार में सामाजिक पतन ही राजनीतिक परतन्त्रता का कारण था। अतः उन्होंने सोचा कि राजनीतिक स्वतन्त्रता का आधार है सामाजिक कुरीतियों को दूर करना और आर्यावर्त्त के लोगों में सामाजिक कुरीतियों का मूल आधार क्या था? वास्तविक वैदिक संस्कृति से पथभ्रष्ट होने के कारण ही सामाजिक कुरीतियाँ आई थीं। अतः मूल वैदिक संस्कृति का पुनः स्थापन ही हिन्दू-कुरीतियों को दूर करने का एकमात्र उपाय था। इस प्रकार महर्षि दयानन्द के विचार में राजनीतिक स्वतन्त्रता, सामाजिक सुधार और वैदिक सभ्यता के पुनरुद्धार में कार्य-कारण भाव का सम्बन्ध था। वैदिक सभ्यता के पुनरुद्धार से सामाजिक सुधार होगा और इसी से राजनीतिक स्वतन्त्रता का मार्ग प्रशस्त होगा। इस प्रकार दयानन्द में धार्मिक उपदेशक, समाज-सुधारक और राजनीतिक सन्देष्टा, तीनों एक में अनुस्यूत हैं। यद्यपि हम इन तीनों अवदानों को तीन अलग खण्डों में वर्णन करेंगे, फिर भी, इस सामञ्जस्यकारी तत्त्व का ध्यान रखना चाहिये।

२—वी० पी० वर्मा द्वारा Modern Indian Political Thouhgt में पृष्ठ ६० पर सत्यार्थप्रकाश से उद्धृत।

धर्मिक सुधार :

स्वामी दयानन्द पूर्णतः धार्मिक व्यक्ति थे और वे संन्यासी बने। किन्तु संन्यास के कारण इन्होंने समाज का तिरस्कार कर केवल एकान्त और आत्म-कल्याण को ही लक्ष्य नहीं बनाया। पूर्ण वैराग्य के साथ ये समाज में रहे और इन्होंने समाज के लिए काम किया। स्वामी दयानन्द ने देखा कि तात्कालिक हिन्दू-समाज वैदिक-काल के हिन्दु-समाज से सर्वथा भिन्न था। वेद के आदेश के विरुद्ध लोग अन्धविश्वासपूर्ण परम्परा का पालन हिन्दु-धर्म के नाम पर कर रहे थे। बहु-देवतावाद, मूर्त्तिपूजा, अस्पृश्यता आदि हिन्दु-धर्म के आवश्यक अंग माने जा रहे थे। किन्तु स्वामी दयानन्द ने देखा कि वेदों के आधार पर इनमें से किसी की भी प्रामाणिकता नहीं थी। उन्होंने देखा कि हिन्दु अन्धविश्वासों से ऊबकर बहुत से लोग ईसाइयत की ओर आकृष्ट होते जा रहे थे। वैदिक धर्म की वास्तविकता दिखाकर उन्होंने इस गतिविधि को अवरुद्ध करने की चेष्टा की।

स्वामी दयानन्द ने विचार किया और देखा कि हिन्दु-सभ्यता का पतन पुराणों की धर्म-परम्परा से आरम्भ हुआ। हिन्दु-विचारधारा की अन्तिम कड़ी, पुराण-कथाएँ ही प्रचलित हिन्दु-धर्म का आधार थीं। स्वामी दयानन्द ने बताया कि ये पुराण कथाएँ न तो वेदों द्वारा समर्थित हैं और न स्मृतियों द्वारा ही। पौराणिक काल के वेदभाष्यकारों ने अपने विचारों का समर्थन वेदों में खोजने की चेष्टा की। अतः उन्होंने वेदों के भाष्य अपने ढंग से कर लिए। सायण और महीधर जैसे भाष्यकर्त्ता इसी वर्ग के हैं। वे प्रायः वेदों के पौराणिक भाष्यकार के रूप में सम्मिलित जाने जाते हैं। उन्होंने वेदों का ऐसा भाष्य किया जिसमें पुराण कथाओं को वेदों से प्रमाणित करने की चेष्टा की। पश्चिम के विद्वानों ने इन भाष्यों को प्रमाणरूप में स्वीकार किया। अतः इनके वेद-भाष्य भी सायण, महीधर और इसी विचारधारा के दूसरे भाष्यों से प्रभावित हुए। परवर्ती काल के भाष्यकारों के प्रभाव से मुक्त होकर स्वामी दयानन्द ने मूल ग्रन्थों के आधार पर वेदों का भाष्य किया।

यह सर्वसम्मत है कि निरुक्तकार यास्क वेदभाष्य के सम्बन्ध में सर्वोच्च प्रमाण हैं। सायण और महीधर ने भी सम्मानपूर्वक उनके उद्धरण दिये हैं। स्वामी दयानन्द ने यास्क प्रतिपादित निरुक्त के सिद्धान्तों के आधार पर वेद भाष्य करने का प्रयास किया। यास्क के अनुसार वेद के सभी पद अपने यौगिक अर्थ में प्रयुक्त हैं। इसका अभिप्राय यह हुआ कि उनमें व्यक्तिवाचक संज्ञा या ऐतिहासिक सन्दर्भ हो ही नहीं सकता। पौराणिक अथवा ऐतिहासिक विचार-धारा के प्रतिकूल यास्क को वेदभाष्य की नैरुक्तिक परम्परा का संस्थापक माना जा सकता है। अन्ध-परम्परा के सर्वथा विरुद्ध स्वामी दयानन्द ने नैरुक्तिक विचारधारा का अनुसरण करते हुए वेद-ग्रन्थों का अर्थ किया। वेदों में प्रयुक्त अग्नि, वायु, सूर्य, आकाश, आदि पद, निरुक्त या निर्वचन प्रक्रिया के अनुसार, प्रकृति के विभिन्न विभागों पर शासन करने वाले देवताओं के वाची नहीं हैं। इनका दो अर्थों में प्रयोग हुआ है। कभी वे भौतिक पदार्थों का बोध कराते हैं तो कभी सर्वशक्तिमान् परमात्मा का। अग्नि, वायु, सूर्य, सोम आदि पद उसी वर्णनातीत का वर्णन करने के लिए प्रयोग किये जाते हैं और उसे ही वेदों में ओ३म् कहा गया है। इन शब्दों का प्रयोग किसी भौतिक पदार्थ का वर्णन कर रहा है या वर्णनातीत सर्वशक्तिमान् का, यह निर्णय केवल सन्दर्भ के आधार पर ही किया जा सकता है। इन विभिन्न पदों का निर्वचनानुसारी भाष्य करके स्वामी दयानन्द ने वेद-मन्त्रों का अति सुरुचिपूर्ण अर्थ किया। उनके अनुसार उर्वशी स्वर्गीय अप्सरा और इन्द्र के दरबार की सुन्दरी नहीं अपितु विद्युत है। जिन वेद-मन्त्रों में बालिश कथाओं का वर्णन समझा जाता था, दयानन्द के अनुसार उनमें अति महत्त्वपूर्ण सत्य उद्घाटित हुआ है। इन सिद्धान्तों के आधार पर स्वामी दयानन्द ने जो वेदभाष्य किये, उनसे प्राचीन भारत की अति उन्नत एवं वैज्ञानिक संस्कृति का परिचय मिला। उनके प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' में, जिसे उन्होंने हिन्दी में लिखा था, उनकी व्याख्या मिलती है। प्रथम दश समुल्लासों में वैदिक शिक्षा का वर्णन है। एकादश समुल्लास में पौराणिक और तान्त्रिक मान्यताओं की व्याख्या है। स्वामीजी के अनुसार इनमें वेदों से सुस्पष्ट मतभेद है। द्वादश समुल्लास में, बौद्ध, जैन और चार्वाक मतों की समालोचना है। इन नास्तिक विचारों के कारण, भारतीय सभ्यता संस्कृति का पतन हुआ है अतः स्वामी दयानन्द उनके प्रचार को हर प्रकार से रोकना चाहते थे। इस पुस्तक में स्वामी दयानन्द की वैदिक विद्या पूर्णरूप से प्रकट हुई है। कोई उनके विचारों से सहमत हो या न हो, किन्तु जो भी इस पुस्तक को पढ़ेगा, वह उनकी विश्लेषण क्षमता और विद्या की गम्भीरता की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता। इस ग्रन्थ का मूल उद्देश्य यह था कि प्राचीन वैदिक सभ्यता के आधार पर जो "जड़ें आई हैं, उन्हें काट-छाँटकर"[३] भारतीय जन-जीवन के पुनर्निर्माण के लिए लोगों को प्रोत्साहित किया जाय।

---

३. MacDonald, The Government of India. P. 236.

स्वामी दयानन्दजी ने सत्यार्थ प्रकाश में यह स्थापना की कि वेद धर्म एक एकेश्वरवाद का हामी है। वेदों में ऐसे मन्त्र हैं, उनमें ईश्वर की एकता का वर्णन है किन्तु साथ ही ऐसे सन्दर्भ हैं, जिनमें अनेक देवों का प्रसङ्ग है। इससे बहुतों ने यह निष्कर्ष निकाला कि वेद धर्म बहुदेवतावादी है। वेद-धर्म की व्याख्या के लिये मैक्समूलर ने Henotheism+ शब्द को सर्वापेक्षया अधिक उपयुक्त समझा। उसने कहा कि बहुदेवतावाद से हम देवों की एक ऐसी व्यवस्थित परम्परा समझते हैं जिस मेंसर्वशक्तिमान् प्रभु (चाहे Zeus हो or Jupiter हो) सबसे ऊपर और उसके अन्दर अनेक देवताओं का स्थान है। उसे वेदों में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं मिलती है। अतः मैक्समूलर ने Henotheism शब्द काचुनाव किया। स्वामी दयानन्द इन विचारों से सहमत न हुए। उन्होंने कहा कि वेद में एक ही ईश्वर का वर्णन है यद्यपि उसे अनेक नामों से अभिहित किया गया है। जिस प्रकार ईश्वर के विशेषण अनन्त हैं, उसी प्रकार उसके नाम भी अनन्त हैं। स्वामी दयानन्द ने अनुसार अग्नि, वायु, सूर्य आदि पद भिन्न-भिन्न देवताओं के वाचक न होकर एक ही सर्वशक्तिमान् ईश्वर के विभिन्न विशेषण हैं। ये विभिन्न पद भौतिक पदार्थों के नाम भी हैं अतः जैसा हमने पहले कहा है, इन पदों का वास्तविक अर्थ उनके सन्दर्भ से ही निर्णीत हो सकता है।

स्वामी दयानन्द के वेदभाष्य बहुतों को उपहसनीय लगते हैं ? कुछ लोगों ने उन्हें अशुद्ध व्याख्या करने वाला समझा। उनकी व्याख्या सचमुच परम्परा निरपेक्ष है, अतः परम्परा और अन्धविश्वास के विरुद्ध है। किन्तु यह उनके तिरस्कार का कोई कारण नहीं। उनकी व्याख्या निश्चित सिद्धान्तों के आधार पर है और वे इन सिद्धान्तों का अनवरत अनुसरण करते हैं। कोई या तो यह दिखा दे कि वेदभाष्य की निर्वचन पद्धति स्वयं अशुद्ध है या फिर यह दिखा दे कि स्वामी दयानन्द के भाष्य में यह पद्धति संगत नहीं हुई। किन्तु आज तक उस स्तर पर स्वामी दयानन्द से किसी ने हाथ मिलाने का साहस नहीं किया।

+ बिना दूसरे देव को इन्कार किये एक देव की पूजा।

—सम्पादक

समाज सुधार—

वैदिक संस्कृति के पुनरुद्धार की चेष्टा के साथ ही स्वामी दयानन्द ने हिन्दू समाज के कई सुधार की चेष्टा की। उन्होंने देखा कि हिन्दू समाज में प्रचलित तमाम कुरीतियाँ, वेद के आदर्श के विरुद्ध हैं और उन्हीं के कारण हिन्दू समाज ईसाइयों के आक्रमण का शिकार बना हुआ है। अतः उन्होंने हिन्दु समाज से इन कुरीतियों को दूर करने की चेष्टा की।

स्वामी दयानन्द मूर्ति पूजा के कट्टर विरोधी थे और इसके विरुद्ध उन्होंने सोलह आक्षेप किये।[४] उन्होंने बलि प्रथा का दृढ़ विरोध किया और हिन्दुओं द्वारा विदेश यात्रा को प्रोत्साहन दिया। राजा राममोहन राय की तरह वे भी नारी-स्वतन्त्रता के समर्थक थे। इन्होंने देखा कि वैदिक सिद्धान्तों के विरुद्ध, बहुत से अमानवीय बन्धन हिन्दु स्त्रियों पर लगे हैं। स्त्री और पुरुषों की समानता के सिद्धान्त का प्रचार करते हुए उन्होंने स्त्रियों पर लगे इन बन्धनों को हटाने की चेष्टा की। उन्होंने बाल विवाह का विरोध किया। उनके मतानुसार २५ वर्ष से कम के पुरुष और १६ वर्ष से कम की स्त्री का विवाह नहीं होना चाहिये। वह स्त्री शिक्षा और विधवा विवाह के प्रबल समर्थक थे।+ स्वामी दयानन्द ने तदानीन्तन प्रचलित जाति प्रथा का विरोध किया। उन्होंने वैदिक वर्णाश्रम धर्म के पुनरुद्धार की चेष्टा की। उन्होंने विचार किया कि वैदिक सिद्धान्तानुसार किसी का वर्ण उसके

४—डा० चिरंजीव भारद्वाजकृत सत्यार्थ प्रकाश का अंग्रेजी अनुवाद पृ० ३५८-६०। यह प्रसंग मूल सत्यार्थ प्रकाश में एकादश समुल्लास पृ० tृ९७-९८, वैदिक यन्त्रालय, अजमेर ३४वाँ प्रकाशन) सम्पा०।

+ विधवा विवाह के स्थान पर ऋषि ने 'नियोग' प्रथा का समर्थन किया। आज के समाज में निोग कठिन है अतः विधवा विवाह कम हानिकर प्रथा के रूप में समर्थित है।

—सम्पादक

जन्म से नहीं अपितु उसके गुण कर्म स्वभाव से निश्चय होना चाहिये। उनके अनुसार, वैदिक सिद्धान्तों के आधार पर समाज को चार वर्णों, में ही विभक्त करना चाहिये। हिन्दुओं में प्रचलित असंख्य जाति उपजाति की प्रथा को उन्होंने वैदिक समाज संघटन की भावना के विरुद्ध कहा। हिन्दू समाज में व्याप्त अस्पृश्यता का उन्होंने विरोध किया। महात्मा गांधी ने स्वामी दयानन्द के दृष्टिकोण की प्रशंसा करते हुए कहा है—"अस्पृश्यता के विरुद्ध स्वामी दयानन्द की सुस्पष्ट घोषणा असंदिग्ध रूप से हमारे लिए उनके समृद्ध दाय में से एक है।"

महर्षि दयानन्द ने शुद्धि आन्दोलन के रूप में आर्य समाज के पुरोगम में एक क्रान्तिकारी योजना दी। उनका विश्वास था कि खोये हुए हिन्दुओं को, जो दूसरे मतों में चले गये हैं, उनको पुनः हिन्दुओं में मिला लेना चाहिए। यह पुनर्हिन्दु-करण का आन्दोलन शुद्धि आन्दोलन के नाम से जाना जाता है। उदार और प्रबुद्ध वैदिक मान्यताओं के साथ उनका विश्वास था कि हिन्दुओं का दरवाजा सदा उनके लिये खुला रहना चाहिये जो किसी समय किसी कारण से इसे त्याग कर अन्यत्र चले गये थे।

स्वामी दयानन्द अपने देश की शिक्षा व्यवस्था में आमूल परिवर्तन लाने के लिये सचेष्ट थे। अंग्रेजों द्वारा चालित शिक्षा व्यवस्था की जो भी अच्छाई हो, किन्तु इसका देश की विशाल सांस्कृतिक परम्परा से कोई सम्बन्ध न था। इस शिक्षा व्यवस्था की उपज सांस्कृतिक दृष्टिकोण से जनसाधारण के लिये विदेशी थी। स्वामी दयानन्द इस व्यवस्था को बदलना चाहते थे। इस प्रकार राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था का, जिसका स्वदेशी आन्दोलन के दिनों अधिक प्रचार हुआ, आदि प्रचारक स्वामीजी को समझना चाहिए। उनका कहना था कि भारतीय लोग अपने देश का विशुद्ध सांस्कृतिक साहित्य पढ़ें और इसके लिये उन्हें संस्कृत और वेद की ओर लौट आना चाहिये। छात्र केवल ज्ञान ही न प्राप्त करें, बल्कि अपने चरित्र से समाज के अच्छे सदस्य बनें। दयानन्द-एँग्लो-वैदिक कालेज की स्थापना महर्षि के विचारों के आधार पर की गई थी।५ इसमें संस्कृत और वेदों के अतिरिक्त अंग्रेजी, पश्चिमी विज्ञान, पश्चिमी दर्शन, इतिहास आदि भी पढ़ाये जाते थे।६ इससे यह सुस्पष्ट है कि दयानन्द का विरोध पश्चिमी विज्ञान और अंग्रेजी भाषा से नहीं था। किन्तु राष्ट्रिय पुनरुद्धार और जातीय उत्थान के लिये वे विगत वैदिक सभ्यता और संस्कृत भाषा का ज्ञान अनिवार्य मानते थे।

स्वामी दयानन्द द्वारा स्थापित आर्य समाज वर्तमान भारत के सामाजिक जीवन में एक महत्वपूर्ण शक्ति है। क्रियात्मक क्रियाकलाप से इसने आर्यावर्त में एक नये समाज को स्थापित करने की चेष्टा की है। स्त्री और पुरुष दोनों के लिये एक बड़ी संख्या में स्कूल कालेज चलाने के अतिरिक्त इसने अच्छी संख्या में अनाथालय और विधवा सदनों की स्थापना की है। दलित वर्गों के लिये समाज का अपना मिशन है और इसने सहस्रों पद्दलितों को उठाकर उच्च वर्ग की प्रतिष्ठा दी है। इसने बड़ी दृढ़ता और निष्ठा से स्त्री स्वतन्त्रता के प्रश्न को लिया और बड़ी संख्या में बाल-विधवाओं की सुख-सुविधा की व्यवस्था की। अकाल और बाढ़ जैसे प्रकृति के प्रकोपों के अवसर पर आर्य समाज ने अनेक बार रिलीफ का काम किया है।७

५—आर्य समाज में मतभेद और दो दलों की सृष्टि (एक के नेता लाला हंसराज और दूसरे के नेता स्वामी श्रद्धानन्द) का वर्णन इस लेख में अनपेक्षित है। हाँ, इतना कहा जा सकता है कि डी० ए० वी० कालेज प्रथम दल के अन्दर रहा और दूसरे दल ने एक नूतन शिक्षण संस्था की स्थापना हरद्वार के पास गुरुकुल नाम से किया।

६—Hans Kohu, "A History cf Nationalism in the East" P. 65

७—Sea Introduction of Ghasi Ram to the Commentary on the Vedas & Swami Dayanand.
आर्य समाज के इतिहास के लिये लाला लाजपतराय की पुस्तक द्रष्टव्य है।

राजनीतिक सुधार

शब्द के अपने तकनीकी अर्थ में दयानन्द राजनीतिक चिन्तक नहीं थे, किन्तु उनके विचारों के सतर्क स्वाध्याय से उनका राजनीतिक चिन्तन उद्घाटित होता है। स्वयं राजनीति की परिधि से बाहर रहकर भी उन्होंने राजनीतिक क्षेत्र में भी प्रभूत अवदान किया है। अत्यन्त धार्मिक होकर भी उन्होंने मनुष्य के अस्तित्व के भौतिक पक्ष की उपेक्षा नहीं की। मानव जीवन का कोई भी पक्ष उनके लिये परकीय नहीं था और उनके मिशन का उद्देश्य था कि सम्पूर्ण मानव जीवन को आध्यात्म दर्शन के निर्देश में लाया जाय।

उनके राजनीतिक विचार की अत्यन्त आकर्षक विशेषता जो बड़ी सरलता से हमारा ध्यान आकृष्ट कर लेती है, उनके राष्ट्रियता के विचार के अवदान में है। वर्तमान विचार परम्परा में राष्ट्रियता अनिवार्यतः राजनीतिक विचार है किन्तु इसका पोषण सांस्कृतिक विचार से होता है। अंग्रेज सरकार ने रेल, तार, समान व्यवस्था और विधि की सृष्टि करके राजनीतिक राष्ट्रीयता की परिस्थिति को ठीक कर दिया था। स्वामी दयानन्द का काम था कि राष्ट्रियता के इस विचार में वे इसकी आत्मा सन्निविष्ट कर दें। वैदिक संस्कृति की वास्तविक प्रकृति और आभा की व्याख्या करके उन्होंने जनमानस में उसके प्रति गौरव का भाव पैदा करने का प्रयास किया। पश्चिम के प्राच्य विद्या विदों ने भारत के अतीत की संस्कृति का पता करने की बड़ी चेष्टा की किन्तु फिर भी वे वैदिक संस्कृति और पतनोन्मुख पौराणिक काल की संस्कृति में अन्तर न दिखा सके। प्राच्य विद्या के इस महत्वपूर्ण पक्ष की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करने वाले स्वामी दयानन्दजी प्रथम व्यक्ति थे। इस सम्बन्ध में डो० मजुमदार का उद्धरण उपयुक्त होगा। वे लिखते हैं, गत शताब्दी की सतति में श्रीरामकृष्ण और स्वामी दयानन्द जैसे धार्मिक नेताओं ने भारत को अपनी संस्कृति का गौरव बोध कराने में पश्चिमके विद्वानों की तुलनामें बहुत अधिक काम किया।[८] किन्तु श्रीराम कृष्ण और स्वामी दयानन्द के दृष्टिकोणों में जो भेद है उससे आँख नहीं मोड़ा जा सकता। श्री राम कृष्ण ने भारत की समग्र प्राचीन संस्कृति को जनप्रिय बनाने का प्रयास किया, जब कि स्वामी दयानन्द ने पौराणिक सभ्यता को त्याग कर केवल वैदिक संस्कृति के पुनरुद्धार की चेष्टा की। वस्तुतः बहुत सारे अन्ध-विश्वासी आचार विचार जो पतनोन्मुख पौराणिक कथा साहित्य की देन है, किसी प्रकार भी समर्थित नहीं हो सकते। विभेद की यह तीव्रतर भावना स्वामी दयानन्द को श्री राम कृष्ण से पृथक करती है।

स्वामी दयानन्द की तरह राजा राममोहन रायने भारतीय राष्ट्रीयता के सांस्कृतिक अंग को समृद्ध करने की चेष्टा की। भारतकी उन्नीसवी शती के इन दो प्रमुख व्यक्तियों मेंअंतराल की अवहेलना कोई समीक्षात्मक अध्ययन करने वाला विद्यार्थी नहीं कर सकता। राजा राम मोहन राय और ब्राह्म समाज का दृष्टिकोण अनिवार्यतः बहुस्रोतों से श्रेष्ठ रचयन (ec'ectic) का था। उनकी चेष्टा थी कि हिन्दु मुसलमान और ईसाई आदि विभिन्न सभ्यताओं में सामञ्जस्य करके एक नूतन रूप बनाया जाय। दूसरी ओर स्वामी दयानन्द का कार्य था, लोगों को विशुद्ध वैदिक परम्परा का परिचय कराना। उन्होंने भारतीय जनता को प्रेरित किया कि वे पश्चिम के विज्ञान और तकनीक के विभिन्न पक्षों को लेकर वैदिक सिद्धान्तों के आधार पर एक नूतन सभ्यता की सृष्टि करें। हंस कान ने उचित ही संकेत किया है कि "यद्यपि ब्राह्म समाज और आर्य समाज एक ही क्रान्ति की उपज थे। किन्तु यह आर्य समाज ही था जिसने प्राचीन भारत को जगा कर बीसवीं शती के लिये मार्ग प्रशस्त कर दिया।[९]" यह यहाँ

८—Dr. Bemav Bebari Mazumdar, History of Political thought from Ram Mohan to Dayanand. Vol. I : Bengal P. 336.

९—Hans kohn, पूर्व उद्धृत पृ० ६३

कहा जा सकता है कि श्रीमती एनीबेसेन्ट के अनुसार आर्य समाज (और थियोसोफिकल सोसाइटी) के प्रचार के युग में श्वेत जाति की उच्चता के विश्वास को कम किया।[१०]

यद्यपि राजनीतिकी विचार धारा में स्वामी दयानन्द का मुख्य अवदान था भारतीय राष्ट्रियता में सांस्कृतिक तत्त्व का सन्निवेश तथापि वे संकुचित राष्ट्रियतावादी न थे। उन्होंने राष्ट्र भक्ति का समर्थन किया किन्तु मिथ्या राष्ट्रभिमान का विरोध किया। उन्होंने विश्व बन्धुत्व के विचार को बलदिया किन्तु इनका विश्व बन्धुत्व का विचार राष्ट्र भक्ति के विरुद्ध नहीं जाता। परवर्ती काल के श्री अरविन्द की तरह, इन्होंने कहाकि विभिन्न राज्यों की संस्कृतियों को चाहिये कि वे परस्पर संघर्ष में पड़ने के बजाय एक विश्व जननी मानव सभ्यता के निर्माण में योगदान करें। उन्होंने बहुबार घोषणा की, कि धरती के राष्ट्रों के द्वारा; पार्थक्य और पक्षपात की जो दीवारें बनाई गई हैं, वे शीघ्र ही एक महान विचार के सम्मुख धराशायी हो जायगी और आनन्दोत्सव में सब राष्ट्र सम्मिलित होंगे।[११] स्वामी दयानन्द ने न तो प्रत्येक भारतीय वस्तु का समर्थन किया, न ही प्रत्येक विदेशी वस्तु की निन्दा की। वे प्राचीन भारत की संस्कृति के कई तत्त्वों के महत्तम समालोचक थे। उन्होंने स्वयं कहा है: "यद्यपि मैं आर्यावर्त देश में पैदा हुआ हूँ और वसता हूँ तथापि जैसे इस देश के मतमतान्तरों की झूठी बातों का पक्षपात न कर यथातथ्य प्रकाश करता हूँ वैसे ही दूसरे देशस्थ व मत वालों के साथ भी वर्तता हूँ। जैसे स्वदेश वालों के साथ मनुष्योन्नति के विषय में वर्तता हूँ वैसा विदेशियों के साथ भी, तथा सब सज्जनों को वर्तना योग्य है[१२] स्वामी दयानन्द ने कई बातों में अंग्रेजों के राष्ट्रिय चरित्र की प्रशंसा की है, यथा उनकी उच्चतर सामाजिक दक्षता, उनके सुन्दरतर सामाजिक संगठन, उनका आत्म त्याग और उनकी साहसी प्रकृति, उनकी अनुशासन प्रियता आदि। पश्चिमी सभ्यता में भी वे कई गुणों के कायल थे और उन्होंने दोनों में सामञ्जस्य का समर्थन किया। उनके विश्वजनीन दृष्टिकोण में कहीं मिथ्या प्रतिष्ठा के लिये स्थान न था। दयानन्द के दृष्टिकोण का वर्णन करते हुये आचार्य प्रणवानन्द ने लिखा है: भारत "प्राच्य संस्कृति का घर है और इंगलैण्ड पाश्चात्य संस्कृति का। प्राच्य संस्कृति अनिवार्यतः आध्यात्मिक है और पाश्चात्य संस्कृति अनिवार्यतः भौतिक। दोनों एक दूसरे के बिना अपूर्ण हैं। पूर्णता दोनों के सहयोगी सामञ्जस्य में है। यह दैवी विधान है कि भारत और इंगलैण्ड एकत्र हुए हैं। दोनों संस्कृतियाँ भारत में एकत्र हुई हैं जिससे एक दूसरे के अनुभव से लाभ उठा सकें। एक दूसरे की अपूर्णता की पूर्ति हो सके।[१३] उनके विचारों का सतर्क अध्ययन यह सुस्पष्ट करता है कि उनका मस्तिष्क सर्व प्रकार की सङ्कीर्णताओं और मिथ्या अभिमान से मुक्त था।

यदि उनके 'दर्शन' के लिये किसी वर्तमान 'वाद' का प्रयोग करना हो तो यह अच्छा होगा कि उन्हें 'मानववादी' कहा जाय। उनके मानववाद का आधार आध्यात्मिक मनुष्य है। मनुष्य अपने अन्तरात्मा में स्थिति दैवी स्फुलिंग का प्रतिनिधि है और यही देवता सम्पूर्ण मानव जाति को एकत्र करती है। एक व्यक्ति किसी पशु से भिन्न न होगा यदि वह अपनी भौतिक कामनाओं के अधीन बना रहे। मनुष्य के भीतर स्थिति दैवी शक्ति के स्फुलिंग को विकसित करके मानव अपनी मानवता का विकास कर सकता है। स्वामीजी ने स्वयं कहा है: "जैसे पशु बलवान होकर निर्बलों को दुःख देते और मार भी डालते हैं, जब मनुष्य शरीर पा के वैसा ही

१०—श्रीमती बेसेन्ट का भारतीय राष्ट्रिय कांग्रेस में १९१७ में दिया गया भाषण।

११—Alokanand Maharshi the Masters world union Seheme PP 12-13

१२—सत्यार्थ प्रकाश की भूमिका से

13—Acharya Pronobananda Thakur Dayanand and Arunachal Mission. Suoted in Alokanand Mahabharati, op. cit, pp. 10-11

कर्म करते हैं तो वे मनुष्य स्वभाव युक्त नहीं किन्तु पशुवत् हैं। और जो बलवान होकर निर्बलों की रक्षा करता है वही मनुष्य कहाता है और जो स्वार्थवश होकर पर हानि मात्र करता रहता है, वह जानों पशुओं का भी बड़ा भाई है।[१४] मनुष्य केवल दैवी शक्तियों के विकास के द्वारा ही अपनी पशु सत्ता को दबा सकता है। तभी उसे मानव एकता की अनुभूति होगी और वह केवल अपने स्वार्थ की न सोच कर जन साधारण के कल्याण के लिये कार्य करेगा। स्वामी दयानन्द ने मानव को इस आध्यात्मिक स्तर तक उठाने की चेष्टा की वह अपने शिष्यों से प्रायः कहते थे। "हम संसार के कल्याण के लिये आये हैं, हमें अपने सुख की चिन्ता नहीं करनी चाहिए।" प्रायः वे और भी कहते, "संसार का कल्याण अपने सुख या अपने मित्रों और साथियों के कल्याण से उच्चतर है।"[१५] इस सम्बन्ध में हम स्वामी दयानन्द द्वारा प्रतिपादित आर्य समाज के नवम और दशम नियमों का उद्धारण दे सकते हैं। नवम नियम है : "प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिए, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।" दशम नियम इस प्रकार है, सब मनुष्यों को सामाजिक सर्व हितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र हैं।" इस प्रकार समाज कल्याण ही आर्य समाज का अन्तिम उद्देश्य था। स्वामी दयानन्द सम्भवतः महान् मानवतावादी थे और उनका अन्तिम उपदेश था कि मनुष्य को स्वार्थी नहीं बनना चाहिये बल्कि इसेदूसरों के हित के लिये कार्य करना चाहिये।

स्वामी दयानन्द ने अपने मानवतावादी दृष्टिकोण में एक नूतन समाज व्यवस्था का स्वप्न देखा, जिसे नैतिक समाजवाद कह सकते हैं। उनकी दृष्टि सार्वजनीन मानव कल्याण परिषद् की थी। सभी देश स्वतन्त्र और समान होंगे और हर राष्ट्रिय इकाई स्वतन्त्र व्यक्तियों का समुदाय होगा। ऐसे आदर्श समाज में न मुद्रा न व्यवसाय वाणिज्य अपने परम्परा गत रूप में होंगे। वे विभिन्न केन्द्रों से वस्तुओं के आदान प्रदान मात्र होंगे। रेल, तार, हवाई सेवा देश के कल्याण के लिये होंगी। "इस व्यवस्था में लाभ की भावना के स्थान पर सम्पूर्ण समाज की सेवा की भावना होगी—प्रत्येक व्यक्ति सब के लिये और सब प्रत्येक व्यक्ति के लिये जीवित रहेंगे।[१७] स्वामी दयानन्द ने एक सच्चे समाजवादी की भाँति समाज के शोषित और पददलित वर्गों के स्वार्थ का समर्थन किया। उन्होंने कहा, "इस नवयुग में भगवान दलित वर्ग में प्रकट होंगे। महान धर्मोपदेष्टा उठ खड़े होंगे।" किन्तु उनका दृढ़ विश्वास था कि यह समाज व्यवस्था न तो बलात् शक्ति से स्थापित होगी और न केवल समाज की परम्परा बदलने से स्थापित होगी। मानव के दृष्टिकोण में परिवर्तन की आवश्यकता है। उसके स्वभाव में परिवर्तन अपेक्षित है। जो केवल शक्ति से समाज परिवर्तन करना चाहते हैं। ऐसे समाजवादियों के सम्बन्ध में वे कहते हैं, "वे भ्रान्त पथ पर चल रहे हैं। रक्तपात से कभी स्वतन्त्रता समानता, बन्धुत्व की स्थापना धरती पर न हो सकेगी। इस साध्य का साधन तो केवल आध्यात्मिक शक्ति और प्यार है।[१९] सामूहिक स्वार्थ नहीं, केवल प्रेम ही राष्ट्र और जाति निर्विशेष नये समाज की स्थापना में समर्थ है।

दयानन्द ने इन नियमों को आर्यसमाज के सङ्गठन में लागू किया और इसके तत्वावधान में कई आश्रमों की स्थापना हुई। आर्यसमाज का संघटनात्मक ढाँचा जनतान्त्रिक चुनाव पर आधारित है। आश्रम इसके सब सदस्यों की सामूहिक

14—सत्यार्थ प्रकाश की भूमिका

15—Alokanand a Mahabharati op cit p. 12

१७. अलोकानन्द महाभारती, पृ० १७५, दयानन्द की कल्पना के आदर्शसमाज के लिए द्रष्टव्य है इस पुस्तक का "What is Thakur Dayananda's Scheme नामक अध्याय।

१८. वही पृष्ठ ३०-३१

१९. वही पृ० ३२

सम्पत्ति समझे जाते हैं और प्रत्येक वस्तु की व्यवस्था सब के सहयोग से होती थी। ये अनेक धार्मिक गणतन्त्र (Republic) की तरह थे।'[20]

यद्यपि दयानन्द के अपने विचार थे किन्तु वे 'मनमौजी' विचारक न थे, वे एक क्रियात्मक आदर्शवादी थे। उनका विश्वास था कि वैदिक सभ्यता के आदि स्थान भारत को विश्व में एक विशिष्ठ कार्य करना है। किन्तु जब तक भारत परतन्त्र है, वह उस काम को करने में असमर्थ है। इसलिए वे भारत को स्वतन्त्र करना चाहते थे और उन्होंने भारत की राष्ट्रियता को एक गतिशील दर्शन दिया। देश को सामाजिक और मानसिक रूप में स्वतन्त्रता के लिए तैयार करना, उनका कार्य था। उन्होंने स्वयं अंग्रेजों के विरुद्ध किसी राजनीतिक आन्दोलन में भाग नहीं लिया, किन्तु अंग्रेज सरकार को उनसे तथा आर्यसमाज से बड़ा भय था। जैसा रोमारोला ने कहा है :—

"वे (स्वामी दयानन्द) अपने को सदा राजनीति और अंग्रेजों के विरोध से अलग बताते थे, किन्तु अंग्रेज सरकार का निश्चय इससे भिन्न था।"[21] एकबार स्वामीजी जब सिल्चर (असम) में थे तो पुलिस ने उन्हें और उनके दो शिष्यों को पकड़ लिया, किन्तु वे छोड़ दिये गये, क्योंकि किसी के पास उनके विरुद्ध कोई प्रमाण न था। किन्तु स्वामीजी के जो शिष्य सरकारी नौकरी में थे, उनपर सरकार सदा कड़ी निगाह रखती थी।[22] यह साफ है कि अंग्रेजी शासन ने उनके उपदेश और कार्य के सुदूरगामी परिणाम और क्रान्ति को समझ लिया था। अतः इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि 'दि टाइम्स' की ओर से सर वैलेण्टिन शिरोल (Sir Velentine Chirole) जब १९०७ की अशान्ति के पश्चात् उसके कारणों की खोज करने भारत आये तो उन्होंने अंग्रेजी सत्ता के विरुद्ध आर्य समाज को एक बड़ा खतरा घोषित किया। इस दिशा में स्वामी दयानन्द और उनके द्वारा स्थापित आर्य समाज का प्रभाव सुस्पष्ट है। यद्यपि इस विषय पर अब तक हमारे देश में कोई विस्तृत अध्ययन नहीं किया गया है। जैकारियस ने ठीक ठीक ही कहा है कि, "स्वामी दयानन्द ने जिस मार्ग की कल्पना की थी, तिलक केवल उस पर चलते गये।"[23] लाला लाजपत राय का राजनीतिक दृष्टिकोण आर्य-समाज के सिद्धान्तों के आधार पर था।

दयानन्द के विरुद्ध दो आक्षेपों का निराकरण :

स्वामी दयानन्द के प्रमुख अवदानों की एक रूपरेखा प्रस्तुत करने के पश्चात् उनके विरुद्ध दो आक्षेपों का निराकरण करते हैं। कुछ लोग उन्हें प्रतिक्रियावादी, नूतनता विरोधी और उद्धारवादी समझते हैं। उदाहरणार्थ, जैकेरियस ने लिखा है कि उनके (दयानन्द के) साथ भारतीय जन-जीवन में रुखाई का प्रवेश हुआ है।"[24] क्या ये आक्षेप तर्क और ऐतिहासिक विश्लेषण के सम्मुख ठहर पाते हैं?

यह सत्य है कि दयानन्द ने नूतन भारत के निर्माण का उत्साह विगत वैदिक भारत से प्राप्त किया था। किन्तु इस कारण उन्हें पुनरुद्धार युग अथवा योरुप के सुधारवादी आंदोलन के किसी नेता से अधिक प्रतिक्रियावादी नहीं कहा जा सकता। पुनरुद्धार आंदोलन ग्रीक सभ्यता से उत्साहित हुआ था। सुधारवादी आंदोलन ईसाई चर्चों में व्याप्त भ्रष्टाचार को मिटाने के लिये मूल बाइबल की ओर मुड़ गया था। यदि ये आंदोलन वर्तमान योरुप की जड़ जमा सकते हैं तो क्या यह कहना तर्क सङ्गत है कि दयानन्द प्रतिक्रियावादी और नवीनता विरोधी थे? श्री दुर्गाप्रसाद ने ठीक ही उनका

२०. वही पृ० ३२

२१—Romain Rolland, The Life of Rama Krishna, PP. 157-58

२२—Alokananda Mahabharati. Op. cit p. p. 67-68

२३—Zacharias, H. C. F. Revascent India p. 39

२४—वही पृ० ३९

वर्णन "भारत के लूथर"२५ के रूप में किया है। यह भूलना न चाहिए कि स्वामी दयानन्द का बड़ा तीव्र विरोध देश के परम्परावादी ब्राह्मणों ने किया था। न वे प्रतिक्रियावादी थे न परम्परावादी, नहीं ही उनका दृष्टिकोण योरुप की वर्तमान चमक दमक में चौंधिया गया था। इसलिये स्वामी दयानन्द की निन्दा परम्परावादी और नूतनतावादी दोनों ने किया।

अब दूसरे आक्षेप को देखें। दयानन्द शक्ति और गतिशीलता से भरपूर थे। उनका दृढ़ विश्वास था कि राष्ट्रिय पुनरुद्धार निष्क्रियता गतिहीनता और पलायन से नहीं किया जा सकता। आस्था के उत्साह और उद्देश्य की ईमानदारी ने उन्हें प्रभावी बनाया। उनके विचारों और कार्यों ने भारतीय जनता में एक नये उत्साह और शक्ति की सृष्टि की उन्होंने अपना निवेदन "किसी शिक्षित अंग्रेज से नहीं बल्कि अपने देश के विस्तृत जन समुदाय से किया।"२६ उनके सन्देश ने भारतीय जनता के एक वर्ग को हिला दिया और उनके हृदय में अपनी संस्कृति के प्रति अभिमान की भावना पैदा कर दी। अतः दयानन्द के साथ भारतीय जन जीवन में रुखाई का नहीं बल्कि आत्म सम्मान की भावना का जागरण हुआ। और भी जैसा डा० वर्मा ने कहा है, "दयानन्द और आर्य समाज में प्रकटित संघर्ष अंशतः भारत में स्थित इस्लाम और इसाइयत के दृष्टिकोण के फल-स्वरूप था।"२७

समापन दृष्टि :

स्वामी दयानन्द के जीवन विचार और कार्यों का विस्तृत अध्ययन डा० के० पी० जायसवाल के निम्न मत को पूर्ण प्रमाणित करेगा, "उन्नीसवीं शती में ऐसा एकेश्वरवाद का उपदेष्टा, मानव एकता का प्रचारक, आध्यात्मिक पूँजीवाद के विरुद्ध जेहाद करने वाला सफल अन्य कोई (दयानन्द के अतिरिक्त न था।२८ उनके विचारों की समीक्षा से ऐसी बहुत सी समस्याओं का समाधान निकलेगा जिनसे भारत परेशान है। भारत के इस सन्त को भुलाकर हम अपनी रक्षा भी न कर सकेंगे।+

२५—Durga Prasad, "An English Translation of the Satyarth Prakash of Maharshi Swami Dayanand. Sea Introduction p. XII.

२६—B. B. Mazumdar, History of the Indian Reformation p. 68

२७—Dr. V. P. Varma, op. cit. p. 59

२८—K. P. Jayaswal's article in Dayananda Commenoration Volume, p. p. 162-63

+ यह लेख श्री जी० पी० भट्टाचार्य के अंग्रेजी लेख का हिन्दी अनुवाद है। —सम्पादक

ओ३म्

महर्षि दयानन्द की देन

४

प्रो० जयदेव आर्य, एम० ए० वेदाचार्य विद्यावाचस्पति

प्राध्यापक संस्कृत विभाग जाट महाविद्यालय—हिसार (हरियाना)

महर्षि दयानन्द को सामान्यतः एक धार्मिक सुधारक के रूप में स्मरण किया जाता है परन्तु दुर्भाग्यवश मध्यकाल में धर्म शब्द के अतिसंकुचित अर्थों में रूढ़ हो जाने से इतने मात्र कथन से केवल महर्षि के वास्तविक विराटस्वरूप एवं जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उनके महान् योगदान की अभिव्यक्ति नहीं होती अपितु उससे उनके सम्बन्ध में साम्प्रदायिकता एवं संकुचितता की एक भ्रान्त धारणा का भी उदय होता है। अतः उनके वास्तविक स्वरूप ज्ञान के लिये या तो उन द्वारा प्रतिपादित वैदिक धर्म के विराट् स्वरूप को ध्यान में रखना होगा अथवा उन्हें केवल मात्र धार्मिक सुधारक से कहीं अधिक उच्चपद प्रदान करना होगा। श्रीमती सरोजिनी नायडू के शब्दों में "महर्षि दयानन्द उस दर्पण के समान हैं जिसमें लोग प्रत्येक प्रकार के रंग देखते हैं। कोई उन्हें ऋषि, कोई राजनीतिक नेता, कोई सच्चा मानव एवं कोई धार्मिक नेता कहता है और वह निस्सन्देह इन सब गुणों का समूह हैं। परन्तु मैं उन्हें बौद्धिक, सामाजिक, राष्ट्रीय एवं हर प्रकार की दासता से मुक्तिदाता मानती हूं।" विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के शब्दों में "प्रणाम है उस महान् गुरु दयानन्द को जिन्होंने अपनी दिव्य दृष्टि से सर्व प्रथम भारत के आत्मिक इतिहास में सत्य और एकता को देखा। जिस महान् गुरु के मनने भारत माता के जीवन के सब अंगों को अपनी दिव्य ज्योति से ज्योतित कर दिया।" विट्ठल भाई पटेल के शब्दों में "वह एक सच्चे राजनीतिक नेता हैं" तो विपिन चन्द पाल के शब्दों में वह "स्वतन्त्रता के देवता तथा शान्ति के राजकुमार" हैं। नेताजी सुभाष उन्हें १९२९ के अपने अमरावती के भाषण में संसार के राजनीतिक नेताओं एवं पथ प्रदर्शकों में सर्वोच्च स्थान (१) देते हुये कहते हैं, मेरी ईश्वर से प्रार्थना है कि उनकी स्थापित आर्यसमाजें अपने संस्थापक के अनुरूप बनें जिससे वे हमारी धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, आध्यात्मिक एवं आर्थिक उन्नति का कारण बन सकें जिसके लिये कि हम इतना तड़प रहे हैं।" इन श्रद्धाञ्जलियों से स्पष्ट है कि महर्षि की दृष्टि से मानवजीवन का कोई भी पक्ष अछूता नहीं रहा है जिस पर उन्होंने विश्व का मार्ग प्रदर्शन न किया हो। इसी परिप्रेक्ष्य में हम इस लघु निबन्ध में उनकी बहुविध देने पर संक्षेप से विचार करेंगे।

महर्षि दयानन्दकी सर्वश्रेष्ठ देन है 'धर्म के वास्तविक स्वरूपका उद्घाटन।' उनसे पूर्व धर्म शब्द अतिसंकुचित

(१) महर्षि दयानन्द संसार की नज़रों में (उर्दू) ला: उल्फतरायकृत १९३३

सम्प्रदायिक अर्थों में प्रयुक्त किया जाता था। मनुष्य-जीवन को ऊंचा एवं पवित्र बनाने से उसका कोई सम्बन्ध न था। अमुक चिन्ह धारण, अमुक नाम स्मरण, अमुक धार्मिक क्रियाएँ अमुक नदी में स्नान, अमुक स्थान की यात्रा, अमुक प्रकार का धर्म स्थान निर्माण, अनेक असम्भव चमत्कार दिखला कर सब सृष्टिनियमों का उल्लंघन करने वाले अतएव ईश्वर के प्रतिनिधि दूत, पुत्र, अथवा अवतार पर और उस द्वारा रचित पुस्तक पर तथा उसकी गद्दी पर वर्तमान में अविछिन्न गुरु पर बिना किसी तर्क या संशय के पूर्ण अन्धविश्वास से आत्मसमर्पण, अन्यमतस्थ लोगों की हत्या, देवी देवताओं पर अपना या दूसरों का बलिदान, परलोक की इच्छा से इहलोक में पूर्ण सुख-पराङ्-मुखता, वैज्ञानिक अविष्कारों से पूर्ण घृणा, विजातीय अथवा विदेशीजनों से अस्पृश्यता अथवा स्वयं निर्मित भोजन का ग्रहण—ये थीं विभिन्न मतवादियों की धार्मिक मान्यताएं, मुक्तिका एक मात्र साधन और इनसे भिन्न सब कुछ था अधर्म और नरक द्वार। महर्षि ने मानव को मानव का शत्रु एवं दानव बना देने वाली, धर्म के वास्तविक स्वरूप पर जमी, इन बाह्याडम्बरों एवं दानवीय प्रवृतियों की गहरी परतों को एक झटके से उखाड़ कर धर्म के वास्तविक जीवन दायक स्वरुपको हमारे नेत्रों के समक्ष प्रस्फुरित कर दिया। उन्होंने कहा कि धर्म केवल परलोक का नहीं अपितु इहलोक की उन्नति का भी साधक (२) है और वह बाह्य चिन्ह धारण (३) अथवा कर्म-काण्ड की सम्पन्नता में नहीं अपितु धृति, क्षमादि मनुक्त गुणों (४) से अपनी आत्मा को पवित्र बनाने में ही उसका स्वारस्य है। उन्होंने स्वयं सन्ध्या, यज्ञ, यज्ञोपवीत आदि पर बल दिया परन्तु उन्हें जीवन का साध्य न कह कर उसे ऊँचा उठाने का साधन मात्र घोषित किया। जो बाह्य यज्ञ करता है पर अपना जीवन यज्ञमय अर्थात् परोपकारमय नहीं बनाता, जो ईश्वर नाम लेता है पर स्वजीवन में ईश्वर के दयादि गुणों

(२) यतोऽभ्युदयनिः श्रेयससिद्धिः स धर्मः। वैशेषिक १।१।२
(३) न लिंगं धर्मकारणम् ॥ मनु एवं स० प्रकाश समु० ५
(४) मनु० ६।९२।

के धारण का निरन्तर प्रयास नहीं करता, जो यज्ञोपवीत पहनता है पर उसके तीन सूत्रों द्वारा निर्दिष्ट अपने त्रिप्रकारक कर्तव्यों को पूर्ण नहीं करता, उसके ये बाह्य कर्मकाण्ड एवं चिन्ह सर्वथा व्यर्थ हैं (५) कहीं भी जन्मा, कोई भी व्यक्ति, केवल सदाचरण से ही ईशकृपा और मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। उसे किसी भी व्यक्ति या पुस्तक पर अन्धविश्वास रखना न आवश्यक है और न मोक्ष प्राप्ति में सहायक। पीर पैगम्बरों के असम्भव चमत्कारों की मान्यताएं मिथ्या हैं। विद्या, बुद्धि तर्क एवं विज्ञान धर्म विरोधी नहीं अपितु धर्म के अभिन्न अङ्ग हैं (६)। अत: कोई व्यक्ति कितना भी बड़ा क्यों न हो उसे केवल सुचरित एवं विद्या बुद्धितर्कानुमोदित उपदेश ही आचरणीय हैं अन्य नहीं (७) हमारा उपास्य केवल समस्त जगत का स्रष्टा, पालक, तथा संहर्ता ईश्वर ही है—कोई अन्य नहीं (८) केवल वेद ही ईश्वरीय ज्ञान है क्योंकि उसमें कोई भी बात बुद्धि या सृष्टिनियम के विरुद्ध नहीं (९)। यह संसार तथा मानव शरीर मिथ्या अथवा दु:खों का घर नहीं अपितु शारीरिक, आत्मिक तथा सामाजिक उन्नति में प्रयत्न-शील रहकर मोक्ष प्राप्ति का साधन है (१०) इसे निष्प्रयोजन

५—जैसे वह न्यायकारी है तो आप भी न्यायकारी होवें और जो केवल भांड के समान परमेश्वर के गुणकीर्तन करता जाता है और अपने चरित्र नहीं सुधारता उसका स्तुति करना व्यर्थ है। स० प्रकाश समु० ७ ॥

६—यस्तर्केणानुसंधत्ते स धर्मं वेदनेतरः। मनु०।'
तृण (कहीं २ पृथिवी) से लेकर परमेश्वर पर्यन्त समस्त पदार्थोंका यथावत् ज्ञान करना चाहिये। स० प्रकाश समु० ३।

७—यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि। स० प्र० भूमिका तथा समु ३ ॥ ८—आर्य समाज का द्वितीय नियम। ९—बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे वैशेषिक ६।१।१ ॥ १०—शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्। मनु० ॥ तथा आर्य समाज के षष्ठ तथा नवम् नियम।

कष्ट देना अथवा नष्ट करना अधर्म है। ईश्वर सर्वव्यापक हैं। अतः उसकी प्राप्ति अपने अन्दर होगी, कहीं बाहर नहीं। इस प्रकार महर्षि ने धर्म पर किसी के भी एकाधिकार को पूर्णतया समाप्त कर घोषणा की कि सभी प्राणी उस ईश्वर के समान रूप से कृपा पात्र पुत्र हैं—(११) कोइ व्यक्ति-विशेष नहीं। उन्होंने धर्म को मन्दिरों-मस्जिदों के बन्द, अन्धकारपूर्ण तथा संकुचित कमरे से निकाल कर खुले प्रकाशमय क्रियात्मक जीवन रूपी उपवन में (१२) प्रवेश दिलवाया। और बतलाया कि कृतकर्मफल भोग आवश्यक है (१३) अतः शुभकर्म ही करो। पापमुक्ति सम्भव नहीं।

सर्वाङ्गीण धर्म

महर्षि का धर्म पूजापाठ तक सीमित न होकर मानव जीवन की सर्वाङ्गीण उन्नति के साधनों को अपने में समेटे हुए हैं। उनका धर्म यज्ञरूप है और यज्ञ में योग-साधन से लेकर शिल्पशास्त्र तक सभी लोकोपकारी, श्रेष्ठतम कार्य सम्मिलित हैं। १४। इसीलिये उनके ग्रंथों में समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र और राजनीति आदि सभी मानव जीवनोपयोगी विधानों का वर्णन हुआ है। मानव जीवन की बाल्य, युवा एवं वृद्ध—इन तीनों अवस्थाओं में से बाल्यावस्था के कर्तव्य कर्मों का विवेचन सत्यार्थप्रकाश के द्वितीय तथा तृतीय समुल्लासों में, युवावस्था का चतुर्थ तथा वृद्धावस्था का विवेचन पंचम समुल्लास में हुआ है। मानव के ईश्वर के प्रति, अपने प्रति, तथा अन्यों के प्रति कर्त्तव्यों में से प्रथम का उल्लेख आर्यसमाज के प्रथम दो नियमों में किया तो दूसरे का तृतीय-चतुर्थ में तथा तीसरे का ५-१० नियमों में। ईश्वर के विभिन्न नामों की व्याख्या सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम, घर में बाल शिक्षा की द्वितीय और गुरुकुल में तृतीय, गृहाश्रम की चतुर्थ, वानप्रस्थ संन्यास की पंचम, राजनीति की षष्ठ, वेद ईश्वर की सप्तम, सृष्टि-उत्पत्ति स्थिति-प्रलय की अष्टम, बन्ध-मोक्ष की नवम तथा आचार-अनाचार एवं भक्ष्याभक्ष्य विषय की दशम समुल्लास में व्याख्या करके उन्होंने, धर्म के विराट स्वरूप का दर्शन करवाया। स्वामी वेदानन्दजी द्वारा सम्पादित सटिप्पण सत्यार्थ-प्रकाश में दी गई अकारादि विषयानुक्रमणिका पर दृष्टि डालने से मानवबुद्धि चमत्कृत होकर रह जाती है कि महर्षि द्वारा प्रतिपादित सर्वाङ्गीण धर्म के क्षेत्र तथा महर्षि की दिव्य दृष्टि से मानवजीवन तथा बुद्धि से सम्बन्धित कोई भी तो विषय अछूता नहीं बचा है जिस पर उन्होंने कुछ न कुछ प्रकाश न डाला हो। महर्षि से पूर्व तथा पश्चात् हुए दूसरे धर्माचार्यों के ग्रन्थों में हमें ऐसी विशाल एवं सुलझी हुई दृष्टि का दर्शन नहीं होता। महर्षि से पूर्व राजा राममोहनराय ने इस दिशा में अवश्य कुछ प्रयत्न किया था परन्तु फिर भी महर्षि की अपेक्षा उनके प्रचार का विषय क्षेत्र तथा प्रभाव अतिसीमित नगण्य प्रायः ही था।१५। महर्षि ने धर्म को उसके समन्वित रूप में देखा। जहाँ महात्मा बुद्ध ने आत्मपरमात्म-परक ज्ञानकाण्ड, यज्ञपरक कर्मकाण्ड तथा ईश्वरोपासनापरक उपासना काण्ड की उपेक्षा कर केवल श्रेष्ठाचरण पर जोर दिया, शंकर ने केवल ज्ञानकाण्ड की महिमा गाई और भक्ति युग के सन्तों ने सब कार्य परित्याग कर केवल आत्मस्मरण को जीवन सार माना वहाँ महर्षि ने तीनों को समानरूपेण महत्वपूर्ण, आवश्यक एवं अन्योन्यपूरक बतलाया।

११—शृण्वन्तु सर्वेऽमृतस्य पुत्राः तथा कृण्वन्तो विश्वमार्यम। वेद॥

१२—धारणाद्धर्म इत्याहुः (महाभारत।

१३—अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतकर्मशुभाशुभम्।

१४—यज्ञोवै श्रेष्ठतमम् कर्म। शतपथ। तथा ऋषिकृत ऋक् तथा यजुः भाष्य।

१५—"ब्राह्म समाज जहाँ सौ वर्ष में तीन चार हजार से अधिक ब्राह्मवादी न बना सका वहाँ पर सन् १८९१ में ही आर्यसमाजियों की संख्या ४०००० हजार हो चुकी थी और आज लगभग १० लाख है। विवेकानन्द चरित। सत्येन्द्रनाथ मजुमदार कृत (हिन्दी) पृष्ठ ३८३॥

विचार-स्वातन्त्र्य

महर्षि दयानन्द धर्मक्षेत्र में विचार-स्वातन्त्र्य के अग्रदूत तथा गुरुडम के प्रबल शत्रु थे। उन्होंने न गुरुगद्दी स्थापित की, न अपना उत्तराधिकारी चुना और नहीं आर्यसमाजियों के लिये अपने ग्रन्थों को मान्य ठहराया।७ जहाँ इस्लाम और ईसाइयत१६ तलवार के बल पर फैले, वहाँ आर्यसमाज ने निर्भीकता से स्वसिद्धान्तमण्डन और परमतखण्डन करते हुए भी अपने सिद्धान्त बलात् किसी पर लादने का प्रयत्न नहीं किया, अपितु इसके विपरीत दूसरे मतस्थ भले लोगों१७ को स्वमंच से बोलने का १८ अवसर दिया। पण्डित लेखराम, अछूनोद्धारक रामचन्द्र, पण्डित तुलसीराम स्टेशन-मास्टर, आदि अनेक आर्यों को क्रमशः मुसलमानों, पौराणिकों तथा अहिंसा-वादी जैनों ने कत्ल किया पर आर्यसमाज के इतिहास में किसी भी विधर्मी को मारने की एक भी घटना दिखाई न पड़ेगा। महर्षि के सरसैय्यद अहमदखाँ तथा पादरी स्काट जैसे विधर्मियों से बड़े मधुर सम्बन्ध थे। आर्यसमाज ने दैवी-विपत्तियों में अपने सहायता-शिबिरों में बिना साम्प्रदायिक भेदभाव के सब पीड़ितों की समान रूप से सहायता की है। वस्तुनः आधुनिक युग में सच्ची मतनिरपेक्षता (सैक्युलैरिज्म) की स्थापना का श्रेय महर्षि को ही है।

दार्शनिक देन।१६।

महर्षि ने सांसारिक उन्नति से विमुख करने वाले शंकर के 'ब्रह्मसत्यम् जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैवनापरः' के अद्वैत, रामानुजादि वैष्णवाचार्यों के अवतारवाद-प्रतिष्ठापक विशिष्टाद्वैत आदि, जैनों और बौद्धों के स्याद्वाद सप्तभंगीनय, शून्यवाद तथा क्षणिकवाद आदि दार्शनिक सिद्धान्तों की युक्तियुक्त समालोचना करके दार्शनिक जगत् में 'त्रैतवाद' सिद्धान्त की प्रतिष्ठा की। जहाँ शंकर जैसे दार्शनिक भी छओं दर्शनो में विरोध मानकर वेदान्तेतर दर्शनों का खण्डन करते थे वहाँ महर्षि ने षड्दर्शन समन्वय सिद्धान्त२०—स्थापित किया और कपिल को ईश्वरवादी२१ ठहराया। 'मोक्ष से पुनरावृत्ति'२२ मानी। ईश्वर-प्रत्यक्ष का सिद्धान्त दिया। ये महर्षि की विशिष्ट दार्शनिक देन हैं।

साहित्यिक देन

महर्षि ने साहित्यिक जगत् में तो युगान्तर ही उपस्थित कर दिया। मैक्समूलर के शब्दों में १९वीं शती का सबसे बड़ा आविष्कार वेदों का आविष्कार है और इसके आविष्कारक निस्सन्देह महर्षि दयानन्द हैं। जिस समय मैकाले ने अंग्रेजी साहित्य के एक खाने को समग्र भारतीय साहित्य से अधिक मूल्यवान घोषित किया था तब महर्षि ने चारों मूल वेदों को सब सत्य-विद्याओं का पुस्तक घोषित कर मैकाले के उस गर्व को चूर-चूर कर दिया। योगीराज अरविन्द२३ जैसे अनेक देशी-विदेशी विद्वानों ने महर्षि की वैदिक स्थापना से प्रभावित हो वेद पर विपुल साहित्य की रचना की। जहाँ शंकर,

---

१६—देखो, इन्क्विजिन कोर्ट्स् तथा जीस्वीट्स् का इतिहास।

१७—यह बड़े अन्धेर की बात है कि मुसलमान और अंग्रेज जो भले आदमी हैं उनसे तो छूत गिनना और वेश्यादिकों में छूत न मानना। आदिम स० प्र० और आ० स० के सिद्धान्त। स्वामी श्रद्धानन्द कृत पृष्ठ ८२।

१८ देखो आर्य समाज बम्बई का प्रारम्भिक इतिहास।

१९ आगरा विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत डाक्टर वेदप्रकाश का 'आधुनिक युग को महर्षि की दार्शनिक देन' नामक शोध-प्रबन्ध।

२० देखो प० बुद्धदेव मीरपुरी तथा स्वामी ओमानन्द कृत "षड्दर्शन समन्वय" नामक ग्रन्थ द्वय।

२१ आचार्य उदयवीर शास्त्रीकृत सांख्यदर्शन पर तीन ग्रन्थ।

२२ गंगाप्रसाद उपाध्याय कृत लघु निबन्ध।

२३ "मेरे विचार में तो वेदों में विज्ञान के तत्व भी हैं जिन से आधुनिक जगत सर्वथा अनभिज्ञ हैं। इस प्रकार दयानन्द वैदिक प्रज्ञा की गम्भीरता और उच्चता अधिक नहीं, कुछ कम ही प्रदर्शित की है। दयानन्द और वेद नामक निबन्ध।

रामानुजादि मध्यकालीन तथा राममोहनराय२४ आदि नवीन आचार्यों की गति अधिकाधिक उपनिषदों तक थी और सायणादि आचार्यों ने वेदों को केवल कर्मकाण्डपरक माना था वहाँ महर्षि ने निरुक्त प्रणाली पर किये स्वभाष्य में उन्हें धर्म का आधार२५ घोषित किया। उन्होंने वेद में इतिहास, पशु-हिंसा, अश्लीलता, बहुदेवतावाद, मैक्समूलर-प्रतिपादित हीनोथीज्म२६। अद्वैतवाद तथा जादू-टोना 'ब्राह्मण-ग्रन्थों एवं शाखाओं का वेदत्व' आदि प्रचलित अनेक भ्रान्तियों का प्रबल युक्तियों एवं प्रमाणों से निराकरण कर न केवल वेदभाष्य पद्धति में क्रान्तिकारी नवयुग की आधार-शिला रखी२७ अपितु कुरान और बाइबल आदि की आलोचना कर उन्हें भी एक नवीन भाष्यपद्धति प्रदान की।२८ महर्षिकृत आलोचना के प्रकाश में प्रमुख मान्य धर्म-ग्रन्थों तथा चमत्कारों२९ की सर्वथा नवीन, बुद्धिगम्य व्याख्या की गई।३० महर्षि द्वारा आलोचना के लिये सर्वप्रथम हिन्दी में करवाए गए कुरान-भाष्य की भाषा-शैली मुसलमानों द्वारा बहुत पसन्द की गई। हिन्दी में सभी प्रकार के शास्त्रीय गम्भीर साहित्य३१ का प्रचलन उन्हीं के प्रयास की महान देन है। मूल जैन-साहित्य का प्रकाशन उन्हीं की आलोचना का परिणाम है।

२४ अरविन्द कृत 'दयानन्द दि मैन एण्ड हिज़ वर्क' तथा महर्षि दयानन्द और राजाराम मोहन राय-भवानीलाल भारतीय पृ० २१।

२५ वेदोऽखिलो धर्ममूलम्। मनु॰।

२६ - मैक्समूलर ने वेदों को बाइबल से हेय सिद्ध करने के लिये इस वाद की स्थापना की जिसका निराकरण महर्षि ने कर मैक्समूलर की योग्यता का भण्डाफोड़ किया और वेद में एकेश्वरवाद की स्थापना की। मैक्समूलर ने १८५९ में वेदकाल भी १२०० ई० पू० माना था, पर फिर महर्षि से बहुत प्रभावित हो उसने १८८९ में गिफर्ड लैक्चर्ज् "मैं वेदकाल निर्णय को असम्भव बतलाया। यह महर्षि का प्रभाव था जबकि स्वामी विवेकानन्द ने मैक्समूलर को 'भारतीय ऋषि' कह कर उनकी प्रशंसा की थी।

२७—डा० सुधीरकुमार गुप्ता का पी० एच० डी० शोध प्रबन्ध "वेदभाष्य पद्धति को महर्षि दयानन्द की देन।"

ऐतिहासिक देन

महर्षि ने कई क्रान्तिकारी ऐतिहासिक स्थापनाएँ की। 'आर्य यहीं के आदिवासी' ३२ तथा 'द्राविड़ कोल, भील आदि उन्हीं की सन्तान' ३३ हैं। महर्षि की यह स्थापना द्रविड़ कषगम के पृथक्तावादी आन्दोलन को समूल नष्टकर अखण्ड राष्ट्रीयता की स्थापक है। 'आर्य मद्य मांससेवी नहीं थे', 'मानवजाति का उत्पत्तिस्थान तिब्बत' ३४ है और 'यह आर्यावर्त का भाग था, आर्यों का संसार में चक्रवर्ती राज्य रहा है', 'वेद अनादिकाल से हैं', 'पुराण वेदव्यासकृत नहीं', 'श्रीकृष्ण दुराचारी नहीं थे' आदि महर्षिकृत स्थापनाएँ अनेक

२८—देखो सरसैयद अहमद खां, मौलाना मुहम्मद अली, एम० ए०, मौलाना सनाउल्ला तथा मौलाना आज़ाद आदिकृत कुरान भाष्य, बाईबिल पर पादरी सण्डलैण्ड, जैन-मत पर बच्छराज सिंघी कृत "जैन शास्त्रों की असंगत बातें", पण्डित बेचरदास कृत "जैन साहित्य में विकार", जगमन्दिरलाल जैनी कृत "आउटलाइन्स आफ् जैनिज्म" आदि कृतियां तथा पं० मदनमोहन मालवीय तथा अन्य पौराणिकों द्वारा प्रकाशित पुराणों के संशोधित संस्करण।

२९—यथा अयोध्यासिंह उपाध्याय, "हरिऔध" के "प्रिय-प्रवास" में कृष्ण द्वारा गोवर्द्धन-पर्वत-धारण की नवीन व्यवस्था।

३०—महर्षि ने वेद-भाष्य, अष्टाध्यायी-भाष्य, वेदांग-प्रकाश, ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका आदि गम्भीर ग्रन्थ हिन्दी में तब लिखे जब पण्डितगण भाषा-ग्रंथों को हेय दृष्टि से देखते थे। गुरुकुल कांगड़ी ने सभी विषयों पर उच्च कोटि के अनेक ग्रन्थ हिन्दी में प्रकाशित किये।

३१—"आर्यों का आदि देश" डा० सम्पूर्णानन्द कृत।

३२—पौण्ड्रकाश्चौण्ड्र द्रविड़ाः ....आदि मनु १०। ४३-४४ तथा महाभारत शान्ति पर्व ६५।१४०।

३३—इसीलिये तिब्बत (त्रिविष्टप) ही स्वर्ग कहलाया। चीनी भी पुराने तिब्बत के ही भाग चीनी-तुर्किस्तान (सिक्यांग) को अपना उद्भव-स्थान मानते हैं। देखो सत्यार्थ-प्रकाश का प्रभाव। स्वामी वेदानन्द कृत पृ० ६।

३४. न वदेद्यावनीं भाषां प्राणैः कण्ठगतैरपि। हस्तिना ताड्यमानोऽपि न गच्छेज्जैन मन्दिरम्।

अनेक इतिहासविदों द्वारा आज मान्य हैं। महर्षि ने पण्डों की बहियों और दान विषयक ताम्रपत्रों की चर्चा तथा महाराज युधिष्ठिर के पश्चात् हुए राजाओं की नामावली का समावेश सत्यार्थ प्रकाश के एकादश समुल्लास में कर भारतीयों का ध्यान अपने प्राचीन इतिहास की ओर आकृष्ट किया।

शैक्षणिक देन

शिक्षाक्षेत्र में आज जो समस्याएँ हमारे शिक्षाशास्त्रियों के मस्तिष्क को उद्वेलित कर रही हैं, उनका समाधान आज से सौवर्ष पूर्व ही महर्षि ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में कर दिया था। जब मैकाले ने भारतीय काले अंग्रेजों को उत्पन्न करने वाली आधुनिक शिक्षाप्रणाली को जन्म दिया उसी समय महर्षि ने राष्ट्रीय शिक्षा का उद्घोष करके शिक्षाक्षेत्र में नवीन क्रान्ति का सूत्रपात किया जिसने गुरुकुल कांगड़ी और डी० ए० वी कालिज लाहौर आदि के रूप में पल्लवित होकर ब्रिटिश शासन को हिला दिया, जिससे इन संस्थाओं की जांच के लिये ब्रिटिश शासन को रूमजे मैक्डानल्ड को भारत भेजना पड़ा। जब एक ओर राममोहनराय ३५ तथा सरसैयद अहमद खां जैसे महानुभाव भी केवल अंग्रेजी शिक्षा—पद्धति में ही कल्याण देखते थे, तब महर्षि ने एक आदर्श तथा यथार्थ का समन्वयवादी दृष्टिकोण हमें दिया। उन्होंने यथासम्भव विदेशी भाषाओं के अध्ययन की भी प्रेरणा भारतीयों को दी ३६ परन्तु सर्वप्रमुख स्थान अपनी भाषा संस्कृत और हिन्दी को देने का आग्रह किया। वर्तमान भाषायी आन्दोलन का आदर्श यही है। उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश में प्रथम संस्करण में अंग्रेजी के "गौड्" आदि शब्दों का मूल परमात्मा के लिये आये विशेषण 'गुड़' आदि संस्कृत शब्दों में दर्शाकर ३७ संस्कृत का सर्वभाषमूलत्व ३८ स्थापित करते हुये हमें भाषा विज्ञान की ओर उन्मुख किया।

महर्षि ने उस समय अपनी सन्तानों को पाठशाला न भेजने वाले माता पिता के लिये राज्य द्वारा दण्ड तथा प्रत्येक विद्यार्थी को समान वस्त्र, खान-पान तथा आदान प्रदान का विधान कर ३९ जो समाजवादी दृष्टिकोण दिया, उसे आर्यसमाज के गुरुकुलों ने व्यावहारिक रूप प्रदान कर शिक्षाक्षेत्र में एक चामत्कारिक कार्य किया। महर्षि ने अपनी दूर दृष्टि से उस समय कुछ भारतीय छात्रों को तकनीकी शिक्षा के लिये जर्मनी भेजने की योजना बनाई ४० और श्यामजी कृष्ण वर्मा को पढ़ने तथा वैदिक-धर्म प्रचार के लिये स्वयं इङ्गलैण्ड भेजा। आज विद्यार्थियों की जिस अनुशासनहीनता और चरित्रहीनता को लक्ष्य कर श्री प्रकाश एवं कोठारी कमीशन आदि अनिवार्य धार्मिक शिक्षा की बात कहते हैं, महर्षि ने उसका निर्देश उसी समय किया था, कि बालकों को माता पिता घर में ही आरम्भ से सदाचार की शिक्षा दें ४१ और विद्यालयों में केवल सदाचारी अध्यापक, अध्यापिकाएं ही रखे जाएँ। ४२ इस सदाचार की शिक्षा के लिये उन्होंने स्वनिर्मित पाठ्यक्रम में "व्यवहारभानु" नामक एक स्वतन्त्र लघु ग्रन्थ की रचना की। आज जहां फैशन में पले शिक्षितों को ग्राम सेवा और विद्यालयों में विद्यार्थियों को श्रम कार्य (मैनुअल वर्क) के लिये प्रेरित किया जाता है उसका विधान भी महर्षि ने यह लिख कर किया था कि चाहे वह राजकुमार या राजकुमारी हों, चाहे दरिद्र के सन्तान हों, सब को तपस्वी होना चाहिये। ४३ इङ्गलेण्ड के वर्तमान राजकुमार

३५. महर्षि दयानन्द राजाराममोहनराय—भवानीलाल भारतीयकृत पृ० ९६-१०५।

३६. मुसलमान की भाषा पढ़ने में अथवा अन्य किसी देश की भाषा पढ़ने में कुछ दोष नहीं होता, किन्तु गुण ही होता है। आदिम स० प्र० और आ० स० के सिद्धान्त पृ० ८८। स० प्र० समु० २ तथा महर्षि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन।

३७. स० प्र० और आ० स० के सिद्धान्त पृ० ७९।

३८. देखो भगवद्दत्तकृत 'भाषा का इतिहास'।

३९. स० प्र० समु० ३।

४०. 'पत्र और विज्ञापन' में जर्मन प्रोफेसर 'वीस' के साथ हुआ पत्र-व्यवहार।

४१. स० प्र०समु० २।

४२-४३. वही समु० ३।

ने भी पर्याप्त समय तक कड़ा शारीरिक श्रम करवाने वाले एक विद्यालय में शिक्षा पाई है। आज की एन० सी० सी० के समान महर्षि ने कैकेई का उदाहरण देकर कन्याओं तक के लिये धनुर्वेद-शिक्षा का विधान किया है। ४४

सह शिक्षा के जिन भयंकर परिणामों की चर्चा अमरीकन बाल-अपराधों के जर्जलिण्डसे नेकी और जिस सह शिक्षा के कारण पश्चिमी देशों में अवैध बच्चों तथा विवाह विच्छेदों की संख्या उत्तरोत्तर वृद्धि पर है, उसे ध्यान में रखते हुए महर्षि ने बालकों तथा बालिकाओं के विद्यालय एक दूसरे से तथा भीड़-वाले नगरों से बहुत दूर स्थापित करने तथा अध्ययन समाप्ति तक माता पिता से न मिलने का निर्देश किया, जिससे उनका चित्त अध्ययन से विचलित न हो। इसी प्रकार गुरु शिष्य का पारस्परिक सम्पर्क घनिष्ठ होता है, जिसके उद्देश्य से आज कल आवास (रेजीडेन्शियल) विश्वविद्यालयों को महत्व दिया जा रहा है। यद्यपि सहशिक्षा होने से उच्छृङ्खलता, फैशन एवं फजूल खर्ची वहां खूब बढ़ रही है। यह महर्षि की शिक्षा की उपेक्षा का अवश्यम्भावी परिणाम है। कहना न होगा, आधुनिक काल में स्त्री-शिक्षा के महर्षि दयानन्द तथा आर्यसमाज ही सर्वप्रथम प्रतिष्ठापक हैं और आर्यसमाज द्वारा अनेक विशाल महिला-शिक्षण संस्थाएँ स्थापित हुई हैं।

सामाजिक देन

चिरकाल से सन्तसम्प्रदाय जनता को 'तुझको परायी क्या पड़ी, अपनी निबेड़ तू' तथा 'संसार मिथ्या है' आदि मन्त्र पढ़ाता हुआ केवल आत्मोद्धार का उपदेश करता था। निठल्ले साधुओं की संख्या वृद्धि पर थी, ऐसे समय महर्षि ने आर्यसमाज के षष्ठ, नवम तथा दशम नियम में हर व्यक्ति द्वारा सामाजिक उन्नति के प्रयत्न को आवश्यक ठहराया। दशम नियम तो समाज-शास्त्र का सार है जिसके अनुसार हमें स्वतन्त्रता उन्हीं कार्यों के करने व न करने में है, जिनका प्रभाव केवल हम तक सीमित रहे, पर समाज को प्रभावित करने वाले कार्यों में हमें अपनी इच्छा को प्रधानता न देकर समाजहित को ही सर्वोपरि समझना चाहिये। महर्षि ने पाखण्डी मूर्ख साधुओं की राज्य द्वारा हलादि कार्यों में नियुक्ति का और संन्यास से पूर्व परीक्षा का विधान४५ किया। महर्षि ने जिस अछूतोद्धार आन्दोलन को जन्म दिया४६ उसी के परिणामस्वरूप स्वामी श्रद्धानन्द ने तिलक-फण्ड में से पाँच लाख रुपये की राशि पृथक निकाल कर अमृतसर में १९१९ की कांग्रेस में अछूतोद्धार कार्यक्रम को कांग्रेस-कार्यक्रम में सम्मिलित करने का प्रस्ताव पारित करवाया, जिसे पश्चात् गान्धीजी और मालवीयजी ने भी अपनाया। महर्षि की शिक्षा से प्रभावित बड़ौदा के महाराजा गायकवाड़ अछूतों की शिक्षा का प्रबन्ध कर राष्ट्र को डा० अम्बेडकर जैसा महान् विधिवेत्ता प्रदान किया। उन्हीं को कृपा से लाखों अछूत मुसलमान होकर पाकिस्तान समर्थक बनने से बचे। महर्षि द्वारा प्रदत्त सिद्धिमन्त्र४६ का यदि हिन्दू-समाज और काश्मीरी४७ पण्डित विरोध न करते तो न पाकिस्तान के समर्थक इतने रहते और न काश्मीर की समस्या आज हमारे सम्मुख होती। महर्षि ने उन सब लोगों को, जिन्हे हिन्दु म्लेच्छ या शूद्र कह कर घृणा की दृष्टि से देखते थे, ४८ वैदिक

४४. वही समु० ३ आर्यकन्या महाविद्यालय बड़ोदा में आरम्भ से ही कन्याओं को घुड़सवारी और धनुर्वेद आदि की शिक्षा दी जाती है।

४५. आदिम स० प्र० और आ० स० के सिद्धान्त पृ० ७३।

४६. सरदार पटेल द्वारा ऋषि को श्रद्धांजलि—हिन्दुस्तान टाइम्स् ११-११-१९५०।

४७. महर्षि ने राज्य के स्थायित्व के लिये महाराजा काश्मीर को शुद्धि-व्यवस्था बनाकर भेजी थी, जिसके अनुसार शुद्धि करने के इच्छुक महाराज को यहाँ के पण्डितों के विरोध ने रोक दिया।

४८. स्वामी शंकराचार्य शूद्रों को श्मशान से उपमा देकर वेद के श्रवण, उच्चारण तथा धारण के अपराध में उनके श्रोत्रजिह्वाहृदयादि अंगों को नष्ट करने का विधान करते हैं। ब्रह्मसूत्र भा० १।३।३८।

धर्म में आने, आर्य कहलाने तथा वेद पढ़ने का अधिकार प्रदान कर ४९ अपनी सार्वभौमिकता का परिचय दिया तथा निरन्तर रिसने वाले हिन्दू-समाजरूपी तालाब को, जिसमें से पानी बाहर तो निकलता रहता था, मगर अन्दर नहीं आ सकता था, शुष्क होने से बचा लिया५० ।

महर्षि के प्रभाव के सुपरिणामस्वरूप बाल, वृद्ध तथा बहुविवाहों, कन्यावध तथा यज्ञों में या देवी-देवता आदि पर पशुबलि के विरुद्ध जनमानस में तीव्र आक्रोश जागृत हुआ और लाखों कन्यायों और पशुओं की प्राणरक्षा हुई। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर द्वारा देखे गये विधवा विवाह-प्रथा५१ के स्वप्न को मूर्तरूप देने का श्रेय महर्षि दयानन्द के आर्यसमाज द्वारा प्रसारित स्त्री-पुरुष समानाधिकार तथा सर्वजनकल्याण की भावना को ही है। महर्षि ने ही विधर्मियों की गोद में जाने वाले अनाथ बच्चों की सर्वप्रथम सुध ले फिरोज़पुर में सर्वप्रथम अनाथालय खोला५२। महर्षि ने रेवाड़ी में सर्वप्रथम गोशाला खोली। महर्षि ने समुद्रयात्रा पर लगे प्रतिबन्ध को उड़ाकर संसार में वैदिक-धर्मप्रसार तथा व्यापार के महत्व को बढ़ाया। हिन्दुओं का पण्डों द्वारा सर्वस्व हरण करने वाली दानप्रथा, जिसके अधीन लड़कियों का पण्डों को दान तथा मूर्तियों से विवाह तक पुण्य समझा जाता था, का महर्षि ने विरोध कर दान, श्रद्धा तथा शक्ति-अनुसार५३ लोकोपकारी विवाहादि कार्यों के लिये ही उचित' के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। स्त्रियों का दम घोटने वाली पर्दाप्रथा५४ समाप्त हुई तथा स्त्रियों को समाज में सम्मानजनक स्थान मिला। जहाँ स्वामी शंकर ने कन्याओं का पाण्डित्य केवल गृहतन्त्र तक ही सीमित रखा था५५ वहाँ महर्षि ने उन्हें लड़कों के समान ही सभी प्रकार के ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा, यज्ञोपवीत तथा वेदाध्ययन का अधिकार दिलाया।५६ महर्षि ने गुण-कर्म-स्वभावानुसार वर्णव्यवस्था निर्धारण में अन्य वर्ण को प्राप्त हुई सन्तानों के विनिमय में दूसरे वर्ण से आई सन्तानों को देने-दिलाने का विधान करके५७ तो आज के तथाकथित साम्यवाद को भी कहीं पीछे छोड़ दिया है।

विवाह व्यवस्था की देन

विवाह की समस्या भी आज की प्रमुख समस्याओं में से एक है। महर्षि ने गृहस्थाश्रम निन्दकों की आलोचना करते हुए इसे श्रेष्ठ एवं पूर्ण वैराग्य तथा आत्मसंयम के अभाव में तथा सृष्टिसूत्र संचालनार्थ अनिवार्य घोषित किया। विवाह में दहेज तथा अन्य अपव्यय की निन्दा करते हुए५८ उन्होंने ब्राह्म-विधि को सर्वश्रेष्ठ कहा। उन्होंने लड़के और लड़की की परस्पर सहमति के बिना समाज द्वारा विवाह-निषेध, उपयुक्त साथी की खोज के लिये एक दूसरे के गुणों का विवरण, चित्र-प्रदर्शन, माता-पिता तथा आचार्य द्वारा परस्पर वार्तालाप की व्यवस्था तथा उपयुक्त वर के बिना कन्या के आमरण पितृ-गृहनिवास का विधान५९ किया। उन्होंने 'अष्टवर्षाभवेद्-

४९. यजु० २६।२।

५०. हिन्दुशुद्धि सभा तथा दयानन्द साल्वेशन मिशन ने लाखों विधर्मियों या विधर्मीबनों की शुद्धि से राष्ट्रियता को सुदृढ़ किया।

५१. महर्षि के पूना व्याख्यानों का संग्रह 'उपदेशमञ्जरी' द्रष्टव्य।

५२. भिवानी, दिल्ली आदि नगरों में भी आर्यसमाज ने अनाथालय खोले।

५३. वेदभाष्य के लिये एक सज्जन की सारी सम्पत्ति १० हजार रुपये लेने से इन्कार कर ऋषि ने केवल एक हजार रुपया लिया।

५४. आदिम स० प्र० और आ० स० के सिद्धान्त पृ० ६२।

५५. बृहदारण्यक के ६-४-१९ मन्त्र 'दुहिता मे पण्डिता जायेत' पर भाष्य।

५६. आर्य विद्वान् प्रोफेसर महेश प्रसाद की पुत्री कल्याणी ने ने हिन्दु विश्वविद्यालय में सर्वप्रथम वेद पढ़ा।

५७. स० प्र० समु० ४।

५८. आदिम स० प्र० के सिद्धान्त। पृ० ६४-६५।

गौरी' आदि का कड़ा खण्डन करते हुए 'विवाह यौवन में तथा एक समय में एक ही' का विधान किया और बहुविवाह तथा बालविवाह का निषेध६०। विवाह में जन्मगत जाति-पाँति एवं देश-विदेश का विचार छोड़कर गुण-कर्म-स्वभावानुसारी वर्णव्यवस्था का प्रबल समर्थन किया६१। पैर की जूती नारी को पूज्या मातृशक्ति का उच्चस्थान दिखाया६२। स्त्री के लिये पातिव्रत्य की अनिवार्यता के समान पुरुष के लिये भी एक पत्नीव्रत के प्रबल पोषक महर्षि ने पूर्व ही कई विवाह कर चुकने वाले उदयपुर नरेश आदि को सब पत्नियों से एक समान प्रेम व्यवहार का आदेश दिया। ६३। स० प्र० (प्रथम संस्करण) में उन्होंने मनुस्मृति के प्रमाण ६४ पूर्वक कुछ विशिष्ट अवस्थाओं में पति-पत्नी के पारस्परिक सम्बन्ध-विच्छेद का भी विधान किया। महर्षि ने नियोग के रूप में विवाहविच्छेद का एक सुन्दर विकल्प भी प्रस्तुत किया। दम्पती में से किसी भी एक के सन्तानोत्पत्ति में असमर्थ होने पर समाज की अज्ञानुसार वह किसी दूसरे व्यक्ति से सन्तानोत्पति कर वंश परम्परा भी चला सकता है और दूसरे साथी की जीवन यात्रा में सर्वतोभावेन सहायता भी कर सकता है।

राजनीतिक देन

महर्षि की राजनीतिक देन हमारे देश का कायाकल्प कर सकती है। साम्यवाद ने केवल अन्धे बल प्रयोग को ही सब कुछ माना तो गान्धीवाद ने थोथे आदर्शों के वशीभूत हो क्षात्र-शक्ति को सर्वथा तिरस्कृत कर अत्याचारियों को प्रोत्साहन दिया, पर महर्षि ने ब्रह्म एवं क्षात्र शक्तियों के समन्वय, साम, दाम, दण्ड, भेद इन नीति के चारों अंगों और विजयप्राप्ति के लिये युद्धस्थल से भाग जाने को भी आवश्यक बतलाया। महर्षि ने प्रजातन्त्र प्रणाली को सर्वश्रेष्ठ माना पर उसमें राजा के हर पाँच वर्ष पश्चात् नहीं, अपितु कोई दोष न होने पर वंशपरम्परा से भी चलते रहने का विधान किया। इसे बृटिश शासनप्रणाली के कुछ निकट समझा जा सकता है। उनके अनुसार राजा तथा आप्त विद्वानों की सभा को अन्योऽन्याश्रित होना चाहिये और मूर्खों की अपेक्षा आप्त पुरुषों का मत ही मान्य होना चाहिये। राज्य के सुचारु संचालन के लिये धर्मार्यसभा, तथा राजार्य सभा होनी चाहिये। उच्चपदस्थ व्यक्तियों को निम्न पदस्थों की अपेक्षा और ज्ञानियों को मूर्खों की अपेक्षा, अपराध का उत्तरोत्तर अधिक दण्ड मिलना चाहिये—महर्षि की यह व्यवस्था आज शासन में व्याप्त भ्रष्टाचार को जड़मूल से उखाड़ सकती है। महर्षि पंचायतशासन के आधार पर एकात्मक राज्य-प्रणाली के पोषक हैं, विघटनात्मक वर्तमान संघात्मक प्रणाली के नहीं ६५। उनकी दण्डव्यवस्था कठोर है जिससे अपराधी भयभीत हों। महर्षि आग्नेयास्त्र तथा शतघ्नी (तोप) आदि शक्तिशाली शस्त्रों से सज्जित सेना को राष्ट्र रक्षा का आवश्यक साधन मानते हैं। वह एक के पश्चात् दूसरी अदालत में अपील करने वाली बड़ी व्ययसाध्य तथा दोषपूर्ण वर्तमान न्यायप्रणाली की कटु आलोचना करते हुए असावधान न्यायाधीशों ६६ तथा झूठे साक्षियों के लिये दण्ड विधान करते हैं और पुलिस की अपेक्षा प्राचीन चौकीदारी व्यवस्था को श्रेष्ठ कहते हैं। जिसमें किसी से अन्याय नहीं होता था।

आर्थिक देन

महर्षि ने कृषकों को "सब राजाओं का राजा" कहते हुए विधान किया कि उन पर कर इतना न लगे कि वे आर्थिक

५९-६०. स० प्र० समु० ४।

६१. आदिम स० प्र० और आर० स० के सिद्धान्त पृष्ठ ८३।

६२. शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमाः। वेद।

६३. महर्षि के पत्र और विज्ञापन।

६४. देखो मनु अ० ९।७२।

६५. स्व० मेहरचन्द महाजन आदि सभी आर्य नेता संघात्मक प्रणाली के विरोधी रहे।

६६. आदिम स० प्र० और आ० स० के सिद्धान्त पृ० ९०-९१।

संकट में पड़ जायें। उन्होंने स० प्र० के प्रथम सं० में जंगल से लकड़ी, घास आदि कटाकर गुजारा करने वालों तथा नमक पर, कर को अनुचित ठहराया। उन्होंने अधिकाधिक धनी होकर परोपकारार्थ दान का उपदेश दिया, बशर्ते कि कमाई का साधन पवित्र एवं न्याय्य हो। सेवा निवृत्त कर्मचारियों की मृत्यु पर उनकी अल्पव्यापक सन्तानों को वयस्क होने तक राज्य से सहायता का अधिकारी माना, यदि उनका आचरण ठीक रहे। पूंजी एवं श्रम में उन्हें विरोध नहीं, अपितु सहयोग अपेक्षित है। वह गौ के दूध में बछड़े के भाग की भी सीमा निर्धारित करते हैं ६७। फिर श्रमिक के अधिकार की उपेक्षा का तो प्रश्न ही नहीं उठता। वह स्वदेशी वस्तुओं के अधिकतम प्रयोग तथा विदेशों के ६८ साथ व्यापार को राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का आधार मानते हैं। गोपालन और कृषि की उन्नति के लिये उन्होंने गोशाला तथा गोकृष्यादि-रक्षिणी सभा की स्थापना की। गोकरुणानिधि में आंकड़े देकर गौ रक्षा के लाभ दर्शाए। इस प्रकार कृषि, गोपालन, शिल्पविद्या, स्वदेशी-प्रयोग, दूसरे देशों से व्यापार और उचित कराधान यह उनकी अर्थव्यवस्था के मूलाधार हैं। जिन की अव्यवस्था से आज राष्ट्र में अर्थ संकट है।

वैज्ञानिक देन

महर्षि ने १८७५ में ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका में वेद प्रमाणों से विमानों तथा वेतार के तार आदि का उल्लेख किया, जिससे प्रोत्साहित हो महर्षि के ही शिष्य बम्बई के श्री बापू शिवकरजी तलपदे ने १९०४ में तथाकथित सर्वप्रथम उड़ान भरनेवाले राईट-बन्धुओं से पहले ही महाराजा गायकवाड़ की अध्यक्षता में बम्बई में अपने विमान की उड़ान का प्रदर्शन ६९ किया। उनके पीछे पी० सी० रे आदि अनेक विद्वानों ने प्राचीन भारतीय विविध विज्ञानों पर अनेक ग्रन्थ लिखे। जब विज्ञान भी पृथिवी की आयु थोड़ी सी मानता था, महर्षि ने सृष्टि की आयु लगभग दो अरब वर्ष बतलाई, जो आज अनेक वैज्ञानिकों को मान्य है। ७० आज भारद्वाज का 'यन्त्र सर्वस्व' तथा भोजकृत 'समरांगण सूत्रधार' आदि ग्रन्थ महर्षि की स्थापनाओं के समर्थक हैं।

राष्ट्रीय देन

महर्षि दयानन्द राष्ट्रीयता के अग्रदूत थे। उन्होंने भारतीय स्वाधीनता की नींव रखी ४६। एच कैम्बेल बेनरमैन से बहुत पूर्व उन्होंने स्वराज्य को सुराज्य से श्रेष्ठ घोषित किया। १८८६ में दादाभाईनौरोजी आर्य समाज लन्दन में जाते थे,७१ अतः सम्भव है, उन्होंने 'स्वराज्य' शब्द सत्यार्थप्रकाश से ही लिया हो। इङ्गलेण्ड में ऋषिशिष्य श्यामजी कृष्णवर्मा ने भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन की नींव डाली और पूना के श्रीरानाडे की शिष्य परम्परा में गोखले और गान्धीजी हुए। कांग्रेस द्वारा नियुक्त मोतीलाल नेहरू तथा मौलाना हसरत ७२ मुहानी की रिपोर्ट के अनुसार सत्याग्रह में जेल जाने वाले ७० से ९० प्रतिशत लोग आर्य समाजी थे।

विपिनचन्द्र पालके अनुसार राजनारायण बोस ने १८६१ में सर्वप्रथम स्वदेशी आन्दोलन चलाया था। जो शीघ्र समाप्त हो गया। पर महर्षि का आन्दोलन समस्त देशव्यापी हुआ। ७३। महर्षि ने कलकत्ता में श्री महेन्द्र लाल सरकार से आयुर्वेद प्रणाली की उन्नति पर बातचीत की तथा उदयपुर नरेश को इसे उन्नत करने की एक विधिवत् योजना बनाकर

६७ आदिम स० प्र० और आ० स० के सिद्धान्त पृ० ८३।

६८ स० प्र० समु० ८।

६९ परोपकारी मासिक मार्च ६७ में पृष्ठ ४६ कालम २ पर प्रोफेसर ताराचन्द गाजरा का पत्र।

७० 'लिमिटेशन्ज़ आफ साइन्स' ग्रन्थ।

७१ आ० स० का इतिहास-इन्द्र विद्यावाचस्पति भाग २।

७२ सत्य निर्णय—ज्ञानचन्द्र कृत परिशिष्ट।

७३ बिगिनिङ्गज़ ऑफ फ्रीडम् मूवमेन्ट इन माडर्न इण्डिया विपिनचन्द्र पाल पृष्ठ ४७।

दी। अपने शिष्य श्यामजी वर्मा को ब्यावर की सर्वप्रथम स्वदेशी-वस्त्र मिल का प्रबन्धक होने की अनुमति दी। इस प्रकार उन्होंने हर क्षेत्र में स्वदेशी का प्रचलन किया, और विदेशी समर्थक ब्राह्म समाजियों की आलोचना की। हिन्दी को सरकारी कार्यालयों की भाषा बनवाने के लिये उन्होंने सर्वप्रथम आन्दोलन किया और राजस्थान के अपने शिष्य राजाओं की राजसभा में उसे प्रचलित करवाया। ७४। महर्षि ने मेला चान्दापुर तथा दिल्ली दरबार में प्रमुख धर्माचार्यों को एकत्रित करके सर्वप्रथम सर्वधर्म सम्मेलन तथा भावात्मक एकता सम्मेलनों का आयोजन किया। सर सैयद अहमद खाँ के घर श्यामजी आदि शिष्यों को भोजन के लिये भेजने तक से भी वह न हिचकिचाये। राज धर्म ईसाइयत का प्रबल खंडन तथा वैदिक धर्म की श्रेष्ठता का मण्डन कर भारतीयों में आत्म-गौरव बढ़ाया। यदि उनके पदचिन्हों पर भारत सरकार चलती तो ईसाई प्रचारकों के कारण उत्पन्न नागालैण्ड की समस्या आज न होती।

७४ दयानन्द की मेमोरेशनवोल्यूम पृष्ठ ३६९।

सार रूप में हम कह सकते हैं कि महर्षि दयानन्द की एक ही देन थी 'सत्य एवं विद्या के सब अंगों का पूर्ण समन्वय'। उन्होंने विश्व को अतिवाद के रोग से बचा कर समन्वित, मध्यमार्ग अपनाने का जीवनदायी उपदेश दिया। उन्होंने धर्म के क्षेत्र में नास्तिकता का बहुदेवतावाद के अतिवादों का एकेश्वरवादी समन्वय; सांसारिक जीवन में त्याग और भोग का समन्वय; राजनीति में साम-दण्ड का समन्वय, ईश्वर के सगुण-निर्गुण, ब्रह्मा-विष्णु-महेश आदि नामों तथा दयालु-न्यायकारी होनेका समन्वय, ज्ञान-कर्म-उपासना का समन्वय, धर्म विज्ञान का समन्वय, राष्ट्रीयता-अन्तर्राष्ट्रीयता में समन्वय, शारीरिक-आत्मिक-सामाजिक उन्नति में समन्वय, देशी-विदेशी-भाषाज्ञान समन्वय भौतिक एवं आध्यात्मिक शिक्षा में समन्वय, उत्तर-दक्षिण भारतीयों का समन्वय, श्रद्धा-तर्क में समन्वय, हिन्दू-मुस्लिम-ईसाइयों में समन्वय, धर्म राजनीति में समन्वय, लोक-परलोक में समन्वय—अभिप्राय यह कि जीवन के सभी अंगों में पूर्ण समन्वय प्रचारित किया, जहाँ एकांगीपन नहीं, सम्पूर्णता है और जो पारस्परिक विवाद के मूलकारण सभी एकांगी दृष्टिकोणों के विवाद को शान्त कर सकता है।

महर्षि दयानन्द की देन

५

डा० भवानीलाल भारतीय, एम. ए., पी. एच. डी.
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, गवर्नमेंट कालेज, पाली (राज)

महर्षि के आविर्भाव की पृष्ठभूमि :
तत्कालीन परिस्थितियाँ

भारत के धार्मिक और सांस्कृतिक पुनर्जागरण के महान् ज्योतिवाहक स्वामी दयानन्द जिस समय सौराष्ट्र की पुण्य भूमि पर अवतीर्ण हुए, उस समय तक भारत में ब्रिटिश शासन सुदृढ़ रूप से स्थापित हो चुका था। अंग्रेज जाति के सम्पर्क ने भारतवासियों में हीन भावनायें जागृत कीं। पाश्चात्य सम्पर्क ने भारतियों को दिग्मूढ़ सा बना दिया और पश्चिमी देशों की लौकिक समृद्धि को देखकर वे अपने को नितान्त दीन, हीन तथा अपदार्थ समझने लगे। मैकाले द्वारा निर्धारित अंग्रेजी शिक्षा-प्रणाली ने देशवासियों के स्वात्म बोध को और भी नष्ट कर दिया। जिस शिक्षा का लक्ष्य ही एक ऐसा वर्ग उत्पन्न करना था जो रंग और आकृति में चाहे भारतीय हो, परन्तु आचार और विचार, बुद्धि और भावना से अंग्रेज हो, उससे अधिक आशा करना व्यर्थ ही था।

शासन के अतिरिक्त हिन्दू समाज के गौरव और वर्चस्व को नष्ट करने में दो अन्य शक्तियाँ भी लगी हुई थीं। शताब्दियों तक के मुस्लिम शासन ने भारतवासी मुसलमानों के हृदय में यह बात दृढ़ता पूर्वक जमा दी थी कि वे शासक वर्ग के हैं और प्रकृति ने उन्हें हिन्दुओं पर शासन करने के लिये ही उत्पन्न किया है। अब तक तो वे औरंगजेबी शासन काल की भाँति तलवार के बल पर हिन्दू धर्म को समाप्त करने की चेष्टा में रहे थे, परन्तु अब अंग्रेजी शासन की धर्म निरपेक्षता की तथा कथित नीति के सम्मुख उन्हें अपनी पद्धति को परिवर्तित करना पड़ा। अब इस्लाम के मुल्ला और मौलवी, फकीर और प्रचारक हिन्दू धर्म की संकीर्णता एवं क्षुद्रता, उसमें व्याप्त मूढ़ विश्वासों और कदाचारों का खुले आम उपहास करने लगे तथा वाणी और लेखनी से हिन्दू धर्म की कटुतम आलोचना उनके लिये सामान्य वस्तु बन गई।

अंग्रेजी शासन में ईसाई प्रचारकों को भी हिन्दू धर्म और संस्कृति पर ध्वन्सात्मक आक्रमण करने की छूट मिल

गई। ईसाइयत का यह चक्र इस्लाम से भी अधिक घातक सिद्ध हुआ। ईसाई प्रचार के दो रूप थे—एक प्रणाली थी ईसाई प्रचारकों द्वारा जन-जन में ईसाई विश्वासों के प्रति श्रद्धा जागृत करने के लिये नगर-नगर तथा ग्राम-ग्राम में ईसाई मिशनों का व्यवस्थित जाल बिछाना। ईसाई धर्म ग्रंथों का वितरण, लोक भाषा में हिन्दू धर्म की आलोचना के व्याख्यान देना, यत्र-तत्र हिन्दु देवी देवताओं का उपहास करना, इस कार्य प्रणाली के आवश्यक अंग थे। परन्तु ईसाई कार्य प्रणाली का एक दूसरा रूप भी था। मैक्समूलर, मोनियर-विलियम्स, ग्रिफिथ तथा विल्सन आदि पाश्चात्य पण्डितों का संस्कृत विषयक अनुसंधान तथा अध्ययन भी ईसाई मत के पूर्वाग्रह से दूषित था। ये पाश्चात्य मनीषी विशुद्ध सारस्वत साधना की दृष्टि से वैदिक तथा संस्कृत-साहित्य के अध्ययन में प्रवृत नहीं हुये थे। इनका लक्ष्य द्विविध था—भारत में शासक बनकर आने वाले अंग्रेज आई. सी. एस. अधिकारियों को भारत में सर्वाधिक व्याप्त हिन्दू धर्म से परिचित कराना तथा हिन्दू धर्म शास्त्र एवं भारतीय नीति रीति को ईसाई धर्म तथा पाश्चात्य जीवन प्रणाली से हीन तर, कुत्सित, मिथ्या एवं निकृष्ट सिद्ध करना।

ईसाइ प्रचार का अन्तिम परिणाम निकला 'अत्यधिक भावुक प्रकृति के बंगाली युवक ईसाई मृग तृष्णा की ओर आकृष्ट हुए' माइकेल मधुसूदन दत्त, पादरी लाल बिहारी दे, इण्डियन नेशनल कांग्रेस के प्रथम सभापति व्योमेशचन्द्र बनर्जी जैसे प्रबुद्ध लोग भी अपने परम्परागत धर्म को त्याग कर 'गॉस्पेल' के अनुयायी बन गये। दक्षिण में नीलकण्ठ शास्त्री और महाराष्ट्र की विदुषी पण्डिता रामा बाई भी इसाइयत के आकर्षण से अपने को मुक्त नहीं रख सके। ईसाई प्रचार के इस आक्रान्त रूप ने सामान्य लोगों को तो प्रभावित किया ही—केशवचन्द्र सेन, रामतनु लाहिरी, तथा प्रतापचन्द्र मजूमदार जैसे ब्रह्म नेता भी उससे अप्रभावित नहीं रह सके।

धर्म और संस्कृति के क्षेत्र में जब ऐसी संक्रान्तिकालीन अवस्था उत्पन्न हो चुकी थी, उस समय आर्य सभ्यता और वैदिक धर्म के मूलभूत संस्कारों की सुरक्षा हेतु महर्षि दयानन्द का आविर्भाव हुआ। महर्षि एक ऐसे ज्योतिर्धर थे, जिन्होंने अपने क्रान्तिदर्शी, ओजस्वी तथा वर्चस्वी व्यक्तित्व से धर्म समाज, राष्ट्र, शिक्षा तथा अर्थनीति जीवन के विविध क्षेत्रों को प्रभावित कर देश के मुमुर्षु जर्जर और कंकाल शेष शरीर में नवीन प्राणों का संचार किया। महर्षि दयानन्द की देन का विवेचन इसी परिपेक्ष्य में किया जाना चाहिए।

धर्म के क्षेत्र में महर्षि दयानन्द की देन

दयानन्द मूलतः एक धार्मिक नेता थे। धर्म के विस्मृत स्वरूप की उन्होंने पुनः स्थापना की। उन्होंने बताया कि धर्म का अभिप्राय केवल रूढ़िगत विचारों का अनुसरण करते हुये कर्मकाण्ड के जटिल क्रिया जाल का पतन ही नहीं है, अपितु धर्म उन उदात्त गुणों की समष्टि का नाम है जो मनुष्य के नैतिक औ आध्यात्मिक उत्थान में सहायक होते हैं। दयानन्द ने वेद को धर्म का मूलाधार बताया। उनकी यह मान्यता भारतीय धर्म चिन्तन के पूर्णतया अनुकूल थी। वैदिक धर्म का मूल स्रोत ऋग्वेदादि में चार मन्त्र संहितायें हैं जो ईश्वर का अनादि ज्ञान होने के कारण पूर्णतया निर्भ्रान्त तथा स्वतः प्रमाण हैं, यह उनकी निश्चित धारणा थी। महर्षि ने संहिता प्रमाणवाद को पुनः प्रतिष्ठित किया। यों तो वेद प्रमाणवाद सभी प्राचीन और अर्वाचीन धर्माचार्यों को स्वीकार्य रहा है, परन्तु व्यावहारिक रूप में वेद विरुद्ध मतवादों का प्रचलन ही अधिक रहा। स्वामीजी ने धर्म सम्बन्धी प्रत्येक मान्यता और विश्वास को वेद प्रमाण के कसौटी पर कसने का आग्रह किया।

वेद प्रामाण्य के साथ-साथ दयानन्द ने आर्य ग्रन्थ प्रमाण के सिद्धान्त को भी पुनर्जीवित किया। इसके लिये उन्हें अपने विद्या-गुरु सुगृहीत नामधेय दण्डी विरजानन्द सरस्वती से प्रेरणा मिली। दण्डीजी ने अपनी आर्य-प्रज्ञा के बल पर यह सिद्ध किया कि वेद के पश्चात् उन्हीं ग्रन्थों को प्रामाणिक माना जाना चाहिये जो साक्षात्कृत धर्मा मन्त्रद्रष्टा ऋषियों

द्वारा निर्मित हैं तथा जो युक्ति, तर्क, विज्ञान तथा सृष्टिकर्म के सर्वदा अविरुद्ध हैं। आर्य-ग्रन्थ प्रमाण की इस कसौटी के द्वारा ही दयानन्द तत्व, पुराण तथा शतशः उन अन्य ग्रन्थों का खण्डन कर सके जिन्होंने अपने वेद, युक्ति और विज्ञान विरुद्ध सिद्धान्तों से जन मानस को दूषित कर रक्खा था। दयानन्द के हाथ में आर्य ग्रन्थ-प्रमाणवाद का यह आयुध नहीं होता तो वे मध्ययुगीन धर्माडम्बर को भिन्न-भिन्न कर वैदिक धर्म को पुनः उद्भासित करने में असफल रहे होते।

धर्म में बहुविवाद को समाविष्ट करना महर्षि की एक महान् देन है। वस्तुतः धर्म बहुविवाद का विरोधी नहीं है। भगवान् मनु ने तर्क के अनुकूल ही धर्म का अनुसन्धान करने का आदेश दिया है।१ निरुक्तकार यास्क के अनुसार तर्क ही ऋषि है२ और महर्षि कणाद ने वेदों को बुद्धिपूर्वक रचित ईश्वरीय कृति माना है।३ यदि धर्म में युक्तिवाद (Rationality) का समावेश नहीं है, तो वह मिथ्या विश्वासों का समूह मात्र है। तर्क और युक्ति का महत्व धर्म के क्षेत्र से लुप्त हो गया। उसका स्थान श्रद्धा और विश्वास अन्ध विश्वास में ले लिया। कालान्तर में यह श्रद्धा अन्ध-श्रद्धा रह गई और यह विश्वास अन्ध-विश्वास में परिणत हो गया। दयानन्द ने बलपूर्वक घोषणा की, कि वास्तविक धर्म वही है जो तर्क के प्रहारों को सहन कर सके तथा युक्ति की आधार-शिला पर खड़ा हो। उन्होंने सत्य और असत्य की परीक्षा के लिये पांच कसौटियाँ निर्धारित कीं उनमें जहाँ वेद, आप्त वाक्य तथा आत्मा के अनुकूल तथा प्रत्यक्षादि आठ प्रमाणों से सिद्ध होने वाला भी स्वीकार किया। दयानन्द का यह प्रखर बुद्धिवाद धर्म के क्षेत्र में ऋषि की देन है।

---

१. यस्तर्केणानुसंधत्ते स धर्मवेद नेतरः। मनु० १२।१०६।

२. "मनुष्या वा ऋषिषूत्क्रामस्तु देवानब्रुवन्। को न ऋषिर्भविष्यति ? तेभ्यएतं तर्कमृषि प्रायच्छान्नमन्त्रार्थ चिन्ताभ्यूहमभ्यूढम्।" निरुक्त परिशिष्ट।

३. बुद्धि पूर्वावाक्य कृतिर्वेदे। वैशेषिक दर्शन ६।१।१।

समाज सुधार के क्षेत्र में ऋषि की देन —

महर्षि दयानन्द का व्यक्तित्व बहुमुखी था। धर्म, समाज, राष्ट्र, संस्कृति—प्रत्येक क्षेत्र में उन्होंने अपनी क्रान्तदर्शी प्रतिभा का परिचय दिया है। धर्म के साथ-साथ भारतीय समाज में व्यापक और क्रान्तिकारी परिवर्तन करने की उनकी प्रबल इच्छा थी। अतः दयानन्द को समाज संशोधकों की पंक्ति में शीर्ष स्थान प्रदान करने में हमें कुछ भी विप्रतिपत्ति नहीं होनी चाहिये। गत ८० वर्षों के भारत के सामाजिक जीवन में जो कुछ सुधार और परिष्कार हुये हैं, उनका श्रेय स्वामी दयानन्द को ही दिया जाना चाहिये। स्वामी दयानन्द प्रवर्तित सुधार आन्दोलन ने उत्तर भारत के जन-मानस को किस प्रकार प्रभावित किया है, इसका ठीक-ठीक अध्ययन तो कोई समाज शास्त्री ही कर सकता है। स्वामीजी ने सर्वप्रथम बाल-विवाह, अनमेल विवाह, वृद्ध-विवाह तथा बहुविवाह जैसी सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध आवाज उठाई। उन्हीं से प्रेरणा पाकर स्व० दीवान बहादुर हरविलास शारदा ने तत्कालीन केन्द्रीय धारा सभा में बाल-विवाह निरोधक कानून पेश किया जो शारदा एक्ट के नाम से पारित हुआ।

हिन्दू-समाज के जीर्ण-शीर्ण ढाँचे को पुनर्गठित करने के लिये महर्षि ने वर्णाश्रम व्यवस्था को वैज्ञानिक आधार प्रदान कर उसे युगानुकूल सिद्ध किया। यद्यपि हिन्दू-समाज विगत सहस्राब्दियों से मिथ्या जात-पांत के जिस वात्याचक्र में फँस गया था, उससे मुक्त होना सहज कार्य नहीं था, तथापि महर्षि ने शास्त्रीय आधार पर वर्णगत और जातिगत वैषम्य को दूर करने का प्रशंसनीय प्रयास किया। स्वामीजी के कठोर से कठोर आलोचकों को भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि हिन्दू-समाज में व्याप्त स्पृश्यास्पृश्य के अभिशाप को दूर करने तथा तथाकथित दलितवर्ग के लोगों को अन्य उच्चवर्णस्थ लोगों के स्तर पर लाने में स्वामीजी का प्रशस्तिपूर्ण योगदान रहा है। स्वयं महात्मा गान्धी ने ऋषि दयानन्द की निर्वाण अर्द्ध-

शताब्दी के उत्सव पर बरबदा कारागार से प्रेषित अपने पत्र में इस तथ्य को इस प्रकार स्वीकार किया है—

"Among the many rich legacies that Swami Dayanand has left to us, his unequivocal pronouncement against untouchability is undoubtedly one."१

नारी-शिक्षण और नारी जागरण के कार्य में भी महर्षि अग्रदूत रहे। मध्यकालीन धर्माचार्यों ने नारी को अत्यन्त उपेक्षित, घृणित तथा तिरस्करणीय बना रक्खा था। यहाँ तक कि सम्पूर्ण विश्व-प्रपंच को मिथ्या मानने वाले तथा जीव-ब्रह्मैक्य का तारस्वर से उद्घोष करने वाले शंकर, रामानुज, मध्व, निम्बार्क, वल्लभ आदि वेदान्ताचार्यों ने भी नारी को नरक का द्वार और विश्वास के अयोग्य२ ही माना। उसी नारी को 'शुद्धा पूता योषितो यज्ञिया इमा' और 'स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ' जैसे वेद मन्त्रों के आधार पर उसके उच्च स्थान पर प्रतिष्ठित करना महर्षि का ही कार्य था। दयानन्द के नारी जागरण विषयक महत् कार्य के प्रति अपनी विनम्र और भक्तिपूत श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुये सुप्रसिद्ध फ्रैन्च विद्वान् रोमां रोलां ने ठीक ही लिखा है :—

"Dayanand was no less generous and bold in his crusade to improve the condition of women, a deplorable in India He revolted against the abuses from which they suffered."३

१—Dayanand Commemoration Volume.

२—शंकराचार्यकृत प्रश्नोत्तरी।

३—The Life of Shri Ramakrishna. P. 156.

राष्ट्रवादी दयानन्द

महर्षि दयानन्द अपने समकालीन तथा समानधर्मी अन्य धर्माचार्यों से अनेक बातों में पूर्णतया भिन्न थे। उच्च कोटि के संस्कृतज्ञ विद्वान्, महान् धर्मसंशोधक तथा क्रान्तिकारी समाज सुधारक होने के साथ-साथ उनमें अपने राष्ट्र के प्रति अगाध निष्ठा तथा भक्ति थी। दयानन्द मूलतः राष्ट्रवादी थे, परन्तु राष्ट्रवाद को उन्होंने संकुचित अर्थ में ग्रहण नहीं किया था उनके राष्ट्रीय विचारों का उल्लेख करते हुये योगी अरविन्द ने लिखा है—

He had the national stinct and he was able to make it luminious."१

अर्थात् दयानन्द में राष्ट्रीय भाव था और वह उसे उद्दीप्त कर सका था। रोमां रोलां ने स्वामीजी को भारत के राष्ट्रीय पुनर्जागरण का पुरोधा बताते हुये उसे राष्ट्रीय चेतना का प्रतीक माना है। होम रूल आन्दोलन की प्रसिद्ध नेत्री श्रीमती ऐनी बेसेन्ट ने तो यहाँ तक लिख दिया है कि ऋषि दयानन्द ही प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने—"India for Indians"—"भारत भारतवासियों के लिये" की घोषणा की।

महर्षि ने अपने लेख और वाणी में सर्वत्र स्वराज्य और साम्राज्य की चर्चा की है। वेदभाष्य, सत्यार्थप्रकाश, आर्याभिविनय तथा गोकरुणानिधि के शतशः उद्धरण इस बात के द्योतक हैं कि ऋषि दयानन्द भारत की राजनैतिक परतन्त्रता से अत्यन्त दुखी थे, तथा उनकी एकान्त कामना थी कि भारत विदेशियों के दासता पाश से मुक्त होकर स्वराज्य का गौरव प्राप्त करे।

यहाँ एक बात पर विचार कर लेना अप्रासंगिक न होगा, क्या दयानन्द की राष्ट्रीयता पश्चिम की देन है? बहुधा यह समझा जाता कि भारत में स्वतन्त्रता के भावों का बीज वपन पाश्चात्यों के सम्पर्क से हुआ। परन्तु दयानन्द की राष्ट्रीय

१—Dayanand: The man and his work.

विचारधारा के लिये यह नहीं कहा जा सकता। वस्तुतः उन्होंने अपनी अन्तःप्रज्ञा के बल पर ही भारत की राजनैतिक मुक्ति का चिन्तन किया तथा अपनी राष्ट्रीय भावना को प्राचीन आर्य वाङ्मय में विद्यमान तत्वों से पोषित तथा पल्लवित किया। इस दृष्टि से दयानन्द अपने समकालीन तथा परवर्ती सभी स्वाधीनचेता महापुरुषों को पीछे छोड़ते प्रतीत होते हैं। राष्ट्र पुरुष महात्मा गांधी ने जहाँ अपने सर्वोदय के विचारों के लिये जॉन रस्किन और लियो टाल्सटाय जैसे पश्चिमी विचारकों से प्रेरणा ग्रहण की; वहाँ दयानन्द के प्रेरणा-स्रोत वेद के वे महनीय सूक्त हैं, जिनमें स्वराज्य की अर्चना[1] और मातृभूमि की वन्दना[2] की शतशः ऋचायें भरी पड़ी हैं।

दयानन्द का राष्ट्रवाद उस फासिस्ट 'राष्ट्रवादी समाजवाद का पर्याय या स्थानापन्न नहीं है जो My country—(National Socialism) में विश्वास रखता है। इसके विपरीत दयानन्द का 'Right or Wiong' राष्ट्रवाद उस चक्रवर्ती आर्य साम्राज्य के आदर्श को मूर्तिमान करने का एक सोपान मात्र है जिसके लिये ऐतरेय ब्राह्मणकार ने लिखा है—"स्वस्ति साम्राज्यं भौज्यं स्वाराज्यं वैराज्यं पारमेष्ठ्यं राज्यं महाराज्यमाधिपत्यमयं समन्तपर्यायी स्यात्सार्वभौमः सार्वायुषान्नदापराधीत् पृथिव्यै समुद्रपर्यन्ताया एकराडिति।'[3] चक्रवर्ती आर्य नरेश समुद्रपर्यन्त पृथ्वी पर एकराट् साम्राज्य की स्थापना करे, यही दयानन्द का आदर्श था। उसमें न तो एकतन्त्री शासन की स्वेच्छाचारिता के लिये अवकाश था और न आधुनिक प्रजातन्त्र प्रणाली का मूढ़ जन विश्वास। सत्यार्थ प्रकाश के छठे समुल्लास में मनुस्मृति आदि विधि ग्रन्थों के आधार पर महर्षि ने राजनीति के ऐसे ही स्वर्णिम सूत्रों को ग्रथित किया है। दयानन्द के राष्ट्रवाद से प्रेरणा पाकर उनके अनुयायी आर्यसमाजियों ने स्वाधीनता संग्राम के इतिहास में जो स्वर्णिम पृष्ठ जोड़े हैं, उनका तो इतिहास ही पृथक है।

१—ऋग्वेद मं० १ सूक्त ८०।

२—अथर्ववेद का १२ सूक्त १।

३—ऐतरेय ब्राह्मण, ३९।१।

दयानन्द का शैक्षणिक क्षेत्र में योगदान

दयानन्द अपने युग के महान् शिक्षा शास्त्री थे। उनके द्वारा रचित सत्यार्थप्रकाश के द्वितीय तथा तृतीय समुल्लास बालक-बालिकाओं के लालन-पालन, शिक्षण तथा उन्हें सुसंस्कृत बनाने की दृष्टि से लिखे गये हैं। संस्कृत शिक्षा प्रणाली को प्रोत्साहित करने के लिये उन्होंने अद्वितीय प्रयास किये। संस्कृत व्याकरण के सुगम बोध के लिये उन्होंने 'वेदाङ्ग प्रकाश' के नाम से चौदह खण्डों में एक ग्रन्थमाला तैयार की। 'व्यवहार भानु' तथा 'संस्कृत वाक्य प्रबोधः' नामक उनके दो लघु ग्रन्थ पठन-पाठन व्यवस्था के अन्तर्गत छपे। अष्टाध्यायी का भाष्य भी उन्होंने लिखा। ग्रन्थ निर्माण के अतिरिक्त अपने देशाटन प्रसङ्ग में वे जहां भी गये, उन्होंने संस्कृत पाठशालायें स्थापित कीं। संस्कृत के वैदिक और लौकिक साहित्य का विधिवत् अध्ययन करने के लिए उन्होंने एक पाठ विधि का भी निर्माण किया जिसका उल्लेख सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास और संस्कार विधि के वेदारम्भ संस्कार के अन्तर्गत हुआ है। स्वामी दयानन्द के शिक्षा विषयक मन्तव्यों से ही प्रेरणा पाकर कालान्तर में स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का उद्धार किया गया। गुरुकुलों की स्थापना द्वारा भारत की राष्ट्रीय शिक्षा नीति के निर्धारण में अभूतपूर्व सहायता मिली है।

स्वामी दयानन्द की संस्कृत और आर्य भाषा (हिन्दी) को देन

शिक्षा का प्रश्न भाषा के प्रश्न से अनिवार्यतः जुड़ा हुआ है। दयानन्द ने संस्कृत भाषा के प्रचारार्थ बहुविध प्रयत्न किये। उन्होंने संस्कृत को भाषण, प्रवचन, वाद-विवाद, शास्त्रार्थ, पत्र-व्यवहार और ग्रन्थ लेखन के जीवन्त माध्यम के रूप में स्वीकार किया। अपने भक्त और शिष्य राजा

महाराजाओं को संस्कृत पढ़ने की प्रेरणा दी, संस्कृत शास्त्रों के प्रचार, प्रसार और रक्षण हेतु वैदिक यन्त्रालय की स्थापना की तथा आर्यसमाज के सभासदों के लिये संस्कृत भाषा के ज्ञान को वांछनीय बताया।

संस्कृत के साथ-साथ महर्षि लोक भाषा हिन्दी के प्रचार और प्रसार के लिये भी उत्सुक थे। उनकी यह मान्यता थी कि आर्य भाषा हिन्दी ही राष्ट्रभाषा के गौरवास्पद स्थान की अधिकारिणी है। अतः उन्होंने स्वयं गुर्जरभाषी होने तथा गीर्वाण वाणी संस्कृत के अद्वितीय विद्वान् होते हुए भी अपने लेख और वाणी में आर्य भाषा का ही प्रयोग किया। ब्राह्म समाज के नेता केशवचन्द्र सेन को उन्होंने उस समय मीठी फटकार बताई जिस समय केशव ने स्वामी जी के अंग्रेजी से अनभिज्ञ होने के कारण खेद व्यक्त किया था। महर्षि दयानन्द की हिन्दी भाषा के प्रति देन का उल्लेख करते हुए हिन्दी के सुप्रसिद्ध विद्वान् स्व० प्रो० रामदास गौड़ तथा प्रसिद्ध समालोचक लाला भगवानदीन ने लिखा—"जनता के लाभ की दृष्टि से मातृभाषा गुजराती होने पर भी इस दूरदर्शी और विद्वान् संन्यासी ने राष्ट्रभाषा हिन्दी का प्रचार किया। अपने ग्रन्थ भी हिन्दी में ही लिखे। हिन्दी की उन्नति और प्रचार आर्य समाज का, जिसके प्रवर्त्तक थे, एक विशेष लक्ष्य बनाया। अकेले इन स्वामी जी ने हिन्दी का जितना उपकार किया, हमारा अनुमान है कि अनेक सुसंगठित संस्थाओं ने भी अबतक मिलकर इतना नहीं कर पाया है।"[1] पंजाब जैसे अहिन्दी भाषा-भाषी प्रान्त में हिन्दी का जो अभूतपूर्व प्रचार सम्भव हो सका, उसका एकमात्र कारण महर्षि और आर्यसमाज की हिन्दी विषक नीति ही है।

भारतीय अर्थनीति और गो रक्षा

धर्म, अध्यात्म और संस्कृति के उच्चस्तरीय क्षेत्रों में युगान्तरकारी योगदान करनेवाले महर्षि की दृष्टि देश की दयनीय अर्थ व्यवस्था की ओर भी आकृष्ट हुई थी। उनका यह सुनिश्चित मत था कि स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग से ही देश की अर्थ व्यवस्था को सुधारा जा सकता है। वे देश की औद्योगिक स्थिति में भी आमूल चूल परिवर्तन करना चाहते थे। उनकी यह सुदृढ़ धारणा थी कि जब तक देश के नवयुवकों को उद्योग, कला-कौशल तथा यान्त्रिक व्यवसायों की शिक्षा नहीं दी जायगी, तब तक देश की आर्थिक समृद्धि का स्वप्न अपूर्ण ही रहेगा। इसी दृष्टि से उन्होंने कुछ युवकों को जर्मनी भेजा, ताकि वहां रह कर वे औद्योगिक और तकनीकी शिक्षा प्राप्त कर सकें।

दयानन्द की अर्थ नीति में गो रक्षा का भी महत्वपूर्ण स्थान था। गो रक्षा के प्रश्न को वे देश की आर्थिक समृद्धि से जोड़ते थे। 'गो करुणा निधि' पुस्तक लिख कर इसी आर्थिक पहलू को उन्होंने स्पष्ट किया है। गाय, भैंस और बकरी जैसे दुधारू पशुओं के विनाश से हमारे देश के पशु धन का जिस तीव्र गति से ह्रास हो रहा है, इसे उन्होंने अनुभव किया था। गो रक्षा के लिये उनके प्रयत्न सर्वविदित हैं। तत्कालीन ब्रिटिश साम्राज्ञी विक्टोरिया की सेवा में गोवध बन्द कराते हेतु एक प्रार्थना पत्र प्रेषित करने का उन्होंने महत् उद्योग किया था। 'गो करुणा निधि' के परिशिष्ट रूप में 'गो कृष्यादि रक्षिणी सभा' की योजना और विधान प्रस्तुत कर स्वामी दयानन्द ने कृषि को भारतीय अर्थ व्यवस्था के प्रमुख आधार के रूप में प्रस्तुत किया। कृषक वर्ग के प्रति उनकी सहानुभूति उनके इस कथन से प्रकट है जिसमें उन्हें 'राजा-महाराजाओं का अन्नदाता' कहा गया है। यदि देश के प्रशासक स्वामी जी द्वारा निर्दिष्ट अर्थ व्यवस्था पर ध्यान देकर उसका क्रियान्वयन करते तो हमारा देश आर्थिक दृष्टि से न केवल सम्पन्न ही होता, उसकी समृद्धि में भी वृद्धि होती।

दर्शन के क्षेत्र में दयानन्द की देन

अब तक हमने स्वामी दयानन्द के व्यक्तित्व और उसकी देन का विवेचन विभिन्न दृष्टिकोणों से किया। महर्षि को

---

[1] हिन्दी भाषा सार—पृ० ६२ (हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से प्रकाशित)।

धर्म प्रचारक, समाज संशोधक तथा राष्ट्र निर्माता युग पुरुष के रूप में तो स्वीकार किया गया, परन्तु उनके दार्शनिक दृष्टिकोण पर बहुत कम ऊहापोह हुआ है। उनके ग्रन्थों का गम्भीर अनुशीलन करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि दयानन्द की देन दर्शन के क्षेत्र में भी कुछ कम नहीं है। दयानन्द के दार्शनिक सिद्धान्त उनके ग्रन्थों में सर्वत्र मणि में सूत्रवत् विद्यमान हैं। दयानन्द ने अपने दार्शनिक मत को 'वैदिक त्रैतवाद' के नाम से अभिहित किया है जिसे उन्होंने ऋग्वेद के 'द्वा सुवर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं' इस मंत्र द्वारा पुष्ट किया। शाङ्कर अद्वैतवाद उन्हें अभीष्ट नहीं। 'वेदान्तिध्वान्त निवारण' शीर्षक ग्रन्थ लिखकर स्वामीजी ने शाङ्कर मत का खण्डन किया और ईश्वर, जीव तथा प्रकृति की तीन अनादि सत्ताओं का प्रतिपादन किया। दयानन्द ने अपने दार्शनिक मन्तव्य को शास्त्रीय प्रमाणों से पुष्ट किया है। वेदान्त के 'अहं ब्रह्मास्मि', 'तत्वमसि', 'अयमात्मा ब्रह्म' तथा 'प्रज्ञानमानन्दं ब्रह्म' जैसे महावाक्यों की जीव ईश्वर भेदपरक व्याख्या पर जोर दिया।

महर्षि षडदर्शनों के समन्वयमूलक अध्ययन पर जोर देते हैं। दर्शनों के अध्ययन के क्षेत्र में उनकी यह देन अभूतपूर्व है। मध्यकालीन भाष्यकारों और दर्शन शास्त्रों के टीकाकारों ने दार्शनिक खण्डन मण्डन का विराट विभ्राट उपस्थित कर एक ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी थी, जिसमें दर्शनों के पारस्परिक समन्वय का सूत्र ढूँढ़ना नितान्त कठिन हो गया था। यद्यपि स्वामी दयानन्द को षडदर्शनों का विस्तृत सामञ्जस्य परक भाष्य लिखने का अवसर नहीं मिला, तथापि वे अपने सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थ में एक ऐसा सूत्र प्रस्तुत कर गये जिसके प्रकाश में षडदर्शनों की समन्वयमूलक व्याख्या हो सकती थी। इस प्रसंग में वे लिखते हैं "छः शास्त्रों में अविरोध इस प्रकार है। मीमांसा में ऐसा कोई कार्य जगत् में नहीं होता कि जिसके बनाने में कर्म चेष्टा न की जाय, वैशेषिक में 'समय लगे बिना बने ही नहीं', न्याय में उपादान कारण न होने से कुछ भी नहीं बन सकता, योग में विद्या, ज्ञान विचार न किया जाय तो नहीं बन सकता। सांख्य में तत्वों का ज्ञान नहीं होने से नहीं बन सकता और वेदान्त में बनाने वाला नहीं बनावे तो कोई भी पदार्थ उत्पन्न नहीं हो सकता। इसलिये सृष्टि छः कारणों से बनी है। इन कारणों की व्याख्या एक एक की एक-एक में है। इसलिये उनमें विरोध कुछ नहीं।"[1] आवश्यकता इस बात की है कि दर्शन के क्षेत्र में दयानन्द की महत्वपूर्ण देन का उसी प्रकार विशद विवेचन किया जाय, जिस प्रकार डा० राधाकृष्णन, चक्रवर्ती राजगोपालाचारी आदि विद्वानों ने शाङ्कर वेदान्त का विश्लेषण किया है।

उपसंहार

उपर्युक्त पंक्तियों में महर्षि दयानन्द की देन का अत्यन्त संक्षिप्त विवेचन किया गया है। वस्तुतः स्वामी दयानन्द का मानव जाति पर जो उपकार है, उसका यथार्थ मूल्यांकन असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। वेदार्थ के विषय में जो उन्होंने देन दी, उसका प्रमाण इसी बात से दिया जा सकता है कि स्वामीजी के परवर्ती योगी अरविन्द, सत्यव्रत सामश्रमी, स्वामी भगवदाचार्य तथा महामहोपाध्याय मधुसूदन ओझा जैसे वेदज्ञ विद्वानों ने उनके वेद भाष्य से प्रेरणा प्राप्त की है। ये विद्वान भी वेदार्थ की उसी सरणि पर चले हैं जिसका संकेत स्वामी दयानन्द ने किया था। गोखले, तिलक रानाडे आदि देश भक्तों तथा समाज सुधारकों, गांधी, श्रद्धानन्द, लाजपतराय जैसे राष्ट्र नेताओं तथा भगत सिंह और रामप्रसाद 'बिस्मिल' जैसे क्रान्तिकारियों के प्रेरणा स्रोत भी दयानन्द ही थे।

शिक्षा के क्षेत्र में जिस गुरुकुल पद्धति का प्रतिपादन महर्षि ने किया, उसीका अनुकरण सनातनधर्मी लोगों ने ऋषिकुल खोलकर किया। उनके द्वारा प्रचारित स्त्री शिक्षा, अछूतोद्धार, राष्ट्र भाषा प्रचार एवं गोरक्षा आदि के आंदोलन कालान्तर में समस्त देशवासियों द्वारा निर्विरोध रूप में

---

१ सत्यार्थप्रकाश—अष्टम समुल्लास

स्वीकार कर लिये गये। यह दयानन्द की व्यापक देन का निश्चित प्रमाण है। कवि कुल गुरु रवीन्द्रनाथ ने उस महर्षि के प्रति अपनी भावभीनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए लिखा—

"My neverence to the great teacher Dayanand, whose vision found unity and truth in India's spiritual history, whose mind luminiously comprehended all departments af India's life—whose call to India is the call of awakening to truth and purity from inertness of unreason and ignorance of the meaning of our past."

मेरा आदर हो उस महान गुरु दयानन्द के प्रति जिसने भारत के आध्यात्मिक इतिहास में एकता और सत्य के दर्शन किये। जिसने भारतीय जीवन की विविधता को अपने मस्तिष्क से देखा, जिसका भारत के प्रति आह्वान सत्य और पवित्रता का आह्वान था क्योंकि इस समय तक भारतवासी मिथ्या विश्वासों की जड़ता तथा अपने गौरवपूर्ण अतीत के प्रति अज्ञान के जाल में फंस चुके थे।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

ग्रन्थ	लेखक
१ महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन चरित्र—	देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय।
२ दयानन्द चरित	देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय
३ आदर्श सुधारक दयानन्द	"
४ श्री मद्दयानन्द प्रकाश	सत्यानन्द सरस्वती
५ सत्यार्थ प्रकाश	दयानन्द सरस्वती
६ संस्कार विधि	"
७ ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका	"
८ वेदभाष्य प्रणाली को दयानन्द सरस्वती के देन	(शोध प्रबन्ध) सु० कु० गुप्त
९ राष्ट्रवादी दयानन्द	सत्यदेव विद्यालंकार
१० ऋषि दयानन्द का राष्ट्रवाद:	भवानीलाल भारतीय
११ ऋषि दयानन्द और राजा राममोहन राय	"
१२ ऋषि दयानन्द और अन्य भारतीय धर्माचार्य	"
१३ हिन्दी भाषा और साहित्य को आर्य समाज की देन—	डा० लक्ष्मीनारायण गुप्त
१४ संस्कृत भाषा और साहित्य को आर्य समाज की देन	डा० भवानीलाल भारतीय
१५ दयानन्द दर्शन	चमूपति एम० ए०

अंग्रेज़ी ग्रंथ

१—Life of Dayanand Sarasvati By Harvilas Sarda

२ Luther of India By Dr. Sir Gokul Chand Narang.

३ Bankim, Tilak and Dayanand By Shri Arvinda

४ Dayanand, the man and his work By Shri Arvinda

५ Philosophy of Dayanand By Pt. Gangaprasad Upadhyaya

६ Swami Dayanand's contribution to Hindu Solidarity Upadhyaya

७ Swami Dayanand on the formation and function of the state Ganga Prasad Upadhyaya

८ Landmarks of Swami Dayanand's teachings Ganga Pd. Upadhyaya

९ A Critical study of the Philosophy of Dayanand By Dr. S. Prakash

१० The Torch Bearer By Sadhu T. L. Vaswami M. A.

११ Dayanand : A study in Hindusm By Principal Bahadurmal

१२ Dayanand commemoration Volume By Harvilas Sarda

१३ The Ten commandments of Dayanand By Pt. Chamupati

१४ Shankar and Dayanand By Harvilas Sarda

१५ Immortal Saying of Dayanand By Pt. Vishwanath Shastri

ओ३म्

महर्षि दयानन्द की देन

६

श्री सुमेधामित्र,

वेद महाविद्यालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार

१—अवतरण

यदा यदा ही धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानंसृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥

उपरोक्त उद्धरण का भाव यह है कि जब २ धर्मका ह्रास होने लगता है, अधर्म की वृद्धि होती है तब २ कोई न कोई महापुरुष धार्मिक सज्जन पुरुषों की रक्षा, दुष्टों के विनाश और धर्म की पुनः स्थापना के लिये इस पवित्र वसुन्धरा को अपने अवतरण द्वारा अलंकृत करते हैं। जिस समय महर्षि दयानन्द भारत के रंगमञ्च पर आये, उस समय इस देश की ऐसी ही दुरवस्था थी। धर्म का स्थान कुरीतियों ने ले लिया था। ऋषि परम्परा समाप्त हो चुकी थी। चारों ओर दम्भी और पाखण्डियों का बोलबाला था। वेद के स्थान में भ्रष्ट ग्रन्थों का सर्वत्र प्रचार जोरों पर था। वैदिक धर्म एक पुरानी जीर्ण शीर्ण खण्डहर में अपने अज्ञान उद्धारक की प्रतीक्षा में आँसू बहा रहा था। ऐसे हो समय में पश्चिमी भारत में एक महान तेज का प्रादुर्भाव हुआ। उस तेज ने जिस प्रकार मरीचिमाली सूर्य अपनी प्रखर रश्मियों से अन्धकार को नष्ट भ्रष्ट कर देता है, उसी प्रकार समस्त मतमतान्तर रूपी अज्ञानान्धकार को दूर करके सर्वत्र वेदज्ञान रूप अपने प्रचण्ड ज्योति से आलोक प्रदान किया।

२—देन

प्रत्येक महापुरुष संसार को कुछ न कुछ महत्वपूर्ण देन देता है। इस रूप में संसार उनका सदा ऋणी रहता है। जिस समय समाज को जिस तत्त्व की आवश्यकता होती है। महापुरुष उसीके अनुसार समाज में क्रान्ति लाता है। उस क्रान्ति सेसमाज का नये सिरे से पुनर्निर्माण होता है। उनके प्रत्येक क्रिया कलापों से संसार कुछ न कुछ ग्रहण करता ही रहता है। उनका जीवन लोकोत्तर होता है। जब सम्पूर्ण जगत् निद्रा से अभिभूत होता है तब भी वह जागता रहता है। वह सच्चे अर्थों में राष्ट्र, जाति समाज तथा मानवता का प्रहरी होता है। जब अन्य लोग मैदान छोड़कर वहाँ से पलायन कर जाते हैं। तब भी वह अत्यन्त निर्भीक होकर सिंह की भाँति डटा रहता है। वह परिस्थितियों से घबराता नहीं है। परिस्थिति उसकी दासी हो जाती है। दूसरे लोग परिस्थिति से घबराते हैं। उसके समक्ष आत्मसमर्पण कर देते हैं और उसीके अनुसार अपने में परिवर्तन करते हैं। पर महापुरुष

अपने परिस्थितियों के अनुरूप बना लेते हैं। परिस्थितियों का वह अनुगमन नहीं करता है। परिस्थितियाँ ही उनका अनुगमन करने लग जाती है।

उनका साधारण से साधारण कार्य भी जन सामान्य से भिन्न होता है, जबकि वह उसीका एक अंग होता है। उनके प्रत्येक आचरण से जनता शिक्षा ग्रहण करती है। उनकी कर्म में आसक्ति नहीं होती है। समाज को कर्म में प्रवृत्त कराने के लिये ही वे कर्म करते हैं क्योंकि उनका कर्म लोगों के लिये प्रमाण होता है। मनुष्य उन्हींका अनुसरण करता है। इसी बात को गीता में महर्षि वेदव्यासजी ने योगेश्वर भगवान श्री कृष्ण के मुख से इस प्रकार कहलाया है—

'यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तद् देवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनु वर्तते ॥
गीता ३।२१।

जीवन काल में तो महापुरुष सत्प्रयत्न तथा सदुपदेशों द्वारा महान् उपकार करते ही हैं। अनन्त की ओर चले जाने पर भी वे समाज राष्ट्र तथा सम्पूर्ण जगत् को सतत् आलोक प्रदान करते रहते हैं। वास्तव में वे मरते नहीं है। भौतिक शरीर का त्याग वे भले ही कर देते हैं। अपने पुण्य कर्मों से वे सदा जीवित रहते हैं। उनका नाम अमर हो जाता है। दूरदर्शी युग पुरुष महर्षि दयानन्द भौतिक शरीर से आज इस बसुन्धरा को भले ही शोभायमान नहीं कर रहे हैं, परन्तु उनका यशोमय दिव्य शरीर आज ही हमारे मध्य विराजमान है। उनकी गुणगरिमा प्रचण्ड सूर्य की प्रखर रश्मियों की भाँति चारो ओर फैल रही है। वह ज्योति किसी एक समूह, जाति, समुदाय या एक राष्ट्र का ही महत्त्व नहीं है। उसके लिये, गरीब धनी, काला, गोरा का कोई भेद नहीं है। वह ज्योति सम्पूर्ण जगत में देदीप्यमान हो रही है। कोई दूसरी ज्योति उसके समक्ष ठहर नहीं सकती। विरोधी शक्तियों को वह पूर्णतया भस्मीभूत कर देती है। वह कभी बुझ नहीं सकती। वह प्रकाश प्रोज्वल तथा चिरस्थायी है। उस प्रकाश ने महर्षि को प्रत्येक जनमानस में पहुंचा दिया है। सारा जगत् महर्षि के गुणों का गान कर रहा है। महर्षि की देन से विविध चेष्टाशील प्राणियों से परिपूर्ण जगत् अनेक प्रकार से अपने लक्ष्य की ओर बढ़ रहा है। अनेक क्रान्तियों तथा विचारों का समन्वय-सा कर रहा है। महर्षि का गौरव महान् है। उनकी महती महिमा को सब कोई जान भी नहीं सकते। सच्चा रत्न पारखी ही उसे परख सकता है। महान प्रयास से ही उनकी महिमा जानी जा सकती है। भारतवर्ष में बहुत से महापुरुषों ने पदार्पण कर अपनी महती देन देकर उसे उपकृत किया है। उन सभी महापुरुषों का भारतवर्ष ऋणी है। महर्षि दयानन्द का ऋण इस देश पर सबसे अधिक है। क्योंकि उन्होंने जो देन दी है। वह पाँच हजार वर्षों से आजतक किसी ने नहीं दी है।

३— वेद की देन

वेद मानव जाति का सबसे प्राचीन पवित्र और महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। वह सब विद्याओं तथा ज्ञान विज्ञान का आकार है। परमेश्वर से लेकर तृण तक सभी छोटे बड़े पदार्थों का इसमें विवेचन किया गया है। परम कारुणिक भक्तवत्सल परम पिता परमेश्वर प्राणी मात्र के कल्याण की कामना से सृष्टि के प्रारम्भ में अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा नामक चार महर्षियों को चारों वेद का ज्ञान दिया। उन पवित्रात्मा तपःपूत ऋषियों ने अन्य ऋषियों को उनका ज्ञान कराया। गुरु शिष्य परम्परा उत्तरवर्ती कालों में इसका प्रचार हुआ। इसका ऋग्वेद के दशम मण्डल के एकहत्तर सूक्त में इस प्रकार वर्णन किया है—

'बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रे यत्प्रैरत नाम धेयंदधानाः। यदेषां श्रेष्ठ यदरिप्रमासीत् प्रेणा तदेषां निहितं गुहाविः ॥ यज्ञेन वाचं पदवीयमायन् तामन्व विन्दन् ऋषिषु प्रविष्टाम्। नामाभृत्या व्यदधुः पुरुत्रा तां सप्तरेभा अभिसं न सन्ते" ऋ० १०.७१।१।३ ॥

इस प्रकार महाभरत काल से अबाध रूप से इस ज्ञान की परम्परा चलती रही है। समय-समय पर जब इसके प्रचार

में शिथिलता आने लगी तो ऋषियों ने पुनः अत्यन्त कष्ट सहन कर इस ज्ञान ज्योति के आलोक को सर्वत्र फैला दिया। महाभारत युद्ध के पश्चात वेद के पवित्र ज्ञान का ह्रास हो गया। क्योंकि महाभारतयुद्ध का परिणाम मानव जाति के लिये अच्छा नहीं हुआ। युद्ध के साथ बहुत से विद्या विज्ञानों की भी समाप्ति हो गई। ऋषियों की परम्परा पर भी उसका प्रभाव पड़ा। वेद ज्ञान के ह्रास के कारण भारतवर्ष की जो क्षति पहुँची उसकी पूर्ति सैकड़ों वर्षों में भी नहीं की जा सकती। सब लोग धर्म कर्म से हीन हो गये। अपने गौरव को भी सबों ने भुला दिया। जब अपनी मर्यादा को भूल चुके तब उनके अन्तस्तल में अज्ञान का प्रवेश होना ही था। फिर अपने को सम्भाल भी न सके। अनेक मतमतान्तरों की सृष्टि होने लगी। वर्ण व्यवस्था भंग हो गई। आश्रम व्यवस्था भी जाती रही। समाज अनेक जातियों में विभक्त हो गया। छूआछूत की अत्यन्त भयंकर महामारी ने भी समाज को दबोच लिया। सामाजिक संगठन पर इसका बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। एकता का सर्वथा अभाव हो गया। एकता के अभाव में समाज तथा देश अत्यन्त दुर्बल हो गया। अनेक कुरीतियाँ भी लोगों में घर कर गई। परिणाम यह हुआ कि देश कई खण्डों में विभक्त हो गया। दूसरी विरोधी शक्तियों ने देश पर आक्रमण कर दिया। यहाँ का एकता हीन विछृङ्खलित समाज में आक्रमणकारियों का प्रतिरोध करने की शक्ति नहीं थी। परिणाम यह हुआ कि देश चिर काल के लिये दासता की अर्गला में जकड़ गया।

समाज में धर्म के नाम पर अनेक प्रकार के दुराचार होने लगे। वेदों का पठन पाठन लुप्त हो गया। यदि कहीं इसका पठन पाठन था भी तो मन्त्र पाठ तक सीमित रहा। मन्त्रार्थ का परिज्ञान बिल्कुल नहीं था। इसके सम्बन्ध में पण्डितों में यह धारणा व्याप्त हो गयी थी कि वेद के मन्त्रों कर कोई अर्थ नहीं होता। अर्थ की चेष्टा करने से पाप होता है। अतः यज्ञ-वेदी पर बैठकर पाठ कर लेना और उसे बोलकर आहुति दे देना ही पर्याप्त है। उस समय जो भाष्य थे भी वे पूर्ण रूपेण दूषित तथा वेदकी मर्यादा को घटाने में सहायक थे। मध्यकालीन भाष्यकारों ने जो अर्थ किया भी था। उससे वेद की प्रतिष्ठा पर बहुत धक्का पहुँचा। उनका अर्थ केवल यज्ञ परक था। अश्लीलता की कमी नहीं थी। सायण ने यज्ञपरक अर्थकरके अपनी प्रतिज्ञा को नहीं निभाया जो वेद की अपौरुषेयता तथा उसकी महिमा के सम्बन्ध में की थी। महीधर ने अश्लीलता की भरमार कर दी। इन भाष्यकारों ने यज्ञ में पशु बलि तथा मांस भक्षण का भी वर्णन मन्त्रार्थों में किया। जब कि मन्त्र के पदों का उससे कोई सम्बन्ध नहीं और शतपथ, निघण्टु, निरुक्तादि के व्याख्यान के सर्वथा विरुद्ध है। वृक्षादि जड़ वस्तुओं की पूजा का भी विधान इन भाष्यकारों ने अपने अर्थों में किया। इसका वेद पर बहुत बुरा प्रभाव हुआ। कतिपय पाश्चात्य विद्वान तथा उनके चरण चिह्नों पर चलनेवाले उच्छिष्ट भारतीयों ने भी यह राग अलपना प्रारम्भ कर दिया कि वेद गड़रिया के गीत है। इन भाष्यों के आधार पर अल्पबुद्धि पाश्चात्य लोग तथा उनके अनुयायी भारतीय ऐतिहासिक वेद में अनित्य इतिहास की कल्पना करने लगे।

महर्षि दयानन्द ने प्रबल युक्तियों और शास्त्र प्रमाण के आधार इन विचारधाराओं का खण्डन किया। उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि वेद गड़रिया के गीत नहीं सभी विद्या विज्ञानों का भण्डार है। उसका भी उन्होंने खण्डन किया कि वेद के मन्त्रों के कोई अर्थ नहीं होते। ऋषि ने यह भी सिद्ध किया कि वेद में अनित्य इतिहास नहीं है। मन्त्रों में जो व्यक्तियों के नाम के सदृश शब्द दिखाई देते हैं। वे किसी व्यक्ति विशेष के वाचक नहीं है। उन शब्दों का अर्थ होता है। मन्त्रों के त्रिविधार्थ का भी उन्होंने प्रतिपादन प्रकरणानुसार मन्त्रों का आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक अर्थ होते है। महर्षि के पूर्व के भाष्यकारों ने केवल यज्ञ परक अर्थ किया था। महर्षि ने अपने वेद भाष्य में तीनों प्रकार का अर्थ किया है। कहीं पर मन्त्र का एक कहीं दो तथा कहीं तीनों अर्थ होते हैं। उदाहरण स्वरूप

इन्द्र शब्द का अर्थ ऐश्वर्यशाली है। भौतिक संसार में राजा सबसे अधिक ऐश्वर्यशाली होता है। अतः आधिभौतिक प्रकरण में इन्द्र शब्द का अर्थ राजा और वीर सेनापति होता है। आधिदैविक क्षेत्र में इन्द्र विद्युत और सूर्य का वाचक होता है। आध्यात्मिक क्षेत्र में इन्द्र शब्द से आत्मा और परमात्मा का ग्रहण होता है। इसी प्रकार अग्नि, वरुण, अश्विनौ, रुद्र, विष्णु, अदिति, नहुष, यदु, द्रुह्यु, अनु, तुर्वश, उर्वशी आदि शब्द भी यौगिक है। अनित्य इतिहासवाद का भी उन्होंने खण्डन किया। ऋषि के इस विचार तथा उनकी वेद भाष्य शैली का प्रभाव उत्तरवर्ती भाष्यकारों पर भी पड़ा। जो विद्वान आर्य समाजी नहीं हैं उन्होंने भी, अग्नि इन्द्र वरुण आदि शब्दों का ईश्वर परक अर्थ किया है। अन्य लोगों की भी यह धारणा जाती रही की वेद केवल कर्मकाण्ड परक है। अधिकांश लोगों में वेद सम्बन्धी अनुसन्धान तथा पठन-पाठन की ओर प्रवृत्ति हुई। जिन मन्त्रों का कभी स्वप्न में भी दर्शन या उच्चारण की कल्पना नहीं होती थी। आज बच्चे तक उनसे परिचित हैं।

४ धार्मिक देन

महर्षि दयानन्द के समय तक धर्म क्रम शब्द का अर्थ केवल एक मत या सम्प्रदाय तक सीमित था। सब लोग धर्म की वास्तविकता से दूर हो गये थे। जो कोई साधु या नेता हुआ, अपने नाम पर मत चला दिया। उसी का नाम धर्म रख दिया गया। व्यक्तियों के विचार तक धर्म को सीमित कर दिया गया। बहुत सी ऐसी चीजें धर्म के नाम पर प्रचलित हुई जो समाज को अधः पतन की ओर ले जाने में सहायक सिद्ध हुई। धर्म के ही नाम पर यज्ञों में गाय, घोड़े, बकरी, आदि पशुओं तथा मनुष्य तक की बलि दी जाने लगी। पति के मरने पर स्त्रियों को बलपूर्वक जीवित जला देने की प्रथा का भी प्रचलन प्रारम्भ हो गया। गर्भ हत्या तथा व्यभिचार भी धर्म की आड़ में होने लगे। कुछ लोगों ने धर्म का ठेकेदार बनकर जनता को लूटना खसोटना अपना परम कर्तव्य समझ लिया। हजार मत की सृष्टि हो गई। एक के विरोधी नौ सौ निन्यानवे थे। इन मतों का आधार कपोल कल्पित गाथाएँ तथा पुराणादि ग्रन्थ थे। वैदिक धर्म से दूर होकर लोगों ने पाखण्ड का आश्रय लिया। सर्व-व्यापक, सर्वज्ञ सर्वनियन्ता, सर्वेश्वर एक मात्र देव परमपिता परमेश्वर को छोड़ कर बहुत से देवी देवताओं भूत, प्रेत और पिशाचों की पूजा होने लगी। महर्षि दयानन्द ने इस धाँधली तथा पाखण्ड के विरुद्ध प्रबल आन्दोलन किया। इस स्थिति से उन्होंने देश को मुक्त करके सत्य को खोज निकाला। पुराण, बाइबिल, कुरान आदि सभी मत मतान्तों के ग्रन्थों का उन्होंने अध्ययन किया। उन पर गम्भीरतापूर्वक विचार कर वेद के मन्तव्य पर जनता को चलने की सम्मति दी। मनु प्रतिपादित धृत्यादि दश लक्षण तथा पतञ्जलि द्वारा वर्णित पाँच यम और पाँच नियम को धर्म का प्रतीक बताया। वेद के द्वारा विहित सत्याचरण पर उन्होंने विशेष बल दिया। महर्षि ने समाज को यह बताया कि धर्म किसी जाति, समुदाय, देश विशेष या समय से बाधित नहीं होता है। उसका क्षेत्र व्यापक है। वेद प्रतिपादित सत्य नियम ही धर्म है। उसके विपरीत इतर अधर्म है। धर्म के नाम पर जितनी बुराइयाँ फैली हुई थी। उन सबका उन्होंने निराकरण किया। जड़ मूर्तिपूजा, जल स्थल तीर्थ में विश्वास इत्यादि अवैदिक मतों का निराकरण कर ऋषि ने जनता में नवीन चेतना ला दी। परिणाम यह हुआ कि लोगों ने धर्म के नाम पर प्रचलित रूढ़िवाद तथा बुराइयों को परे फेंक कर सत्य को ग्रहण किया।

५—राष्ट्रियता की देन

महर्षि दयानन्द के समय भारत में अंग्रेज शासन करते थे। वैसे तो सन् १८५७ में विदेशी राज्य के विरुद्ध देश-भक्तों ने सशस्त्र क्रान्ति की। सेनापति ताँत्याटोपे और महारानी लक्ष्मी बाई ने भारत माता के यश में चार चान्द लगा दिये, परन्तु क्रान्ति की भावना जनमानस में पहुँचाने की

आवश्यकता थी। कोई भी क्रान्ति तभी सफल हो सकती है जब कि उसे अधिकांश जनता का सहयोग प्राप्त हो। महर्षि दयानन्द इस बात को भलीभांति जानते थे। उन्होंने जहाँ लोगों को धार्मिक उपदेश देकर कृतार्थ किया। वहाँ राष्ट्रीयता का भी उपदेश दिया। राजाओं से मिलने का उनका यही अभिप्राय था कि सब देशी राजा विषयासक्ति और विलासिता आदि दुर्गुणों को त्याग कर सच्चरित्र बने। सब राजाओं की शक्ति संगठित होकर देशको स्वतन्त्रता दिलाने में समर्थ हो सकती है। इसी विचार को हृदय में स्थान देकर महर्षि ने अपना अमूल्य समय इस प्रयास में समर्पित किया। परन्तु यह देश का महान् दुर्भाग्य था कि तत्कालीन राजाओं ने उनके महत्वको नहीं समझा। महर्षि सुराज्य से स्वराज्य को अधिक महत्व देते थे। उनकी दृष्टि में विदेशी शासन अच्छा होने पर भी ठीक नहीं था। इसका आभास हमें सत्यार्थ प्रकाश की निम्न पंक्तियों से प्राप्त होता है— विदेशी राजा यदि पुत्र के समान प्रजा का पालन करते हों तो भी अच्छा नहीं है और स्वदेशी राजा दुष्ट हो तो भी अच्छा है। कितनी उच्चकोटि की राष्ट्रीयता की भावना उनमें विद्यमान थी। महर्षि के अतिरिक्त किसी नेता ने इस प्रकार का विचार जनता के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया। एक बार एक अंग्रेज ने जब उनसे निवेदन किया कि आप ब्रिटिश साम्राज्य के कल्याण के लिये परमेश्वर से प्रार्थना कर दिया करें। उनका उत्तर यही था कि भारत से ब्रिटिश साम्राज्य की समाप्ति के लिये तो मैं प्रतिदिन प्रार्थना कर सकता हूँ, परन्तु उसके कल्याण के लिए कभी नहीं कर सकता। सत्यार्थ प्रकाशादि ग्रन्थों में उन नैतिक नियमों तथा कार्यों के पालन का निर्देश किया है। जो एक महान राष्ट्र भक्त के लिए अत्यन्त आवश्यक है। श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा को देश की स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लक्ष्य से सशस्त्र क्रान्ति की भूमिका तैयार करने के लिए उन्होंने ही इङ्गलैण्ड भेजा था। सत्यार्थ प्रकाश का छठा सम्मुल्लास पूर्ण रूप से राजनीतिक विचार प्रदान करता है। आर्याभिविनय आदि ग्रन्थों में भी स्वराज्य विषय ऋषि उदात्त भावनाओं का दर्शन होता है। ऋषि के विचारों से प्रभावित होकर स्वाधीनता संग्राम में उनके अनुयायी आर्यों ने न केवल सत्याग्रही के रूप में भाग लिया अपितु सरदार अजित सिंह, सरदार भगत सिंह, सरदार करतार सिंह, भाई परमानन्द, राम प्रसाद बिस्मिल, चन्द्रशेखर आजाद आदि नेताओं ने क्रान्तिकारी के रूप में शक्तिप्रयोग द्वारा साम्राज्यवाद को दहला दिया। सरदार अजित सिंह ने इटली में आजाद हिन्दुस्तान लश्कर नामक सैन्यदल की स्थापना करके साम्राज्यवाद के एक महान आश्चर्य पैदा कर दिया। बाद में यही सैन्यदल स्वनाम धन्य नेताजी श्री सुभाष चन्द्र बोस की आजाद हिन्द सेना के रूप में परिणत हो गया। गाँधीजी की परम्परा में भी राष्ट्रिय जागृत का श्री गणेश महर्षि दयानन्द से ही प्रारम्भ हुआ। पूना के प्रसिद्ध लोक नेता न्यायाधीश श्री महादेव गोविन्द रानाडे ने महर्षि को गुरु रूप में प्राप्त कर उनसे राष्ट्रिय विचार ग्रहण किया। कालान्तर में महात्मा गोपाल कृष्ण गोखले ने रानाडे से राष्ट्रियता का पाठ सीखा। सविनय अवज्ञा और असहयोग आन्दोलन के प्रवर्तक महात्मा गाँधी ने राष्ट्रियता का विचार श्री गोखले से प्राप्त किया। इस प्रकार महर्षि के उदात्त राष्ट्रिय विचार ने उत्तरवर्ती कालमें व्यापक रूप से देश में जागृति उत्पन्न की।

६— राष्ट्रभाषा की देन

प्रत्येक देश में अपनी संस्कृति, वेश-भूषा, रहन सहन और भाषा होती है। तभी वह देश उन्नति के पथ पर अग्रसर हो सकता है। कोई भी राष्ट्र भाषा तभी बन सकती है, जबकि उसमें यह क्षमता हो कि वह जनमान में सरलता से स्थान पा सके। राष्ट्रभाषी उसका भलीभांति अपने कार्य में उपयोग कर सके। महर्षि दयानन्द ने गम्भीरता के इस बात पर विचार किया और उद्घोषणा की पूरे राष्ट्र की एक भाषा होनी चाहिए। यद्यपि मुसलमानों के शासनकाल में हिन्दी का विकास हो चुका था। कबीर, सूर, तुलसी आदि हिन्दी

साहित्य के सितारे पैदा हो चुके थे। उन्होंने अपनी रचनायें हिन्दी में की वह प्रयोग कविता के क्षेत्र तक सीमित थी। महर्षि ने राष्ट्र भाषा के पद पर हिन्दी को आसीन किया। सर्वप्रथम महर्षि ने ही यह घोषणा की कि भारत की राष्ट्रभाषा होनी चाहिए और वह हिन्दी हो। उन्होंने अपने सभी ग्रन्थों की रचना हिन्दी में की। संस्कृति के उच्चकोटि के विद्वान तथा मातृभाषा गुजराती होते हुए भी जनमानस तक अपनी आवाज पहुँचाने के विचार भी हिन्दी में ही व्यक्त किया। वेद भाष्य जैसे उच्चकोटि के ग्रंथ का प्रणयन हिन्दी में किया। हिन्दी पर उनका विशेष अधिकार भी नहीं था। महर्षि द्वारा लगाया हुआ राष्ट्रभाषा का पौधा, अनेक झकोरों, आन्धी को सहता हुआ निरन्तर पुष्पित और पल्लवित हो रहा है। यद्यपि कतिपय स्वार्थी और देश द्रोही लोग इसके विरुद्ध षड्यन्त्र रच कर इसके विकास में बाधा उपस्थित कर रहे हैं। परन्तु महर्षिका त्याग तप विफल नहीं हो सकता। उनके पावन पद चिह्नों पर चलने वाले आर्य जन हिन्दी को राष्ट्र भाषा बनाने तथा व्यापक रूप में उसका प्रचार करने के लिये दत्तचित हैं।

७— नारी जाति का उत्थन

यद्यपि प्राचीन काल में नारी का स्थान समाज में बहुत ऊँचा रहा है। शिक्षा आदि के क्षेत्र में पुरुष के समान उनका अधिकार माना जाता था। जहाँ बैदिक सूक्तों के द्रष्टा विश्वामित्र, गोतम और मधुच्छन्दा आदि ऋषि थे, वहाँ प्राचीन भारतीय नारियाँ भी पीछे नहीं थी। लोपामुद्रा और शची पौलोमी आदि कई नारियों वैदिक सूक्तों के अर्थो का साक्षात्कार किया था। इसके अतिरिक्त गार्गी, मैत्रीय, सुलभा, शाण्डिली और सुमना आदि नारियाँ ब्रह्मवादिनी थी। यज्ञादि कर्मो में नारी का स्थान इतना अधिक महत्वपूर्ण था कि उसके बिना यज्ञादि कर्म की पूर्ति नहीं हो सकती थी। भारत के प्रसिद्ध विधान निर्माता भगवान मनु ने तो उसी परिवार में सुख शान्ति का साम्राज्य माना है, जहाँ नारियाँ पूजी जाती है—"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता"। परन्तु मध्यकाल में जब वेदों का प्रचार विलुप्त हो गया। तब स्त्रियों की स्थिति में दयनीयता आ गई। मध्यवर्ती आचार्यो ने नारी जाति के साथ घोर अन्याय किया। उन्हें शिक्षा से वंचित कर दिया गया। उसे पुरुष की इच्छा पूर्ति का साधन मात्र समझा गया। यहाँ तक कि आचार्य शंकर जैसे ब्रह्मवादियों ने भी जो सबको ब्रह्म समझते थे, नारी जाति पर दया नहीं की। बल्कि उन्होंने उसे नरक का द्वार तक कह दिया। पुराणों में पदे-पदे उसकी निन्दा की गई। गोस्वामी तुलसी दास ने "ढोल गंवार शुद्र पशु नारी। ये सब ताड़ने के अधिकारी" तथा 'अवगुण आठ सदा उर रहही' कह कर इसकी प्रताड़ना की है। परन्तु सृष्टि का यह नियम है सदा दुःख की ही घड़ी नहीं रहती है। परमेश्वर ने महती अनुकम्पा करके इसकी सुध ली। उन्नीसवीं शताब्दी में एक अत्यन्त तेजस्वी तथा प्रतिभा सम्पन्न महापुरुष का प्रादुर्भाव हुआ। उन्होंने जब देखा की मातृशक्ति का इस प्रकार अपमान हो रहा है तब उनकी आत्मा व्यथित हो उठी। उन्होंने प्रबल युक्तियों तथा वेदादि शास्त्र के प्रमाणों द्वारा मध्यवर्ती आचार्यो तथा पुरानों के मत का खण्डन किया। उन्होंने नारी जाति को पुनः उसी पद पर आसीन किया। जो प्राचीन काल में प्राप्त था। ऋषि ने जहाँ बालकों को शिक्षा दीक्षा के लिये बल दिया है वहीं कन्याओं की शिक्षा के लिए भी विशेष बल दिया है। न केवल बालकों के लिये, विद्यालयों तथा गुरुकुलों की स्थापना पर जोर दिया, अपितु कन्याओं के लिए भी गुरुकुलों की स्थापना का प्रतिपादन किया। यह महर्षि की ही महती कृपा का फल है कि जहाँ नव भारत के युवक गुरुकुलों में सांगोपांग वेदों को पढ़कर स्नातक होते हैं। कन्यायें भी उक्त विद्यायें पढ़ स्नातिका होकर कार्य क्षेत्र में पदार्पण करती है। यद्यपि वर्तमान काल में सरकार ने स्त्री पुरुष का भेद भाव दूर कर स्त्री शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया है, परन्तु वर्तमान शिक्षा ने नारी को भूषित करने के स्थान पर दूषित कर दिया है। महर्षि दयानन्द ने

जहाँ नारी जाति को शिक्षा दिलाने का प्रयास किया है, वहाँ उसके चारित्रिक विकास पर भी बल दिया है।

८—दलितोद्धार

यद्यपि आजकल सरकार दलित लोगों के उद्धार की बहुत डींग हाँकती है, परन्तु उसके निदान करने में सर्वथा असफल रही है। छूआछूत तथा जातिवाद मिटाना तो दूर रहा। उनके स्थान में एक अलग जाति का निर्माण ही हो गया और उसे लोग त्यागने को तैयार नहीं है। जिस विष को दूर करना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। प्राचीन काल में समाज चार वर्णों में विभक्त था। वर्ण व्यवस्था का आधार गुण और कर्म था न कि जन्म। अपनी योग्यता तथा त्याग तप के बल पर भी ब्राह्मण बन सकता था, जो किसी ब्राह्मण के यहाँ उत्पन्न नहीं हुआ। परन्तु मध्यकाल में स्वार्थी लोगों ने वर्ण व्यवस्था जन्म के आधार पर निश्चित कर ली और मनुष्य की जीविका के आधार पर जातिवाद का बवेला खड़ा कर दिया। अपने को ब्राह्मण क्षत्रिय कहलाने वालों ने धर्म तथा सभी व्यवस्थाओं का ठेकेदार मान लिया। वैश्यों से भी इन्होंने समझौता करके अपने साथ उन्हें कर लिया। ये तीनों मिलकर शूद्रों तथा अन्य दलितों पर अत्याचार करने लगे। उनको अपवित्र और अछूत घोषित कर दिया। वे न तो कुएँ से जल ले सकते थे, न गाँव में बस सकते थे, न पढ़-लिख सकते थे। बल्कि उनके पढ़ने पर इतना कठिन प्रतिबन्ध लगा दिया कि अक्षर का ज्ञान करना भी उनके लिये अत्यन्त कठिन हो गया। उनके लिये निम्न दण्ड निर्धारित किया गया। यदि वेद मन्त्रों का श्रवण कर लेवें तो कान में सीसा चुनवा दिया जाय, उच्चारण करने पर जिह्वा का उच्छेद कर दिया जाय। यदि धारण कर लेवे तो अंग-प्रत्यंग का छेदन कर दिया जाय। यदि कोई उच्च वर्ण या जाति का व्यक्ति भूल से अथवा जानकर शूद्र तथा निम्न जाति के हाथ का अन्न या जल ग्रहण कर ले तो उसे समाज से बहिष्कृत कर दिया। मौलवी या ईसाई पादरियों की शरण छाया में उसे शरण मिलती था। उसे शुद्ध कर आत्मसात् करने की शक्ति समाज में नहीं थी। मुस्लिम तथा अंग्रेज शासकों के समय इस प्रकार के बहुत से हिन्दुओं को मुसलमान और ईसाई बना लिया गया। महर्षि दयानन्द ने वेदादि शास्त्रों के आधार तथा युक्ति द्वारा गुण कर्म के अनुसार वर्ण व्यवस्था का प्रतिपादन किया। उन्होंने छूआछूत तथा जातिवाद का घोर विरोध किया। हाँ मांसाहारियों के यहाँ का भोजन निरामिष भोजियों के लिये उनके द्वारा निषिद्ध घोषित किया गया। उन्होंने यह भी लोगों को बताया कि किसी कारणवश जो मुसलमान या ईसाई बन गये हैं। उन्हें शुद्ध करके अपने में आत्मसात् वेदादि शास्त्रों के अनुकूल है। महर्षि का यह विचार उनके स्वनाम धन्य शिष्य अमर हुतात्मा श्री स्वामी श्रद्धानन्दजी के समय व्यापक रूप फलित हुआ।

९ शिक्षा की देन

जिस प्रकार शरीर की उन्नति के लिये शुद्ध, पवित्र तथा पौष्टिक भोजन की आवश्यकता होती है। उसी प्रकार आत्मिक तथा मानसिक उन्नति के लिये शिक्षा की अत्यन्त आवश्यकता होती है। शिक्षा के ही अनुसार मनुष्य के जीवन का निर्माण होता है। जैसी शिक्षा उसे मिलती ही वैसा ही वह बनता है। बुरी शिक्षा मिलने पर मनुष्य बुरा बनता है तथा अच्छी शिक्षाप्राप्त होने पर मनुष्य श्रेष्ठ तथा सच्चरित्र बनता है। महर्षि के समय देश अंग्रेजों की दासता की बेड़ी में जकड़ा था। अंग्रेजों को भारतीयों के चरित्र निर्माण से आवश्यकता ही क्या थी। वे तो चाहते ही थे कि भारतीयों का चरित्र ऊँचा न उठने पावे। वे अपने पूर्वजों के रहन-सहन तथा प्राचीन गौरव को भूल जाय। इसकी पूर्ति के लिये यह आवश्यक था कि उन्हें ऐसी शिक्षा दी जाय जिस से अपने धर्म, संस्कृति तथा साहित्य आदि से घृणा हो जाय। पाश्चात्य सभ्यता, संस्कृति, साहित्य तथा विद्वानों के प्रति श्रद्धा की भावना जाग्रत हो। शरीर मात्र से भारतीय

हो। वेश भूषा, रहन-सहन, शिक्षा दीक्षा तथा विचार से पूरा अंग्रेज हो। लार्ड मैकाले ने यह योजना बनाकर यहाँ की शिक्षा पद्धति पर कुठाराघात किया। यहाँ की शिक्षा संस्था को बन्द कराकर पाश्चात्य शिक्षा का श्री गणेश हुआ। साम्राज्यवाद को इसमें आशा से अधिक सफलता प्राप्त हुई। ऐसे समय में महर्षि दयानन्द ने भारतीयों का ध्यान अपनी प्राचीन शिक्षा प्रणाली की ओर आकृष्ट किया। उन्होंने यह सिद्ध करके दिखला दिया कि भारतीय शिक्षा पद्धति ही मानव का निर्माण कर सकती है। इसके निमित्त ऋषि ने गुरुकुल शिक्षा प्रणाली पर बल दिया। जहाँ राजा तथा दरिद्र दोनों का पुत्र समान स्थिति में रहकर ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए विद्याध्ययन करे ऐसा विधान किया। गुरुकुल प्रणाली में जातिवाद छूत छात आदि का कोई भी स्थान नहीं है। गृह त्यागी होकर नगर के वातावरण से दूर रहकर ब्रह्मचारी गुरु के सान्निध्य में अध्ययन के साथ-साथ चरित्र निर्माण भी करता है। ब्रह्मचारी को भोजन सादा और विचार उच्च होता है। गुरुकुल वास में दूर देशीय सहपाठियों के साथ रहकर बन्धुत्व तथा सौहार्द्र की भावना अपने अन्दर पैदा करता है। निरन्तर दीर्घकाल तक प्रवास में रहने के कारण ब्रह्मचारी के मन में अपने पराये का भेद नहीं रह जाता है। वह सभी मनुष्य को अपना भाई तथा सुहृद समझता है। निरन्तर त्याग तप की साधना से तपे होने के कारण किसी के प्रतिपक्षपात की भावना नहीं रहती है। पापी और स्वार्थी प्रवृत्ति उसके समक्ष टिक नहीं पाती। इस युग में इस पद्धति को पुनर्जीवन दिलाने का श्रेय देव दयानन्द को ही है। यद्यपि महर्षि के समय में गुरुकुलों की स्थापना न हो सकी। परन्तु ऋषि का दिव्य विचार जो अंकुर के रूप में पैदा हुआ प्रतिदिन वृद्धि की ओर अग्रसर होता गया। उनके शिष्य स्वामी श्रद्धानन्दजी और स्वामी ने कई गुरुकुलों की स्थापना की। आगे चलकर इन गुरुकुलों से पढ़कर निकले हुए स्नातकों ने धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक क्रान्ति में महान योगदान दिया। यद्यपि वर्तमान काल में गुरुकुल शिक्षा प्रणाली पहले की भाँति नहीं रही। फिर भी आजकल के अन्य शिक्षणालयों से तो अच्छा ही है। गुरुकुलों में पढ़े हुए छात्रों के मन में माता, पिता, गुरु, आचार्य, समाज तथा देश के प्रति भक्ति भावना तो रहती ही है।

१० शिक्षा पद्धति में आमूल परिवर्तन

महर्षि दयानन्द ने न केवल नवीन पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली का खण्डन गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का प्रतिपादन किया। अपितु पठनपाठन विधि में भी क्रान्ति की आवश्यकता अनुभव की। उस समय नवीन शिक्षण संस्थाओं में तो भारतीय संस्कृति तथा धर्म पर क्या मान दिया जाता था। जो संस्कृत विद्यालय तथा पाठशालाएँ थी। वहाँ भी संस्कृत वाङ्मय तथा भारतीय संस्कृति रो रही थी। गुरुलोग छात्रों को कौमुदी के सूत्र तथा वृत्ति कण्ठस्थ करा देने में ही अपने कर्त्तव्य की इति श्री समझ लेते थे। संस्कृति और धर्म के मूलभूत आधार वेद और दर्शन का कोई स्पर्श तक नहीं करता था। फक्किका रटने में ही छात्र अपना सारा जीवन खपा देते थे। महर्षि दयानन्द ने इस अवस्था में महान् परिवर्तन लाने की इच्छा से सिंहनाद किया। उन्होंने प्रबल युक्तियों और तर्कों द्वारा अनार्षग्रन्थों को पढ़ने से निषेध किया। ऋषि ने बताया कि आर्ष पाठ विधि द्वारा ही हम वेदों तक पहुँच सकते हैं। ऋषि प्रणीत ग्रन्थों का पढ़ना ऐसा है जैसे समुद्र में गोता लगाना और बहुमूल्य मोतियों का पाना, अनार्ष का पढ़ना ऐसा है, पहाड़ का खोदना और कौड़ी का लाभ होना। जब कि अनार्ष प्रद्धति से बारह वर्ष में केवल व्याकरण का भी भलीभाँति ज्ञान नहीं हो पाता। है। आर्ष पाठ विधि से उससे बहुत अधिक ज्ञान तीन चार वर्षों में हो जाता है। बारह वर्ष में इस विधि से परिश्रमशील छात्र सांगोपांग वेदों को अधिगत कर सकता है? ऋषि की यह कोरी कल्पना नहीं है। उनका प्रत्यक्ष अनुभव है। गुरु विरजानन्दजी के यहाँ उन्होंने तीन वर्ष में सम्पूर्ण व्याकरण

शास्त्र का अध्ययन पूरा कर लिया था। ऋषि के इस विचार को आगे चलकर और बल मिला। स्वर्गीय आचार्य श्री पं० ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु और पूज्य श्री पं० युधिष्ठिरजी मीमांसक इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। आचार्य जिज्ञासुजी ने आर्ष पाठ विधि से चार वर्ष में व्याकरण शास्त्र का पूरा ज्ञान करा देने के सक्रियात्मक प्रयोग में महती सफलता प्राप्त की। यद्यपि आर्य समाज की शिक्षा संस्थाओं ने ऋषि के इस विचार की पूर्ति के लिये क्रियात्मक पग नहीं उठाया। परन्तु महर्षि की उदात्त भावना विचार की दीवार को भेदकर विद्वानों के अन्तस्तल में जा पहुँची। जो उनके अनुयायी नहीं हैं वे ऋषि की इस उदात्त भावना को पूरा करने के निमित्त प्राण-पण से अपने को निछावर कर दिए हैं।

११ निर्भीकता और आत्महुति की भावना

मनुष्य स्वभाव से ही एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज में ही जन्म लेता है और समाज में ही उसका अन्त होता है। सामाजिक प्राणी होने के कारण उसे समाज में रहना पड़ता है। उसके बिना वह जीवन यापन नहीं कर सकता है। जीवन सुचारू रूप से चलाने के लिये एक दूसरे की सहायता लेनी पड़ती है। समाज के प्रति उनका कुछ दायित्व तथा कर्त्तव्य भी होता है। उस दायित्व तथा कर्त्तव्य का पालन करने के लिये त्याग, तप और आत्माहुति की भी आवश्यकता होती है। देश के प्रत्येक नागरिक को ऐसी स्थिति आने पर देश की रक्षा के निमित्त आत्म-त्याग करने के लिये बाध्य होना पड़ता है। जिस राष्ट्र या समाज में आत्म त्यागी हुतात्माओं का अभाव होता है। वह राष्ट्र या समाज अपनी स्वतन्त्रता तथा अस्तित्व को भी खो देता है। आत्म त्याग सब कोई नहीं कर सकता। इसके लिये निर्भीकता की अत्यन्त आवश्यकता होती है। निर्भीकता और आत्मत्याग का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। महर्षि दयानन्द के समय देश में आत्मत्यागी तथा निर्भीक लोगों की अत्यन्त आवश्यकता थी। साम्राज्यवाद के द्वारा दमन चक्र जोरों पर था। उसके समक्ष किसी को शिर उठाने का भी साहस नहीं होता था। सन् १८५७ की प्रथम क्रान्ति विफल कर दी गई थी। ऐसे गम्भीर अवसर पर महर्षि दयानन्दजी ने अपने देशवासियों के समक्ष पूर्व पुरुषों की गौरवपूर्ण गाथा, आत्मत्याग, कष्ट सहिष्णुता, तथा निर्भीकता का ज्वलन्त उदाहरण रखा। इससे देशवासियों में नवीन जागृति और चेतना आ गई। अपने पूर्वजों के त्याग, तप और वीरगाथा को सुनकर उनके खून खौल उठे, भुजाएँ फड़कने लगी। अपने प्राचीन गौरव तथा स्वतन्त्रता को प्राप्त करने के लिये वे आतुर हो उठे। फिर क्या था, भय को एकदम परे फेंक कर जननी जन्म भूमि की रक्षा के लिये महान से महान आत्म त्याग करने के लिये तत्पर हो गये। फिर जिस आत्म-त्याग और निर्भीकता की बाढ़ देश में आई उसने साम्राज्य-वाद को जड़ से उखाड़ करके फेंककर दम लिया। आर्य-समाज की प्रगति तथा वैदिक धर्म के प्रचार के लिये आर्यों को अत्यन्त कठिनाइयों तथा विपत्तियों का सामना करना पड़ा। उनका सामना करने में आर्य वीरों ने जिस त्याग, तप, धर्म, आत्म संयम और निर्भीकता का परिचय दिया। सब महर्षि के ही तपस्या और त्याग का फल था।

१२ एकता की देन

महर्षि के समय देश में विविधता भयंकर रूप में विद्यमान थी। कई समाज सुधारकों ने उन विविधताओं को मिटाकर देश तथा समाज में एकता स्थापित करने का महान प्रयास किया। परन्तु उनका आदर्श, कार्यशैली तथा उनकी मान्यता का आधार भारतीय नहीं था। पाश्चात्य देशों के धोखा धड़ी पूर्ण नीति को वे श्रेष्ठ समझते थे। उनमें आत्म संयम, त्याग, तप तथा निर्भीकता का भी अभाव था। जिससे भारतीय जनता में वे ऐक्य स्थापित करने में सफल नहीं हुए। जातिवाद तथा जन्म पर आधारित वर्ण व्यवस्था दिन प्रतिदिन देश को गर्त में पहुँचा रही थी। इसका निदान भी सरल नहीं था। वर्तमान सरकार भी एकता

स्थापित करने का दम्भ भरती है, परन्तु अब तक वह एकता स्थापित करने में सर्वथा विफल रही है । किसी एक पक्षको सन्तुष्ट करने की नीति से एकता स्थापित नहीं हो सकती। अपनी संस्कृति, गौरव तथा प्राचीन मान्यताओं को सर्वथा तिलाञ्जलि दे देने से भी एकता की स्थापना सम्भव नहीं हो सकती । महर्षि दयानन्द ने वेदादि शास्त्रों का अवगाहन करके "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" का नारा लगा कर सम्पूर्ण संसार को एकता का सन्देश दिया। इस नारा का सम्बन्ध केवल भारत वर्ष से नहीं, विश्व से है। सब मतमतान्तों का निराकरण करके वैदिक धर्म पर चलने का आदेश दिया। विभिन्न कल्पित देवी देवता की उपासना को त्याग एक मात्र परम आराध्यदेव परमेश्वर की उपासना करने का उपदेश दिया। एक सभा, एक विचार तथा समान रहन सहन पर बल दिया। जातिवाद का निराकरण कर गुण कर्मानुसार वर्ण व्यवस्था को प्रोत्साहन दिया। एक साथ विचार के निमित्त एक भाषा की आवश्यकता का अनुभव हिन्दी अपनाने पर जोर दिया। एकता के निमित्त एक शिक्षा पद्धति अत्यन्त आवश्यक है अतः एक शिक्षा पद्धति का प्रतिपादन किया। एकता के प्रतिपादक तथा महान योग दाता होते हुये भी उन्होंने किसी से गलत समझौता नहीं किया। एकता के निमित्त एक धर्म एक समान शिक्षा, समान रहन सहन, समान विचार, एक भाषा, एक संस्कृति तथा एक उपास्य का होना अत्यन्त आवश्यक है। महर्षि ने इन सब बातों पर बल दिया है।

१३—उपसंहार

लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि सब मर जाते हैं, परन्तु वह मर कर भी नहीं मरता है जो देश, धर्म पर बलिदान हो जाते हैं। महर्षि दयानन्द ने न केवल अपने जीवन काल में अपने पवित्र देन से मानव जगत् को उपकृत किया, अपितु आज भी वे सतत अपनी देन से संसार को आलोकित कर रहे हैं। जीवन भर जो नास्तिक और निरीश्वरवादी थे वे भी उनकी अन्तिम यात्रा की घटना का अवलोकन कर महान् आस्तिक और ईश्वर भक्त बन गये। जो पहले संसार के भोग विलास और विषय वासना में रत थे उनको भी महर्षि के पर्यवसान ने झकझोर कर जगा दिया। जीवन पर्यन्त जो अत्यन्त विरोधी रहे उन्हें भी सद्मार्ग पर आनेको विवश होना पड़ा। जो ज्योति उदय काल में कम प्रखरता को धारण कर रही थी अस्त होने के पश्चात् उसकी प्रखरता और प्रचण्ड हो उठी। इसके अतिरिक्त कई अन्य बहुत से क्षेत्र हमसे प्रतिरोधित हो सकते हैं। जिसमें ऋषि की महती देन हो। महर्षि दयानन्द ने जो सार्वभौमि, सार्वजनिक तथा मानव मात्र के लिये ही नहीं प्राणी मात्र के कल्याण के निमित्त जो देन दी है, वह अन्य किसी ने नहीं दिया।

ओ३म्

महर्षि दयानन्द की देन

७

श्री चन्द्रप्रकाश आर्य, एम० ए०

वि० वै० शोध संस्थान—डा० साधु आश्रम, होशिआरपुर (पञ्जाब)

महर्षि दयानन्द को विविध विचारकों ने विभिन्न-विभिन्न दृष्टिकोणों से देखा है, यथा१—एक ईश्वर के उपासक, वेदोद्धारक, वेदवेत्ता, वेद भाष्यकार, भारतीय संस्कृति के पुनरुद्धारक, आर्य जाति के गौरव और उसके

१—महर्षि दयानन्द सरस्वती के समकालीन एवं पश्चाद्-वर्ती मनीषियों ने ऋतुराज वसन्त रूपी महर्षि के विचार, कार्य और प्रभाव को देख कर उनके प्रति जो अपनी श्रद्धाञ्जलियां या विचाराञ्जलियां प्रस्तुत की हैं। वे महर्षि के उपर्युक्त रूपों को हृदयंगम कराने में विशेष स्थान रखती हैं। उन श्रद्धासुमनों में से प्रसंगानुकूल कुछ प्रस्तुत हैं :—

स्वामी दयानन्द महान् संस्कृतज्ञ और वेदज्ञाता थे, उन्होंने केवल एक ज्योतिर्मय निराकार परमेश्वर की आराधना करने की शिक्षा दी।

—सर सय्यद अहमद खाँ

इस बात का श्रेय दयानन्द को ही प्राप्त होगा कि उसने सर्वप्रथम वेदों की व्याख्या के लिये निर्दोष मार्ग का अवलम्बन किया था। ऋषि दयानन्द ने उन द्वारों की कुञ्जी प्राप्त की जो युगों से बन्द थे और उन्होंने दबे हुए झरने का मुख खोल दिया।

—योगी अरविन्द

स्वामी दयानन्द एक विद्वान् थे, उनके धर्म नियमों की नींव ईश्वरकृत वेदों पर थी, उन्हें वेद कण्ठस्थ थे, उनके मन और मस्तिष्क में वेदों ने घर किया हुआ था या, यह कहिये कि वेद उसके हस्तामलक थे।

—मैक्समूलर

जब लोग वेद के आध्यात्मिक अर्थ करने की ओर दृष्टि देते हैं तो सर्वप्रथम स्वामी दयानन्द सरस्वती का ही स्मरण हो आता है, जिन्होंने वेद का ज्ञानपरक अर्थ करके वेद की पूर्ण महत्ता को पुनः इस संसार में प्रख्यापित किया है।

—पं० गोपाल शास्त्री, सभापति पण्डित सभा, काशी

उन्होंने (स्वामी दयानन्द जी ने) आर्य संस्कृति की रक्षा की, वेदों का पुनरुद्धार और आर्ष शैली से प्रचार किया।

—सरदार वल्लभ भाई पटेल

स्वामी दयानन्द उन पुरुषों में से थे, जिन्होंने आधुनिक भारत का निर्माण किया और उसके आचार सम्बन्धी पुनरुत्थान तथा धार्मिक पुनरुद्धार के कारण हुए।

—नेताजी सुभाषचन्द्र बोस

बोधक, राष्ट्रवादी, समाज सुधारक, नवजागरण के अग्रदूत, भारतीय स्वाधीनता के प्रथम मूलमन्त्र प्रदाता, राष्ट्रिय एकता की सूत्रमयी हिन्दी के प्रचारक, अछूतोद्धारक, अज्ञान-अन्ध-विश्वास-पाखण्डरूपी तम के निवारक, गोरक्षक, विधवा-अनाथ सहायक, नारी जाति के सम्मानी, तदधिकार-पोषक एवं सत्य और मानवता के पुजारी।

स्वामी दयानन्द ही पहिले व्यक्ति थे, जिन्होंने हिन्दुस्थान 'हिन्दुस्थानियों के लिये' का नारा लगाया।

श्रीमती एनी बीसेण्ट

स्वामी दयानन्द ने सर्वप्रथम भारत की स्वतन्त्रता का बीजारोपण किया। भारत के स्वातन्त्र्य इतिहास में सर्वप्रथम उनका नाम लिखा जायेगा।

—कैलाशनाथ काटजू, भूतपूर्व गृहमन्त्री, भारत

जब तक और लोग स्वराज्य का स्वप्न ले रहे थे स्वामी दयानन्द और आर्य समाज अपनी पुस्तकों द्वारा उसका प्रचार करने में लगे हुए थे।

—मौलाना हसरत मुहानी

दयानन्द ने अस्पृश्यता वा अछूतपन के अन्याय को सहन नहीं किया और उससे अधिक उनके व्यपहृत अधिकारों का उत्साही समर्थक दूसरा कोई भी नहीं हुआ। भारत में स्त्रियों की शोचनीय दशा को सुधारने में भी दयानन्द ने बड़ी उदारता व साहस से काम लिया।

महर्षि दयानन्द ने धर्म जागृति बढ़ाई, आर्य संस्कृति का, वेदाभ्यास का, संस्कृत भाषा का, हिन्दी भाषा का प्रेम बढ़ाया। अस्पृश्यता रूपी कलङ्क धोने का प्रयत्न किया।

—महात्मा गान्धी

महान् गुरु दयानन्द को मैं सादर प्रणाम करता हूँ।.... जिसकी घोषणा ने भारत को अविद्या, अन्धकार से मुक्ति दिला कर उसे सत्य और पवित्रता की जागृति दिलाने का शंखनाद किया।

—रवीन्द्रनाथ टैगोर

स्वामी दयानन्द की मृत्यु पर—ऐ खुदा क्या मंजूर न था हम वाहियात रस्मियात के फन्दे से निजात पाएँ। ऐ खुदा क्या मंजूर न था कि हम आपस के निफाक को दूर करें। हम तुम से दूर हो गये थे, वह (दयानन्द) हमको तुझ से मिलाना चाहता था।

—वाजिद अली, मन्त्री अंजुमन इस्लामिया, लाहौर

स्वामी दयानन्द की सब से बड़ी विशेषता उनकी दूरदर्शिता थी। यह देख कर आश्चर्य होता है कि विदेशी शासन के विरोध में सक्रिय संघर्ष के समय जिन बातों पर महात्मा गाँधी ने अधिक बल दिया और उन्हें रचनात्मक कार्य की संज्ञा दी, प्रायः वे सभी काम स्वामी दयानन्द के कार्यक्रम में पचास वर्ष पूर्व शामिल थे। देश भर के लिये एक सामान्य भाषा की आवश्यकता स्वामी दयानन्द ने महसूस की और हिन्दी को ही राष्ट्र अथवा आर्य भाषा होने के योग्य माना।

इसके अतिरिक्त अछूतोद्धार, स्त्री शिक्षा, हाथ के बने कपड़े अथवा स्वदेशी का प्रयोग इत्यादि बातों पर उन्होंने काफी बल दिया और वे स्वयं भी जीवन में इन बातों पर पूर्ण अमल करते रहे।

उनकी कृतियों और उपदेशों से यह बात भी स्पष्ट हो जाती है कि वे विचारों से राष्ट्रवादी थे और विदेशी शासन स्थान पर स्वराज्य अथवा भारतीयों के ही राज्य का स्वप्न देखते थे। समाज सेवा के क्षेत्र में स्वामी दयानन्द और आर्य समाज ने जो कार्य किया उसके महत्त्व से इनकार नहीं किया जा सकता। उस कार्य के लिये और देश को जो उससे लाभ हुआ, उसके लिये हम सब उनके ऋणी हैं।

—डा० राजेन्द्र प्रसाद

स्वामी दयानन्द भारतीय संस्कृति, स्वतन्त्रता और क्रान्ति के अग्रदूत थे। वे बड़े दृढ़ व्यक्ति थे, उन जैसा क्रान्तिकारी नेता होना विरले ही लोगों का काम होता है। उन्होंने ऐसे समय में देश का नेतृत्व किया, जिस समय बुराईयों की ओर संकेत करना भी कठिन काम था।....स्वामी जी ने देश में धार्मिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक क्षेत्रों में जो कार्य किया वह अभूतपूर्व है।

—लालबहादुर शास्त्री

महर्षि दयानन्द के इन समस्त रूपों और कार्यों के पीछे एक अलौकिक दृष्टि, एक विचारधारा, एक कसौटी कार्य करती हुई दिखाई देती है। उसीसे ही इन सब कार्यों को शक्ति, नवजीवन, चेतना, प्रकाश, प्रेरणा और स्वास्थ्य प्राप्त हुआ था। जिसको हम 'महर्षि दयानन्द की एक देन' कह सकते हैं। इसी प्रकाश-ज्ञान दायिनी विशेष देन के कारण महर्षि दयानन्द सब पथ-प्रदर्शकों से अधिक प्रिय प्रतीत होते हैं और वह है महर्षि की विचार क्रान्ति, विचार स्वातन्त्र्य या उन्हीं के शब्दों में इसको ऐसे कह सकते हैं :—

"सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना" चाहे वह सत्य किसी का भी क्यों न हो।

संसार के इतिहास में अनेक धर्म संस्थापक या धर्म सुधारक हुए। किसी भी महापुरुष, धर्माचार्य, गुरु की विचार पद्धति में इतने स्पष्ट शब्दों में ऐसी उल्लेखनीय विचार स्वतन्त्रता और उदारता का परिचय प्राप्त नहीं होता। आज के बौद्धिक स्वतन्त्रता के युग में महात्मा गौतम बुद्ध को विशेष विचार क्रान्ति का मन्त्र प्रदाता माना जाता है। यह मान्यता बहुत अंशों में सत्य भी है, परन्तु वहाँ भी इतने स्पष्ट शब्दों में महर्षि जैसी विचार स्वातन्त्र्य भावना दिखाई नहीं देती।

आज सर्वत्र समन्वय की प्रशंसा की जाती है कि वह एकमात्र सर्वविध भेद-भावों से उत्पन्न सब रोगों का उपचार है और राष्ट्र समाज को संगठित कर सब के सुख, प्रेम का आधार है। परन्तु समन्वयवाद का इतिहास इस बात का साक्षी है कि अनेक बार विभिन्न महापुरुषों ने विविध वर्गों में समन्वय कराने का सराहनीय प्रयास किया, किन्तु कुछ दिनों के पश्चात् एक पक्ष या वर्ग के स्वार्थ ने वह सारा बना-बनाया आशाओं का महल धूलिसात् कर दिया। समन्वय में प्रायः सत्य और न्याय की उपेक्षा कर एक पक्ष को तिरोहित कर दिया जाता है, जिसके कारण वह चिरस्थायी नहीं होता है। अतः वह आरम्भ में रमणीय और परिणाम में टेसू पुष्पवत् सिद्ध होता है और समन्वय प्रायः सबको खुश करने के लिये किया जाता है।

महर्षि ने अपनी प्रचार-यात्रा के पूर्वार्ध में दिल्ली दरबार के अवसर पर धार्मिक समन्वय का प्रयास किया था, परन्तु अन्त में इस परिणाम पर पहुँचे कि समन्वय केवल ऊपर से रमणीय और कुछ दिनों का अतिथि या भानमती (भ्रान्तमति) का पिटारा ही होता है। अतः महर्षि ने हर क्षेत्र में हर प्रकार से समन्वय की अपेक्षा एकमात्र सत्य का पूर्ण समर्थन किया।

सत्य तो यह है कि गुणग्राहिता, निष्पक्षपात वृत्ति, उदारता, सत्यानुरागिता, निःस्वार्थता और सहिष्णुता के अभाव में समन्वय का सफल होना सर्वथा दुष्कर है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि भारत में चतुर्थ महानिर्वाचनों के बाद एकांगी भावनावश अनेक प्रान्तों में संयुक्त मन्त्रिमण्डल बने। उनमें से बंगाल, बिहार, हरियाणा और पञ्जाब में विफल हो चुके हैं तथा उत्तर प्रदेश में अन्तिम साँस ले रहा है। हाँ, महर्षि एकमात्र सत्य और न्याय पर आधारित समन्वय के पक्षपाती थे। इसी दृष्टिकोण को ही सत्यार्थप्रकाश की भूमिका और एकादश समुल्लास में सब धर्मों की सभा के विवेचन में प्रस्तुत किया है।

यद्यपि आजकल बहुत से विद्वान् प्रत्येक मत में हैं, वे पक्षपात छोड़ सर्वतन्त्र सिद्धान्त अर्थात् जो जो बातें सब के अनुकूल सब में सत्य हैं, उनका ग्रहण और जो एक दूसरे के विरुद्ध बातें उनका त्याग कर परस्पर प्रीति से बर्तें बर्तावें तो जगत् का पूर्ण हित हो। भूमिका—

मनुष्य जन्म का होना सत्यासत्य के निर्णय करने-कराने के लिए है न कि वाद-विवाद विरोध करने-कराने के लिये। इसी मतमतान्तर के विवाद से जगत् में जो जो अनिष्ट फल हुए, होते हैं और होंगे उनको पक्षपातरहित विद्वज्जन जान सकते हैं। जब तक इस मनुष्य जाति में परस्पर मिथ्या मतमतान्तर का विरुद्धवाद न छूटेगा तब तक अन्योऽन्य को आनन्द न होगा। यदि हम सब मनुष्य और विशेष विद्वज्जन ईर्ष्या, द्वेष छोड़ सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण

और असत्य का त्याग करना कराना चाहें तो हमारे लिये यह बातें असाध्य नहीं है। अनुभूमिका (१)

जिस बात में ये सहस्र एकमत हों, वह वेद मत ग्राह्य है१ और जिसमें परस्पर विरोध हो वह कल्पित, झूठा, अधर्म, अग्राह्य है।

जिज्ञासु—इसकी परीक्षा कैसे हो ?

आप्त—तू जा कर इन इन बातों को पूछ। सबकी एक सम्मति हो जावणी। तब वह उन सहस्रों की मण्डली के बीच में खड़ा होकर बोला कि सुनों सब लोगों! सत्य भाषण में धर्म है वा मिथ्या में ? सब एक स्वर होकर बोले कि सत्य भाषण में धर्म और असत्य भाषण में अधर्म है। वैसे ही विद्या पढ़ने में, ब्रह्मचर्य करने में, पूर्ण युवावस्था में विवाह, सत्संग, पुरुषार्थ, सत्य व्यवहार आदि में धर्म और अविद्या ग्रहण, ब्रह्मचर्य न करने, व्यभिचार करने, कुसंग, आलस्य, असत्य व्यवहार, छल, कपट, हिंसा, परहानि करने आदि कर्मों में [अधर्म], सबने एक मत हो के कहा कि विद्यादि के ग्रहण

१—इस वाक्य को पढ़कर मन में बारम्बार एक शङ्का उठती है कि सत्य के ग्रहण करने और असत्य के त्याग का अमर घोष करने वाला वेदों का इतना अधिक प्रबल पोषक क्यों है ? तथा कुछ विचारकों ने महर्षि दयानन्द और आर्य समाज की इस दृष्टि से विशेष आलोचना भी की है, उनकी दृष्टि में ये दोनों अन्य मतावलम्बियों की तरह वेद के अन्ध श्रद्धालु मात्र ही हैं तथा उनके लिये स्थान-स्थान पर आदर सहित इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग करना सर्वथा अनुचित है, यथा—वेदोक्त सब बातें विद्या के अविरुद्ध हैं, वेद विद्या विहीन लोगों की कल्पना सर्वथा सत्य क्योंकर हो सकती है, जब सर्व सत्य वेदों से प्राप्त होता है जिसमें असत्य कुछ भी नहीं तो उनका ग्रहण करने में शङ्का करनी अपनी और पराई हानिमात्र कर लेनी है। भला वेदादि सत्य शास्त्रों को माने बिना तुम अपने वचनों की सत्यता और असत्यता की परीक्षा और आर्य्यावर्त की उन्नति भी कभी कर सकते हो ? मनुष्यों में सत्यासत्य का यथावत् निर्णय करने वाली वेद विद्या, बिना कारण विद्या वेदों के अन्य कार्य विद्याओं की प्रवृत्ति मानना सर्वथा असम्भव है। निःसन्देह सर्वशङ्का निवारक वेद मत, वेदोक्त सत्यमत, वेदादि सत्यशास्त्र, वेद तो सब विद्याओं का भण्डार है, वेदों में (जैसा) कहा है उसीको मानो तभी तुम्हारा कल्याण होगा अन्यथा नहीं, सत्य तो वेदों के स्वीकार में गृहीत होता ही है आदि। शेष अग्रे—

इन शब्दों को सामान्य दृष्टि से देखने पर मन में बारम्बार एक विचार आता है कि क्या महर्षि दयानन्द के ये शब्द आग्रह युक्त सम्प्रदायवादियों के शब्दों के सदृश नहीं हैं। परन्तु जब महर्षि के समग्र दृष्टिकोण को समझते हैं तो शंका का समाधान हो जाता है कि महर्षि वेदों को सर्वज्ञ ईश्वर की कृति मानते थे, तभी तो लिखते हैं कि "सर्वज्ञ परमात्मा के वचन का सहाय हम अल्पज्ञों को अवश्य होना चाहिये।" महर्षि ने सत्य विद्या के प्रतिपादक होने से ही वेदों को इतनी मान्यता दी। इस दृष्टि से सत्यार्थप्रकाश का एक विवेचन सर्वथा पाठनीय और माननीय है। प्रश्न—वेद ईश्वर कृत है अन्य कृत नहीं, इसमें क्या प्रमाण है ? उत्तर—जैसा ईश्वर पवित्र, सर्वविद्यावित्, शुद्ध गुण कर्म स्वभाव, न्यायकारी, दयालु आदि गुणवाला है वैसा जिस पुस्तक में ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के अनुकूल कथन हो वह ईश्वर कृत अन्य नहीं, और जिसमें सृष्टिक्रम प्रत्यक्षादि प्रमाण आप्तों के और पवित्रात्मा के व्यवहार से विरुद्ध कथन न हो वह ईश्वरोक्त। जैसा ईश्वर का निभ्रम ज्ञान वैसा जिस पुस्तक में भ्रान्तरहित ज्ञान का प्रतिपादन हो वह ईश्वरोक्त। जैसा परमेश्वर है और जैसा सृष्टि क्रम रक्खा है वैसा ही ईश्वर, सृष्टि-कार्य, कारण और जीव का प्रतिपादन जिसमें होवे वह परमेश्वरोक्त पुस्तक होता है और प्रत्यक्षादि प्रमाण विषयों से अविरुद्ध शुद्धात्म के स्वभाव के विरुद्ध न हो, (इस प्रकार वेद हैं) सप्तम समुल्लास॥ उपर्युक्त कसौटी के अनुरूप होने और शंका पक्ष में उद्धृत वचनों से भी यह सिद्ध होता है कि (विद्या, विज्ञान, अविरुद्ध, सत्ययुक्त होने से ही वेद) महर्षि को सर्वथा मान्य एवं प्राणों सम प्रिय थे।

में धर्म और अविद्यादि के ग्रहण में अधर्म। एकादश समुल्लास सर्वतन्त्र सिद्धान्त अर्थात् साम्राज्य सार्वजनिक धर्म जिसको सदा से सब मानते आये, मानते हैं, और मानेंगे भी इसीलिये उसको सनातन नित्य धर्म कहते हैं कि जिसका विरोधी कोई भी न हो सके, यदि अविद्यायुक्त जन अथवा किसी मत वाले के भ्रमाये हुए जन जिसको अन्यथा जानें वा मानें उसका स्वीकार कोई भी बुद्धिमान नहीं करते। किन्तु जिसको आप्त अर्थात् सत्यमानी, सत्यवादी, सत्यकारी, परोपकारक पक्षपात रहित विद्वान मानते हैं वही सबको मन्तव्य और जिसको नहीं मानते वह अमन्तव्य होने से प्रमाण के योग्य नहीं होता। स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश।

इन उद्धरणों से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि महर्षि किस प्रकार के समन्वय के पक्षपाती थे। आज प्रायः समन्वय के पक्ष में अविचार रमणीय युक्तियाँ देते हुये कहा जाता है कि दूसरों की बुराइयों को न देखते हुये तथा उनकी निन्दा या खण्डन न कर सब मतों में से अपनी बुद्धि के अनुसार सत्य को ग्रहण कर लेना चाहिये। इस दृष्टि को सामने रख कर ब्रह्म समाज के विषय में किया गया विवेचन सर्वथा पाठनीय है।

प्रश्न—हम कोई पुस्तक ईश्वर प्रणीत वा सर्वांश में सत्य नहीं मानते क्योंकि मनुष्यों की बुद्धि निर्भ्रान्त नहीं होती, इससे उनके बनाये ग्रन्थ सब भ्रान्त होते हैं। इसलिये हम सब से सत्य ग्रहण करते और असत्य को छोड़ देते हैं। चाहे वह सत्य वेद में, बाइबिल में वा कुरान में और अन्य किसी ग्रन्थ में हो हम को ग्राह्य है, असत्य किसी का नहीं।

उत्तर—जिस बात से तुम सत्याग्रही होना चाहते हो उसी बात से असत्याग्रही भी ठहरते हो क्योंकि जब सब मनुष्य भ्रान्तिरहित नहीं हो सकते तो तुम भी मनुष्य होने से भ्रान्ति सहित हो। जब भ्रान्ति सहित के वचन सर्वांश में प्रमाणिक नहीं होते तो तुम्हारे वचन का भी विश्वास नहीं होगा। फिर तुम्हारे वचन पर भी सर्वथा विश्वास न करना चाहिये। जब ऐसा है तो विषयुक्त अन्न के समान त्यागने के योग्य है।..........तुम सर्वज्ञ नहीं जैसे कि अन्य मनुष्य सर्वज्ञ नहीं है। कदाचित् भ्रम से असत्य को ग्रहण कर सत्य को छोड़ भी देते होंगे। इसलिये सर्वज्ञ परमात्मा के वचन का सहाय हम अल्पज्ञों को अवश्य होना चाहिये। जब सर्व सत्य वेदों से प्राप्त होता है, जिसमें असत्य कुछ भी नहीं तो उनका ग्रहण करने में शंका करनी अपनी और पराई हानिमात्र कर लेनी है, इसी बात से तुमको आर्य्यावर्त्तीय लोग अपना नहीं समझते और तुम आर्य्यावर्त्त की उन्नति के कारण भी नहीं हो सके, क्योंकि तुम सब घर के भिक्षुक ठहरे हो। तुम ने समझा है कि इस बात से हम लोग अपना और पराया उपकार कर सकेंगे सो न कर सकोगे। जैसे किसी के दो ही माता पिता सब संसार के लड़कों का पालन करने लगें सबका पालना करना तो असम्भव है किन्तु उस बात से अपने लड़कों को भी नष्ट कर बैठें। वैसे ही आप लोगों की गति है। भला वेदादि सत्य शास्त्रों को माने बिना तुम अपने वचनों की सत्यता और असत्यता की परीक्षा और आर्य्यावर्त्त की उन्नति भी कभी कर सकते हो? एकादश समुल्लास

समन्वय के अभिलाषियों को महर्षि के ये शब्द सर्वदा स्मरण रखने चाहिए "जो सर्वमान्य सत्य विषय है वे तो सब में एक से हैं, झगड़ा झूठे विषयों में होता है" अनुभूमिका (३) अतः समन्वय, प्रेम, सुख, और शान्ति का आधार महर्षि की दृष्टि में एक मात्र सत्य ही है। इसीलिये सदा महर्षि ने सत्य का समर्थन और प्रतिपादन किया और किसी भी परिस्थिति में झूठ का समर्थन या उसके साथ समझौता नहीं किया। महर्षि के इस सिद्धान्त और समीक्षण में भी यही अलौकिक दृष्टि ही कार्य करती हुई दिखाई देती है।

इस "सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग" की दिव्य देन से अनुप्रेरित होकर महर्षि ने अपने अमर ग्रन्थ का नाम "सत्यार्थप्रकाश" रखा जो कि वस्तुतः ही सत्य का प्रकाश है, जिसमें जिस भी विषय पर लेखनी उठाई, उसके सम्बन्ध में

तुलनात्मक सापेक्ष अध्ययन सहित तथ्यपूर्ण (१) और वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया।

इसके निर्माण के अभिप्राय को अभिव्यक्त करते हुए भूमिका में लिखा है—मेरा इस ग्रन्थ को बनाने का मुख्य प्रयोजन सत्य सत्य अर्थ का प्रकाश करना है, अर्थात् जो सत्य है उसको सत्य और जो मिथ्या है उसको मिथ्या प्रतिपादन करना सत्य अर्थ का प्रकाश समझा है। वह सत्य नहीं कहाता जो सत्य के स्थान में असत्य और असत्य के स्थान में सत्यका प्रकाश किया जाए। किन्तु जो पदार्थ जैसा है उसको वैसा ही कहना लिखना और मानना सत्य (२) कहाता है। जो मनुष्य पक्षपाती होता है वह अपने असत्य को भी सत्य और दूसरे विरोधी मत वाले के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत्त होता है इस लिये वह सत्य मत को प्राप्त नहीं हो सकता। इसीलिये विद्वान् आप्तों का भी यही मुख्य काम है कि उपदेश वा लेख द्वारा सब मनुष्यों के सामने सत्यासत्य का स्वरूप समर्पित कर द, पश्चात् वे स्वयं अपना हिताहित समझ कर सत्यार्थ का ग्रहण और मिथ्यार्थका परित्याग करके सदा आनन्द में रहें। मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य का जानने वाला है। तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि, हठ, दुराग्रह और अविद्यादि दोषों से सत्य को छोड़ असत्य में झुक जाता है। परन्तु इस ग्रन्थ में ऐसी बात नहीं रक्खी है और न किसी का मन दुखाना वा किसी की हानि पर तात्पर्य है। किन्तु जिससे मनुष्य जाति की उन्नति और उपकार हो, सत्यासत्य को मनुष्य लोग जानकर सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करें क्योंकि सत्योपदेश के बिना अन्य कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नहीं है।

इस ग्रन्थ में जो कहीं कहीं भूल चूक से अथवा शोधने तथा छापने में भूल चूक रह जाय उसको जानने जनाने पर जैसा सत्य होगा वैसा ही कर दिया जायगा। और जो कोई पक्षपात से अन्यथा शङ्का वा खण्डन मण्डन करेगा उस पर ध्यान न दिया जायगा। हाँ जो वह मनुष्य मात्र का हितैषी होकर कुछ जनावेगा उसको सत्य सत्य समझने पर उसका मत संगृहीत होगा। यद्यपि आजकल बहुत से विद्वान् प्रत्येक मतों में हैं वे पक्षपात छोड़ सर्वतन्त्र सिद्धान्त अर्थात् जो जो बातें सबके अनुकूल सब में सत्य है उनका ग्रहण और जो एक दूसरे से विरुद्ध बातें हैं उनका त्याग कर परस्पर प्रीति से वर्त्तें वर्त्तावें तो जगत् का पूर्ण हित होवे।...ऐसी बातों को चित्त में धर के मैंने इस ग्रन्थ को रचा है। श्रोता वा पाठकगण भी प्रथम प्रेम से देख के इस ग्रन्थ का सत्य सत्य तात्पर्य जानकर यथेष्ट करें। इसमें यह अभिप्राय रक्खा गया है कि जो भी सब मतों में सत्य सत्य

१—सत्यार्थप्रकाश में वस्तुतः वैदिक आदर्श की स्थापना करने वाली ऐसी जीवनचर्या है, जिसे अपने जीवन की उन्नति चाहने वाला हर व्यक्ति सहज में अपना सकता है। महर्षि ने व्यक्तिगत और सामूहिक उन्नति का ऐसा कोई भी पहलू नहीं छोड़ा जिस पर उसमें प्रकाश नहीं डाला गया। ... मनुष्य, समाज और राष्ट्र के जीवन का उसमें वह नक्शा खींच दिया है। जिसको सामने रख कर अभ्युदय और निःश्रेयस दोनों का सम्पादन किया जा सकता है। "राष्ट्रवादी दयानन्द, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार"

सत्यार्थ प्रकाश की उपयोगिता का मूल्यांकन इस बात से भी किया जा सकता है कि महर्षि ने पं० महेशचन्द्र न्यायरत्न के प्रश्नों का उत्तर देते हुये "भ्रान्ति निवारण" में प्रसंगवश लिखा है "मैं अपने निश्चय और परीक्षा के अनुसार ऋग्वेद से लेके पूर्व मीमांसा पर्यन्त अनुमान से तीन हजार ग्रन्थों के लगभग मानता हूँ" इससे सरलता पूर्वक यह अनुमान किया जा सकता है कि प्रामाण्याप्रमाण्य समीक्षा के लिये कितने सहस्र ग्रन्थ पढ़े होंगे।

२—महर्षि की दृष्टि में सत्य की परिभाषा—सत्य जो पदार्थ जैसा हो उसको वैसा ही समझना, वैसा ही बोलना और वैसा ही करना, अर्थात् जैसा आत्मा में वैसा मन में, जसा मन में वैसा वाणी में, जैसा वाणी में वैसा कर्म में बर्तना सत्य है। पञ्चम समुल्लास।

बातें हैं वे वे सब में अविरुद्ध होने से उनका स्वीकार जो जो मतमतान्तरों में मिथ्या बातें हैं उनका खण्डन किया है। इसमें यह भी अभिप्राय रक्खा है कि जब मत-मतान्तरों की गुप्त व प्रकट बुरी बातों का प्रकाश कर विद्वान् अविद्वान् सब साधारण मनुष्यों के सामने रक्खा है, जिससे सबसे सबका विचार होकर परस्पर प्रेमी होके एक सत्य मतस्थ होवें।

यद्यपि मैं आर्यावर्त्त देश में उत्पन्न हुआ और बसता हूँ तथापि जैसे इस देश के मत-मतान्तरों की झूठी बातों का पक्षपात न कर याथातथ्य प्रकाश करता हूँ वैसे ही दूसरे देशस्थ वा मतोन्नति वालों के साथ भी बर्तता हूँ, जैसा स्वदेश वालों के साथ मनुष्योन्नति के विषय में बर्त्तता हूँ वैसा विदेशियों के साथ भी तथा सब सज्जनों को भी बर्त्तना योग्य है। क्योंकि मैं भी जो किसी एक का पक्षपाती होता तो जैसा आजकल के स्वमत की स्तुति, मण्डन और प्रचार करते और दूसरे मत की निन्दा, हानि और बन्द करने में तत्पर होते हैं वैसे मैं भी होता, परन्तु ऐसी बातें मनुष्यपन से बाहर हैं।

अब आर्यावर्त्तियों के विषय में विशेष कर ११ ग्यारहवें समुल्लास तक लिखा है। इन समुल्लासों में जो कि सत्यमत प्रकाशित किया वेदोक्त होने से मुझको सर्वथा मन्तव्य है।

बहुत से हठी दुराग्रही मनुष्य होते हैं कि वक्ता के अभिप्राय विरुद्ध कल्पना किया करते हैं, विशेषकर मतवाले लोग। क्योंकि मत के आग्रह से उनकी बुद्धि अन्धकार में फँस के नष्ट हो जाती है। इसलिये जैसा मैं पुराण, जैनियों के ग्रंथ, बायबिल और कुरान को प्रथम ही बुरी दृष्टि से न देख कर उनमें से गुणों का प्रयत्न करता हूँ, वैसा सब को करना योग्य है। इन मतों के थोड़े-थोड़े ही दोष प्रकाशित किये हैं, जिनको देखकर मनुष्य लोग सत्यासत्य मत का निर्णय कर सकें और सत्य का ग्रहण तथा असत्य का त्याग करने-कराने में समर्थ होवें। क्योंकि एक मनुष्य जाति में बहका कर, विरुद्ध कराके, एक दूसरे के शत्रु बना, लड़ा मारना विद्वानों के स्वभाव से बहिः है। और इसी प्रकार पक्षपात न करके सत्यार्थ का प्रकाश करना मेरा वा सब महाशयों का मुख्य कर्तव्य काम है। सर्वात्मा सर्वान्तर्यामी सच्चिदानन्द परमात्मा अपनी कृपा से इस आशय को विस्तृत और चिरस्थायी करे। भूमिका है।

विद्वानों का यही काम है कि सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करके परम आनन्दित होते हैं वे ही गुण ग्राहक पुरुष विद्वान होकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप फलों को प्राप्त होकर प्रसन्न रहते हैं। दशम समुल्लास॥

पक्षपात छोड़कर इसको देखने से सत्यासत्य मत सबको विदित हो जायगा। पश्चात् सबको अपनी-अपनी समझ के अनुसार सत्य मत का ग्रहण करना और असत्य मत को छोड़ना सहज होगा। मेरा तात्पर्य किसी की हानि वा विरोध करने में नहीं किन्तु सत्यासत्य का निर्णय करने कराने का है। इसी प्रकार सब मनुष्यों को न्याय दृष्टि से वर्त्तना अति उचित है। मनुष्य जन्म का होना सत्यसत्य के निर्णय करने कराने के लिये है, न कि वाद-विवाद विरोध करने कराने के लिये। इसी मत-मतान्तर के विवाद से जगत् में जो-जो अनिष्ट फल हुए, होते हैं और होंगे उनको पक्षपात रहित विद्वज्जन जान सकते हैं। जब तक इस मनुष्य जाति में परस्पर मिथ्या मतमतान्तर का विरुद्ध वाद न छूटेगा तब तक अन्योन्य को आनन्द न होगा। यदि हम सब मनुष्य और विशेष विद्वज्जन ईर्ष्या द्वेष छोड़ सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करना करना चाहे तो हमारे लिये यह बात असाध्य नहीं है। अनुभूमिका (१)

इस बारहवें (१२) समुल्लास में जो-जो जैनियों के मत के विषय में लिखा गया है सो-सो उनके ग्रन्थों के पते पूर्वक लिखा है इसमें जैनियों जैनी लोगों को बुरा न मानना चाहिये क्योंकि जो-जो हमने इनके मत विषय में लिखा है वह केवल सत्यासत्य के निर्णयार्थ है न कि विरोध वा हानि करने के अर्थ। इस लेख को जब जैनी बौद्ध वा अन्य लोग देखेंगे तब सबको सत्यासत्य के निर्णय में विचार और लेख

करने का समय मिलेगा और बोध भी होगा जब तक वादी प्रतिवादी होकर प्रीति से वाद वा लेख न किया जाय तब तक सत्यासत्य का निर्णय नहीं हो सकता। जब विद्वान् लोगों में सत्यासत्य का निश्चय नहीं होता तभी अविद्वानों को महा-अन्धकार में पड़कर बहुत दुःख उठाना पड़ता है। इसलिये सत्य के जय और असत्य के क्षय के अर्थ मित्रता से वाद वा लेख करना हमारी मनुष्य जाति का मुख्य कर्त्तव्य है। यदि ऐसा न हो तो मनुषों की उन्नति कभी न हो। अनुभूमिका (२)।

यह लेख केवल सत्य की वृद्धि और असत्य के ह्रास होने के लिये न किसी को दुःख देने वा हानि करने अथवा मिथ्या दोष लगाने के अर्थ। इससे यह प्रयोजन सिद्ध होगा कि मनुष्यों को धर्म विषयक ज्ञान बढ़कर यथायोग्य सत्याऽसत्य मत का और कर्तव्य कर्म सम्बन्धी विषय विदित होकर सत्य और कर्तव्य कर्म का स्वीकार, असत्य और अकर्तव्य कर्म का परित्याग करना सहजता से हो सकेगा। जो कोई पक्षपात रूप मानारूढ़ हो के देखते हैं, उनको न अपने और न पराये गुण-दोष विदित हो सकते हैं। मनुष्य का आत्मा यथायोग्य सत्यासत्य के निर्णय करने का सामर्थ्य रखता है जितना अपना पठित वा श्रुत है, उतना निश्चय कर सकता है। यदि एक मत वाले दूसरे मत वाले के विषयों को मानें और अन्य न जाने तो यथावत् संवाद नहीं हो सकता।

जो सर्वमान्य सत्य विषय हैं, वे तो सबमें एक से हैं. झगड़ा झूठे विषयों में होता है। अथवा एक सच्चा और दूसरा झूठा हो तो भी कुछ थोड़ा विवाद चलता है। यदि वादी प्रतिवादी सत्यासत्य निश्चय के लिये वाद प्रतिवाद करें तो अवश्य निश्चय हो जाय। अनुभूमिका (३)

जो कुरान अर्बी भाषा में है उसपर मौलवियों ने उर्दू में अर्थ लिखा है उस अर्थ का देवनागरी अक्षर और आर्य भाषान्तर कराके पश्चात् अर्बी के बड़े-बड़े विद्वानों से शुद्ध करवा के लिखा गया है, यदि कोई कहे कि यह अर्थ ठीक नहीं है तो उनको उचित है कि खण्डन करे पश्चात् इस विषय पर लिखे क्यों कि लेख केवल मनुष्यों की उन्नति और सत्यासत्य के निर्णय के लिये सब मतों के विषयों का थोड़ा-थोड़ा ज्ञान होवे इससे मनुष्यों को परस्पर विचार करने का समय मिले और एक दूसरे के दोषों का खण्डन कर गुणों का ग्रहण करें न किसी अन्य मत पर न इस मत पर झूठ-मूठ बुराई वा भलाई लगाने का प्रयोजन है, किन्तु जो-जो भलाई है वही भलाई और जो बुराई है वही बुराई सब को विदित होवे न कोई किसी पर झूठ चला सके और न सत्य को रोक सके और सत्यासत्य विषय प्रकाशित किये पर भी जिसकी इच्छा हो वह न माने वा माने किसी पर बलात्कार नहीं किया जाता और यही सज्जनों की रीति है कि अपने वा पराये दोषों को दोष और गुणों को गुण जानकर गुणों का ग्रहण और दोषों का त्याग करें और हठियों का हठ दुराग्रह न्यून करे करावें क्योंकि पक्षपात से क्या-क्या अनर्थ जगत् में न हुये और न होते हैं। सच तो यह है कि इस अनिश्चित क्षण भंगुर जीवन में पराई हानि कर के लाभ से स्वयं रिक्त रहना और अन्यों को रखना मनुष्यपन से बहिः है। इसमें कुछ विरुद्ध लिखा गया हो उसको सज्जन लोग विदित कर देंगे तत्पश्चात् जो उचित होगा तो माना जायगा क्योंकि यह लेख हठ दुराग्रह ईर्ष्या द्वेष, वाद-विवाद और विरोध घटाने के लिये किया है न कि इन को बढ़ाने का अर्थ क्योंकि एक दूसरे की हानि करने से पृथक रह परस्पर को लाभ पहुँचाना हमारा मुख्य कर्म है। ...विचार कर इष्ट का ग्रहण अनिष्ट का परित्याग किजिये। अनुभूमिका (४)

जो कुछ इसमें थोड़ा सा सत्य है वह वेदादि विद्या पुस्तकों के अनुकूल होने से जैसे मुझको ग्राह्य है वैसे अन्य भी मजहब के हठ और पक्षपात रहित विद्वानों और बुद्धिमानों को ग्राह्य है।....परमात्मा सब मनुष्यों पर कृपा करे कि वे सब से प्रीति, परस्पर मेल और एक दूसरे के सुख की उन्नति करने में प्रवृत्त हों। जैसे मैं अपना वा दूसरे मत मतान्तरों का दोष पक्षपात रहित होकर प्रकाशित करता हूँ, इसी प्रकार

यदि सब विद्वान लोग करें तो क्या कठिनता है कि परस्पर विरोध छूट मेल होकर आनन्द में एक मत हो सत्य की प्राप्ति सिद्ध हो। यह थोड़ा सा कुरान के विषय में लिखा, इसको बुद्धिमान धार्मिक लोग ग्रन्थकारके अभिप्राय को समझ लेवें। यदि कभी भ्रम से अन्यथा लिखा गया हो तो उसको शुद्ध कर लेवें। चतुर्दश समुल्लास

मैं अपना मन्तव्य उसीको जानता हूँ कि जो तीन काल में सबको एक सा मानने योग्य है। मेरा कोई नवीन कल्पना वा मतमतान्तर चलाने का लेश मात्र भी अभिप्राय नहीं है किन्तु जो सत्य है उसको मानना मनवाना और जो असत्य है उसको छोड़ना और छुड़वाना मुझ को अभीष्ट है, यदि मैं पक्षपात करता तो आर्यावर्त में प्रचरित मतों में से किसी एक मत का आग्रही होता किन्तु जो जो आर्य्यावर्त वा अन्य देशों में अधर्म युक्त चाल चलन है उनका स्वीकार और धर्मयुक्त बातें हैं उनका त्याग नहीं करता न करना चाहता हूँ क्योंकि ऐसा करना मनुष्य धर्म से बहिः है।

सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः।
येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम्।४।
न हि सत्यात् परो धर्मो नानृतात्पातकं परम्।
न हि सत्यात् परं ज्ञानं तस्मात् सत्यं समाचरेत्॥५॥

इन्हीं महाशयों के श्लोकों के अभिप्राय के अनुकूल सब को निश्चय रखना योग्य है।

जो जो बात सबके सामने माननीय है उनको मानता अर्थात् जैसे सत्य बोलना सबके सामने अच्छा और मिथ्या बोलना बुरा है ऐसे सिद्धान्तों को स्वीकार करता हूं, और जो मतमतान्तर के परस्पर विरुद्ध झगड़े हैं उनको मैं प्रसन्न नहीं करता, क्योंकि इन्हीं मतवालों ने अपने मतवालों में अपने मतों का प्रचार कर मनुष्यों को फंसा के परस्पर शत्रु बना दिये हैं। इस बात को काट सर्व सत्य का प्रचार कर, सबको ऐक्य मत में करा, द्वेष छुड़ा, परस्पर में दृढ़ प्रीतियुक्त कराके सब से सबको सुख लाभ पहुँचाने के लिये मेरा प्रयत्न और अभिप्राय है।

इन विस्तृत उद्धरणों को देखने से यह प्रतीत होता है कि भूमिका, अनुभूमिकाओं और सम्पूर्ण ग्रन्थ में एक ही विचार धारा, एक अलौकिक दृष्टि कार्य करती हुई दृष्टिगोचर होती है। अतएव स्वमन्तव्यामन्तव्य और भूमिका की अन्तिम पंक्तियों में लिखा है – "सर्व सत्य का प्रचार कर...मेरा प्रयत्न और अभिप्राय है।" "परमात्मा इस आशय को विस्तृत और चिर स्थायी करे।" इसी से ही प्रभावित और प्रेरित होकर इस ग्रन्थ का सृजन किया। इसी अलौकिक दृष्टि, क्रांतिकारी विचारधारा से अनुप्राणित होकर महर्षि ने जिस भी विषय पर लेखनी उठाई वहाँ सर्वत्र तत् तत् विषय सम्बन्धि असत्य-पक्ष का त्याग कर सत्यपक्ष का प्रबल समर्थन किया। इसका साक्षी सत्यार्थ प्रकाश का एक एक शब्द है।

महर्षि दयानन्द ने विविध मतमतान्तरों की मान्यताओं के सम्बन्ध में तुलनात्मक सापेक्ष अध्ययन पूर्वक समालोचना की। इस खण्डन-मण्डनमयी समालोचना में भी अपनी इस अलौकिक दृष्टि को अपने पराये के भेदभाव से ओझल नहीं किया, अपितु निष्पक्षपातपूर्वक सत्य असत्य के निर्णय के लिये दोनों पक्षों पर प्रकाश डाला, तथा विविध वर्गों के सत्य और गुणों की मुक्त कण्ठ से प्रसंसा की। इस दृष्टि से कुछ उद्धरण विशेष दर्शनीय हैं—

प्रश्न—ब्राह्म समाज और प्रार्थना समाज तो अच्छा है वा नहीं?

उत्तर—कुछ कुछ बातें अच्छी और बहुत सी बुरी हैं।

प्रश्न—ब्राह्म समाज और प्रार्थना समाज सबसे अच्छा है क्योंकि इसके नियम बहुत अच्छे हैं।

उत्तर—नियम सर्वांश में अच्छे नहीं क्योंकि वेदविद्या विहीन लोगों की कल्पना सर्वथा सत्य क्यों कर हो सकती है? जो कुछ ब्राह्म समाज और प्रार्थना समाजियों ने ईसाई मत में मिलने से थोड़े मनुष्यों को बचाया और कुछ कुछ पाषाणादि मूर्ति पूजा को हटाया अन्य जाल ग्रंथों के फन्दे से भी कुछ बचाये इत्यादि अच्छी बातें हैं।

जो यूरोपियनों में बाल्यावस्था में विवाह न करना, लड़का लड़की को विद्या सुशिक्षा करना कराना, स्वयंवर विवाह होना बुरे-बुरे आदमियों का उपदेश नहीं होता वे विद्वान होकर जिस किसी के पाखण्ड में नहीं फंसते जो कुछ करते हैं, वह सब परस्पर विचार और सभा से निश्चित करके करते हैं, अपनी स्वजाति की उन्नति के लिये तन मन धन व्यय करते हैं, आलस्य को छोड़ उद्योग किया करते हैं। देखो! अपने देश के बने हुये जूते को आफिस और कचहरी में जाने देते हैं इस देशी जूते को नहीं। इतने से ही समझ लेओ कि अपने देश के बने जूतों का भी कितना मान प्रतिष्ठा करते हैं उतना भी अन्य देशस्थ मनुष्यों का नहीं करते। देखो! कुछ सौ वर्ष से ऊपर इस देश में आये यूरोपियनों को हुए और आज तक यह लोग मोटे कपड़े आदि पहिनते हैं जैसा कि स्वदेश में पहिरते थे परन्तु अपने देश का चाल चलन नहीं छोड़ा...और जो जिस काम पर रहता है उसको यथोचित करता है। आज्ञानुवर्ती बराबर रहते हैं। अपने देश वालों को व्यापार आदि में सहाय देते हैं. इत्यादि गुणों और अच्छे अच्छे कर्मों से उनकी उन्नति है।

नानक जी का आशाय तो अच्छा था। हाँ भाषा उस देश की जो कि ग्रामों की है उसे जानते थे।...यह सच है कि जिस समय नानक जी पंजाब में हुए थे उस समय पंजाब संस्कृति विद्या से सर्वथा रहित मुसलमानों से पीड़ित था। उस समय उन्होंने कुछ लोगों को बचाया। नानक जी ने कुछ भक्ति विशेष ईश्वर की लिखी थी उसे करते आते तो अच्छा।

इनमें गोविन्द सिंहजी शूरवीर हुए जो मुसलमानों ने उनके पुरुषाओं को बहुत सा दुःख दिया था उनसे वैर लेना चाहते थे।... इनके पञ्च मकार युद्ध के उपयोगी थे।...इसी लिये यह रीति गोविन्द सिंहजी ने अपनी बुद्धिमता से उस के लिये की थी।

इन सबने भोजन का बखेड़ा बहुत सा हटा दिया है जैसे इसको हटाना वैसे विषयासक्ति दुरभिमान को भी हटा कर वेद मत की उन्नति करें तो बहुत अच्छी बात है। एकादश समुल्लास।

जो जैनियों में उत्तम जन हैं उनसे सत्सङ्गादि करने में भी कोई दोष नहीं। जल छान के पीना और सूक्ष्म जीवों पर नाम मात्र दया करना, रात्रि को भोजन न करना ये तीन बातें अच्छी हैं। द्वादश समुल्लास।

इस पुस्तक में थोड़ी सी बात सत्य। आज कल विशप पादरी आदि श्रेष्ठ। त्रयोदश समुल्लास।

यह बात तो अच्छी है। जो कुछ इसमें थोड़ा सा सत्य है वह वेदादि विद्या पुस्तकों के अनुकूल होने से जैसे मुझको ग्राह्य है वैसे अन्य भी मज़हब के हठ और पक्षपात रहित विद्वानों और बुद्धिमानों को भी ग्राह्य है। चर्तुदश स०।

आज तक के विज्ञान और वैज्ञानिकों के इतिहास की एक ही शिक्षा है कि परीक्षणों के आधार पर जो सत्य या तथ्य सिद्ध हो उसको सहर्ष स्वीकार कर पूर्वाग्रह को तिलाञ्जलि दे दी जाय अर्थात् परीक्षणों से निर्णीत तथ्य का प्रकाशन ही विज्ञान [वि=विशेष, निश्चित, तथ्यपूर्ण, अनुसन्धान सिद्ध ज्ञान] है तथा उसका ग्रहण करना ही विज्ञान के प्रति श्रद्धा, विश्वास, निष्ठा और प्रीति का परिचय देना है। विज्ञान और अनुसन्धान में (१) व्यवस्था, सुसम्बद्धता, तथ्यपूर्णता, मौलिकता और दुराग्रह शून्यता आदि गुण होते हैं।

---

१ भौतिक क्षेत्र में जो विज्ञान का महत्त्व है, वही साहित्यिक क्षेत्र में अनुसन्धान का है, पद्धति की समानता से दोनों शब्द पर्यायवाची भी प्रतीत होते हैं। वैज्ञानिक कार्य चार गुणों का होना आवश्यक है। १—व्यवस्था और सुसम्बद्धता। २—पर्यवेक्षण और प्रयोगों के आधार पर हो, केवल कल्पना का विस्तार न हो अर्थात् मौलिक चिन्तन हो। ३ शोध प्रबन्ध और विज्ञान में सत्य का वस्तु निष्ठ रूप से होना चाहिये न कि व्यक्ति निष्ठ। वस्तु के स्वरूप या तथ्यों को ही प्रमुखता दी जाये। ४—विज्ञान का कार्य है, तत्कालिक तथ्यों और सामग्री के आधार पर तत्कालिक अन्तिम निर्णय (सत्य) प्रकाशित कर देना। उसमें हठात्मक आग्रह न हो। कुछ वैज्ञानिक तथ्य केवल तात्कालिक होते हैं और कुछ सार्वकालिक।

महर्षि के समग्र कार्य कलाप में यही वैज्ञानिक पद्धति कार्य करती हुई, हमें अपनी ओर आकर्षित करती है, इसी लिये ही उनके विचारों में अपूर्व सजीवता, नवीनता, उत्साह और यथार्थ्य अनुभव होता है।

भारत के मध्यकालीन इतिहास पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट होता है कि "यस्तर्केणानुसन्धत्ते स धर्मं वेद नेतरः" और न्याय दर्शन की तार्किक पद्धति को रखने वाली भारतीय जनता प्रत्येक गुरु के वचन को सत्य वचन महाराज !

वह अनेक परम्परागत तात्कालिक पद्धतियों, की झञ्झावत में भटक विदिशा में बही जा रही थी। इसी का ही तो परिणाम था कि गर्भस्थ या दो चार वर्ष के बच्चों का विवाह बन्धन में बान्धकर पुरोहित जहाँ बाल विवाह की प्रथा को "अष्ट वर्षा भवेद् गौरी नववर्षा चरोहिणी। दशवर्षा भवेत्कन्या तत ऊर्ध्वं रजस्वला ॥१॥ माता चैव पिता तस्य ज्येष्ठो भ्राता तथैवच। त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् ॥२॥ इत्यादि प्रमाणों से शास्त्रानुमोदित सिद्ध करने में अहर्निश प्रयत्नशील थे।

—पाराशरी

वहाँ दूसरी ओर वृद्ध विवाहों के परिणाम स्वरूप आए दिन चढ़ती जवानियों की बढ़ती हुई विधवा प्रथा तथा विधवाओं के प्रति किया जाने वाला सती प्रथादि धार्मिक और सामाजिक दुर्व्यवहार मानवता का कलंक बन कर धर्म को अधर्म घोषित करने में तत्पर था। अक्षत योनि और अभिलाषिणी विधवाओं को शास्त्र के नाम पर पुनर्विवाह की अनुमति न देने से काला पहाड़ की घटनायें समाज की प्रगति में पहाड़ बन कर खड़ी हो गई थीं या आन्तरिक भ्रष्टाचार, अनाचार का मार्ग निकाल कर भ्रूणहत्या और अनाथों की समस्या को समुपस्थित कर रही थी।

मातृ देवो भव, मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेद, स्त्री ब्रह्माबभूविथ तथा यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता। यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रिया ॥ मनु० ३, ५६ अर्थात् जहाँ नारी की पूजा, मान, सत्कार होता है, वहीं दिव्य आत्माओं का वास या निर्माण होता है, अन्यथा सब क्रियायें निष्फल हो जाती हैं इत्यादि भारतीय संस्कृति की उज्ज्वल भावनाओं से भरा हुआ भारतीय समाज "स्त्री शूद्रौ नाधीयाताम्" या "ढोल गंवार शूद्र पशु नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी" की हवा से प्रभावित हो नारी शिक्षा के द्वार आवृत कर उसको मातृ शक्ति के मान, मर्यादा और यज्ञ, सन्ध्या, वेदाध्ययनादि धार्मिक, सामाजिक अधिकारों से वंचित कर उसको केवल भोग विलास की सामग्री, पाकशाला की अधिष्ठात्री, बच्चों की जननी और सेविका एवं पैरों की जूती बना दुर्व्यवहार की बलिवेदी पर चढ़ा रहा था।

गुण कर्म मूलक वर्ण व्यवस्था को शास्त्र सम्मत जन्म मूलक मान धर्मध्वजी प्रभावित भारतीय समाज ब्राह्मण-अब्राह्मणजन्य ऊँच-नीच के भावों से प्रभावित होकर जहाँ फूट के रोग और फल का शिकार हो रहा था वहाँ अपनी ही सेवा करने वाले व्यक्तियों को घृणा की दृष्टि से अस्पृश्य बना, सामाजिक सुविधाओं और अधिकारों से उनको दूर कर रहा था। इसके परिणाम स्वरूप वे सामाजिक कुएँ, नदियों, सड़कों और धार्मिक स्थानों और वस्तुओं के उपयोग से वंचित कर मनुष्य होते हुए भी पशुओं से बदतर जीवन व्यतीत करने के लिये विवश कर दिए गए थे, शिक्षा, सामाजिकता और प्रगति के अवसर की बात तो दूर रही। आश्चर्य तो यह है कि भारतीय स्मृतिशास्त्रों के प्रायश्चित्ताध्याय में विविध पापों और स्थितियों के निवारणार्थ अनेक प्रायश्चितों का विधान किया गया है, परन्तु उनमें भी अस्पृश्य समझे जाने वालों और किसी कारण विशेष से विधर्मियों के सम्पर्क में आ जाने वालों के लिये किसी प्रायश्चित का विधान नहीं है।

इस दृश्यादृश्य जगत् के निर्माता, पालक, व्यवस्थापक परमेश्वर का स्वरूप जहाँ जितने मुँह उतनी बातों के अनुसार बुद्धि तर्कशून्य, परस्पर विरोध और आश्चर्य जनक माना जा रहा था वहाँ उसके स्थान पर विष्णु, शंकर, गणेश, शिव, ब्रह्मा

सरस्वती, काली, दुर्गा आदि विविध देवी देवताओं की पृथक् पृथक् कल्पित प्रतिमाओं की विभिन्न विभिन्न मन्दिरों में प्राण प्रतिष्ठा की जा रही थी, तथा तत्सिद्धि के लिये वेदों को बहु देवतावाद का प्रतिपादक मान वेदादि के विविध मन्त्रों का तद् तद् देवता और नवग्रहों के पूजन में विनियोग कर धूप, दीप, नैवेद्य, पुष्प पत्रादि से अर्चन, पूजन होता था। यहीं तक ही नहीं अपितु सर्वव्यापक, सर्वरक्षक, सर्वज्ञ प्रभु के स्थान पर विविध वृक्षों, पशु-पक्षी-सर्पादि जन्तुओं और पाषण रूप मढ़ी, मसान एवं कबरादि की पूजा प्रचलित थी और उनकी प्रसन्नता से अभिष्ट सिद्धि के लिये अनेक मूक प्राणियों की बलि के साथ मानव बलि से भी परहेज नहीं किया जाता था। जिसका शिकार होते होते स्वयं महर्षि एक बार मन्दिर की चार दिवारी फान्द और सारा दिन मीलों भाग कर बचे थे।

ब्राह्मण ग्रन्थों और श्रौत सूत्रों के वर्णनानुसार एवं आधार पर एक विशेष स्वर्गलोक की विचित्र, तर्क-बुद्धि विपरीत, असंगत कल्पना कर, उसकी प्राप्ति के लिये याज्ञिक शास्त्रों में वर्णित कर विविध यज्ञों का विस्तृत, जटिल विधि-बिधान प्रतिपादित किया गया था। ये यज्ञ कामधेनु, स्वर्ग-प्रापक और हविमुक् देवता के प्रसादक माने जाते थे। इन ऊध्वर नामधारी यज्ञों में गो-अश्व-पुरुषमेध नाम को लेकर बलि के कार्य को वैदिक शास्त्र प्रतिपादित सिद्ध करना एक गौरव की बात थी, तथा सम्मोहन, मारण, उच्चाटन आदि उपचार और जादू टोने की प्रक्रियाएँ यज्ञों में अपना महत्व-पूर्ण स्थान बना चुकी थी। गृह्य सूत्र प्रोक्त विविध पर्व और संस्कार तान्त्रिक एवं वाममार्गियों के प्रभाव से प्रभावित हो, एकता, सामाजिकता, पवित्रता, शोधकता के साधन न बन केवल रूढ़ि का स्थान ले वैठे थे।

भारतीय संस्कृति की पवित्र धरोहर, साहित्य के मूलस्रोत ज्ञानियों के परम चक्षु, आर्यों के प्राण रुप आदि विद्या निधान वेद दर्शनों से ही लुप्त होते जा रहे थे, और उनके मन्त्रों का प्रयोजन केवल विविध देवताओं का स्तवन, आवाहन, आशीर्वचन तथा याज्ञिक विनियोग ही रह गया था। किसी की दृष्टि में संस्कृत का प्रत्येक शब्द वेद था तो कहीं "मन्त्र ब्राह्मणयो वेंदनामधेयम्" की मान्यता बलवती थी तथा वेदत्रयी का स्थान हर प्रकार से प्रस्थानत्रयी ले चुकी थी। कोई वेदों को केवल यज्ञीय कर्मकाण्ड के ग्रन्थ मानता था, तो कोई देवी देवताओं की स्तुति-प्रार्थना मन्त्रों का संग्रह कहता था, किसी की दृष्टि में सांसारिक ज्ञान से अस्पृक् आलौकिक ज्ञान-विज्ञान बोधक या गडरियों के गीत थे। तथा ये ऐतिहासिक अर्ध ऐतिहासिक, याज्ञिक पद्धतियों के आधार पर मन माने अर्थ कर अनुपयोगी बना दिए गये थे।

जब सारे धर्म धारणात् की भावना को छोड़ नैतिकता से अस्पृक् हो सम्प्रदाय बन, उसके एक अर्थ परम्परा को चरितार्थ करते हुए लकीर के फकीर होकर हर संस्कृति और गुरु प्रोक्त शब्द को सत्य वचन मान बिना विचारे करने में श्रेय समझते थे। तब सत्यानुरागी, सत्य पथ के पथिक महर्षि दयानन्द ने अपनी ऋषिप्रज्ञा से सारी स्थिति का तत्व दर्शन कर विज्ञान और बुद्धि संगत क्रान्तिकारी दृष्टिकोण का प्रतिपादन किया। अपनी अलौकिक उद्घोषणा के अनुरूप नीर क्षीर विवेक करते हुए कहा कि युवावस्था में स्वस्थ युवक और युवति का गुण कर्मानुसार परस्पर की सहमति, वार्तालाप और साक्षात्कार के पश्चात् स्वयंवर विवाह होना चाहिये। महर्षि ने स्वयंवर विवाह की जिस युक्तियुक्त, सरल, प्रभावकारी पद्धति (१) का समर्थन किया है, वह देखते ही बनता है। क्या ही अच्छा हो आज का प्रगतिशील समाज उस ओर ध्यान दे।

---

१ लड़का के अधीन विवाह होना उत्तम है। जो माता पिता विवाह करना कभी विचारें तो भी लड़का लड़की की प्रसन्नता के बिना न होना चाहिए। विवाह में मुख्य प्रयोजन वर और कन्या है माता पिता का नहीं। जैसी स्वयंवर की रीति आर्य्यावर्त्त में परम्परा से चली आती है वही विवाह उत्तम है।

जब से यह ब्रह्मचर्य से विद्या का न पढ़ना, बाल्यावस्था में पराधीन अर्थात् माता पिता के अधीन विवाह होने लगा

बच्चे विवाह-उद्देश्य की पूर्ति के अयोग्य हैं, बच्चों का विवाह करना पनपते अंकुरों को मसलना एवं सामाजिक प्रगति के विनाश को निमन्त्रण देना है। वृद्ध विवाह का भी यही परिणाम है, तथा इस सामाजिकी दुर्व्यवहार की बलि बनी हुई विधवाओं को हठात् आजीवन वैधव्याग्नि में जलाना आन्तरिक कुरीतियों, दुराचारों को बढ़ावा देना है और अपने समाज की जड़ों को खोखला करना होगा। अतः अक्षत योनि विधवाओं का पुनर्विवाह कर देना चाहिये तथा क्षतयोनि यदि वंश, कुल की रक्षा के लिये संयम का पालन कर सकें तो बहुत अच्छा है अन्यथा नियोग नियम अपनाना चाहिये।

प्रत्येक की प्रगति का मूल कारण शिक्षा है, अतः समाज या जाति नियम हो कि प्रत्येक बालक, बालिका को अनिवार्य शिक्षा दी जाय। जब तक माता शिक्षित न होगी तब तक सन्तानों का पूर्ण विकास दुष्कर और असम्भव है। अतः पुरुषों की अपेक्षा नारी शिक्षा को प्रमुख स्थान देना चाहिये। वेदाध्ययन, यज्ञ, संस्कार, सन्ध्या आदि धार्मिक और सामाजिक कर्त्तव्यों में नारी का पूर्ण अधिकार है। अतः उसको सम्मान समानता का अवसर मिलना चाहिए।

सब मानव मानवता के नाते सामाजिक समानता और सम्मान के अधिकारी हैं। वर्णव्यवस्था गुण कर्मणा ही स्वीकार्य है, यह जन्ममूलक वर्णव्यवस्था भारतीयों के लिये एक महान् कलंक है तथा वर्ण व्यवस्था नहीं मरण व्यवस्था है। यह जन्ममूलक वर्णव्यवस्था वेदादि शास्त्र विरुद्ध और केवल मिथ्या अभिमान, दम्भ एवं पाखण्ड की जननी है। कोई भी मानव जन्म की दृष्टि से अस्पृश्य कहलाने के योग्य नहीं तथा अपनी सेवा करने वाले व्यक्तियों को जीवन की सब सुविधाएं पारिवारिक या सामाजिक सदस्य के रूप में देनी चाहिए। ऋषि की दृष्टि में जिसको पढ़ाने-लिखाने और सिखाने के बाद भी कुछ न आए वह निर्बुद्धि और मूर्ख ही केवल शूद्र कहलाने का अधिकारी है।

इस संसार को बनाने वाला, पालक और नियामक एक सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, ईश्वर ही है। जिसके गुण, कर्म और स्वभाव के कारण विष्णु, ब्रह्मा, वरुण, रुद्र, शिवादि अनेक नाम हैं, केवल उसी की ही भक्ति, पूजा, उपासना करनी चाहिए। उसके स्थान पर अन्य देवी-देवताओं, जन्तुओं और पदार्थों की कल्पना तथा अर्चना सर्वथा अवैदिक, तर्क-बुद्धि विरुद्ध होने से अनुचित है।[1] ऐसा करना वस्तुतः ईश्वर में

तब से क्रमशः आर्यावर्त्त देश की हानि होती चली आई है। इससे इस दुष्ट काम को छोड़ के सज्जन लोग पूर्वोक्त प्रकार से स्वयंवर विवाह किया करें। अध्यापक जिस जिस के साथ जिस जिस का विवाह होना योग्य समझें उस उस का पुरुष और कन्या का प्रतिबिम्ब (फोटोग्राफ) और इतिहास कन्या और वर के हाथ में देवें और कहें कि इसमें जो तुम्हारा अभिप्राय हो सो हमको विदित कर देना। जब दोनों का निश्चय परस्पर विवाह करने का हो जाय तब उन दोनों का समावर्तन एक ही समय में होवे। जो वे दोनों अध्यापकों के सामने विवाह करना चाहें तो वहाँ नहीं तो कन्या के माता पिता के घर में विवाह होना योग्य है। जब वे समक्ष हों, तब उन अध्यापकों या कन्या के माता पितादि भद्र पुरुषों के सामने उन दोनों की आपस में बातचीत, शास्त्रार्थ कराना और कुछ गुप्त व्यवहार पूछें सो भी सभा में लिखके एक दूसरे के हाथ में देकर प्रश्नोत्तर कर लेवें।

१— चेतन स्वरूप परमात्मा की उपासना को छोड़कर किसी जड़ की उपासना कभी न करे, क्योंकि उपासना अर्थात् सेवा किया हुआ पदार्थ हानि-लाभकारक और रक्षा करने हारा नहीं होता। इससे चित्तवान् समस्त जीवों को चेतन स्वरूप जगदीश्वर की उपासना करनी योग्य है, अन्य जड़ादि गुण युक्त पदार्थ उपास्य नहीं।

हे मनुष्यो! जिस चेतन स्वरूप जगदीश्वर ने समस्त संसार को उत्पन्न किया है उसकी आराधना उपासना से सत्य विद्यायुक्त उत्तम बुद्धि को तुम लोग प्राप्त हो सकते हो, किन्तु इतर जड़ पदार्थ की आराधना से नहीं।

अविश्वास प्रकट करना है। ईश्वरका शुद्ध सत्य स्वरूप वेदादि शास्त्रों के आधार पर आर्य समाज के द्वितीय नियम में दर्शाया गया है, जो पूर्ण तर्क और बुद्धि संगत है।

अग्निहोत्र का मुख्य प्रयोजन जलवायु की शुद्धि है, जिनके शुद्ध होने से मानवों के शरीरों का समुचित विकास हो सकता है। जैसा कि महर्षि ने लिखा है—"अग्निहोत्रादि यज्ञों से वायु, वृष्टि, जल की शुद्धि द्वारा आरोग्य का होना उनसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि होती है।

मनुष्यों को इस प्रकार का यज्ञ करना चाहिये कि जिससे पूर्ण लक्ष्मी, सकल आयु, अन्न आदि पदार्थ, रोग नाश और सब सुखों का विस्तार हो उसको कभी नहीं छोड़ना चाहिए, क्योंकि उसके बिना वायु और वृष्टि जल तथा औषधियों की शुद्धि नहीं हो सकती और शुद्धि के बिना किसी प्राणी को अच्छी प्रकार सुख नहीं हो सकता। इसलिये ईश्वर ने यज्ञ करने की आज्ञा सब मनुष्यों को दी है।"

ब्राह्मण ग्रंथों और श्रौत सूत्रों की विविध जटिल याज्ञिक प्रक्रिया के स्थान पर वैदिक शास्त्रों से प्रतिपादित सरल, संक्षिप्त और व्यवहारगम्य पद्धति का निरूपण कर ब्रह्म-देव-पितृ-अतिथि और बलिवैश्वदेव नामधारी पञ्च महायज्ञों के प्रतिदिन अनुष्ठान का सविशेष समर्थन किया।

हे मनुष्यो! जो कभी देहधारी नहीं होता, जिसका कुछ भी परिमाण सीमा का कारण नहीं है, जिसकी आज्ञा पालन ही नाम स्मरण है, जो उपासना किया हुआ अपने उपासकों पर अनुग्रह करता है। वेदों के अनेक स्थानों में जिसका महत्त्व कहा गया है। जो नहीं मरता, न विकृत होता न नष्ट होता, उसीकी उपासना निरन्तर करो, जो इससे भिन्न की उपासना करोगे तो उस महान पाप से युक्त हुए आप लोग दुःख क्लेशों से नष्ट होगे। यजुर्वेद ३२, ३।

किसी स्थल विशेष में स्थित असामान्य स्वर्गलोक और यज्ञों से उसकी प्राप्ति को अवैदिक सिद्ध कर यज्ञीय पशुबलि को अवैदिक, निन्दनीय और घोर अत्याचार कहा। यज्ञ में पशुबलि से विविध दिव्यताओं की प्राप्ति का दावा करने वालों को महर्षि ने सबल शब्दों में कहा वे अपनी बलि से उसकी प्राप्ति क्यों नहीं करते? क्यों मूक प्राणियों की अपने स्वार्थ के लिये वेद के नाम पर बलि देते हो। गोमेध और अश्वमेधादि में प्राणियों के बध का अभिप्राय नहीं है, अपितु गो का अर्थ है इन्द्रिय, ज्ञान, सूर्य, किरण और पृथिवी अतः उसका यथोचित उपयोग ही गोमेध है। अश्व का यहाँ अर्थ है राष्ट्र और उसका सुप्रबन्ध और सुनिर्माण ही अश्वमेध कहाता है।

वेद के सम्बन्ध में महर्षि की यह सुनिश्चित धारणा थी कि मानव जाति के कल्याण के लिये ईश्वर ने सृष्टि के आरम्भ में अग्नि, वायु, आदित्य और अङ्गिरा ऋषियों के हृदय में क्रमशः ऋग्यजु· साम और अथर्व वेद का प्रकाश किया। ये सूर्य, पृथिवी और वायुवत् मानव मात्र की सम्पत्ति है। जिनके शब्द यौगिक हैं अन्यथा वेदों में प्रकरणानुसार एक शब्द के अनेक अर्थ और विशेष्य विशेषण के रूप में आये हुए पर्यायवाची शब्दों का कोई समाधान नहीं हो सकेगा। यतोहि एक पर्यायवाची शब्द एक स्थल पर विशेष्य के साथ विशेषण रूप में प्राप्त होता है तो वही दूसरे स्थल पर उसी अर्थ में विशेष्य रूपेण भी प्राप्त होता है। अतएव वेदों में किसी जाति वर्ग का इतिहास नहीं है। वेदों में आर्य शब्द का नियम, व्रतपालक, श्रेष्ठ सज्जन तथा दस्यु, दास का सामाजिक नियमों, मर्यादाओं, व्यवस्थाओं का भंग करनेवाला, दुष्ट, दुर्जन ही अर्थ है। वे किसी विशेष जाति के वाचक शब्द नहीं हैं। क्योंकि वेदमन्त्रों में आये उनके विशेषण इस मत के पूर्ण समर्थक हैं तथा ऐसा माने बिना "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" आदि शब्दों का सुसंगत अर्थ दुष्कर है।

ऋग्, यजुः, साम और अथर्व संहिताएँ ही वेद हैं तथा ब्राह्मण वेदों के व्याख्यान होने से वेद पद वाच्य नहीं है।

ये चार मूल संहिताएँ स्वतः प्रमाण और अन्य सब शाखा, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् और वेदाङ्ग आदि वेदानुकूल होने पर परतः प्रमाण की कोटि में आते हैं। वेद सर्वज्ञ, निर्भ्रान्त प्रभु की दिव्य वाणी होने से सब सत्य विद्याओं के पुस्तक, नित्य पुरुषकृतदोष (भ्रम, प्रमाद, लिप्सा, सीमित और मिथ्याज्ञान) से रहित हैं। अतः वेदों में बुद्धि एवं सृष्टिक्रम से विरुद्ध असम्भव बातें नहीं हैं, वे तो वैशेषिक दर्शनकार महर्षिकणाद के शब्दों में "बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे" ६,१,१ अर्थात् वेदों की वाक्यरचना और तत्गत ज्ञान सर्वथा बुद्धि-संगत है। वेदों में मानव व्यवहार की सिद्धि और उपकारार्थ देवगुणों से युक्त सूर्य, पृथिवी, वायु आदि तैंतीस देवों का वर्णन है, परन्तु देवों का देव होने से उपास्य केवल परमेश्वर ही है। अतः वेदों में बहुदेवतावाद का केवल ज्ञानार्थ ही वर्णन है तथा तदेवाग्निस्तदादित्यः....' यजुः ३२, २ इन्द्रं मित्रं....ऋग् १०, १०३, ४ आदि अनेक मन्त्रों में असंख्य नामों से एक परमेश्वर की ही उपासना का निर्देश है।

महर्षि ने वेदों के सत्य स्वरूप का प्रकाशन करने के लिये ब्राह्म, निरुक्त और व्याकरण आदि शास्त्रों के आधार पर प्राचीन पद्धत्यनुसार वैदिक शास्त्रानुमोदित, बुद्धिगम्य, वैज्ञानिक भाष्य किया। याज्ञिक, ऐतिहासिक, अर्ध ऐतिहासिक और भाव वैज्ञानिक आदि एकांगीण भाष्य पद्धतियों का युक्ति युक्त निराकरण कर वेदों को ज्ञान, कर्म, उपासना और विज्ञान विषयों के प्रतिपादक सिद्ध किया। क्योंकि नौका, विमान, तार, विद्युत्, वैद्यक शास्त्र और धर्म-कर्म में व्यवहृत पदार्थों के ज्ञान से युक्त होने के कारण ज्ञान, ज्ञानकाण्डोक्त पदार्थों की व्यावहारिक विधि का विधान और अस्त्र-शास्त्र चालन, राष्ट्र संरक्षण संवर्धन, शत्रु विमर्दन, गोपालन और अन्नोत्पादन प्रक्रिया के व्याख्याता होने से कर्म, एकमात्र ईश्वर की शुद्ध-सत्य उपासना पद्धति ज्ञापक होने से उपासना और ज्ञान काण्डोक्त विषयों के विशेष विवेचन एवं विश्लेषण पद्धति के निरूपक होने से वेद विज्ञान काण्ड के भी ग्रन्थ हैं। अतः मानवमात्र के कल्याण का पथ एकमात्र वेद प्रदर्शित पथ ही है, क्योंकि वे सब सत्य विद्याओं के पुस्तक हैं।

इस सत्त ग्रहण के उद्‌घोष की भावना के अनुसार श्री केशवचन्द्र सेन की प्रेरणा से प्रेरित होकर महर्षि दयानन्द ने हिन्दी को राष्ट्रिय एकता का साधन मान उसको राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन करने के लिये अपनी वाणी और लेखनी का व्यावहारिक माध्यम बनाया और इसकी पूर्णता एवं प्रचार-प्रसार के लिये एक आन्दोलनात्मक भावना को जन्म दे हस्ताक्षर अभियान समारम्भ किया। जबकि महर्षि की मातृभाषा गुजराती थी तथा महर्षि की प्रबल इच्छा और सर्व प्रयास था कि सब वैदिक धर्मी बनें। वेदों की भाषा संस्कृत है, पुनः उनका प्रसारक संस्कृत के स्थान पर किसी अन्य भाषा को प्रमुखता दे यह एक रहस्य ही है, जो कि महर्षि की इस देन में ही निगूढ़ है। उधर गोकरुणानिधि में धार्मिक पक्ष की अपेक्षा आर्थिक दृष्टि से गोरक्षा के महत्त्व का निरूपण कर, गोकृष्यादि रक्षिणी सभा, गोहत्या निरोधार्थ हस्ताक्षर आन्दोलन, रेवाड़ी में रचनात्मक गोशाला संस्थापन, वैज्ञानिक और भौतिक शिक्षा की प्राप्ति के लिये श्यामजी कृष्ण वर्मा को जर्मनी भेजना, विज्ञान और अनुसन्धान के आधार पर आर्ष ग्रंथों के पठन-पाठन का विधान आदि विविध कार्य महर्षि की अलौकिक दृष्टि, क्रान्तिकारी विचारधारा एवं इस उद्‌घोषणा के ही परिणाम कहे जा सकते हैं।

"सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना" महर्षि दयानन्द का यह उद्घोष हमें वेदकाल से ही घोषित होता हुआ मिलता है —

दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत् सत्यानृते प्रजापतिः।

अश्रद्धामनृतेऽदधात् श्रद्धां सत्ये प्रजापतिः ॥ यजु १९,७७

प्रगति, कल्याण, स्वच्छ स्वस्थ स्वाधीन वायुमण्डल में विचरण के अभिलाषियो! संसार के स्वामी ने देखभाल कर सत्य और असत्य को अलग अलग कर दिया है और उस प्रजापति ने अनृत=झूठ, छल, शास्त्र या विधान विरुद्ध, निन्दनीय, पाप, अन्धकार में अश्रद्धा=अविश्वास, घृणा, निवृत्ति, परहेज़ स्थापित किया है तथा सत्य=ऋत, यथार्थ, नियम, सचाई में श्रद्धा=विश्वास, निष्ठा, अनुराग, प्रेम को संजोया है। इसीलिये ही वेद का मन्ता सब नियमों के नियामक प्रभु से प्रार्थना करता है—

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्।

इदहमनृतात् सत्यमुपैमि ॥ यजुः १, ५

हे अग्निस्वरूप! व्रतों के स्वामीन्! मैं व्रत करना चाहता हूँ, वह कर सकूं और मेरा वह व्रत पूर्ण हो कि मैं [जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में] अनृत को छोड़ कर सत्य को प्राप्त करूँ।

महर्षि को वेद प्राणसम प्रिय थे, उनके प्रत्येक सिद्धान्त और धर्म नियम का आधार एक मात्र वेद थे। अतः वेद की इन भावनाओं से अनुप्राणित होकर महर्षि ने एक दिव्य देन के रूप में यह [सत्य के ग्रहण] उद्घोषणा की। जिस को हम महर्षि की एक बहुत बड़ी विशेषता कह सकते हैं। केवल सैद्धान्तिक रूप में ही नहीं अपितु उन्होंने अपने जीवन के हर व्यवहार में सर्वतोभावेन सत्य का पालन किया, और वे विषम से विषम विपदाओं में, महान् से महान् प्रलोभनों में एवं बहुविधभयों में भी सत्यपथ से विचलित नहीं हुए। यदि भाव को भर्तृहरि के शब्दों में कहें तो—

निन्दन्तु नीति निपुणा यदि वा स्तुवन्तु,

लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।

अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,

न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदन्न धीराः ॥

इसके साथ व्यवहारिक दृष्टिकोण से भी इस उद्घोषणा का विशेष मूल्याङ्कन है—संसार में सबसे अधिक अनर्थ, विनाश, अत्याचार, हानि, दुःख, कष्ट क्लेश, धन-जन और सम्पत्ति की बरबादी, खिलवाड़ एवं अपव्यय युद्ध, संघर्ष, वाद-विवाद ईर्ष्या, द्वेष से होता है और किसी भी कारण से इतना नहीं। विश्व के समस्त युद्धों [चाहे वह राम-रावण, कौरव-पाण्डव प्रथम-द्वितीय विश्व युद्ध आदि के रूप में किसी भी देश, जाति, वर्ग द्वारा किसी भी स्थान पर लड़ा गया कोई भी क्यों न हो], चाहे वह गली, मुहल्लों और बाजारों में होने वाला वाग्युद्ध, संघर्ष वाद विवाद क्यों न हो उन सबका एक मात्र कारण केवल और केवल दोनों पक्षों या एक पक्ष के सत्य का ग्रहण और असत्य के त्यागार्थ उद्यत न होना है अर्थात् सब अनर्थों, विनाशों और अपव्ययों का एक विशेष कारण हैं—युद्ध, संघर्ष और वाद-विवाद, और वह होता तभी है जब कोई सा भी पक्ष सत्य के ग्रहण एवं असत्य के त्याग के लिये तैयार नहीं होता। यदि हम संसार, राष्ट्र और व्यक्ति के जीवन को अनिष्टों से बचाना चाहते हैं तो प्रत्येक क्षेत्र और विषय में महर्षि के इस अमर सन्देश के स्वर्णिमसूत्र

अलौकिक दृष्टिकोण को अपनाएँ अन्यथा नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय यजुः ३१, १८ सुख, शान्ति, प्रेम और प्रगति का और कोई भी मार्ग नहीं है।

प्रत्येक धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक समन्वय तभी असफल होता है जब समन्वय में सम्मिलित सदस्यों में से कोई भी किसी भी कारण से "सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग के लिये तैयार" नहीं होता या इस नियम का भंग करता है। आज के संयुक्त मन्त्रिमण्डलों की विफलता इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

संसार में हर समझौता और पारस्परिक व्यवहार तभी सफल होता है, जब परस्पर प्रेम और विश्वास हो, तथा विश्वास केवल सत्य पर ही टिकता है। अतः पारस्परिक व्यवहार की सिद्धि के आधारभूत विश्वास की सिद्धि भी इसी स्वर्णिम सूत्र पर आधारित है।

यदि आप मुझे लिखने की आज्ञा दें तो मेरे विचार से आज के प्रगति, कल्याण और स्वाधीनता चाहने वालों को "सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये" इसी दिव्य देन को ही स्वजीवन पथ का पाथेय बना चाहिये। यही प्रत्येक क्षेत्र में विकास और सफलता का रहस्य है, यही विज्ञान और अनुसन्धान का निष्कर्ष है।

'सर्वदा सत्यस्य ग्रहणम्, असत्यस्य त्यागः कार्यः"

নব ভারত-সৃষ্টিতে মহর্ষি দয়ানন্দের দান

৮

শ্রী শান্তি শর্মা
গাজিয়াবাদ

মহর্ষি দয়ানন্দ সরস্বতী ঊনবিংশ শতাব্দীর সর্বশ্রেষ্ঠ বিদ্বান্, ধর্ম প্রচারক, সমাজ সংস্কারক, দেশসেবক ও সর্বতোমুখী প্রতিভা সম্পন্ন ব্যক্তি ছিলেন।

সর্বশ্রেষ্ঠ বিদ্বান্

বেদের শিক্ষা ও প্রচার বিভিন্ন স্থানে বিভিন্ন ঋষি দ্বারা বিভিন্নভাবে বিস্তার লাভ করিয়াছিল। তাহাই শাখা নামে প্রচারিত। ঋষি দয়ানন্দ এইরূপ ১০২৮ শাখার কথা স্বীকার করিয়াছেন। বৌদ্ধ ও জৈন ধর্মের প্রাবল্যে সব শাখাই প্রায় লুপ্ত হইয়াছিল। সংহিতা, মন্ত্র, উপনিষদ, ব্রাহ্মণ বা উপনিষদ যাহা যেখানে পাওয়া যাইত সেগুলি শুধু যজ্ঞে ও বৈদিক কর্মকাণ্ডে ব্যবহারের জন্যই মানিয়া লওয়া হইত। বেদ সাধারণের ধরা-ছুঁয়ার বাহিরে চলিয়া গিয়াছিল। বৌদ্ধ ও জৈন প্লাবনের সম্মুখে যে সব সাহসী ও শক্তিমান পুরুষ বাধা দান করিয়াছিলেন তাঁহাদের মধ্যে শঙ্করাচার্য্য, রামানুজ, কুমারিল ভট্ট, মণ্ডন মিশ্রের নাম উল্লেখযোগ্য। তাঁহারা নাস্তিক-মতের বিরোধিতা করিয়াছেন। জনসাধারণের মধ্যে যাঁহারা বৈদিক ধর্মের প্রচারে অগ্রসর হইলেন তাঁহারা রামায়ণ, মহাভারত ও পুরাণগুলি অবলম্বন করিলেন। মহাভারতকে পঞ্চম বেদ বলিয়া ঘোষণা করা হইল। বেদ লোক-চক্ষুর অন্তরালেই রহিল। উপনিষদ, বেদান্তদর্শন ও গীতাকে প্রস্থানত্রয় ঘোষণা করিয়া ভারতের ধর্মগুরুরা ইহারই প্রচারে মনোনিবেশ করিলেন। বৌদ্ধ যুগ হইতে আরম্ভ করিয়া সপ্তম শতাব্দী পর্য্যন্ত বেদ সাধারণের আলোচনার বাহিরেই রহিল। লোক-চক্ষুর অগোচরে বেদ থাকিলেও ২৭ জন বেদ ভাষ্যকারের নাম পাওয়া যায়। স্কন্দস্বামী দেবস্বামী খৃষ্টীয় অব্দের পূর্বে জন্মিয়াছিলেন। সায়ণাচার্য্য (১৩৭২-১৪৪৪) চতুর্দশ হইতে পঞ্চদশ শতাব্দীর মধ্যে ঋক্, সাম ও অথর্ব বেদের ভাষ্য রচনা করেন। ইহার পূর্বে একাদশ শতাব্দীতে উবট ও পরে মহীধর সপ্তদশ শতাব্দীতে যজুর্বেদের ভাষ্য প্রচার করেন। ইঁহারা প্রচলিত প্রথা ও পৌরাণিক কথা ও কাহিনী অবলম্বনে ভাষ্য করেন। এই সব ভাষ্য জনসাধারণের

ব্যবহারযোগ্য ছিল না। পাশ্চাত্য পণ্ডিতেরা সায়ণের ভাষ্য অবলম্বন করিয়াছিলেন। উনবিংশ শতাব্দীতে মহর্ষি দয়ানন্দ সরস্বতী আর্বিভূত হইয়া যে ভাষ্য (ঋগ্বেদের ও যজুর্বেদের) লিখিয়াছিলেন তাহার বৈশিষ্ট্য সুস্পষ্ট। পৌরাণিক ও প্রচলিত প্রথার উর্দ্ধে বেদের স্থান, পাণিনির ব্যাকরণ ও যাস্কের নিরুক্ত অবলম্বনে বেদের মর্মার্থ বোধগম্য হয়—এই নীতি গ্রহণ করিয়া তিনি ভাষ্য রচনা করিয়াছিলেন। দয়ানন্দের এই প্রচেষ্টা অপরিসীম সাহস ও আশাবাদের পরিচায়ক। তিনিই সর্বপ্রথম ঘোষণা করিলেন যে বেদ আদি ধর্মগ্রন্থ। "সমগ্র মানবজাতির ইহা সাধারণ সম্পদ, বেদ কাহারও একচেটিয়া নহে। বেদের প্রচার, পঠন-পাঠন, শ্রবণ-শ্রাবণ পরম ধর্ম, স্ত্রী-শূদ্রেরও বেদাধিকার আছে।" দয়ানন্দের পূর্বে কেহই এত বড় বিপ্লবের পরিচয় দান করেন নাই, এমন কি শঙ্করাচার্য্য বা কুমারিল ভট্টও করেন নাই। দয়ানন্দ তাঁহার জীবনে সব ব্রাহ্মণ গ্রন্থ, উপনিষদ, প্রাপ্য বেদ ভাষ্যগুলি, ১৮ পুরাণ, উপপুরাণ ১৮, প্রাপ্য বৌদ্ধ ও জৈন গ্রন্থ, আস্তিক ও নাস্তিক দর্শন, বাইবেল ও কোরাণের অনুবাদ, উইলসন ও ম্যাক্স্‌মুলারের বেদানুবাদ নিজে বা অপরের সহায়তায় অধ্যয়ন করিয়াছিলেন। ইংরেজী. আরবী, পার্শী ও প্রাকৃত ভাষায় লিখিত গ্রন্থও অন্য ব্যক্তির সাহায্য লইয়া তিনি অধ্যয়ন করিয়াছিলেন। তাঁহার গ্রন্থে এই সব গ্রন্থপাঠের উজ্জ্বল প্রমাণ পাওয়া যায়। ইতিহাসে এইরূপ পাণ্ডিত্যের তুলনা পাওয়া যায় না।

ধর্ম-সংস্কারক

ঋষি দয়ানন্দ বেদকে সত্য বিদ্যার গ্রন্থরূপে মনে করিতেন। এই সত্য বিদ্যা হইতে মানব বঞ্চিত ছিল। ইহার পূর্বে শঙ্করাচার্য্য, রামানুজ, মাধবাচার্য, নিম্বার্কাচার্য্য, বল্লভাচার্য্য প্রভৃতি কেহই বেদকে সর্ব-মানবের ধর্মগ্রন্থ বলিয়া ঘোষণা করেন নাই। মহাবীর ও বুদ্ধ তাঁহাদের জৈন ধর্মের ও বৌদ্ধ ধর্মের প্রচারকালে বেদের বিরোধিতাই করিয়াছেন। চৈতন্য, নানক, দাদু, কবির, নামদেব প্রভৃতি বেদ বিষয়ে নীরবই ছিলেন। রাজারামমোহন ব্রাহ্মসমাজে উপনিষদকেই স্থান দিলেন। মহর্ষি দয়ানন্দ সরস্বতীই সর্বপ্রথম পুরুষ স্ত্রী নির্বিশেষে মানবমাত্রের জন্য বেদের অধিকার ঘোষণা করিলেন। তিনিই সর্বপ্রথমে সংস্কৃত ভাষার সঙ্গে সঙ্গে সর্বসাধারণের জন্য হিন্দী ভাষায় বেদের ভাষ্য প্রচার করেন। তাঁহার মতে ধর্মের সংস্কার কার্য্যে বেদের অবলম্বন অপরিহার্য্য। ইউরোপে উইক্লিফ ও মার্টিন লুথার সর্বসাধারণের ভাষার মাধ্যমে বাইবেল প্রচারে পুরুষার্থ প্রদর্শন করিয়াছিলেন। তাঁহাদের জীবনের সঙ্গে দয়ানন্দ জীবনের তুলনা হইতে পারে। বর্ণ ও আশ্রম ধর্মের সংস্কার, ষোড়শবিধ বৈদিক সংস্কারের পুনঃ প্রচলন, গুরুকূল স্থাপন, বেদ-মন্দির স্থাপন, শুদ্ধি প্রচলন, অস্পৃশ্যতা, জাতিভেদ ও সাম্প্রদায়িক বৈষম্যের দূরীকরণ, বাল্যবিবাহ ও বৃদ্ধ-বিবাহের প্রতিবাদ, সর্ববিধ মাদকদ্রব্যের বর্জনাদি তাঁহার ধর্মগ্রন্থের অন্তর্ভুক্ত বিষয় ছিল। এত বড় ধর্ম-সংস্কার বিষয়ের এই বিরাট পরিকল্পনা অন্যত্র বিরল।

হিন্দী প্রচার

ঋষি দয়ানন্দ কোন ভাষারই বিরোধী ছিলেন না। মাতৃ ভাষাকে অবহেলা করিয়া পার্শি, আরবী বা ইংরেজী ভাষা গ্রহণের তিনি বিরোধী ছিলেন। ভারতীয় জনসাধারণের মধ্যে একটি সাধারণ ভাষার প্রয়োজনীয়তাও তিনি অনুধাবন করিয়াছিলেন। ধর্ম প্রচার ক্ষেত্রে সর্বসাধারণের মধ্যে হিন্দী অবলম্বন করিতে তিনি কেশব সেন ও বিদ্যাসাগরের অনুরোধ সাদরে গ্রহণ করিয়া হিন্দী ভাষাকে তিনি জাতীয় ভাষার রূপদান করিয়াছিলেন। হিন্দী ভাষাকে তিনি ধর্মপ্রচারের ও সর্বসাধারণের সর্বকার্যের ভাষা বলিয়া গ্রহণ করিয়া-ছিলেন। গ্রন্থাদিতে তিনি হিন্দীকে সর্বোচ্চ স্থান

দিয়াছিলেন। ইহার বহুদিন পরে মহাত্মা গান্ধী প্রভৃতি রাজনীতিক নেতারা হিন্দীকে জাতীয় ভাষারূপে ঘোষণা করিয়াছিলেন। আজ হিন্দীর ব্যাপক প্রচারে বহু নেতা আপ্রাণ চেষ্ট করিতেছেন, হিন্দীর মর্য্যাদা সু প্রতিষ্ঠিত করার জন্য যে সর্বতোভাবে ত্যাগ ও কষ্ট বরণ করিতেছেন ইহার মূলে দয়ানন্দের দান স্বীকার্য।

স্বদেশী বস্তুর সমাদর

দয়ানন্দ জন্মিয়াছিলেন ইষ্ট ইণ্ডিয়া কোম্পানীর আমলে। তখন বিদেশের মিহি কাপড় ভারতবর্ষের বাজার ছাইয়া ফেলিয়াছে। "মায়ের দেওয়া মোটা কাপড়" তখন ঘৃণার বস্তু হইয়া দাঁড়াইয়াছে। চরকা ইংরেজের অত্যাচারে লুপ্ত হইতেছিল, যাহা ছিল তাহাও অনাদৃত। এই অবস্থার মধ্যে তিনি স্বদেশী কাপড়, চরকায় কাটা মোটা কাপড়ই পরিধান করিতেন। মহর্ষি দেবেন্দ্রনাথ তাঁহাকে অতি মিহি মানচেষ্টাবের একজোড়া ধুতি কাপড় অতি শ্রদ্ধার সহিত উপহার দিলে তাহা তিনি অতি শ্রদ্ধার সহিতই প্রতাখ্যান করিয়াছিলেন। যুক্তি দেখাইলেন ইহা দেশের মা-বোনদের হাতে কাটা সূতার নহে। বরাহনগরের নাইনান উদ্যান-ভবনে থাকা কালীন তিনি দেবেন্দ্রনাথ, শৌরীন্দ্রনাথ ও কেশবসেন প্রদত্ত বিদেশী কাপড়ের বিছানা পরিত্যাগ করিয়া সাধারণ মাদুর ও চাটাই ব্যবহার করিয়াছেন। গোরাচাঁদা দত্তের বাড়ীতে সভা গৃহে বিদেশী ছবি অঙ্কিত ছিল তিনি তাহাও অপসারণ করিতে বাধ্য করিয়াছিলেন। স্বদেশী বস্তুর প্রতি এই রূপ অনুরাগ ও বিদেশী বস্তুর প্রতি বিতৃষ্ণা তাঁহার মধ্যে ছিল অত্যধিক। ১৯০৫ খৃষ্টাব্দের বঙ্গ-ভঙ্গ আন্দোলন ও দিদেশী বর্জন আন্দোলনের সময় ররীন্দ্রনাথ দয়ানন্দের স্বদেশী বস্তুর প্রতি অনুরাগের কথা কালীকণ্ঠ কাব্যবিশারদকে বলিয়াছিলেন।

রাজনীতিক সংস্কার

সিপাহী বিদ্রোহের ১১ বৎসর পূর্বে ১৮৪৬ খৃষ্টাব্দে দয়ানন্দ পিতৃগৃহ পরিত্যাগ করেন। দেশের নানা স্থানে যোগবিদ্যার সন্ধানে পরিভ্রমণ করিয়া সিপাহী বিদ্রোহের তিন বৎসর পরে ১৮৬০ খৃষ্টাব্দে দয়ানন্দ মথুরায় স্বামী বিরজানন্দ সরস্বতীর নিকট বেদ বিদ্যা লাভের জন্য উপনীত হন। এই সুদীর্ঘ ১৪ বৎসর কাল তিনি দেশের সর্বত্র পাহাড়ে পর্বতে, বনে জঙ্গলে, নগরে-পল্লীতে, হাটে মাটে ঘাটে পরিভ্রমণ করিয়া ভারতের ধর্ম, সমাজ ও রাষ্ট্রকে প্রত্যক্ষ করিয়াছিলেন। তিনি নানা স্থানে ধর্মের নামে অধর্ম দেখিয়া বিস্মিত হইয়াছিলেন। সামাজিক কুসংস্কারের জঘণ্য স্বরূপ দেখিয়া তিনি ব্যথিত হইয়াছিলেন। অর্থাভাব, কুশাসন, দারিদ্র্য দেখিয়া তিনি দীর্ঘ নিঃশ্বাস পরিত্যাগ করিতেন। এক দিকে ধনাঢ্য ব্যক্তিদের বিলাসিতার প্রাবল্য, অন্য দিকে অন্নাভাব ও রোগের দুঃসহ যন্ত্রণা তিনি স্বচক্ষে দর্শন করিয়াছিলেন। ভারতীয় জনগণের মধ্যে বিদেশীর শৃঙ্খল মোচনের প্রচেষ্টা, শাসনের নামে বিদেশীদের অমানুষিক অত্যাচার, সিপাহী বিদ্রোহের পূর্বাপর ভয়াবহ দৃশ্য ও দেশবাসীর উপরে দুঃসহ অত্যাচারের করুণ দৃশ্য তিনি স্বচক্ষে দর্শন করিয়াছিলেন। তাঁহার স্বচ্ছ হৃদয়ে অতীত ভারতের স্বাধীনতার দৃশ্য প্রতিবিম্বিত হইয়াছিল। তাঁহার বক্তৃতার মধ্যে ও গ্রন্থের মধ্যে তাহার প্রত্যক্ষ পরিচয় পাওয়া যায়। সমগ্র ভারতের পরিভ্রমণের মধ্য দিয়া তিনি প্রকৃত ভারতবর্ষের রূপ দর্শন করিয়াছিলেন। ভারতের ধর্ম, কর্ম, রীতি নীতি, আচার ব্যবহার, প্রজা জনসাধারণের জীবনযাত্রা, ইষ্ট ইণ্ডিয়া কোম্পানির শাসন ও শোষণ, দরিদ্রগণেব অসহায় অবস্থা, বিদেশী ফৌজের অবাধ অত্যাচার, জামিদার ও দেশী রাজন্যগণের বিলাসিতা ও অসংযম তাঁহার হৃদয়ে নরকের দৃশ্য অঙ্কিত করিয়াছিল। এই সমস্যার সমাধান কোথায় ? তাঁহার মনে আসিল দেশীয় রাজন্যগণ যখন শ্রীকৃষ্ণ ও শ্রীরামচন্দ্রকে পূর্ব পুরুষে বলিয়া ঘোষণা করেন এবং প্রজাশাসন ও রাজ-

নীতি লইয়াই যখন তাঁহারা জীবন যাত্রা নির্বাহ করেন এবং প্রজা সাধারণ যখন রাজনীতি বুঝিতেই পারেনা তখন এই দেশীয় রাজন্যগণকে শোধন করিতে হইবে। তাঁহাদের মধ্যে পূর্বপুরুষদের প্রতি গৌরব বুদ্ধি জাগাইয়া তুলিতে হইবে। এই ভাব লইয়াই তিনি উদয়পুর, যোধপুর, শাহপুরাদি রাজন্যগণের মধ্যে রাজধর্মের উপদেশ দিতে থাকেন, প্রাচীন রাজনীতির জ্ঞান দিতে থাকেন। পরাধীন ভারতকে স্বাধীনতা লাভের জন্য যাঁহারা বহু পূর্ব হইতেই প্রেরণা জোগাইয়াছেন তাঁহাদের মধ্যে মহাপ্রাণ পুণ্য শ্লোক মহর্ষি দয়ানন্দ সরস্বতীর নাম বিশেষ রূপে উল্লেখ যোগ্য। রাজনীতি ক্ষেত্রে, কি সমাজ সংস্কার ক্ষেত্রে এমন কি ধর্ম সংস্কার ক্ষেত্রে তাঁহাকে অবদানের তুলনা নাই। স্বতন্ত্র ভারতে এখনও সম্পূর্ণ চেতনা ফিরিয়া আসে নাই। যতই দিন যাইবে ততই এই নির্ভীক, ত্যাগী ও বেদজ্ঞ সন্ন্যাসীর দূরদর্শিতা ও ভবিষ্যদ্ বাণীর কথা ভারত বুঝিতে পারিবে।

রাজনীতি-ক্ষেত্রে

১৮৮৫ খৃষ্টাব্দ কংগ্রেসের জন্ম। ইহার ঠিক ২৮ বর্ষ পূর্ব্ব হইতে মহর্ষি দয়ানন্দ তাঁহার মৃত্যু কাল পর্য্যন্ত (১৮৮৩) এই দীর্ঘ কাল তিনি যাহা যাহা উপদেশ ও বক্তৃতার মধ্যে ভারতের প্রধান প্রধান স্থানে প্রচার করিয়া ছিলেন, বারানসীর ডেপুটি ম্যাজিষ্ট্রেট্ ভক্ত রাজা জয়কিষণদাসের সনির্বন্ধ অনুরোধে তাহাই লিপিবদ্ধ করিয়া তিনি সত্যর্থপ্রকাশ গ্রন্থ রচনা করিয়াছিলেন (১৮৭৪)। ১৮৭৫ খৃষ্টাব্দ বারানসীর ষ্টারপ্রেস হইতে এই গ্রন্থের প্রথম সংস্করণ মুদ্রিত হইয়াছিল। সে আজ প্রায় শত বর্ষ পূর্ব্বের কথা। শতাধিক পূর্ব্বেই মহর্ষি দয়ানন্দের হৃদয়ে পরাধীনতার অসহনীয় বেদনা কিরূপ তীব্র হইয়াছিল, পরাধীনতার কারণগুলি কি কি এবং তাহার প্রতীকারের উপায়গুলিই বা কি কি তাঁহার এই অমরগ্রন্থ সত্যার্থপ্রকাশে তাহা সুস্পষ্ট রূপে প্রকাশিত হইয়াছে। ইহার কিয়দংশ নিম্নে প্রদত্ত হইল—

"ইক্ষ্বাকু বংশীয় রাজারা আর্য্যাবর্ত্তে প্রথম রাজ্য করিতেন। তাঁহারাই আর্য্যাবর্ত্ত স্থাপন করিয়াছিলেন। এখন দুর্ভাগ্য বশতঃ আর্য্যগণের আলস্য, প্রমাদ, পরস্পরের বিরোধ হেতু অন্যান্য দেশে রাজ্য করা ত দূরের কথা আর্য্যাবর্ত্তেও আর্য্যগণের অখণ্ড স্বতন্ত্র, স্বাধীন ও নির্ভয় রাজ্য এখন আর নাই। যাহা কিছু কিছু আছে তাহাও বিদেশীদের পদাক্রান্ত হইতেছে। কয়েকটি মাত্র রাজা অবশিষ্ট আছেন যাঁহারা স্বতন্ত্র। যখন দুর্দ্দিন আসে তখন দেশবাসীকে নানা রূপ দুঃখ ভোগ করিতে হয়। যিনি যতই করুন স্বদেশের রাজ্যই হয় সর্ব্বোত্তম। অপর পক্ষে বিভিন্ন মতমতান্তরে উদাসী, আপন পর পক্ষপাতশূন্য, প্রজাগণের প্রতি মাতাপিতার সমান কৃপা, ন্যায় ও দয়াযুক্ত বিদেশী রাজ্যও পূর্ণরূপে সুখদায়ক নহে।"

(সত্যার্থপ্রকাশ, অষ্টম সমুল্লাস)।

"দেশদেশান্তরে ও দ্বীপদ্বীপান্তরে রাজ্যস্থাপন বা ব্যবসায় না করিলে কি স্বদেশের উন্নতি হইতে পারে? যখন স্বদেশেই মাত্র স্বদেশের লোকেরা কাজকর্ম করে ও বিদেশীরা স্বদেশে কাজ করে বা রাজ্য করে তখন দারিদ্র্য ও দুঃখ ছাড়া আর কিছুই হইতে পারে না।"

"যে পর্য্যন্ত এক-মত, এক হানি-লাভ, এক সুখ-দুঃখ বোধ না জাগিবে সে পর্য্যন্ত উন্নতি হওয়া খুবই কঠিন। পরন্তু কেবল পানাহার এক হইলেই সংস্কার হইতে পারে না। পরন্তু যে পর্য্যন্ত কদভ্যাস পরিত্যাগ না করিবে ও সদভ্যাস গ্রহণ না করিবে তত দিন উন্নতির বদলে অবনতিই হইবে। আর্যাবর্ত্তে বিদেশীদের রাজ্য স্থাপনের ফলে নিজেদের মধ্যে বিভেদ......ভ্রাতৃবিরোধ যতদিন থাকবে, ততদিন বিদেশী সালিসী করিতে থাকবে। তোমরা কি মহাভারতের কথা ভুলিয়া গিয়াছে? পাঁচ হাজার বর্ষ পূর্বে ইহা ঘটিয়াছিল।

মহাভারতের যুদ্ধকালে সকলে পরস্পর মিলিয়া পান ভোজন করিত। নিজেদের মধ্যে বিভেদ সৃষ্টি হওয়ার কৌরব, পাণ্ডব ও যাদবগণের সর্বনাশ ঘটিয়াছিল। অতীতে যাহা ঘটিয়াছে, তাহা ঘটিতেছেই। কিন্তু আজ পর্য্যন্ত সেই ব্যাধি আছেই। জানি না এই ভয়ঙ্কর রাক্ষস কখনও ছাড়িবে কি না কিংবা আর্য্যদিগকে সর্বসুখ হইতে বঞ্চিত করিয়া ডুবাইয়া মারিবে। সেই দুষ্ট, স্বজনহন্তা, স্বদেশের সর্বনাশকারী, নীচ দুর্য্যোধনের দুষ্ট পন্থা অনুসরণ করিয়া, আজও আর্য্যগণ দুঃখ বাড়াইয়াই চলিতেছে। ভগবান কৃপা করুন, এই রাজ-রোগ আর্য্যগণের মধ্য হইতে দূরীভূত হওক।"

(সত্যার্থ প্রকাশ, দশম সমুল্লাস)

"এই আর্য্যাবর্ত্ত দেশের ন্যায় ভূমণ্ডলে আর কোন দেশই নাই। এই জন্যই এ দেশের নাম সুবর্ণভূমি। কেননা এখানে সুবর্ণাদি রত্নের উৎপত্তি হয়। এই জন্যই সৃষ্টির আদিতে আর্য্যগণ এই দেশে আসিয়া বসতি স্থাপন করিয়াছিল। আর্য্য ভিন্ন অন্য মনুষের নাম দস্যু। ভূমণ্ডলের সব দেশই এই দেশের প্রশংসা করে ও সাহায্য আশা করে। স্পর্শমণির কথা শুনা যায় কিন্তু তাহা মিথ্যা। আর্য্যাবর্ত্ত দেশই প্রকৃত আদর্শ মণি। ইহার স্পর্শেই লৌহ তুল্য বিদেশী সুবর্ণ অর্থাৎ ধনাঢ্য হইয়া যায়।" "সৃষ্টি হইতে আরম্ভ করিয়া পঞ্চ-সহস্রে বর্ষ পূর্ব পর্য্যন্ত আর্য্যগণের সারভৌম চক্রবর্ত্তী রাজ্য ছিল অর্থাৎ পৃথিবীতে সর্বোপরি একমাত্র রাজ্য ছিল। অন্যান্য দেশে মাণ্ডলিক অর্থাৎ ক্ষুদ্র ক্ষুদ্র রাজ্যের রাজারা ছিল। কুরুপাণ্ডব পর্য্যন্ত এখানের রাজ্যের ও রাজশাসনের অধীনেই পৃথিবীর অন্য সব রাজারা ছিল।"

(সত্যার্থপ্রকাস, একাদশ সমুল্লাস)।

মহর্ষি দয়ানন্দের গ্রন্থের এই সব উদ্ধরণ হইতেই বোধগম্য হয় যে তাঁহার দেশপ্রেম ছিল কত প্রবল। পরাধীনতার জ্বালা তিনি কিভাবে তাঁহার হৃদয়কে ব্যথিত করিয়াছিল। তাঁহার বক্তৃতায় ও গ্রন্থে তিনি একশতাব্দী পূর্বে এই ভাবে জনগণের মধ্যে দেশাত্ম বোধ জাগাইতে চেষ্টা করিয়াছিলেন। দেশীয় রাজন্য-গণের মধ্যে মনু, ভর্তৃহরি, বিদুর ও চাণক্যের রাজ-নীতির মর্ম্ম বুঝাইয়াই তিনি কর্ত্তব্যের পরিসমাপ্তি করেন নাই। দেশীয় রাজন্যগণের সঙ্গে জনসাধারণের কোন যোগাযোগ নাই তাহাও তিনি বুঝিয়াছিলেন।

বঙ্গ দেশের সমাজ সংস্কার আন্দোলনকে তিনি শ্রদ্ধার দৃষ্টিতে দেখিয়াছিলেন। কাশী শাস্ত্রবিচারে বিজয় লাভের পর ব্যারিষ্টার চন্দ্রশেখর সেন, পণ্ডিত সত্যব্রত সামশ্রমী ও মহর্ষি দেবেন্দ্রনাথ ঠাকুরের আমন্ত্রণে তিনি কলিকাতায় আসিয়াছিলেন। ধর্মের ভিত্তিতে তিনি কোন প্রতিষ্ঠান গড়িতে চাহিয়াছিলেন। বৈদিক পাঠশালা স্থাপনের উদ্দেশ্য ও তিনি পোষণ করিতেন। বোম্বায়ের প্রার্থনাসমাজ ও কলিকাতার ব্রাহ্মসমাজের দিকে তিনি বহু আশা পোষণ করিয়াই দৃষ্টিপাত করিয়াছিলেন। পৃথক কোন প্রতিষ্ঠান স্থাপন করা তাঁহার উদ্দেশ্য ছিল না। ব্রাহ্মসমাজের মাধ্যমে তিনি ধর্মপ্রচার করিতে ইচ্ছা প্রকাশ করিয়াছিলেন। ব্রাহ্মসমাজও এই রূপ একজন সন্ন্যাসী একেশ্বরবাদী পাইয়া বহু আশা পোষণ করিয়াছিলেন। কিন্তু পরে আলোচনায় জানা গেল—ব্রাহ্ম সমাজ বেদের অপৌরুষেয় স্বীকার করিবেন না ও জন্মান্তর সম্বন্ধে নিশ্চিত সিদ্ধান্ত গ্রহণ করিবেন না। এই খানেই উভয় পক্ষের আশা বিলীন হইয়া গেল।

ঈশ্বরচন্দ্রবিদ্যাসাগর দয়ানন্দকে পৃথক্ কোন প্রতিষ্ঠান স্থাপন করিতে পরামর্শ দিলেন। তাহারই ফলে নানা স্থান ভ্রমণ করিয়া তিন বৎসর পর তিনি রাজকোটে ও বোম্বাইতে আর্য্যসমাজ স্থাপন করিলেন। ২ বৎসর পরে ১৮৭৭ খৃষ্টাব্দে লাহোরে আর্যসমাজ স্থাপনকালে মহর্ষি দয়ানন্দের নেতৃত্বে আর্য্যসমাজের

দশ নিয়ম ও চল্লিশটি উপনিয়ম গৃহীত হয়। ইহাতে অপূর্ব রাজনীতির পরিচয় পাওয়া যায়। রায় বাহাদুর লালা মূলরাজ এম-এ, পি আর-এস লাহোর সভায় প্রথম সভাপতি নির্ধারিত হইয়াছিলেন। প্রায় ছয় বৎসর কাল শুধু আর্য্যসমাজের দশ নিয়ম মানিলেই আর্য্যসমাজ ভুক্ত হওয়া যাইত। মহর্ষি দয়ানন্দ তাঁহার মৃত্যুর পূর্বে পরোপকারিণী সভা স্থাপন করিয়া তাঁহার জীবনের কার্য্য ভার অর্পণ করেন। তাঁহার মৃত্যুর পরে ১৮৮৩ খৃষ্টাব্দের ডিসেম্বরের অধিবেশনে পরোপকারিণী সভায় স্থির হয়—আর্য্য সমাজের সদস্য হইতে গেলে মহর্ষি দয়ানন্দের বেদভাষ্য ও গ্রন্থাবলীকে অভ্রান্ত বলিয়া স্বীকার করিতে হইবে। মহর্ষি দয়ানন্দের জীবনকালে কেবল দশ নিয়ম স্বীকার করিলেই আর্য্য সমাজের সদস্য হইয়া যাইত। এই বিষয় লইয়া আর্য্যসমাজের মধ্যে মত বিরোধের সৃষ্টি হয়। ১৮৮৫ খৃষ্টাব্দে কলিকাতার প্রথম আর্য্য সমাজ স্থাপিত হওয়ার পরেই এই প্রশ্ন উত্থাপিত হইয়াছিল। ইহারই ফলে বহু বাঙ্গালী শিক্ষিত গণ্য মান্য ব্যক্তি আর্য্য সমাজ পরিত্যাগ করেন। আজিও তাহার ফলে বাঙ্গালী আর্য্যসমাজের দয়নীয় স্থিতির মধ্যে উপলব্ধি হয়।

বোম্বাইতে আর্য্যসমাজ স্থাপনের (১৮৭৫) ১০ বৎসর পরেই বোম্বাইতে কংগ্রেসের জন্ম হয়। তখনে আর্যসমাজের অপ্রত্যক্ষ প্রভাব পরিলক্ষিত হইয়াছিল। স্যর সুরেন্দ্রনাথ তাঁহার স্বদেশী বক্তৃতার মধ্যে এই কথা ব্যক্ত করিয়াছিলেন। আমরা স্বর্গীয় বিপিন চন্দ্রপাল ও স্বর্গীয় রামানন্দ চট্টোপাধ্যায়ের মুখে কলিকাতা আর্য্যসমাজ অনুষ্ঠিত ১৯২৫ খৃষ্টাব্দের জন্মাষ্টমী উৎসবের বক্তৃতায় একথা শুনিয়াছি। তাই মনে হয়—নব ভারতের উন্মেষের ও জাগরণের মূলে মহর্ষি দয়ানন্দের ও আর্য্যসমাজের দান স্বল্প নহে। স্বাধীন ভারতের নরনারী ভবিষ্যতের দিকে যতই অগ্রসর হইবে ততই ইহা বুঝিতে পারিবে, কোন উচ্চ পর্বতের সন্নিকটে দাঁড়াইয়া তাহা বুঝা যায় না। যতই দূরে যাওয়া যাইবে ততই পর্বতের বিরাটত্ব উপলব্ধিতে আসিবে।

ओ३म्

कलकत्ता आर्य समाज के ८५वें वार्षिकोत्सव पर
अपनी शुभ कामनायें प्रकट करते हैं—

पूनम चन्द सुरेन्द्र कुमार

लोहा और इस्पात के व्यापारी एवं आढ़ती

प्रधान कार्यालय :

२०, महर्षि देवेन्द्र रोड,

कलकत्ता - ७

दूरभाष : ३३-५६६३
३५-६०७५

शाखा :

भडोच स्ट्रीट, स्टील चेम्बर

बम्बई - ९

दूरभाष : ३३-७७४०

ओ३म्

फोन : { आफिस : ३३-१५७४
निवास : ३४-६७७४ }

हार्दिक शुभकामनाओं के साथ :—

नव भारत स्टील कारपोरेशन

लोहे के व्यापारी तथा सप्लायर्स

२६, बड़तल्ला स्ट्रीट,
कलकत्ता - ७

मैतं पन्था मनु गा भीम एष
येन पूर्वं नेयथ तं ब्रवीमि ।
तम एतत् पुरुष म प्रपत्था
भयं परस्ता दभयं ते अर्वाक् ॥

अथर्व—८-१-१०

हे मूढ़ पुरुष ! इस मार्ग का अनुसरण मत कर । यह मार्ग बहुत भयपूर्ण है । तू पहले भी नहीं चला । मैं उस अज्ञान मार्ग के विषय में तुम्हें उपदेश करता हूँ कि यह मार्ग अन्धकारमय मृत्यु है ।

❀ ओ३म् ❀

मायावियों से अपनी सेनायें सुदृढ़ बनायें

स्थिरा वः सन्त्वायुधा पराणुदे वीळू उत प्रतिष्कभे।
युष्माकमस्तु तविषी पनीयसी मा मर्त्यस्य मायिनः ॥

ऋ० म० १। सू० ३९। म० २

प्रभु का उपदेश है—हे मनुष्यों! तुम्हारे शस्त्रास्त्र शत्रुओं को पराजित करने और रोकने के लिये प्रशंसित एवं दृढ़ हों। तुम्हारी सेना प्रशंसनीय हो।

मायावी मनुष्यों की सेनायें ऐसी न हो सकें।

LIFELINE
OF MODERN
INDUSTRIES
BIG AND
SMALL

आचार्य पं० रमाकान्तजी शास्त्री की स्मृति में

आर्य-समाज १९, विधान सरणी, कलकत्ता-६ के लिये पं० उमाकान्त उपाध्याय, एम० ए० द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित तथा रत्नाकर प्रेस, ११-ए, सैय्यदसाली लेन, कलकत्ता-७ में मुद्रित।

वर्ष १३ अङ्क १०

ओ३म्

आर्य-संसार

आर्य-समाज कलकत्ता
का
मासिक मुख पत्र

कार्तिक
२०२८

अक्टूबर १९७१

स्व० पण्डित सदाशिवजी शर्मा

मूल्य :—
एक प्रति २० पैसे
वार्षिक २) रुपये

आर्य-समाज कलकत्ता
१९, विधान सरणी,
कलकत्ता-६

॥ ओ३म् ॥

आर्य-समाज, कलकत्ता

१९, विधान सरणी, कलकत्ता-७

अपील

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपने तर्कपूर्ण विचारों से प्राचीन हिन्दू-धर्म को पाखण्ड तथा रूढ़िवाद के गहरे गर्त से बचाया और वैदिक धर्म के रूप में उसके यथार्थ को प्रगट करके बुद्धिवाद के इस युग में उसे अमरता प्रदान की। उन्होंने सारे भारत में भ्रमण करके अपने भाषण तथा लेखों से पाखण्ड के खण्डन और सत्यमत के मण्डन के लिये एक आन्दोलन चलाया, जो आर्य समाज के नाम से सुगठित होकर स्वल्प कालमें ही आर्यसमाज के नाम से अपने देश तथा विदेशों में भी स्थापित हो गया। कलकत्ता महानगर में भी सन् १८८५ में आर्यसमाज की स्थापना हुई, गत ८६ वर्षों से यह महर्षि दयानन्द के मन्तव्यों के अनुसार कुरीति निवारण सद्धर्म-प्रचार और जन-सेवा का कार्य रहा है। आर्यसमाज सत्यसनातन वैदिक धर्मके प्रचार के लिये हिन्दी, बंगला तथा अन्य भाषाओं में भी विद्वानों के भाषण तथा उत्तम लेखों का प्रकाशन करता है। 'आर्य-संसार' नामक मासिक पत्र का प्रकाशन करता है। एक सुन्दर पुस्तकालय तथा वाचनालय भी चलता है। दो विशाल शिक्षा-सस्थाओं—आर्य-कन्या महाविद्यालय और रघुमल आर्य-विद्यालय का सञ्चालन करता जनता के हितार्थ दातव्य चिकित्सालय तथा एक प्याऊ का भी १९, विधान सरणी में सञ्चालन कर रहा है। यह आर्यसमाज प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी ता० २५ दिसम्बर से २ जनवरी १९७२ तक अपना ८६ वाँ वार्षिक उत्सव मुहम्मद अली पार्क में बड़े समारोह से मना रहा है। इस उत्सव पर स्थानीय विद्वानों के अतिरिक्त बाहर से ये विद्वान् पधार रहे हैं। श्री महात्मा आनन्द स्वामीजी, स्वामी अग्निवेशजी, श्रीमती सुशीला देवीजी हैदराबाद, श्री पं० वाचस्पतिजी शास्त्री विद्याभाष्कर आगरा, श्री डा० राजेन्द्र शुक्ल दिल्ली, श्री पं० उमाकान्तजी उपाध्याय, श्री वेगराजजी भजनोपदेशक, तथा श्री पं० रामरिझनजी शर्मा भजनोपदेशक पधार रहे हैं। आर्यसमाज के पास कोई स्थायी आय का साधन नहीं है, अतः इसकी सम्पूर्ण व्यय-राशि आप दानी महानुभावों के उदार दान से ही पूर्ण होती है। इस वर्ष की योजनाओं को पूर्ण करने के लिये आनुमानिक व्यय १०००००) एक लक्ष रुपया होगा। अतः आपसे सप्रेम याचना है कि अपने सात्विक दान से इस यज्ञ में आहुति प्रदान करें। आपके सहयोग के लिये हम सदैव आभारी हैं। वेद-प्रचार, सत्साहित्य प्रकाशन, जन-सेवा के बहुमुखी कार्यों के लिए ७५०००) रु० तथा नव-भवन निर्माण के लिए २५०००) रु० की न्यूनतम आवश्यकता है।

प्रधान :—	कोषाध्यक्ष :—	मन्त्री :—
श्री बनारसीदासजी अरोड़ा	**श्री सत्यानन्दजी आर्य**	**श्री नाथदासजी गुप्त**

स्व० श्री पं० सदाशिव जी श्वेत-वस्त्रधारी संन्यासी थे

ओम्प्रकाश त्यागी
मन्त्री सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा

स्व० श्री पं० सदाशिव जी से यों तो मेरा परिचय पञ्जाब से ही था, परन्तु सन् १९४६ में नवाँखाली काण्ड के समय सेवा-क्षेत्र में उन्हें समीप से देखने का अवसर मिला। महर्षि दयानन्द के मिशन के लिये अपनी जीवन-आहुति देने वाले आप वैदिक सिद्धान्तों के पूर्ण मर्मज्ञ थे। उनका उपदेश भी समाचार पत्रों की अपेक्षा सिद्धान्तों पर आधारित रहता था। सेवा की भावना भी उनमें अद्वितीय थी। सेवाभाव के कारण ही पञ्जाबी होते हुए भी उन्होंने अपना अधिकांश जीवन त्रिपुरा व बङ्गाल में व्यतीत कर दिया। आदर्श ब्राह्मण के रूप में उनके पास अपना धन-सम्पत्ति कुछ नहीं थी।

श्री पण्डित सदाशिव जी में स्वच्छता प्रेम सीमा से अधिक था। उनका यह प्रेम कभी कभी उनके सर सेवा-भाव में भी बाधक बन जाता था। गन्दे व्यक्तियों से वह मिलते अवश्य थे; परन्तु उत्साह के साथ नहीं, परन्तु स्वच्छता के समान वह अपने व्यवहार में ही स्वच्छ थे। झूठ, चोरी, धोखा आदि से उनका परिचय नहीं के बराबर था। यही कारण था कि मिथ्याचारी लोगों से उनकी कभी नहीं बनती थी।

महर्षि दयानन्द के मिशन के प्रचार व प्रसार के लिये, वह सदैव तत्पर रहते थे। उन्हें भलीभाँति ज्ञात था कि उन्हें हृदय का रोग है, परन्तु डाक्टरों के सम्मति के विपरीत वेद-प्रचार में जाना उनकी आदत थी। उनका कहना था कि यह शरीर तो एक न एक दिन समाप्त होना ही है। इसके लिये दयानन्द के मिशन को बन्द नहीं किया जा सकता है। उन्होंने एक आदर्श उपदेशक अथवा आर्य की भाँति प्रचार करते हुए ही इस संसार से विदा ली।

परम पिता परमात्मा से प्रार्थना है कि वह दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान करे और हमें शक्ति व सुबुद्धि प्रदान करे ताकि हम महर्षि दयानन्द जी महाराज के लक्ष्य की पूर्ति में उनका अनुकरण कर सकें।

॥ ओ३म् ॥

पण्डित सदाशिवजी शर्मा : धुन के धनी

उमाकान्त उपाध्याय

प्रथम दर्शन

मेरा विद्यार्थी जीवन था। उन दिनों आर्य-समाज कलकत्ता में महा विद्वान् श्री पं० अयोध्या प्रसादजी के व्याख्यान हुआ करते थे। उन दिनों प्रत्येक साप्ताहिक सत्संग का व्याख्यान अपनी नूतन निराली छटा लिये हुये रहता था।

एक रविवार हम जब समाज मन्दिर के प्राङ्गण में पहुँचे तो देखा एक ओर तेजस्वी व्यक्ति आदरणीय पं० अयोध्या प्रसादजी के पास ही बैठे थे। गौर कान्तिमान्वपु, शुद्ध श्वेतहिम धौत वस्त्र, सो भी उत्तरीय हिम श्वेत ही अपनी विचित्र प्रतिभा बिखेर रहा है। मन में कुतूहल हुआ, ये कौन हैं ?

उस दिन आदरणीय आचार्यजी, श्री पं० अयोध्या प्रसादजी का व्याख्यान निश्चित समय से कुछ पूर्व ही समाप्त किया गया और तत्पश्चात् पं० सदाशिवजी शर्मा के व्याख्यान की घोषणा की गई। अब समझ में आ गया कि नवागन्तुक पं० सदाशिवजी शर्मा हैं।

व्यासपीठ पर विराजमान होने से पं० जी की प्रतिभा कुछ अधिक मुखरित हो उठी। प्रार्थना मन्त्र बोलने लगे तो शब्दों में घनगर्जन, उच्चारण में परिमार्जन और ओज हृदयहारी था। उन दिनों पं० सदाशिवजी बिलोनिया रिलीफ केन्द्र पर या कहीं अन्यत्र सेवा काम में लगे हुये थे। उसका वर्णन करने लगे तो वर्णन शैली भी मुखर हो उठी—

"विद्या, वपुषा, वाण्या, वस्त्रेण, विभवेत च,"

सब का बड़ा सफल सामजस्य देखने को मिला।

इसके पश्चात् जब-जब भी वे कलकत्ते आते उनका व्याख्यान सुनने की उत्कण्ठा सदा उठा करती थी और वे उसे आशानुरूप ही सन्तुष्ट किया करते थे।

पूज्य पण्डितजी का उच्चारण बड़ा ही शुद्ध था। कभी ध्यान नहीं आता कि उनके मुख से उच्चारण की अशुद्धि सुनने को मिली हो। संस्कृत भाषण भी उनका शुद्ध होता था। न व्याकरण की भूल न उच्चारण की शिथिलता, स्खलन।

वेद-संस्कृत को जीवनदान

वेद और संस्कृत के प्रचार की उत्कट प्रेरणा के फल-

स्वरूप आदरणीय पण्डितजी ने अपना जीवन इसी काम मेंके लिये दान कर दिया था। आजीवन इसी काम लगे रहे। जहाँ जब भी किसी निष्ठावान् सेवक, व्यवस्थापक की आवश्यकता का अनुभव हुआ, पण्डितजी की सेवायें तुरन्त सुलभ हो गई। एक उच्च कोटि के विद्वान् होकर भी नगरों के मनोरम सुखों पर लात मारकर जङ्गल में जंगलियों के बीच में जाकर जम जाना, उसी बलिदानी विचारधाराका फल था। न लोकेषणा, न वित्तेषण, न पुत्रैषणा।

इसी जीवनदान की भावना के फलस्वरूप पण्डितजी ने विवाह नहीं किया। अपना सर्वस्व वेद प्रचार को दान करते रहे।

आराम हराम

इधर आदरणीय पण्डितजी का स्वास्थ्य बहुत गिर चुका था। हम सब लोग चाहते थे कि पूज्य पण्डितजी को अब आराम करना चाहिये और प्रचारार्थ बाहर नहीं जाना चाहिये। किन्तु पण्डितजी के समीप इस विचार के लिये स्थान न था। वे जीने के लिये नहीं जी रहे थे ; वे जीवित रहना चाहते थे तो काम के लिये सो भी वेद का काम-संस्कृत का काम, आर्य-समाज का काम।

पिछले कुछ वर्षों से पूज्य स्वामी ब्रह्मानन्दजी सरस्वती ने उड़ीसा में क्रान्तिकारी स्तर पर आर्य-समाज के प्रचार का काम आरम्भ कर रखा है। वहाँ परिस्थिति बड़ी अनुकूल है और स्वामीजो अपने तप त्याग उच्चतम श्रेणी के व्यक्तियों को प्रभावित कर रहे हैं। वहाँ उच्चकोटि के विद्वानों की आवश्यकता है। इस आवश्यकता की ओर कई बार हमारा भी ध्यान गया है।

आर्य-समाज में साधारण रूपमें, संगठन से आबद्ध विद्वानों का अभाव सर्वत्र खलने लगा है। यों ही विद्वानों का अभाव होता जा रहा है। वह लगन, वह आकर्षण, वह आग, जो आर्य-समाज के पूर्व पुरुषों में थी, उसका तो सर्वत्र ही अभाव होता आ रहा है। कुछ विद्वान हैं, स्वतंत्र, विश्वविद्यालयों में, [illegible]ालयों में, वे आर्य-समाज की मशीनरी के अंग नहीं [illegible] हैं। वे बनना भी नहीं चाहते अधिकारी उनको आगे करने में भी कतराते हैं।

अस्तु उड़ीसा की बढ़ती हुई आवश्यकता तो देखकर प्रतीत होता है कि वहाँ एक संघटित प्रतिनिधि सभा की स्थापना की आवश्यकता है। सार्वदेशिक ने इस आवश्यकता का अनुभव करके उत्कल प्रतिनिधि सभा की स्थापना के लिये आदरणीय महोपदेशक विद्याभास्कर श्री पं० वाचस्पतिजी शास्त्री को भेजा भी था और आदरणीय पण्डितजी अपने मिशन में सफल भी रहे। किन्तु आर्य विद्वानों, से भी उच्चकोटि के विद्वानों का अभाव तो उड़ीसा में है ही।

जितने दिनों श्री पं० सदाशिवजी शर्मा का जीवन था, वे इस अभाव की पूर्ति यथा शक्ति सफलतापूर्वक किया करते थे। स्वास्थ्य ठीक न था। इधर कई वर्षों से तो केवल औषध उपचार के सहारे ही जी रहे थे। किन्तु जब भी स्वामी ब्रह्मानन्दजी का आग्रह होता वे तुरन्त बिना किसी ननु नच के तैयार हो जाते थे।

स्थानीय आर्य-समाज के आर्यगण उन्हें रोकते किन्तु उनके मन में तो ऐसी आग लगी हुई थी कि प्रचार करते-करते ही उनको इस संसार से जाना था। हुआ भी ऐसा ही। उड़ीसा में प्रचार के लिये गये थे। प्रातःकाल प्रचार-कार्य में ही निकलना था। स्नानादि से निवृत्त होकर ६ बजे जाने के लिये तैयार थे। उधर हृदय में पीड़ा उठी और संसार से चल बसे। क्षणों में ही चले गये। प्रचार में लगे सिपाही की तरह मोर्चे पर जूझ गये।

वेद पाठ करते हुये मरूँ

पिछले दिनों जब वे कलकत्ता में स्थायी रूपसे रहने लगे तो यहाँ के आर्यजन उनकी प्रतिष्ठा के अनुकूल यहाँ के वेद पारायण यज्ञों में उन्हें ब्रह्मा बनाया करते थे। किन्तु जब स्वास्थ्य गिर गया, रोग का प्रभाव बढ़ गया, वृद्धावस्था ने चेष्टाओं को शिथिल कर दिया तब भी उनका सतत आग्रह

रहता था कि मैं वेद पाठ अवश्य [illegible] । [illegible] वर्ष आर्य-समाज बड़ा बाजार के वार्षिको[illegible] पर यही चेष्टा थी। मृत्यु से कुछ एक दिन पूर्व ही आर्य समाज कलकत्ता के वेद सप्ताह के वेदपारायण यज्ञ पर मन्त्र पाठ का आग्रह करने लगे और कहने लगे—'मेरी तो इच्छा है कि वेद-पाठ करता-करता ही मरूँ।'

पूज्य पण्डित जी की इच्छा पूर्ण हुई। वेद-पाठ और वेदोपदेश एक ही बात हुई। वेद-पाठ में रत न गये, वेदोपदेश में रत गये। पण्डित जी चले गये। छोड़ गये अपनी कीर्ति, अपना नाम, विद्या और प्रचार व्रत का आदर्श।

"जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः"

जो उत्पन्न हुआ है वह मरेगा ही, किन्तु—

"कीर्ति र्यस्य स जीवति"

जिसकी कीर्ति है वह जीता है।

पण्डित सदाशिव जी इस अभिप्राय में अमर हो गये हैं।

आर्य समाज कलकत्ता की गैलरी जो ऋषि जीवन और मन्त्र आदि लिखे हुए हैं, वह सब पण्डित सदाशिवजी की कृति है। ये पत्थर, ये पंक्तियाँ पण्डित जी का यशोगान कर रहे हैं। पण्डित जी अपनी इन कृतियों में मर कर भी अमर हो गये हैं।

पण्डित श्री सदाशिव जी

श्री पण्डित सदाशिवजी के निधन का समाचार सुनकर दुःख हुआ। कर्मठ विद्वान और तपस्वी लोग प्रभु प्यारे की गोदी में चलते जा रहे हैं। और इनके रिक्त स्थान को सम्भालने वाले बहुत कम आगे आ रहे हैं। पं० सदाशिवजी अपना सारा जीवन वेदप्रचार में व्यतीत किया है। वो मेरे गुरु-भाई थे। स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती जी से उन्होंने शिक्षा और दीक्षा ली। गुरु जी की दी हुई प्रेरणा से पं० सदाशिव जी ने बड़े-बड़े कठिन स्थानों में भी वेद की ध्वनि पहुँचाई। विचार यह करना चाहिये कि वेद विचार का प्रचार करने वाले इसी प्रकार चले गये और उनका स्थान लेने वाले आगे न बढ़े तो वेद-विचार का प्रचार क्या कम नहीं हो जायेगा? कलकत्ता आर्य समाज एक शक्तिशाली आर्य समाज है। जितना सुन्दर कार्य यह समाज कर रहा है, इतना कार्य कोई बड़ी सभा भी नहीं कर रही है। अतः आर्य समाज कलकत्ता को चाहिये कि वो नये प्रचारक बनाने की ओर ध्यान दे।

सेवक—

आनन्द स्वामी सरस्वती

पं० श्री सदाशिवजी शर्मा शास्त्री का परलोक गमन

श्री दीनबन्धु वेदशास्त्री

आर्य समाज के वयो ज्येष्ठ और ज्ञान-वृद्ध प्रचारक अब हमारे अन्दर नहीं हैं। ता० १७ अगस्त १९७१ को भुवनेश्वर में आपका देहान्त हो गया है। आपकी आकस्मिक मृत्यु से आपके सह-कर्मी इष्ट-बंधु बांधव सब कोई दुखी और शोकग्रस्त होंगे इसमें शक नहीं है। यह दुख और शोक स्वाभाविक है और उनकी मृत्यु भी स्वाभाविक ही थी। उनका नश्वर शरीर चला गया लेकिन उनका अविनश्वर उज्ज्वल जीवन-स्मृति बहुत वर्षों स्थायी रूप से प्रचारक जीवन के लिये प्रेरणा देती रहेगी।

आप आदर्श धर्म प्रचारक थे और उनकी जीवनी-शक्ति भी प्रबल थी। उन्होंने समग्र जीवन वैदिक धर्म के प्रचार के लिये उत्सर्ग किया था। पंजाब और जम्बू-काश्मीर आपके प्रचार-क्षेत्र बहुत वर्ष काल थे। शुद्धि-संगठन और वेद-ज्ञान प्रचार के कारण उनकी प्रसिद्धि आज भी वहाँ है। वर्षों आप लाहौर के उपदेशक, विद्यालय में आचार्य के रूप में भिन्न-भिन्न प्रान्तों के ब्रह्मचारी और उपदेशक आपके पाद मूल में बैठे हुए वैदिक-ज्ञान सुधा पान करते थे। आज वे लोग बड़े-बड़े दिग्गज पंडित हैं। आप थे संयमी पुरुष। बहुत वर्ष काल शारीरिक जीर्णता के कारण आर्य समाज कलकत्ते के सुरम्य विश्राम कक्ष में पितामह भीष्म जैसे रहकर मृत्यु की प्रतीक्षा में थे। लेकिन उनके श्री मुखसे धर्मोपदेश बन्द नहीं हुआ था। वेद पाठ, व्याख्यान, प्रचार और संगठन कार्य से आप कभी निवृत्त नहीं थे। उनके प्रिय प्रचार क्षेत्र में जाकर ही शेष जीवन को उन्होंने छोड़ दिया है।

आपकी कर्म-शक्ति भी हमें परिचित है। मेरे आसाम प्रचार के समय पं० भूवनमोहन देव शर्मा के सहयोग से त्रिपुरा राज्य के अन्तर्गत वेलोनीया नामक स्थान में भूमि मिल गई थी। शिक्षा केन्द्र या धर्म केन्द्र बनवाना ही उद्देश्य था। एक-एक करके बहुत उपदेसक वहाँ रहे लेकिन आर्य प्रतिनिधि सभा बंगाल आसाम की तरफ से पं० सदाशिवजी शर्मा जब से वहाँ रहे तब से वहाँ जंगल में मंगल का रूप आ गया था। आश्रम, विद्यालय, और प्रचार केन्द्र के साथ वहाँ भिन्न-भिन्न उपज और फलादि उत्पन्न होने लगे। उस स्थान की हिफाजत के लिये सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने जिम्मेदारी ले ली थी। स्वास्थ्य भंग होने के कारण आप आर्य समाज कलकत्ते की सेवायें शेष जीवन तक रहे थे।

आपके जीवन में कुछ वैशिष्ट्य भी थे। आप बहुत ही साफ सुथरे रहते थे। अन्याय और असंगति देखकर सहन नहीं कर सकते थे और दोष प्रकाश करते थे। शरणागतों को आश्रय देना, दान-दक्षिणा से जो कुछ मिल जाते थे दूसरे को आपत्ति विपत्ति में दे देना उनके लिये बहुत ही मामूली बातें थीं। प्रचार कार्य उनके लिये इतना प्रिय था कि रोज शय्या से उठकर भी आप प्रचार के लिये जाते थे। शेष

(शेष पृष्ठ ९ पर)

ओ३म्

पूज्य पंडित जी भी चले गये

पुनमचन्द आर्य

१६-८-७१-को पंडितजी आर्य समाज से भुनेश्वर चले गये थे और २७-८-७१ को प्रातः ६ बजे उनका निधन हो गया। १२ बजे स्वामी ब्रह्मानन्दजी का टेलीफोन समाज में आया और तुरन्त मुझको सूचना मिली, पंडितजी चले गये। सूचना सुनी जरूर, पर दिल को तसल्ली नहीं हुई। कारण उनसे मेरा बहुत निकट का सम्पर्क था। जाने से १ दिन पहिले बहुत देर तक उनके पास बैठा बातें करता रहा था। बालोदय पुस्तक जो कि बच्चों के सत्संग के लिये छपाई गई थी, उसका हिसाब भी पूर्णकर आर्य संसार में छपाने को दे दिया। तब उन्होंने कहा कि पुस्तक छपने से दिल को बहुत हलका महसूस कर रहा हूँ।

पंडितजी वेदों के बहुत बड़े विद्वान थे। मैंने अपने पुत्र और पुत्रियों के विवाह संस्कार पर उनसे ट्रैक्ट के रूप में कुछ लिखने की प्रार्थना की तब उन्होंने प्रसन्नता से कहा यह कौन बड़ा काम है। उन्होंने जो पुस्तकें लिखकर दीं, वह सब वेदों के प्रमाणों के आधार इतनी सुन्दर ढंग से लिखी कि आर्य जनता ने पूरी रुचि के साथ उनको अपनाया तथा बहुत से सज्जन तो मेरे से बार-बार अब भी मांगते रहते हैं।

मन्त्रों का उच्चारण इतना शुद्ध था कि सुनने वाले की यही इच्छा होती थी कि और भी सुनता रहूँ। वह काफी समय से रोगग्रस्त रहते थे। जब रोग अपना प्रभाव दिखाता था तब तो पण्डितजी आराम अवश्य करते थे। जब रोग कुछ शान्त होता तो फिर लिखने पढ़ने में लग जाते थे। कई समय तो मैंने नाराज होकर उनसे कहा कि पण्डितजी आप शरीर की कुछ परवाह नहीं करते। यह बात अच्छी नहीं है। तब कहते कि शरीर तो काम के लिये बना है। अगर मैं पढ़ते-पढ़ते ही मर जाऊँ तो मेरे को बहुत खुशी होगी। भगवान ने उनकी इच्छा को पूर्ण किया। जिस समय उनका अन्त हुआ उस समय उनका प्रोग्राम एक वेद समारोह में यज्ञ तथा एक कालिज के उद्घाटन का था।

सेवा के कार्यों को करने में पंडितजी को कितना आनन्द आता था यह मैंने स्वयं देखा है। सन् १९६५ में पूर्वी बंगाल से काफी संख्या में शरणार्थी भारत आ रहे थे तब आर्य समाज ने भी रिलीफ केन्द्र खोलकर कार्य किया था तब समाज मन्दिर में जितना सामान आता था तथा हम सब कार्यकर्ता सामान बाँटने जाते थे सबको पूरा विवरण रखते थे सामानों को बहुत सम्भाल कर रखते थे। कोई एक चीज भी कम नहीं होने पाती थी हर कार्य की पूरी लिखा पढ़ी रखने थे।

वार्षिक उत्सव पर जो भी कार्य हमसे न बन पड़ता था तुरन्त पंडितजी को कहते तो पंडितजी हंस देते। कहते कि थोड़ी देर में यह कार्य तैयार मिल जावेगा।

आर्य समाज मन्दिर में हौल की गैलरी में ऋषि जीवनी चित्रों में और उनके मुख्य-मुख्य प्रश्न-उत्तर तथा मन्तव्य तथा १६ संस्कारों के नाम संगमरमर के पत्थरों पर खुदा कर लगाये गये हैं। उन सबको रोजाना देखना कहीं

(शेष पृष्ठ ६ पर)

सदाशिव का शिव-संकल्प

ले०—प्रियदर्शन 'वेदमाता' सम्पादक

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के महामहोपदेशक परहित-व्रती पण्डित सदाशिव शर्मा इहलोक छोड़ कर परलोकवासी हुए हैं। भुवनेश्वर ने उनको भुवनेश्वर में बुलाकर भूलोक त्याग कराने का पहले ही प्रबन्ध कर रखा था, यह किसी को मालूम ही न था। किसका अन्न-जल कहाँ समाप्त होगा, किसके लिए कहाँ की भूमि संरक्षित है, यह तो राजाधिराज को ही मालूम होता है। क्योंकि राधाधिराज विधाता जो ठहरे।

पण्डित सदाशिव की आयु इक्कासी वर्ष की हुई थी। इस इक्कासी वर्ष की आयु में भी उन्होंने वैदिक धर्म का प्रचार करना परित्याग नहीं किया। उनके जीवन का एक ही व्रत था, 'वेद-प्रचार'। पण्डित सदाशिव ने महाराष्ट्र मे जन्म लिया, पंजाब में वेद-प्रचार का श्रीगणेश किया और उत्कल में त्याग दिया। किसी प्रान्त या राज्य विशेष उनके लिये पराया न था। वे जहाँ गये, वहीं उनका धाम बन गया। जिससे मिले, वही उनका मित्र बन गया।

बाल-ब्रह्मचारी सदाशिवजी का जन्म शिवरात्रि में हुआ था इसलिये माता-पिताने प्यार से उनका नाम 'सदाशिव' रखा। सदाशिव ने सदाशिव बनकर माता-पिता के दिये नाम को सार्थक किया। क्योंकि जीवनभर उन्होंने कभी किसी का अमंगल नहीं किया ; शिव मंगलकारी ही तो होते हैं। सदाशिव नाम ही सदाशिव को सदा मंगल करने की प्रेरणा दिया करता था। इसी लिये उनके कर्ममय जीवन में देश के जहाँ भी महद्विपत्ति आयी, और आर्यवरों के आदेश प्राप्त हुए, वहीं वे जीवन-मरण के विचारों में न पड़ कर पीड़ितों की सेवा करने के लिये अन्न-वस्त्र, औषध आदि लेकर विपत्ति स्थल में उपस्थित हुए।

परतन्त्र भारत के सिन्धु प्रदेश में जब प्रलयंकर जल-प्लावन आया, लोग गृह और आश्रयहीन होकर त्राहि-त्राहि पुकारने लगे तब उस प्रलयंकर जलप्लावन पीड़ित नर-नारियों की रक्षा के लिये जहाँ विभिन्न सहायता संस्थाएँ सहायतार्थ आगे बढ़ीं, वहाँ आर्य-प्रतिनिधि सभा, पंजाब भी निश्चेष्ट होकर बैठी न रही। सभा ने निश्चय किया और अन्न-वस्त्र, औषध आदि लेकर पं० सदाशिव शर्मा को जलप्लावन पीड़ितों की सेवा में अभी भेजा जाए। हुआ भी वैसा, सभा की आज्ञा शिरोधार्य कर सदाशिवजी आर्य-प्रतिनिधि सभा पंजाब की ओर से कुछ स्वयंसेवकों सहित जलप्लावन अञ्चलों में पहुँचे। निरलस सदाशिव दिन-रात एक करके सुदीर्घ काल बाढ़ पीड़ितों की सेवा कर लाहौर वापस आये। लाखों लाखों रुपये की सामग्री द्वारा सेवा की गयी, रुपये उनके द्वारा ही खर्च किये गये पर हिसाब में एक कौड़ी का भी फर्क नहीं पड़ा। सहायता काल में कई बार उनको डाकू और लुटेरों के साथ लोहा लेना पड़ा, पर भगवान जिसका सहायक, भला उसका बाल कौन बाँका कर सकता ?

सन् १९३५। क्वेटा में मध्य रात्रि काल के समय जब कि नगर और ग्रामवासी निद्रामग्न, तब प्रलयकारी भूकम्प ने कराल काल बनकर असंख्य जीवों के प्राण हरण कर नगर और गाँव को मुहूर्त में मैदान बना दिया। आर्य-प्रतिनिधि सभा लाहौर तथा क्वेटा में सहायता केन्द्र खोलकर सहायता करने लगी। पं० सदाशिव शर्मा क्वेटा पहुँच कर सहायता कार्य में जुट गये।

आया हैदराबाद सत्याग्रह आन्दोलन। आर्यजगत् हिल उठा, आसमुद्र हिमाचल हैदराबाद सत्याग्रह के आह्वान पर बोल उठे "सिर जावे तो जावे- मेरा धर्म कभी न जावे।"

भारत के कोने-कोने से आर्यवीर धर्म-रक्षार्थ सिर कटाने को हैदराबाद पहुँचे, जेल के कष्ट और निजाम सिपाहियों के अत्याचार सहन किये। यह सत्याग्रह धर्म-वेदी पर बलिदान का यज्ञ था। इस महान् यज्ञ में सिर कटाने की तमन्ना रखने वाले भला चुप कहाँ रह सकते? सदाशिवजी भी हैदराबाद सत्याग्रह में बहुतों के साथ सिर कटाने चले।

स्वर्गीय स्वामी स्वतन्त्रतानन्दजी महाराज पर हैदराबाद सत्याग्रह परिचालना करने का भार था। हिसाब-किताब ठीक रखने के लिये उन्होंने सदाशिवजी को अपने पास सहायक रूप से रखने का निश्चय किया। पण्डितजी ने हैदराबाद सत्याग्रह के हिसाब-किताब का भार लिया। हैद्राबाद सत्याग्रह की विजय तक उन्होंने स्वामी स्वतन्त्रतानन्दजी को सहायता दी। मुहूर्त के लिये भी सदाशिवजी ने कर्त्तव्य-विमुख होकर मैदान नहीं छोड़ा। हैदराबाद में आर्यसमाज की विजय हुई। सदाशिवजी विजयी आर्य-वीरों के साथ विजयी वेश में लाहौर वापस आये।

पञ्जाब में पहले से ही वेद-प्रचार की धूम मची हुई थी। हैद्राबाद के सत्याग्रह में विजय प्राप्त करने के पश्चात् वेद-प्रचार कार्य प्रबल उत्साह के साथ होने लगा।

स्वर्गीय स्वामी वेदानन्द तीर्थ जैसे श्रुतिज्ञ संन्यासी, स्वर्गीय स्वामी आत्मानन्दजी (पं० मुक्तिरामजी) जैसे उच्च-कोटि के दार्शनिक, स्वर्गीय स्वामी स्वतन्त्रतानन्दजी महाराज जैसे कर्मयोगी उनके साथी थे। सदाशिवजी के यौवन काल में जिन्होंने उनके दर्शन किये और ज्ञानगर्भित ओजस्वी और पाण्डित्यपूर्ण भाषण सुनने का शुभ अवसर जिनको प्राप्त हुआ, उन्हें स्मरण होगा कि सदाशिव शर्मा केवल सहायता कार्य में ही सुनिपुण नहीं थे बल्कि पाण्डित्यपूर्ण ओजस्वी भाषण देने में भी वे कुशल थे।

पं० सदाशिवघी को अति साधारण मनुष्यों में देखिये, वे एक सादा-सीधा, सदा हास्यमय सत् उपदेश दाता और उनके हितैषी के रूप में विराजमान हैं, पण्डित मण्डली में शास्त्र-विचार करते हुये देखिये—पण्डितजी एक शास्त्रज्ञ दार्शनिक के रूप में शिरोमणि होकर शोभायमान हैं; यज्ञ-वेदी पर वेदपाठ करते हुए उनको देखिये, वहाँ सदाशिवजी शुद्ध मन्त्रोच्चारणकारी कुशल वेदपाठी हैं।

सन् १६४० के बाद जब बंगाल में दुर्भिक्ष हुआ, चिऊँटी और कीड़ों की तरह मनुष्य मरने लगे, हा अन्न, हा अन्न की करुण ध्वनि से बंगाल का आकाश वेदना से भर उठा, तब कलकत्ता आर्य समाज के अधिकारियों ने मिलकर 'आर्य-समाज रिलीफ सोसाइटी' के नाम से एक सहायता संस्था की स्थापना की। भारत के कोने-कोने से सहायता सामग्री आने लगी। पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा ने सहायता सामग्री के साथ पं० सदाशिवजी को भी भेजा। किसे मालूम था कि लाहौर-त्याग उनके लिये अन्तिम त्याग था। क्यों देश विभाजन के पश्चात् उन्हें लाहौर वापस जाने का मौका नहीं मिला? पण्डितजी कलकत्ता रहकर दुर्भिक्ष पीड़ितों की सेवा में जुट गये। रोगियों की सेवा, अनाथों का उद्धार कर उनका संरक्षण, विधर्मियों के पंजे से अनाथ बच्चों का उद्धार आदि कार्य शुरू कर दिये गये। सदाशिवजी कलकत्ता से पूर्व बंगाल चले गये और विभिन्न जिलों में केन्द्र स्थापन करके दुर्भिक्ष पीड़ितों में सेवा कार्य करने लगे।

सेवा-कार्य समाप्त नहीं हो पाया कि इतने में नोआखालि दंगा शुरू हो गया। हिन्दुओं की हत्या-लीला चल रही थी, महात्मा गान्धीजी नोआखालि पहुँचे। सदाशिवजी उनसे भी पहले आर्य समाज रिलीफ सोसाइटी के आर्य-वीरों को साथ लेकर हिन्दुओं की रक्षा के लिए कार्य कर रहे थे। हिन्दुओं की रक्षा की गयी। अब आया देश-विभाजन का झमेला। सदाशिवजी को निर्देश मिला—"त्रिपुरा राज्य में जाकर बिलोनिया को केन्द्र बनाकर विस्थापितों की सहायता एवं पार्वत्य प्रदेश में वेदप्रचार कार्य आरम्भ कर दें।"

आर्य समाज रिलीफ सोसाइटी ने बिलोनिया सहायता केन्द्र खोला। पं० सदाशिवजी वहाँ के सर्वाध्यक्ष होकर कार्य करने लगे। सहायता के साथ पहाड़ी अरण्य-वासियों में वेद प्रचार तथा सुधारमूलक कार्य होने लगे। सुदीर्घकाल त्रिपुरा

राज्य के अरण्य प्रदेश में कार्य करते हुए उनका स्वास्थ्य टूट गया। भग्न-स्वास्थ्य लेकर कलकत्ता चले आये, वहाँ के कार्यभार स्व० पं० भुवनमोहन देव शर्मा पर दिया गया।

कलकत्ता में रहते हुए पण्डितजी का नियमित स्वाध्याय, समाजों में भाषण देना, पुस्तक की रचना, बाल-सत्संग परिचालना आदि कार्य जारी रहे। उनपर प्रबल हृद्-रोग ने भयंकर रूप से आक्रमण किया, पर रोग उनको काबू न कर पाया। शारीरिक दुर्बलता को उपेक्षा कर उन्होंने वेद-प्रचार कार्य तत्परता के साथ करने में कभी शिथिलता नहीं दिखाई। स्वामी ब्रह्मानन्दजी सरस्वती तथा उनके प्रेमी के आह्वान पर वे सदा उड़िसा में प्रचारार्थ जाते रहे। अशीति पर अवस्था में शारीरिक कष्ट सहन करके प्रचारार्थ बाहर न जाने के लिए उनके हितैषी मित्रों ने अनेक अनुरोध किये. पर यह प्रस्ताव उन्हें स्वीकार न था। मित्रों ने कहा—"पण्डितजी वेद-प्रचार तो यहाँ व्याख्यान देकर भी हो सकता. आप बाहर न जाकर यहीं रहकर व्याख्यान द्वारा वेद-प्रचार करें।" पर धर्म-प्रचार की बलि-वेदी पर उत्सर्गीकृत प्राण ने न संकट की परवाह की न क्रूर मृत्यु की ही। पण्डितजी ने १६ अगस्त को कलकत्ते से अगस्त मुनि की तरह भुवनेश्वर की ओर प्रस्थान किया। भुवनेश्वर में दस दिवस तक वेद-कथा की। एकादश दिवस का प्रातःकाल आया। पण्डितजी स्नाम सन्ध्यादि करके बैठे हैं, इतने में भयंकर हृद्रोग ने तृतीय बार अचानक ही आक्रमण किया। हृदय में शूल का प्रहार हो रहा है, सहिष्णु सदाशिव शूल प्रहार सहते गये। मुख से ओ३म् ओम् स्वर बारम्बार निकलने लगा, दयालु भगवान ने उनके आह्वान सुन कर देहसाथी मृत्यु को भेजा। देहसाथी ने हृद्रोग सहित मरदेह को परलोक में छोड़कर अमर आत्मा को अमृत आश्रम में पहुँचा दिया।

(५ पृष्ठ का शेषांश)

जीवन आपका भगवान के चिन्तन, जन-साधारण में वेद-प्रचार की भावना, हवन यज्ञ के बहुल प्रचार आदि से ही बीत गया था। मृत्यु तक आर्य समाज कलकत्ते ने इनकी सेवा की और आपने भी आर्य समाज कलकत्ते की सेवा की। एक उल्लेखनीय वैशिष्ट्य भी उनके अन्दर यह था कि आप वेद भाष्य को महर्षि दयानन्द, पं० सत्यव्रत सामश्रमी, महामहोपाध्याय आर्य मुनि और पं० बलदेवजी शास्त्री के अनुसार सामंजस्य करके मानते थे।

भगवान ने पं० सदाशिव जी शर्मा को सुदीर्घ जीवन दिया था और उसके यथार्थ सदुपयोग करके आपने देह को छोड़ दिया है। आपके निधन से आर्य समाज को अपूरणीय हानि पहुंच गयी है। दिवंगत आत्मा को भगवान अक्षय शान्ति प्रदान करें।

(पृष्ठ ६ का शेषांक)

गलती हो गई तो फिर दुवारा लिखना उनके ही परिश्रम से इस कार्य में सफलता मिल सकी है। सच बात तो यही है कि समाज मन्दिर होल की जो गेलरी है वह पंडितजी यादगार है।

बच्चों से उनको बहुत स्नेह था। बच्चों के विषय में और भी पुस्तकें लिखने की इच्छा थी। एक पुस्तक लिखकर भी दे गये हैं जिसको भी छिपाने की चेष्टा करूँगा।

मेरे ऊपर उनका बहुत स्नेह था। अपने मन में किसी से नाराज अव्वल तो होते नहीं थे होते तो मेरे से कहकर अपना दिल हलका कर लेते थे। विद्वानों के जो गुण हैं वह उनमें सब मौजूद थे। स्वाध्याय बहुत करते थे तथा हमको भी स्वध्यायों के लिये प्रेरणा देते रहते थे। कोई शंका रखते तो झट बेदों की पुस्तक निकाल कर उसका निवारण भी कर देते थे। जाने से पूर्व मैंने पूछा पंडितदी अब कब आयेंगे तो कहने लगे कि दिवाली से पहिले आकर आपका दीपावली यज्ञ और खाता मैं ही कराऊँगा। नोट बुक में मेरे सामने लिखा १८ की दीपावली है यह करना है सो भगवान को यह स्वीकार नहीं था और वह हमारे से दिवाली से पहिले ही जुदा हो गये। सो भगवान से प्रार्थना है कि उनकी आत्मा को शान्ति मिले। ईश्वर जो करता है वह अच्छा करता है इस पर हमको पूरा विश्वास रखना चाहिये।

पंडितजी का उल्लेखनीय कार्य

शिशु व बालकोंका आत्म-विकास

सत्यानन्द आर्य

पं० सदाशिव शर्माजी अब न रहे—इनके इस संसार से चले जाने से जहाँ आर्यसमाज का बहुत बड़ा विद्वान् व प्रकाण्ड पण्डित उठ गया, आर्य समाज कलकत्ता की विद्वत-मण्डली का एक सदस्य कम हो गया वहाँ दूसरी ओर जो सबसे बड़ा घाटा हमें लगा वह है पण्डितजी के बालकों के आत्म-विकास के कार्य में रुकावट :—

पं० सदाशिवजी को बच्चों से बेहद प्यार था। वे जो भी बालक उनसे मिलता या उनके संसर्ग में आता, वे अपने अमृत भरे वचनों से उन्हें उपदेश देते तथा सिद्धान्तों की बात से तृप्त करते। आज हमारे पास जो समस्या है वह है हमारे समाज में बालक, युवक आगमन का अभाव। आजके बालक व युवक उतने चरित्रवान क्यों नहीं हैं, उनकी सिद्धान्तों व धार्मिक क्रियाकलापों में आस्था क्यों नहीं है? इनका रहस्य जाना व उसका समाधान पण्डितजी ने निकाला। वे बालकों की शिक्षा उनके कोमलमति के विकास पर ज्यादा जोर देते थे। उनकी यह उत्कण्ठा रहती थी कि बच्चे अपने शैशव-काल में ही धार्मिकता की तरफ रुचि लें, जिससे वे बड़े होकर पथप्रदर्शन कर सके व योग्य नारिक बन सके। हम जो बालकों, युवकों के चरित्र-निर्माण कार्य या उनको धार्मिक प्रशिक्षण नहीं दे पा रहे थे, उनके लिए कोई साहित्य की कमी की पूर्ति नहीं हो पा रही थी। इसका समाधान पण्डितजी ने निकाला। जहाँ एक ओर उन्होंने कलकत्ता आर्य समाज में बालक सम्मग को प्रारम्भ करके सुचारु रूप से चलाया, जहाँ छोटे छोटे नन्हें-मुन्नों व बालकों को सन्ध्योपासन व अग्निहोत्र की क्रियात्मक शिक्षा देने का प्रबन्ध हुआ, वहाँ दूसरी ओर पण्डितजी ने बालोदय पुस्तक निकलवाकर एक बहुत बड़ी कमी की पूर्ति की। हमारे पास आज बालकों व शिशुओं के मनन व सिद्धान्तों की जानकारी देने के लिए कोई पुस्तक न थी। पंडितजी ने बालकों के विकास के लिए जोर दिया व महत्ता दी जैसा कि उन्होंने बालोदय की भूमिका में लिखा है—"मिट्टी के कच्चे बर्तन पर जो निशान डाल दिये जावें वह बर्तन के टूट-टूट कर चुर-मार हो जाने तक बने रहते हैं। ठीक इसी प्रकार कोमलमति सुकुमार बालकों के मानस पटल पर आरम्भ में ही गुरुजनों द्वारा जो संस्कार डाल दिये जावें वह सर्वांश में नहीं तो अधिकांश में तो अवश्य ही अपना अमिट प्रभाव जमा लेते हैं।"

पण्डितजी का बालकों के प्रति स्नेह व प्यार इसी बात से जाहिर हो जाता है कि पण्डितजी अपनी मृत्यु के १० मिनट पहले तक छोटे छोटे शिशुओं को उपदेश दे रहे थे और उनके साथ सिद्धान्तों की चर्चा कर रहे थे।

जहाँ पण्डितजी एक ओर अपने अमरतुल्य वचनों से बालकों की आत्मिक, सैद्धान्तिक, सामाजिक उन्नति का पथ-प्रदर्शन करते थे, वहीं उनका स्वयं का जीवन भी बालकों के लिए प्रेरणा स्रोत था।

कसी वस्तु को यथायोग्य रखना, छोटे-बड़े का यथा-योग्य सत्कार व प्यार करना, वे बड़ी खूबी से जानते थे। स्वावलम्बन की तो वे जीती जागती मूर्ति थे यानी इतने बुढ़ापे व रुग्णावस्था में भी वे अपने दैनिक कार्य के सब काम अपने हाथ से बड़ी चतुराई के साथ करते थे। जिसको देखकर हमें दंग रह जाना पड़ता था। आज पण्डितजी नहीं हैं तो हमारी आपकी जिम्मेदारी बढ़ गयी है। उन्होंने जो काम शुरू किया था, उसे सुचारु रूप देना है और उनके अधूरे काम को पूरा करना है।

उत्कल में श्री पं० सदाशिवजी शर्मा

ले०—स्वामी ब्रह्मानन्दजी सरस्वती (उड़ीसा)

पं० सदाशिवजी शर्मा के हृदय में वैदिक धर्म और आर्य समाज के प्रचार की बड़ी भारी लगन थी। प० जी वृद्ध हो गये थे, शरीर रुग्न हो गया था फिर भी बिना किसी कष्ट और असुविधा की चिन्ता किये धर्म का प्रचार करते रहते थे। पं० सदाशिवजी ने उड़ीसा पर विशेष कृपा कर रखी थी। जब कभी उनको याद किया जाता था पं० जी सब कष्ट सहकर उड़ीसा में प्रचारार्थ पहुँच जाते थे।

पं० सदाशिवजी शर्मा की उत्कल यात्राओं का वर्णन बहुत संक्षेप में निम्न प्रकार से किया जा सकता है :—

१—पं० जी की विशेष कृपा गुरुकुलों पर रहती थी। गुरुकुल वैदिक आश्रम वेद व्यास में वे तीन बार आये थे। गुरुकुल के ब्रह्मचारियों और अध्यापकों तथा सहयोगियों के साथ यज्ञ में भाग लिया था, विशेष अवसरों और सम्मेलनों में प्रवचन किया था।

२—वैदिक सेवाश्रम पिङ्गा वणआँ में १९६९ में मार्च मास में तीन दिन के लिये आये थे। यह सेवाश्रम बालेश्वर जिले में है। यहाँ पं० जी प्रतिदिन यज्ञ और प्रवचन करते थे। उपस्थित जनता पं० जी के ओजस्वी व्याख्यान से प्रभावित होती थी।

३—"राणी बन्ध" में सन् १९६९ के मार्च में पं० जी ने यजुर्वेद पारायण यज्ञ कराया था।

४—सन् १९७० ई० में २८ सितम्बर से १० अक्टूबर तक कन्या गुरुकुल में यजुर्वेद पारायण यज्ञ कराया था। भुवनेश्वर, पुरी, कटक ब्रह्मपुर आदि स्थानों में भी पं० जी ने प्रवचन किया था। राईकिआ फुलवाणी में ऋग्वेद पारायण यज्ञ कराया था।

५—सन् १९७० ई० में ३० अप्रैल से २ मई तक जिला कटक के अन्तर्गत आर्य समाज कानपुर (नरसिंह पुर) के वार्षिक अधिवेशन में भाग लिया था।

६—१९७० के मई मास में तपोवन शान्ति आश्रम फुलवाणी का उद्घाटन उत्सव था। श्री पं० जी उस उद्घाटन उत्सव में पधारे थे और ७ मई से ११ मई तक यहाँ रहे थे।

७—अन्तिम बार सन् १९७१ में अगस्त मास में श्रावणी पूर्णिमा के बाद आये थे। श्री जगदीश चन्द्र बुधराजा कान्ट्रैक्टर के यहाँ वेद कथा कर रहे थे। इसी यात्रा में श्री पं० जी का देहान्त हो गया।

पं० सदाशिवजी जगन्नाथ पुरी में भी गये थे। वहाँ श्री पं० जी पुरी के विद्वानों से मिले थे। विद्वानों के साथ आलोचना भी हुई थी। पं० जी की विद्वत्ता और प्रवचन से पुरी के विद्वान् बहुत प्रभावित हुये थे।

उड़ीसा के वर्तमान मुख्य मन्त्री श्री विश्वनाथदास, मंत्री अईंदुसाहु, भूतपूर्व उप-मुख्य मन्त्री श्री पवित्रमोहनजी प्रधान आदि पं० जी के परिचित थे। ये सब लोग पं० जी की विद्या आचार और जीवन के प्रशंसक हैं।

पं० सदाशिवजी कन्या गुरुकुल तथा तपोवन आश्रम के प्रति अधिक आकृष्ट थे। पं० जी की इच्छा थी कि शेष जीवन यहीं बिताया जाय। पं० जी इस नश्वर शरीर को छोड़कर चले गये। जो उत्कल प्रदेश उन्हें इतना प्यारा था वहीं उनका देहावसान हो गया। जगदीश्वर से प्रार्थना है कि वे दिवङ्गत आत्मा को शान्ति, सद्गति प्रदान करें।

एक जीवन दानी चल बसा !

श्री ब्रह्मदेवलाल सिंह, उप-प्रधान संचालक सार्वदेशिक आर्य वीर दल

(१)

आर्य जगत के महान् विद्वान् पं० सदाशिवजी शर्मा का देहावसान गत २७ ८-७१ को भुवनेश्वर में प्रातः ८.४५ मिनट पर हो गया। पण्डित जी की अन्तिम इच्छा थी कि मैं अपने शरीर को उड़ीसा में ही बदलूं। परमात्मा ने उनके इच्छानुसार ही उड़ीसा की राजधानी भुवनेश्वर में ही उनके शरीर को बदल दिया। मुझे विश्वास है कि पण्डित जी की शेष इच्छा उड़ीसा में पैदा होकर वेद प्रचार करने की थी। अब वह जिसे पूरा करेंगे। पण्डित जी का आकस्मिक देहावसान आर्य जगत् के लिए बहुत बड़ी क्षति का कारण बन गया है, जिसकी पूर्ति नहीं हो रही है। निकट भविष्य में होती दिखाई नहीं देती।

जीवन दान :—पण्डित जी जब २५ वर्ष के थे, उसी समय एक आर्य समाज के वार्षिक उत्सव पर आर्य विद्वानों के पुकार से प्रभावित होकर खड़े होकर कहा कि मैं आर्य समाज के लिए अपने जीवन को अर्पित करता हूँ।

(२)

मैं अपना विवाह नहीं करूँगा। और मरते दम तक वेद का प्रचार करते रहूँगा। ईश्वर ने इनके दृढ़ संकल्प को निभाने में पूर्ण सहयोग किया। आजकल केयुग में इस प्रकार के दृढ़ संकल्प करने वाले वेद प्रचारकों का प्रायः अभाव ही है। पण्डित जी ने उस कथन को अक्षरशः सत्य कर दिया कि दृढ़ संकल्प कर्तव्य परायण मनुष्यों का सहायक परमात्मा होता है। पण्डित जी जब भुवनेश्वर के लिए प्रस्थान करने वाले थे, बहुत ही अस्वस्थ थे। भुवनेश्वर जाने के पूर्व जब कभी एक-दो रोज के पश्चात दल कार्यालय में उपस्थित होता था. तो आते ही पण्डित जी मुझे दल कार्यालय में बैठकर कहने लगते थे—ब्रह्मदेव जी, न मालूम क्यों इन दिनों में मेरा आपसे प्रत्येक दिन मिलना आवश्यक जान पड़ता है।

(३)

मैं समझता हूँ कि शहर का वातावरण यातायात के साधन उपलब्ध नहीं हैं। फिर भी यह तो मैं कहूँगा ही कि आपसे प्रत्येक दिन मिलना आनन्ददायक हो रहा है।

दृढ़ विचार :—पण्डित जी हमारे इस कहने पर कि आपका स्वास्थ्य ठीक नहीं है, भुवनेश्वर मत जाइये। पण्डित जी ने कहा—कार्यक्रम बन चुका है, मरना तो है ही, फिर डरना क्या ? फिर दो-तीन मिनट तक चुप रहने के पश्चात पण्डित जी से जो अन्तिम बातें हुई तो पण्डित जी ने कहा, आप चिन्ता न करें मैं ठीक हो जाऊँगा। आप आर्य वीर दल शिविर, आसनसोल में अवश्य लगाइये, मैं शिविर में अवश्य उपस्थित रहूँगा। साथ हीं मैं प्रयत्न करूँगा कि श्री पूनमचन्द जी के घर दीपावली-यज्ञ कराने के लिए मैं अवश्य उपस्थित रहूँ।

(४)

पण्डित जी हमलोगों से विदा हो भुवनेश्वर की ओर चल पड़े। हम नहीं समझते थे कि ये पण्डित जी की अन्तिम विदाई होगी।

पण्डित जी का अन्त्येष्टि संस्कार :—प्रातः ८ बजे २७ ८ ७१ को स्नानादि दैनिक कार्यों को सम्पन्न करने के पश्चात अपने वस्त्रों को पहन कर बच्चों से कुछ बातें कर रहे थे। श्रद्धेय स्वामी ब्रह्मानन्द जी स्वयं उपस्थित थे। मामूली दर्द के पश्चात डाक्टर के आने के पहले पण्डित जी चल बसे। जब कलकत्ते में हड़ताल मनाई जा रही थी उसी दिन उड़ीसा के समस्त आर्य परिवार पण्डित जी के अन्तेष्टि संस्कार सम्पन्न करने में व्यस्त एक शोक सन्तप्त हो रहे थे। उड़ीसा के आर्य बन्धुओं ने वैदिक पद्धति के अनुसार बड़े ही उल्लास के साथ सम्पन्न किया। इसके लिए स्वामी ब्रह्मानन्द जी एवं उड़ीसा के सभी आर्य बन्धु धन्यवाद के पात्र हैं।

पण्डित जी अपने जीवन के महत्वपूर्ण भागों को आर्य प्रतिनिधि सभा, पञ्जाब के प्रचारक के रूप में बहुत से महत्वपूर्ण रिलीफ सोसाइटी के सञ्चालक एवं सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की ओर से बिलोनिया केन्द्र के व्यवस्थापक रहे। उनका शेष जीवन आर्य समाज कलकत्ता में बीता। सबसे अधिक समय आर्य वीर दल कार्यालय के माध्यम से हमसे रहा। आर्य वीर दल के साथ पण्डित जी का अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध था। दल सम्बन्धी कार्यों में पण्डित जी का सहयोग एवं परामर्श सराहनीय रहा है। उन्होंने आर्य वीर दल के अनेक शिविरों में बौद्धकाध्यक्ष का कार्य किया था।

महर्षि कृत ग्रन्थों के हस्तलेखों की
रक्षा के लिये
ऋषि भक्तों और दानी महानुभावों की सेवा में निवेदन

महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत वेद भाष्य आदि ग्रन्थों के लगभग बीस हजार पृष्ठ हस्तलेखों के कागज अति जीर्ण हो रहे हैं, जिनके जीर्णोद्धार की व्यवस्था करना इस समय अति आवश्यक हो गया है इसके लिये भारत सरकार के अभिलेखागार, नई दिल्ली से पत्र व्यवहार किया गया, और वहां जाकर मैंने स्वयं जीर्णोद्धार कार्य को देखा, जो कि मशीन द्वारा होता है और कागज चाहे जैसे पुराने और जिस व्यवस्था में भी हो इस 'पटलीकरण' द्वारा पूर्ण सुरक्षित अवस्था में कर दिये जाते हैं। इसकी रेट भारत सरकार द्वारा लगभग डेढ़ रुपया प्रतिपृष्ठ बताई गयी। अभी ऋग्वेद भाष्य के लगभग एक हजार पृष्ठ का 'पटलीकरण' कराने की व्यवस्था की गई है जिसके लिये डेढ़ हजार रुपया सभा ने स्वीकार कर लिया है। आशा है यह कार्य शीघ्र ही सम्पन्न हो जायगा।

परन्तु कुल बीस हजार पृष्ठों का 'पटलीकरण' (जीर्णोद्धार) कराना है जिसके लिये लगभग तीस हजार रुपये के व्यय का अनुमान है। इस समय यह सभा इतनी बड़ी राशि इसमें लगाने में सक्षम नहीं है। क्योंकि सभा के सम्मुख एक अन्य और महत्वपूर्ण कार्य आ गया है जिसे आर्य-समाज स्थापना शताब्दि से पूर्व पूरा करने के लिये सभा कृत-संकल्प है।

वह कार्य यह है कि इस समय महर्षिकृत यजुर्वेद भाष्य प्रथम खण्ड, यजुर्वेद भाषा भाष्य प्रथम खण्ड, ऋग्वेद संहिता, ऋग्वेद भाष्य के सप्तम् और अष्टम् खण्ड समाप्त हो रहे हैं, इनका प्रकाशन सन् ७५ के पूर्व करके सर्वसाधारण के लिये उपलब्ध कराना है। इस कार्य के लिये कागज की व्यवस्था जिसमें बड़ी कठिनाई हो रही है, की जा रही है। इन सब ग्रन्थों के प्रकाशन में लगभग पचास साठ हजार रुपये लगेंगे। अतः हस्तलेखों के जीर्णोद्धार का कार्य भी कराया जाय यह कठिन हो रहा है। परन्तु इसका होना नितान्त आवश्यक है। जितना समय बीतेगा कागज अधिक जीर्ण होता जायगा

आर्य-समाज के धनीमानी, ऋषिभक्तों की सेवा में निवेदन है कि हस्तलेखों की रक्षा के लिये अपनी शुभ कमाई में से सभा की सहायता के लिये कृपा कर अपनी उदारता और ऋषि भक्ति का परिचय देते हुए मुक्त कर से अग्रसर होवें जिससे कि यह कार्य भी आर्य समाज स्थापना शताब्दी महोत्सव से पूर्व सम न्न हो जाय।

हस्तलेखों का जीर्णोद्धार हो जाने के पश्चात् यह सम्भव हो सकेगा कि बम्बई में समारोह के अवसर पर प्रदर्शनी में इनका भी प्रदर्शन किया जा सके। ऐसा होने पर इस कार्य में दान देने वाले सज्जनों की नाम सूचि पट्टिका भी प्रदर्शनी में रखने की व्यवस्था की जा सकेगी।

निवेदक :

श्रीकरण शारदा

मन्त्री

परोपकारिणी सभा

आर्य-समाज कलकत्ता

का

वार्षिकोत्सव

आगामी २५ दिसम्बर सन् १९७१ से २ जनवरी सन् १९७२ तक आर्य-समाज कलकत्ता का ८६वां वार्षिकोत्सव स्थानीय मुहम्मद अली पार्क में बड़े समारोह के साथ मनाया जायगा। इस अवसर पर **सामवेद परायण बृहद् यज्ञ** का आयोजन होगा। साथ ही अनेक उपयोगी एवं सामयिक सम्मेलनों के अतिरिक्त देश के गण्यमान्य संन्यासी, महात्मा एवं विद्वानों के प्रवचन से लाभ उठाने का अवसर मिलेगा। इस अवसर पर महात्मा आनन्द स्वामीजी सरस्वती के शुभागमन की स्वीकृति मिल गई है। विद्याभास्कर श्री वाचस्पतिजी शास्त्री महोपदेशक अभी से आ गये हैं और समाज के सन्देश का प्रचार करने में सचेष्ट हैं। स्वामी अग्निवेशजी परिव्राजक, डा० राजेन्द्रजी शुक्ल, एम० ए०, डी० फिल०, श्रीमती शकुन्तलाजी विद्यालङ्कृता, प्रो० उमाकान्तजी उपाध्याय, एम० ए०, श्री वेगराजजी भजनोपदेशक आदि महानुभावों के उपदेश व्याख्यान होंगे। उत्सव को सब प्रकार से सफल बनाने की चेष्टा हो रही है। आप अपना अमूल्य सहयोग उदारतापूर्वक देने की कृपा करें। उत्सव की सफलता आपके सहयोग पर ही निर्भर करती है।

श्रीनाथदास गुप्त

मन्त्री

विशेष प्रचार

आर्य-समाज कलकत्ता में विद्याभास्कर श्री पं० वाचस्पतिजी शास्त्री के द्वारा उपनिषदों की कथा प्रतिदिन रात्रि ८ बजे से ९ बजे तक स्थानीय समाज मन्दिर में बड़े सुन्दर, रोचक एवं हृदयग्राही ढंग से हो रही है। श्रद्धालु श्रोता इस सत्सङ्ग से लाभ उठाकर आयोजन को सफल बनावें।

दशरथलाल गुप्त

प्रचार सचिव

आर्य-समाज १९, विधान सरणी, कलकत्ता-६ के लिये पं० उमाकान्त उपाध्याय, एम० ए० द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित तथा [illegible] प्रेस, ११-ए, [illegible] लेन, कलकत्ता-७ में मुद्रित।

ओ३म्

वर्ष १३ अङ्क ८

आर्य-संसार

आर्य-समाज कलकत्ता

का

मासिक मुख पत्र

भाद्रपद

२०२८

सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिये।

—आर्य-समाज का सातवा नियम

अगस्त १९७१

"वार्षिक प्रगति-विशेषाङ्क"

मूल्य :—

एक प्रति २० पैसे

वार्षिक २) रुपये

आर्य-समाज कलकत्ता

१९, विधान सरणी,

कलकत्ता-६

अखिल भारतीय दयानन्द सेवाश्रम संघ

महर्षि दयानन्द भवन, रामलीला मैदान, नई दिल्ली-१

अखिल भारतीय दयानन्द सेवाश्रम संघ का वार्षिक अधिवेशन दिनांक १७ जुलाई १९७१ को महर्षि दयानन्द भवन में श्रीयुत सेठ प्रतापसिंह शूरजी वल्लभदास (बम्बई) की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। सर्वसम्मति से सत्र १९७१-७२ के लिये निम्न पदाधिकारी एवं अन्तरंग (कार्यकारिणी) सदस्य निर्वाचित हुए :—

१—*प्रधान*	श्रीयुत	सेठ प्रतापसिंह शूरजी वल्लभदास (बम्बई)
२—*उपप्रधान*	,,	लाला रामगोपालजी शालवाले (दिल्ली)
३—*महामन्त्री*	,,	ओ३म्प्रकाशजी त्यागी (दिल्ली)
४—*मन्त्री*	,,	भगवती प्रसादजी (बम्बई)
५— ,,	,,	निरञ्जन देवजी वर्मा (विदिशा)
६—*कोषाध्यक्ष*	,,	बालमुकन्दजी आहूजा (दिल्ली)
७—*सदस्य*	,,	सोमनाथजी मरवाह ऐडवोकेट (दिल्ली)
८— ,,	,,	गौरी शंकरजी कौशल (म० प्र०)
९— ,,	,,	सदाजीवित लालजी (बम्बई)
१०— ,,	,,	नन्दकुमारजी तवेजन (धनबाद)
११— ,,	,,	राजेश्वरजी (दिल्ली)
१२— ,,	,,	डा० डी० रामजी (बिहार) पटना
१३— ,,	,,	प्रभुदयालजी (कलकत्ता)
१४— ,,	,,	सोमदेवजी (कलकत्ता)
१५— ,,	,,	घनश्यामजी गोयल (कलकत्ता)
१६—*पुस्तकाध्यक्ष*	,,	ला० चतुर्सेनजी गुप्त
कार्यालय मन्त्री	,,	होशियार सिंह शर्मा (दिल्ली)

सर्वसम्मति से निश्चय किया गया कि संघ द्वारा अपने लक्ष्य को अग्रसर करने में और तीव्र गति से कार्य किया जावे। दानदाताओं के प्रति आभार प्रकट करते हुए प्रेरणा की गई कि वे पिछड़े लोगों को ऊपर उठाने में और हृदय खोलकर सहयोग देने की कृपा करें।

होशियार सिंह शर्मा
कार्यालय मन्त्री

॥ ओ३म् ॥

तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु

परम कारुणिक जगदीश्वर की अपार अनुकम्पा से मनुष्य को उसके भिन्न-भिन्न अङ्ग-प्रत्यङ्ग उपलब्ध होते हैं। प्रत्येक अङ्ग का अपना महत्त्व है और किसी अन्य अङ्ग की तुलना में कम या अधिक महत्त्वपूर्ण कहना या समझना बहुत अधिक समझदारी नहीं है। अपने-अपने स्थान पर सब का ही महत्त्व है, 'जहाँ काम आवे सुई कहा करै तरवारि'। तलवार का अपना महत्त्व है और बहुत बड़ा महत्त्व है। एक तलवार में जितना लोहा लगता है, उतने लोहे में सहस्रों सूइयाँ बन जाँयगी। फिर भी जो काम सूई से होगा, उसके लिए बड़ी, भारी, तेज़ चमकती हुई तलवार व्यर्थ है।

यही बात हमारे शरीर के अङ्गों के सम्बन्ध में भी है। आँखों की बरौनियाँ बड़ी नरम, अति लघुरूप और बाहर से साधारण रूप से देखने पर व्यर्थ सी ही लगती हैं। किन्तु आँखों की सुरक्षा के लिए उनका बड़ा ही महत्त्व है, यह थोड़ा भी ध्यान देने से विदित हो जाता है। इस प्रकार सारे ही अङ्गों का अपना महत्त्व है।

सभी अङ्ग हमारी जीवन-यात्रा के साधन हैं, हमारी जीवन यात्रा को सिद्ध करते हैं। इनमें से कुछ का नाम बहिष्करण और कुछ का नाम अन्तष्करण है। नेत्र, त्वचा, वाक्-रसना, श्रोत्रादि बहिष्करणों में गिने जाते हैं। 'साधकतमम् करणम्' पाणिनीय सूत्र है। करण का अर्थ ही है साधन। करणकारक उसे ही कहते हैं जो क्रिया की सिद्धि में सहायता करे। जो करण, जो साधन, बाहर से हमारे जीवन की यात्रा में सहायता कर रहे हैं, वे बहिष्करण हैं। नेत्र रूप को ग्रहण करते हैं, त्वक् स्पर्श को, वाक् वाणी बोलने, रसना स्वाद लेने और श्रोत्र शब्द श्रवण के उपकरण हैं। इनका भी बड़ा महत्त्व है। इनके अभाव में शरीर का चलना भी सम्भव नहीं रहता।

बहिष्करण के समान ही हमारे अन्तष्करण हैं। अन्तष्करण बहुधा चार माने जाते हैं, उन्हें अन्तःकरणचतुष्टय के नाम से अभिहित भी किया जाता है। मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार, ये चार अन्तष्करण माने जाते हैं। इस नामकरण और संख्या में कहीं-कहीं मतभेद दिखाई पड़ता है। हम अभी उस विवाद में नहीं पड़ते, इतना तो सर्वसम्मत है कि मन एक अङ्ग है और अन्तष्करणों में भी प्रमुख है। मन का महत्त्व कई स्थलों पर कई प्रकार से कहा गया है—

"मन के हारे हार है, मन के जीते जीत"।

शक्ति शरीर में रहती है, पर शरीर की अपेक्षा मन की शक्ति अधिक महत्त्व रखती है। जिसके मन में शक्ति है, वह कभी काम की कठिनाई के सामने झुकता नहीं है, वह कभी हारता नहीं है। जिस की मानसिक शक्ति गिर गई, उसकी हार निश्चित है। मन संकल्प विकल्प का साधन है। मन में पराजय के भाव उठने लगते हैं, तो सर्वपतन निश्चित सा ही हो जाता है। इसी लिए कहते हैं, "मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।"

शरीर हार भी जाता है तो कोई विशेष बात नहीं है।

मन में नहीं हारना चाहिए, मन में पराजय के भाव न आने पावे।

इसका यह अर्थ तो नहीं है कि "शेखचिल्ली" की भाँति मन के हवाई घोड़ों पर सवारी की जाय। "मन मोदक नहिं भूख बुझाई।" मन में लड्डू बनाने खाने से किसी की भूख नहीं जाती। फिर भी मन हमारे संकल्प विकल्प का साधन है। 'क्लृप् सामर्थ्ये' संकल्प का तो अर्थ ही अच्छी तरह, सम्यक् सामर्थ्य संग्रह करना। इस काम में मन का सहयोग, मन की उपयोगिता अपेक्षित है।

मनुष्य का मन ठीक है, तो सब कुछ ठीक है; मन बिगड़ गया तो कुछ बन नहीं सकता—

"मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयोः"

मनुष्य के बन्ध और मोक्ष का कारण मन ही है—

"सर्वेषां सङ्कल्पानां मन एकायतनम्"

सभी संकल्पों का घर एक मन ही है, अर्थात् सारे सामर्थ्य मन में ही बसते हैं—

"प्राणस्य ब्रह्मणो मनो दूतम्"

अर्थात् मन, प्राण और ब्रह्म का दूत है। अतः—

"जयेदादौ स्वकं मनः" आदि में अपने मन को जीतना चाहिए, वश में करना चाहिए।

मन को वश में करें कैसे?

श्रीमद् भगवद् गीता में अर्जुन श्रीकृष्ण से कहते हैं—

"चञ्चलं हि मनः कृष्ण! प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याऽहं निग्रहम्मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्॥"

अर्थात्—हे कृष्ण! मन चञ्चल है, मथने वाला बलवान् और दृढ़ है। जैसे वायु का निग्रह करना कठिन है, वैसे ही मन का निग्रह करना बड़ा कठिन है।

मन पर नियन्त्रण क्यों कठिन है? इस सम्बन्ध में गीता में ही एक श्लोक है—

"यततो ह्यपिकौन्तेय! पुरुषस्य विपश्चितः।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः॥"

अर्थात्—प्रयत्न करते रहने पर भी बुद्धिमान् पुरुष की भी इन्द्रियाँ मन को हर ले जाती है, मथ डालती हैं।

मनुष्य की यह स्थिति तब होती है जब वह इन्द्रियारामी हो कर इन्द्रियों के ही विषयों में विचरण करने लगता है—

"इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनु विधीयते।
तदस्य हरति प्रज्ञांवायुर्नावमिवाम्भसि॥"

मन के सम्बन्ध में कठोपनिषद् में एक वर्णन आता है:—

"आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेवतु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च॥"

और "इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान्"

इसका अभिप्राय यह है—

हमारा शरीर रथ है, आत्मा इस शरीर रूपी रथ का रथी है। इन्द्रियाँ इस रथ के घोड़े हैं, बुद्धि सारथी और मन लगाम है। इन घोड़ों के लिए इन्द्रियों के विषय ही गोचर भूमि हैं, जिनमें ये घोड़े चरते हैं।

अब जिस रथी के वश में सारथी नहीं, सारथी के वश में लगाम नहीं, न लगाम के वश में घोड़े। उस पर यदि घोड़े स्वछन्द चरने के लिए निकल पड़ें तो सब का ही नाश उपस्थित है।

साथ ही यदि लगाम पर नियन्त्रण हो जाय तो सब सिद्धि अपने आप हो जाती है। लगाम के नियन्त्रण का ही अर्थ है कि अब रथी, सारथी, घोड़े सब अपने स्थान पर उचित रूप से कर्मशील हैं।

यह लगाम तो मन ही है, इस मन को कैसे वशवर्ती बनाया जाय?

श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं—

"अभ्यासेन तु कौन्तेय! वैराग्येण च गृह्यते।"

अभ्यास और वैराग्य से मन को वशवर्ती बनाया जाता है।

किसका अभ्यास और किससे वैराग्य?

अभ्यास तो ध्यान का किया जाय।

"ध्यानन्निर्विषयं मनः।"

मन को विषयों से अलग करने का अभ्यास ही

तो वह अभ्यास है। इन्द्रियों के विषयों में मन चरने लगता है तो लगाम के बाहर, नियन्त्रण के बाहर हो जाता है। जब मन स्वच्छन्दतापूर्वक, बिना किसी नियन्त्रण के चरने लगता है, तब यह विषयों के वश में हो जाता है। मनुष्य का मन यदि तो बुद्धि के वश में रहेगा, तब तो ठीक है, यह अनर्थ के मार्ग पर नहीं चलेगा। "बुद्धिन्तु सारथिं विद्धि"— बुद्धि को सारथी समझो। जब मन रूपी लगाम बुद्धि रूपी सारथी के वश में है, फिर कोई चिन्ता नहीं। इसी का तो अभ्यास करना है कि मन अपने मनमानी, स्वच्छन्दता, न करे। जब मन का यह अभ्यास हो जाता है तो वह निर्विषय होकर ध्यान करने योग्य हो जाता है। यहाँ निर्विषय से हमारा अभिप्राय है इन्द्रियों के विषयों से अलग। यह भी तो साधना में बड़ा सहयोगी रूप है। रूप, रस, गन्ध शब्द-स्पर्श इनकी पकड़ से मन बाहर हो जाय, यह ऊँची साधना है। इन इन्द्रियों के विषयों में आसक्ति धीमे धीमे कम करनी चाहिए। इन विषयों में आसक्ति जितनी कम होती जायगी उतना ही मन वशवर्ती होता जायगा।

किन्तु यदि मन को निर्विषय न बनाकर विषयों के ही चिन्तन में लगाया जाय, विषयों का ही ध्यान किया जाय तो सर्वनाश में भी कोई सन्देह नहीं रह जाता।

ध्यायतो विषयान् पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥
क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृति विभ्रमः।
स्मृति भ्रंशात् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥

विषयों का ध्यान करने से उनमें सङ्ग करने की इच्छा होती है। इससे काम-शक्ति जाग उठती है, काम से क्रोध; क्रोध से सम्मोह, उससे स्मृतिभ्रंश, उससे बुद्धि का नाश और बुद्धि के नाश से सर्वनाश हो जाता है।

मन तो लगाम है—"मनः प्रग्रहमेव च।" उसे किसी न किसी के वश में रहना है। चाहे विषयों के वश में रहे, चाहे बुद्धि के वश में रहे। यदि मन विषयों के वश में हो जाय तो सर्वनाश और यदि मन बुद्धि के वश में हो जाय तो सर्वसिद्धि।

मन बुद्धि के वश में कैसे आवे, उसे सर्वसिद्धि का साधन कैसे बनया जाय?

इसका उत्तर है कि मन को शिव सङ्कल्प की साधना में लगावें।

मन की शक्ति महान् है। एक वेद मन्त्र ध्यान देने योग्य है—

"यज्जाग्रतो दूरमुदेति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरं गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः
शिवसङ्कल्पमस्तु॥

अर्थात् जो देव मन जाग्रत दशा में दूर चला जाता है; वह स्वप्न दशा में, सुषुप्ति में भी वैसे ही दूर चला जाता है। वह दूरगामी है और "ज्योतिषां ज्योतिः" वह चमकने वालों में भी चमकदार है। वह मेरा मन शिव संकल्प वाला हो।

इस मन्त्र में मन का एक स्वभाव बताया है कि वह "दूरङ्गमम्" दूरगामी है। किन्तु इसके इस काम में अन्य इन्द्रियों से थोड़ा अन्तर है। आँख जाग्रत अवस्था में देखती है, नाक जाग्रत अवस्था में सूँघती है, रसना जाग्रत अवस्था में चखती है। ये सब इन्द्रियाँ स्वप्नावस्था में निष्क्रिय हो जाती हैं। किन्तु मन "जाग्रतो दूरमुदेति" जागते हुए दूर चला जाता है और सुषुप्ति में, निद्रा में भी उसी प्रकार गतिशील रहता है। पता चला कि चाहे मन सो रहा हो या जाग रहा हो, यह तो चलता ही रहता है।

मन कहाँ-कहाँ भागता है—संसार की सच्चाई में, साथ ही कल्पना की समस्याओं में भागता ही रहता है। कभी अतीत की चिन्ता, कभी भविष्य की चिन्ता, कभी कल्पना की मिथ्या चिन्ता, कभी कल्पना का मधुर चिन्तन, आशा, निराशा, प्रतीक्षा, क्या-क्या रंग दिखाता रहता है। भागता हुआ मन कभी प्रसन्न कर देता है तो कभी निराश, कभी शेखचिल्ली के महल खड़े हो जाते हैं तो कभी कल्पना में ही नरक में वास करा देता है।

[शेष पृष्ठ ८ पर]

श्री सौदागरमल जी चोपड़ा के प्रति :
श्रद्धाञ्जलि

श्री वेदप्रकाश खोसला

बादलों में से जैसे सूरज झाँकता है, झाड़ियों में से फूल, उसी प्रकार मनुष्य का व्यक्तित्व अपने चतुर्दिक परिस्थितियों के मध्य से झाँकता है। तब तक हमें सूरज, पुष्प और व्यक्ति के असली रूप का अनुभव नहीं होता, जब तक कि वे लुप्त नहीं हो जाते। उनके लुप्त होने के बाद हम उनके रूप पर विचार करने लगते हैं और वे हमारे मानस पटल पर अपने व्यक्तित्व की रेखायें बनाते जाते हैं।

आज श्री सौदागरमल जी चोपड़ा हमारे मध्य नहीं हैं और उनके व्यक्तित्व की रेखायें एक-एक करके आज हमारे मानस पटल पर उभर आती हैं।

आर्य समाज के क्षेत्र में उनका अपना एक विशेष स्थान था। उसकी व्याख्या करना उसके व्यक्तित्व को सीमित करके देखना होगा। 'चोपड़ा जी' नाम से वे आर्य भाइयों के मध्य परिचित थे। आज उनके इहलौकिक प्रयाण को जो भी आर्य भाई सुनता है, वह यह कहे बिना नहीं रहता—"हैं, चोपड़ा जी की मृत्यु हो गई !" आश्चर्य, दुःख और अभाव के भावों से मिश्रित यह आकस्मिक उद्गार हमारे सम्बन्ध को जो आजीवन श्री सौदागरमल जी चोपड़ा का हमसे बना रहा याद दिलाते हैं।

कितनी दूर श्री चोपड़ा जी आर्य जगत् में परिचित थे, उसके बारे में कुछ कहा नहीं जा सकता है। जिस व्यक्ति ने भी कभी उनके पास बैठने का सौभाग्य प्राप्त किया है, उसे सदा ही आर्यसमाज की कहानी चलने पर उनके एक लम्बे परिचय का आभास हुआ होगा। आर्यसमाज के पण्डितों, भजनीकों और कार्यकर्ताओं से उनका गहरा एवं लम्बा परिचय था, और जो उनको नहीं जान पाये थे, उनमें से भी अनेक को उन्होंने अपने परिचय में शामिल कर लिया था, क्योंकि वे उनको जानते थे। आर्यसमाज के ज्वलन्त युग के व्यक्तियों—जैसे महात्मा हंसराज जी, स्वामी श्रद्धानन्द जी, ला० साईदास जी आदि व्यक्तियों की जीवन-घटघटनाओं में वे डूबे-से रहते थे। इनके सम्बन्ध में जब वे चर्चायें चलाते थे तो ऐसा प्रतीत होता था मानो हम साक्षात् उन घटनाओं को देख रहे हैं। उनके वृद्ध शरीर को सामने बैठा देखकर, जो कि अब प्रायः निःशक्त होता जा रहा था, और उनके मुख से आर्य समाज के प्राणदाता नेताओं की जीवन गाथायें सुनते हुए और उनके साथ सम्बन्ध को अनुभव करते हुए कोई भी व्यक्ति आर्यसमाज के लिये अर्पित एक जीवन को सजीव रूप में सम्मुख उपस्थित देखता था।

आर्य समाज के क्षेत्र से सम्बन्धित कोई व्यक्ति जब कलकत्ता आता था तो उनसे कुछ-न-कुछ अवश्य प्राप्त करता था। निराशा का वह घर नहीं था। कलकत्ते आने वाला आर्य हितैषी अवश्य ही अपनी सूची में 'चोपड़ा' जी का नाम शामिल करके आता था।

वर्तमान समय में उनका कलकत्ता आर्य समाज से विशेष सम्बन्ध था। वे आर्य समाज की ओर से स्वतः नियुक्त यजमान थे। कलकत्ता आर्य समाज में कोई भी विद्वान् आये उसके भोजन की व्यवस्था के लिये किसी को चिन्ता करने की जरूरत नहीं थी। चोपड़ा जी का घर इसके लिये सदा खुला था। अवधि की कोई पाबन्दी नहीं थी। कोई महीना रहे, दो महीना रहे। कभी इन्कार न थी। उन्हें तो व्याकुलता रहा करती थी कि "खाना तो खा गये"। कलकत्ता आर्य समाज की एक बड़ी समस्या उन्होंने हल कर रखी थी। कलकत्ता आर्य समाज का कोई कार्यक्रम हो और आर्य समाज के अधिकारी व हितैषी श्री चोपड़ा जी से उसमें उनके सहयोग की आशा करते हों तो वह अवश्य ही मिलता था। उत्सव पर चन्दा, पत्रिका में विज्ञापन, आर्य समाज की ओर से कोई सेवा-कार्य प्रारम्भ किया जाये तो उसमें योगदान, आर्य समाज का कोई और चन्दा हो तो उसमें सहयोग—सर्वत्र वे सहयोग के रूप में वर्तमान रहते थे।

संस्थाओं के कार्यकर्ताओं और संस्थाओं से सम्बन्धित व्यक्तियों में कभी-कभी किसी-किसी प्रश्न पर मतभेद हो जाया करते हैं। चोपड़ा जी भी इससे अछूते नहीं थे, पर सहयोग की धारा उनमें ऐसी प्रवाहित थी कि ये मतभेद भी कभी उन्हें इससे नहीं रोकते थे। मैंने देखा वे अपनी असहमति प्रकट करते थे अनेक प्रश्नों के बारे में, पर जब चन्दा लेने वाले व्यक्ति उनसे चन्दे के लिये कहते थे तो हाथ अपना खोल देते थे। कहा करते थे—यह तो मुझे करना ही होगा।

वे किसी व्यक्ति की प्रशंसा में जितने दीवाने हो जाते थे उतना ही अपना मतभेद प्रकट करने में भी उग्र हो जाते थे। कभी-कभी यह बात किसी को शायद असह्य भी लगती थी। परन्तु जिसने दोनों पलड़ों की तराजू को संभाले हुए श्री चोपड़ा जी से मुलाकात करने का सौभाग्य प्राप्त किया हो, वह जानता था वे दीवाने थे तो उग्र भी थे। पर आर्य समाज के प्रति स्नेह और आर्य समाज के लिये सहयोग में सदा उदार थे, असीम थे एवं अविराम थे।

जीवन के अन्तिम वर्षों में वे प्रायः बीमार ही रहते थे। दिनोंदिन उनकी शारीरिक शक्ति क्षीण होती गई। उन्हें हमेशा इस बात का अफसोस होता था कि वे आर्य समाज के सत्संग में नहीं जा सकते, उत्सव में नहीं जा सकते और यदि कोई आकर उन्हें उनका वर्णन सुनाता था तो उनका दिल भरता नहीं था। उनकी इच्छा होती थी कि वे इस को सुनते रहें। अब वे पढ़ भी मुश्किल से सकते थे। पर कोई न कोई नई पुस्तक उनके पास पड़ी ही रहती थी और उसे वे उलटते-पुलटते रहते थे।

ज्वालापुर वानप्रस्थ आश्रम की यात्रा उनके लिये अपने अन्तिम वर्षों में एक तीर्थयात्रा हो गई थी। प्रतिवर्ष वहाँ वे जाते थे। क्यों ? केवल इसलिये कि वहाँ उन्हें सत्संग करने को मिलता था और आर्य समाज के वृद्ध व्यक्तियों के साथ रहने का मौका मिलता था। लौटकर जब आते थे तब उस वायुमण्डल की याद बराबर करते रहते थे। यहाँ वानप्रस्थ आश्रम में भी उन्होंने अपना सहयोग दिया। वहाँ पाठशाला बनाई गई है, उसके निर्माण में उनका योगदान है। वानप्रस्थ आश्रम में उनका कमरा है। वह भी शायद अब आश्रम को मिल जायेगा। 'मुझे देना है' यह बात उन पर एक धुन के रूप में सवार रहती थी।

श्री चोपड़ाजी आर्य समाज के कोई बड़े नेता न थे, वे कोई बड़े आर्यसमाजी विद्वान न थे- वे बड़े सेठ न थे। बड़प्पन यदि कोई ढूँढ़ने जाये तो वहाँ शायद वह चोपड़ा जी को न पाता, न पायेगा। पर उनमें और आर्य समाज में एक आत्मीयता थी। वे आर्य समाज को और आर्यसमाजियों को अपने साथ देखते थे और आर्यसमाज एवं

आर्य समाजी—जहाँ भी चोपड़ाजी रहते थे—उनके बिना अपने को न देख सकते थे।

परमात्मा ने उनको एक बलिष्ठ शरीर दिया था। मेहनती शरीर था और साथ में उनमें थी अच्छा काम करने की भावना। उन्होंने अपनी मेहनत से अपनी आर्थिक स्थिति बनाई थी। छोटे-मोटे काम किये थे, भूखे भी रहे थे। अब जब उनके पास इतना था कि वे हर तरह के आराम का उपयोग जो सामान्य व्यक्तियों को मिलता है, प्राप्त कर सकते थे - तब भी किफायत के बड़े हामी थे। कभी-कभी उनके बन्धु उनके इस स्वभाव पर नाराज भी हो जाते थे। वे यही उन्हें कहा करते थे - मेहनत के दिन मैंने बिताये हैं। मैं चाहता हूँ वह मेहनत मुझ में बनी रहे।

आर्थिक दृष्टि से वे एक सामान्य व्यक्ति थे। पर वे अच्छा खाते थे, अच्छा पहनते थे और अच्छे खर्चे चलाते थे। मेहनत ने उन्हें सामार्थ्यवान् बनाया था। वे सामार्थ्य का उपयोग अपने उपभोग के साथ-साथ अन्यों के उपभोग के लिये भी खर्च करते थे। जीवन के आखिरी दम तक वे ऐसा करते रहे।

दान की वह शिक्षा जो हमें ऋषि-मुनि दे गये हैं—"ह्रिया देयम्, भिया देयम्" को उन्होंने अपनाया हुआ था और उसमें वे आत्मा से दीक्षित थे।

अपनी बाल्यावस्था में अपने यौवन में और अपने वार्द्धक्य में उन्होंने कौन-सा काम किया, इसका लेखा-जोखा मैं उन व्यक्तियों पर ही छोड़ता हूँ जो उनसे आभाषित हुए हैं। श्री चोपड़ाजी के दिवंगत होने का समाचार उनके मानस पटल पर स्वभाविक रूपेण उन घटनाओं को उभार देगा। हम शनैः-शनैः उन व्यक्तियों से सुनेंगे। मैं तो यहां केवल चन्द शब्द चोपड़ा जी के बारे में दे रहा हूँ और उनके समष्टिगत रूप के एक छोटे से भाग को प्रस्तुत करने का मैंने यहां प्रयास किया है जो कि आर्य-समाज से पुष्ट था, आर्य-समाज के लिये समर्पित था और आर्य-समाज के साथ एक आत्म था।

श्री चोपड़ा जी जिनका पूरा नाम श्री सौदागरमल जी चोपड़ा था। वे ऐसे पद चिन्ह छोड़ गये हैं जिन पर हम सब चल सकते हैं। हमें बहुत बड़ा होने की आवश्यकता नहीं है, बहुत धनी बनने की जरूरत नहीं है बहुत क्रियाशील होने की जरूरत नहीं है। हमारे मन में होना चाहिये आर्य समाज के प्रति प्रेम आर्य समाज के कार्यकलाप में आनन्द एवं उत्साह लेने की प्रवृति और उसमें अपना योगदान करने के लिये उत्साह। श्री चोपड़ा जी साधारण होते हुए भी असाधारण थे। आर्य समाज के लिये वे एक अनन्य व्यक्ति थे।

निवेदन

विगत कई वर्षों से बालक-बालिकाओं को संध्या-अग्निहोत्र की शिक्षा देने का आर्य समाज कलकत्ता ने प्रबन्ध किया हुआ है, हमारे अनुरोध पर ही पण्डितजी ने उसी शिक्षण विधि को लेखवद्ध कर दिया है। बच्चों की धर्म-शिक्षा के लिये उपयोगी जानकर कई-गृहस्थों की आर्थिक सहायता से इस पुस्तक का प्रकाशन किया जा रहा है। आशा है अभिभावक गण इस पुस्तक में वर्णित ढंग से अपनी संतान को शिक्षा देने का यत्न करेंगे। इसी क्रम में बालोपयोगी शिक्षादायक और भी कई पुस्तकें क्रमशः प्रकाशित की जायेंगी।

पुनमचन्द आर्य
१-९-७१

क्या करें....क्या न करें

ले०—मेघराज आर्य, खेल बजार, पानीपत

एक समय था, जब ब्याह-शादी के अवसर पर वेश्याओं को नाच-गाने के लिये बुलाया जाता इसे बड़प्पन की निशानी समझा जाता था। कालान्तर में वेश्याओं का स्थान उनका स्वांग भरने वाले पुरुषों ने ले लिया। कुछ समय से लोग इस विषय में अपने पैरों पर खड़े हो गये हैं और स्वयं बरातियों में से ही कुछ लोग भंगड़ा, नाचने, बोलें बोलने और बगलें बजाने का काम करने लगे हैं। कहना न होगा कि इस बेहूदगी में शराब का पूरा-पूरा साथ होता है। अब स्थिति यहां तक बिगड़ गई है कि पुरुषों के साथ-साथ स्त्रियां भी भरे बाजार नाचती चलती हैं। वेश्यायें नचाना यदि बड़प्पन की निशानी थी तो शराब में पागल होकर सड़कों पर भंगड़ा नाचना आधुनिकता की पहचान बन गई है। अधिकतर लोग जहां इससे मजा लेते हैं वहां (दकियानूसी समझे जाने वाले) अपनी प्राचीन सभ्यता और संस्कृति को याद करने वाले लोग अन्दर ही अन्दर रोते हैं। बिजली की चकाचौंध भयंकर तथा स्वास्थ्य के लिये हानिकारक आतिशबाजी की चमक और सजावट की प्रदर्शनी में खोकर आदमी विवाह की बात को तो जैसे भूल ही जाता है। समाज में बड़े माने जाने वाले लोग यह सब कुछ करते हैं। साधारण लोग भी अपने-अपने सामर्थ्य के अनुसार करने में क्यों चूकने लगें? संक्रामक रोग की तरह यह बीमारियां फैलती जा रही हैं। मुसीबत की तरह बुराई भी अकेले नहीं आती झगड़ा आता है। लेकिन शराब के बिना उसका रंग नहीं जमता, शराब का नशा होते ही भले-बुरे का ज्ञान चला जाता है। माँ-बहन की तमीज विदा हो जाती है। जो मुँह में आता है निकलता रहता है। परिणामस्वरूप झगड़े, विवाद, गाली-गलौज और मारपीट तक की नौबत आती है। कुछ समय की बात है पानीपत में ही बरातियों और लड़की वालों के बीच इसी कारण सिर फुटौवल तक की बात जा पहुँची। ६ जून, '७१ के प्रताप में प्रकाशित एक समाचार के अनुसार जब शराब में मस्त हो नाचने वाले बाराती ने दर्शकों में खड़ी एक स्त्री को अपनी ओर खींच लिया तो हंगामा हो गया और मामला पुलिस तक गया। १८ जून, '७१ के हिन्द समाचार में छपी खबर के अनुसार शराब में मदहोश भगड़ा डालते हुए एक बराती ने लड़कियों को देख संगोरा मारा। दुसरों ने बुरा मनाया—परिणाम स्वरूप गंडासे चले, एक कत्ल हुआ, एक जख्मी हुआ और तीन गिरफ्तार हुए।

इसी प्रकार सेहरा बोलने वाले की वाहवाही और उस पर होने वाली रुपयों की बौछार देखकर विवाह संस्कार कराने आया हुआ वेदों का विद्वान सोचता है कि मैंने तो व्यर्थ ही जीवन गंवाया। न लोगों का मनोरञ्जन करके उनका प्रिय बन सका और न अपना ही कुछ बना पाया, फिर घण्टों बेकार की बातों में नष्ट करने और सबके चले जाने के बाद जब वह संस्कार कराने बैठता है तो उसे कहा जाता है कि देखना पण्डित जी, जरा जल्दी काम निपटा देना। अभी बहुत काम करने हैं, तो बेचारा मन मसोस कर रह जाता है। चलते समय जब पण्डित जी के हाथ पर ५ रुपये रखे जाते हैं तो वह सोचता है कि काश, मैं बाजे वालों में छैने बजाने का काम ही कर लेता। बच्चों का पेट

तो भर पाता। कुछ कह बैठे तो लोभी की उपाधि से भी विभूषित किया जाता है। एक बरात में तो सेहरा बोलने वाले को बम्बई से दिल्ली आने-जाने का वायुयान का किराया देकर बुलाया गया। दक्षिणा और इनाम में भी हजारों रुपये मिले।

वास्तव में मुख्यता विवाह संस्कार को ही दी जानी चाहिये। सारा कार्यक्रम उसी को सामने रख कर बनाया जाना चाहिये, संस्कार दिन छुपने से एक घण्टा पहले शुरू हो जाना चाहिये, जनवासे से चलकर लड़की वाले स्थान पर पहुँचने में कम से कम समय लगना चाहिये। बाजा बजने के अलावा रास्ते में किसी प्रकार का नाच-गाना पूरी तरह निषिद्ध होना चाहिये। भंगड़ा और शराब को किसी भी रूप में पास न फटकने दिया जाये। लोगों को चाहिये कि जहां कहीं ऐसा हो वहां सम्मिलित न हों। लड़की वाले के यहां पहुँचने पर स्वागत के साथ ही संस्कार की कार्यवाही प्रारम्भ हो जावे। संस्कार के समय बराती-घराती सभी लोग उपस्थित रहें, वेदी ठीक तरह से बनी हो। सभी के बैठने की उत्तम व्यवस्था हो। सब को सब कुछ सुनाई दे सके इसके लिये लाऊड स्पीकर लगा दिया जाये। शोर मचाने वाले बेहूदा गानों के रिकार्ड बिल्कुल न बजाये जायें। पुरोहित को दक्षिणा अधिक से अधिक दी जानी चाहिये, जिससे ब्राह्मणों का सम्मान बढ़े। संस्कार की समाप्ति पर ही भोजन किया जाना चाहिये, जो नित्य प्रति वाला ही समय होगा।

दहेज यथाशक्ति दिया भी जाय तो बिना प्रदर्शन की भावना के। सोफा जैसी बड़ी चीजें देते समय इस बात का ध्यान रखा जावे कि उसके रखने के लिये लड़के वालों के भवन में पर्याप्त स्थान है। इस विषय में आवश्यकता अनुसार लड़के वालों से पहले परामर्श कर लेना भी ठीक हो सकता है।

आशा है, समाज सुधार की दृष्टि से दिये गये इन सुझावों पर समाज के मुख्या विशेष रूप से ध्यान देंगे। उनके पीछे चलने वाले बहुत हैं। इस परिवर्तक कार्य-क्रम को जो पहले अपनायेंगे वह यश के भागी बनेंगे।

[पृष्ठ ३ का शेषांश]

ऐसे मन के लिए वेद ने दो विशेषण दिये हैं, एक "देवम्" दूसरा "ज्योतिषांज्योतिः।"

यह मन देव है, दिव्य गुणविशिष्ट है।

यह ज्योतिष्मानों में ज्योतिवाला है।

इस दिव्य ज्योतिवाले मन के लिए प्रार्थना की जा रही है—"तनमे मनः शिवसंकल्पमस्तु"—वह हमारा मन शिव-संकल्प वाला बने।

संकल्प शब्द 'कृपू सामर्थ्ये' से बना है। अच्छी तरह सामर्थ्य जागरित करना ही संकल्प है। कार्य के प्रति दृढ़ निश्चय और कार्य को सम्पन्न करने की उत्कट अभिलाषा मिलकर सामर्थ्य जगा देते हैं। किन्तु ऐसा सङ्कल्प तो अच्छे-बुरे सभी कामों के लिए होता है। चोर चोरी करता है, डाकू डाके डालता है, हत्यारा हत्याएँ करता है। इन सब के पीछे तो सङ्कल्प शक्ति छिपी रहती है। साथ ही—

"सङ्कल्प मूलः कामो वै यज्ञाः सङ्कल्प सम्भवाः।
व्रतानि यम धर्माश्च सर्वे सङ्कल्पजाः स्मृताः॥

सब काम, सभी यज्ञ, व्रत, यम, नियम, धर्म आदि सभी सङ्कल्प से ही सम्भव होते हैं।

अच्छे कामों के पीछे तो सङ्कल्प होता ही है, बुरे कामों के पीछे भी सङ्कल्प शक्ति काम करती है। इसी लिए प्रार्थना है कि हमारा मन 'शिवसङ्कल्प' वाला हो।

हमारा कार्य 'शिव (कल्याणकारी) हो, कार्य करने के हमारे साधन शिव हों, हमारा उद्देश्य और अभिप्राय सभी कल्याणमय होने से मन शिवसंकल्प वाला हो पाता है। कार्य, कार्य के उद्देश्य, करने का साधन और कर्ता की अपनी आकांक्षा, सब कुछ कल्याणमय बनाये रखने से मन शिवसंकल्प वाला हो जाता है। यही धर्म का, सुख का, उद्भव का कार्य है, नान्यः पन्थाः।

आर्यसमाज कलकत्ता की प्रगतियों का सिंहावलोकन

(सन् १९७०-७१)

गत वर्ष ५ जुलाई, १९७० को वार्षिक सभा के साधारण अधिवेशनों में चुने गये १९७० के पदाधिकारियों तथा अन्तरंग में उपस्थित सभासदों की सूची :—

			उपस्थिति
१.	प्रधान	श्री बनारसीदासजी अरोड़ा	६
२.	उपप्रधान	” ओम्प्रकाशजी गोयल	५
३.	”	” प्यारेलालजी मनचन्दा	८
४.	मन्त्री	” छबीलदास सैनी	६
५.	उपमन्त्री	” दशरथलालजी गुप्त	८
६.	”	” श्रीरामजी जायसवाल	८
७.	प्रचार मन्त्री	” शिवदासजी गुप्त	५
८.	उपप्रचार मन्त्री	” बासुदेवजी शाह	५
९.	कोषाध्यक्ष	” श्रीनाथदास गुप्त	१०
१०.	पुस्तकाध्यक्ष	” रघुनन्दनलालजी आर्य	१०
११.	उपपुस्तकाध्यक्ष	” सतीशकुमारजी श्रीवास्तव	×
१२.	आय-व्यय निरीक्षक	” सत्यानन्दजी आर्य	४
१३.	प्रतिष्ठित धन सदस्य	” सेठ कृष्णलालजी पोद्दार	१
१४.	” ” ”	” ललियारामजी गुप्त	१०
१५.	” विद्या सदस्य	” उमाकान्तजी उपाध्याय	५
१६.	” ”	” दीनबन्धुजी वेदशास्त्री	६
१७.	अन्तरंग सदस्य	श्री पूनमचन्दजी आर्य	३
१८.	”	” भगवानदासजी गिरधर	२
१९.	”	” सोमदेवजी गुप्त	४
२०.	”	” सुखदेवजी शर्मा	७
२१.	”	” रामस्वरूपजी खन्ना	६
२२.	”	” लक्ष्मणसिंहजी	११
२३.	”	” अमरसिंहजी सैनी	८
२४.	”	” हंसराजजी चड्ढा	६
२५.	”	” मिहिरचन्दजी धीमान	२
२६.	”	” किशोरीलालजी दवे	८
२७.	” (पदेन)	” कृष्णलालजी खट्टर (प्रधानाध्यापक रघुमल आर्य विद्यालय)	×
२८.	” (पदेन)	श्रीमती कमल सूद (प्रधानाध्यापिका आर्य कन्या महाविद्यालय)	१
२९.	” (पदेन)	श्रीमती विद्यावतीजी सभरवाल (प्रधाना, आर्य स्त्री समाज, कलकत्ता)	×

सन् १८५७ का समय था शताब्दियों से विदेशी शासन के नीचे पिसती हुई जनता ने प्रादेशिक क्रान्ति द्वारा मुगलों के व्यापक साम्राज्य को खण्ड-खण्ड तथा जर्जर कर दिया था। आशा लगी थी कि अब आर्यावर्त विदेशियों के धर्म-विरोधी तथा अत्याचारी शासन से मुक्त होगा, किन्तु इस आशा पर तुषारापात कर दिया अंगरेजों ने। चोर दरवाजे से घुसकर, वे व्यापारी बनकर आये और शासक बनकर राज्यासन पर

आरूढ़ हो गये। उन्होंने मुगल साम्राज्य की टूटी हुई कड़ियों के रिक्त में घुसकर कुटिल नीति से अपना साम्राज्य बढ़ाना प्रारम्भ कर दिया। एक के बाद एक नवाबों तथा राजाओं के सिंहासन गिरने लगे और अंगरेज उसपर अधिकार करने लगे। उन्होंने किसी से लड़कर और किसी को मित्र बनाकर उसकी राज्य-सत्ता हथिया ली। देखते ही देखते ये श्वेत-कुष्ठ का रोग सारे देश में फैलने लगा। अंगरेजी साम्राज्य का शिकंजा दिन पर दिन कड़ा होता गया। यह साम्राज्य पूर्ववर्ती यवन साम्राज्य से कहीं अधिक कष्टदायक था क्योंकि यवनों ने तो भारत का केवल राजनैतिक दोहन ही किया था किन्तु ये तो राजनैतिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक सभी प्रकार का दोहन कर रहे थे। कुछ ही समय में भारतीयों ने पराधीनता के इस शिकंजे का कसाव अपने चारों ओर अनुभव किया जो क्षण-क्षण कसता ही जा रहा था क्योंकि इस शिकंजे में हिन्दू और मुसल्मान दोनों ही समान रूप से कसे जा रहे थे इसलिये दोनों ही कुलमुला रहे थे और बेचेनी से इससे छुटकारा पाना चाहते थे। 'मरता क्या न करता' एक दिन वह समय आ ही तो गया, जनता के असन्तोष ने एक व्यापक क्रान्ति का रूप ले लिया रोटी और कम्बल ने सर्वत्र क्रान्ति का सन्देश पहुँचा दिया। सारे देश में धांय-धांय होने लगी, कम्पनी राज्य के खूंटे उखड़ने लगे, स्वाधीनता की वीर-वाहिनी आगे बढ़ी, एक पर एक किला जीतती गयी और दिल्ली के तख्त तक पहुँच गई। किन्तु दुर्भाग्य, जो अव्यवस्था अकुशलता तथा लक्ष्यशून्यता ने स्वातन्त्र्य-वाहिनी के रथ को रोक लिये। देश-द्रोहियों ने भी अपनी करतूत दिखाई और भागते हुए अंग्रेजों को पुनः ठहरा लिया। इस स्वातन्त्र संग्राम के विफल होते ही अंग्रेजी राज्य का शिकंजा और कड़ा हो गया और बदले की भावना से तथा आतंक जमाने के लिये निरीह जनता की सामूहिक लूट, आगजनी तथा हत्यायें की जाने लगीं, चारों ओर आतङ्क छा गया, कोई मुँह खोलने की हिम्मत नहीं करता था। देश की इस दुर्दशा को एक तरुण ब्रह्मचारी आयु प्रायः ३५ वर्ष, अति समीप से देख रहा था। उसने राष्ट्र की उन उमंगों को क्रान्ति के उस अभियान को बड़ी ममता से देखा था न केवल निरीह दर्शक बनकर किन्तु सक्रिय रूप में उस दिव्यद्रष्टा का इस अभियान में किस रूप में कितना सहयोग था, यह तो अज्ञात जीवनी के लेखकों के लिये भी अज्ञात ही है क्योंकि स्वयं ही उस विलक्षण ने अपनी इस जीवनी पर पर्दा डाल दिया। मेरठ में आर्य-पुरुषों को अपना सम्पूर्ण जीवन-वृत्तान्त सुनाया किन्तु क्रान्ति के इस वृत्तान्त को यह कहकर टाल दिया कि इन तीन वर्षों में मैं गंगा से नर्बदा तक भ्रमण करता रहा। लाख पर्दा डालो पर समझने वाले तो समझ ही गये कि इन दिनों में गंगा से नर्बदा तक भ्रमण का क्या अर्थ है ? स्वाधीनता के आन्दोलन की विफलता और अंग्रेजों के दिन पर दिन बढ़ते हुए अत्याचारों ने उस दिव्य-पुरुष के हृदय में ज्वाला जला दी। वह अकेला ही आर्यावर्त की इस दुर्दशा पर रोता रहा और निरन्तर चिन्तन करता रहा कि यह दशा मेरे देश की क्यों हुई ? 'जिन खोजा तिन पाइया गहरे पानी पैठ' अजस्र चिन्तन ने देश की दुर्दशा का निदान सन्मुख प्रस्तुत कर दिया, परिणाम आया कि अविद्या, अन्ध-विश्वास, पाखंड और फूट ही इस दुर्दशा का कारण है। सामाजिक कुरीतियों में फँसा हुआ राष्ट्र क्रान्ति करने में कदापि सफल नहीं हो सकता अतः उसने अपने दिव्य-चिन्तन से समाज के सम्पूर्ण रोगों की एक औषध निश्चय की कि जहाँ से मार्ग भूले हो वहीं वापस चलो, वेदों की ओर लौटो। ऐसे उद्घोष के साथ वेदों की चलती हुई लूका (मशाल) हाथ में लेकर उसी से रूढ़िवाद तथा अन्ध-विश्वास के कूड़े के ढेरों को सब जगह जलाया। समाज ने राहत की सांस ली, अन्ध-विश्वासों से छूटकर स्वतन्त्र चिन्तन प्रारम्भ हुआ, सत्यान्वेषण की भावना जगी, अपनी दुर्दशा का भान हुआ महापुरुष के द्वारा प्रदत्त प्रकाश में हमें अतीत का गौरवपूर्ण चित्र जो अब तक अन्धार के कारण दिखायी नहीं देता था, अब स्पष्ट दीखने लगा। सुप्त स्वाभिमान पुनः जगा और पराधीनता के प्रति पुनः असह्य वेदना जागरूक हुई।

स्वाधीनता की प्राप्ति के लिये अनेकों अञ्चलों से आन्दोलन उठे किन्तु सभी पर उस महापुरुष के दिव्य-चिन्तन का प्रभाव था अतः प्रत्येक आन्दोलन समाज-सुधार और रचनात्मक योजनाओं को लिये था। ऐसे ही अनेकों आन्दोलनों में महात्मा गांधीजी के नेतृत्व में भी एक प्रबल आन्दोलन चला जिसे बृटिश साम्राज्य को अन्तिम धक्का देने का गौरव प्राप्त हुआ। यह आन्दोलन भी स्वामी दयानन्द के आन्दोलन से पूर्णरूपेण प्रभावित था, क्योंकि विदेशीय शासन के प्रति घृणा स्वदेशी से प्रेम, अछूतोद्धार, साम्प्रदायिक सामञ्जस्य और स्वराष्ट्रभाषा आदि सभी रचनात्मक कार्यक्रम ऋषि दयानन्द के कार्यक्रमों में से ही लिये गये थे। इसी लिये कविवर प्रकाशचन्द्रजी अजमेरी ने ये पंक्तियाँ लिखीं—'दयानन्द देव वेदों का उजाला लेके आये थे' कोई माने न माने सच तो है ऋषिराज ही पहले स्वराज्य स्थापना का मन्त्र सच्चा ले के आये थे। ऋषि दयानन्द ने अपनी इस वैदिक लूका (मशाल) को निरन्तर जाज्वल्यमान रखने के लिये सर्वप्रथम बम्बई नगर में सन् १८७५ ई० में आर्य-समाज की स्थापना की। शीघ्र ही देश तथा विदेश में इस संगठन की शाखायें फैल गईं। उसी क्रम में आपका प्रिय कलकत्ता आर्यसमाज भी है जो निरन्तर ८६ वर्षों से राष्ट्र-सेवा, जनजागरण और रूढ़िवाद तथा अन्ध-विश्वासों के विरुद्ध लड़ रहा है। आर्यसमाज की एक-एक पाई और एक-एक इञ्च भूमि राष्ट्र सेवा के कार्यों में लगी हुई है। स्वल्प सामर्थ्य होते हुए भी आपकी यह संस्था कितना कार्य कर रही है, जानकर आप प्रसन्न होंगे। अतः कलकत्ता आर्यसमाज की वार्षिक प्रगति-चित्र आपके सामने प्रस्तुत हैं।

वार्षिकोत्सव :

हमारा वार्षिकोत्सव हमारे समाज का सबसे बड़ा आयोजन है। इस शुभ अवसर पर हम एक बड़े संगम में मिलते हैं—विचारों का संगम, आर्य विद्वानों, भजनीकों एवं संन्यासियों के साथ संगम होता है और यह हमारे वर्तमान और भूतपूर्व कार्यकर्त्ताओं के आपके सम्मुख प्रस्तुत कार्यों का भी संगम है।

वर्ष के मध्य भाग में हमारे समाज का वार्षिक चुनाव होता है। नये कार्यकर्त्ताओं को पुराने कार्यकर्त्ता समाज के कार्यों की व्यवस्था की बागडोर सौंप देते हैं और इस प्रकार जब नये कार्यकर्त्ता पुरानी धरोहर का सहारा लेकर समाज के कार्य मन्दिर में नई ईंटें लगाने लगते हैं, तब यह वार्षिकोत्सव का महान् संगम उपस्थित हो जाता है। जिसके आयोजन की सफलता केवल कार्यकर्त्ताओं पर ही नहीं, अपितु समाज से सम्बन्धित प्रत्येक व्यक्ति के सहयोग एवं सद्भावना पर निर्भर करती है। हमें अपने वार्षिकोत्सव के अवसर पर अधिकतम चन्दा एकत्रित करना होता है। हम कलकत्ता आर्य-समाज के मासिक पत्र 'आर्य-संसार' का विशेषांक प्रकाशित करते, उत्सव के माध्यम से हम सत्संग आदि के प्रचुर कार्यक्रम प्रस्तुत करते हैं और उपस्थित महानुभावों को गत वार्षिकोत्सव से वर्तमान वार्षिकोत्सव तक हम जो कुछ कार्य कर पाये हैं, उसको भी दृष्टिगोचर कराते हैं और साथ ही आर्य-समाज के रूप में जिस महान् सामाजिक आदर्श का प्रचार करने के लिये हम संलग्न हैं उसकी समस्याओं को भी प्रस्तुत करते हैं। अपनी सफलताओं और अपनी समस्याओं के हल हम समस्त आर्य-भाइयों के सहयोग से ही प्राप्त कर सकते हैं, जिसके बिना हम एक कदम भी नहीं बढ़ा सकते।

संस्थाएँ तथा प्रचार कार्य :

शिक्षा-संस्थाएँ :—आर्य समाज कलकत्ता के तत्वावधान में दो विशाल शिक्षा प्रतिष्ठान 'आर्य कन्या महा विद्यालय एवं रघुमल आर्य विद्यालय' कार्य कर रहे हैं। जहाँ बालक-बालिकाओं को शिक्षा के साथ-साथ चरित्र-निर्माण सम्बन्धी बातों तथा हमारे प्राचीन वैदिक संस्कृति के गौरव मय इतिहास से परिचित कराया जाता है।

आर्य कन्या महाविद्यालय का वार्षिक विवरण

२०, विधान सरणी, कलकत्ता-६

मानव जीवन की गाड़ी को सुचारु रूप से संचालित करने के लिये उसके दोनों पहियों के समान सहयोग की आवश्यकता होती है, किसी भी प्रकार यदि एक पहिया कमजोर हुआ तो गाड़ी कभी भी अपने उद्दिष्ट पथ पर शांति पूर्वक नहीं चल सकती अतः हमारी इस जीवन गाड़ी के पुरुष और स्त्री के प्रथम रूप बालक और बालिकाओं का समान रूप से योग्य होना अत्यावश्यक है एवं यह तभी संभव है जब हमारी मातृजाति समुचित शिक्षित हो। सूर्य के प्रकाश के समान ज्ञान का प्रकाश इनके अंग प्रत्याङ्गों का विकास सहज रूप से करे। इस ओर आर्य समाज के प्रयत्न प्रशंसनीय एवं अतुलनीय हैं। आर्य कन्या महाविद्यालय, कलकत्ता आर्यसमाज द्वारा संस्थापित एवं संचालित उल्लेखनीय संस्थाओं में से एक है। इसकी स्थापना आज से ६६ वर्ष पूर्व सन् १६०२ में एक छोटी-सी पाठशाला के रूप में हुई थी। परन्तु आज यह एक सरकार द्वारा मान्यता एवं सहायता प्राप्त एक उच्च माध्यमिक विद्यालय के रूप में है।

वर्तमान में इस विद्यालय में प्रायः १७५० छात्राएँ विद्या ग्रहण कर रही हैं। इस विद्यालय की मुख्य विशेषता यह है कि यहाँ बंगला तथा हिन्दी दोनों ही माध्यम से पढ़ाई होने की विशेष व्यवस्था है।

प्राथमिक विभाग में इस समय कुल ८४८ छात्राएँ विद्या ग्रहण कर रही हैं तथा इस विभाग को सुचारु रूप से चलाने के लिये २८ अध्यापिकाओं की व्यवस्था है। प्राथमिक विभाग में छात्राओं को CARE की ओर से प्रतिदिन डबल रोटी प्राप्त होती है तथा उनके स्वास्थ्य की ओर भी विशेष ध्यान दिया जाता है सरकारी सहायता से नियमित रूप से उनके स्वास्थ्य की जाँच होती है तथा इस वर्ष छात्राओं को T. B. C. A. की injection लगाने की व्यवस्था की गई है। गत वर्ष इस विभाग से बोर्ड की परीक्षा के लिये ४६ छात्राओं को भेजा गया ३३ हिन्दी विभाग से तथा १६ बंगला विभाग से मुझे बताते हुए हर्ष होता है कि गत वर्ष परीक्षा फल शत प्रतिशत रहा। परीक्षा फल इस प्रकार है, १७ प्रथम श्रेणी में २२ द्वितीय श्रेणी में तथा १० छात्राएँ उत्तीर्ण हुई।

गत वर्ष प्राथमिक विभाग के आय-व्यय का व्यौरा इस प्रकार है।

	आय	रु० पै०
१	शुल्क, प्रवेश शुल्क, परीक्षा शुल्क इत्यादि	४२०५१,००
२	खेल सिलाई पुस्तकालय बिजली	८२०२.००
३	सुधार निर्माण विशेष शुल्क	२१०६०.००
	कुल योग	७१३४३.००

	व्यय	रु० पै०
१	वेतन, वार्षिक वृद्धि प० फं०	५५६६५.६२
२	पुस्तकालय परीक्षा फर्नीचर	१६५०.६०
३	सामान, अवकाश कपड़ा इत्यादि	४५००.००
	कुल योग	६३८४६.८२

बचत ७५६६ रु० १८ पै०।

यह बचत छात्राओं के सुधार तथा विद्यालय के सुधार के लिये व्यय की जाती है।

सेकेण्डरी तथा हायर सैकेण्डरी विभागों में इस समय कुल ६०० छात्राएँ विद्या ग्रहण कर रही हैं। इस विभाग में कला तथा विज्ञान दोनों प्रकार की पढ़ाई की विशेष व्यवस्था है। इस कार्य को ४१ अध्यापिकाएँ सुचारु रूप से चला रही हैं। इस विभाग में अध्यापिकाएँ अधिकतर M. A. B. T. तथा Trained हैं। प्रतिवर्ष विद्यालय की ओर से २ अध्यापिकाओं को योग्यता बढ़ाने के लिए B. T. Training के लिये भेजा जाता है।

आपको सूचित करते हुए हर्ष होता है कि इस वर्ष से कक्षा पाँच से आठ तक की छात्राओं का शुल्क सरकार की

और से माफ कर दिया गया है। अब उनसे केवल उन्नयन शुल्क ही लिया जाता है।

विद्यालय में यह देखा गया है कि गत कुछ वर्षों से विज्ञान में छात्राओं की रुचि बढ़ रही है तथा उसके लिए रसायन शास्त्र की प्रयोगशाला का विस्तार बढ़ाकर दुगना कर दिया गया है।

नई तोड़-फोड़ से बचाव के लिए तथा विद्यालय की सुरक्षा हेतु प्रत्येक तल्ले पर लोहे के मजबूत दरवाजों की व्यवस्था की गई है। हमारी छात्राएँ समाज में होने वाले विभिन्न उत्सवों में भी भाग लेती हैं। तथा प्रतिवर्ष स्वतन्त्रता दिवस पर रवीन्द्र स्टेडियम में आयोजित मार्च पास्ट में भाग लेती है। गत वर्ष अरविन्द संस्था द्वारा आयोजित Best Physique Competition में हमारे विद्यालय की एक छात्रा को पुरस्कार मिला था।

इस वर्ष रामकृष्ण मिशन द्वारा आयोजित एक प्रतियोगिता में हमारे विद्यालय की तीन छात्राओं ने भाग लिया था तथा उन में से एक छात्रा रूपश्री कहाली को द्वितीय पुरस्कार भी प्राप्त हुआ है। गत वर्ष विभिन्न प्रकार की पाक प्रणालियाँ सिखाने के लिये खाद्य विभाग से इसकी विशेष व्यवस्था की गई थी।

कक्षा पाँच से लेकर नवम श्रेणी तक की छात्राओं को सिलाई की शिक्षा दी जाती है तथा संगीत की शिक्षा भी कक्षा आठ तक की छात्राओं को दी जाती है। समय-समय पर विद्यालय में विभिन्न आयोजनों की व्यवस्था की जाती है जिसमें छात्राएँ बड़े उत्साह से भाग लेती है।

हमारा एक सुसज्जित पुस्तकालय है तथा छात्राओं की योग्यता एवं रुचि के अनुसार उन्हें पुस्तकें पढ़ने के लिए उत्साहित किया जाता है। उपयोगी पुस्तकों के संग्रह को प्रतिवर्ष बढ़ाया जाता है।

राजनैतिक हलचल के कारण गत वर्ष हम अपनी किसी भी योजना को कार्यान्वित नहीं कर सके यहाँ तक की पूरी व्यवस्था के पश्चात भी वार्षिक परीक्षा में कई अड़चने आई फिर भी प्रभु की हमारे ऊपर असीम कृपा है कि अभी तक विद्यालय के प्रांगण में कोई अनिष्टकारी घटना नहीं घटी।

गत वर्ष सेकेण्डरी तथा हायर सेकेण्डरी विभाग के आय व्यय का ब्यौरा इस प्रकार है।

	आय	रु० पै०
१	शुल्क, प्रवेश शुल्क, परीक्षा शुल्क इत्यादि	६५५७४-००
२	खेल, सिलाई पुस्तकालय, बिजली	१५६३८.३०
३	उन्नयन शुल्क	४१३५१.००
४	विज्ञान शुल्क	१११०.००
५	सरकार से प्राप्त सहायता	७०३०००.००
	कुल योग	१६३६७३-३०

	व्यय	रु० पै०
१	वेतन, वेतन वृद्धि, प्र० ल०	११८३१७.८५
२	खेल, सिलाई, पुस्तकालय, बिजली, परीक्षा	१२५७०.३७
३	आयोजन, गृह विज्ञान, वाटर मशीन	५३०.४२
४	प्रयोगशाला	४६८५.६५
५	धर्म शिक्षा कपड़े फर्नीचर, अवकाश आदि	८४७८.३४
	कुल शेष	१५४५८३.२३

बचत : ३६३६० रु० ०७ पैसे।

इस वर्ष बोर्ड की परीक्षा के लिये ६६ छात्राओं को भेजा गया है। उच्चतर माध्यमिक विभाग का अभी परीक्षा फल निकलने में देरी है। इसलिए परीक्षा फल से आपको अवगत कराने में असमर्थ हूँ।

गवर्नमेंट शिक्षा विभाग में हमारे इस संस्थान को मान्यता प्राप्त हैं और हम Deficit Aid के कक्ष में है। अभी हाल ही में हमें लगभग ५०००० रु० ग्रेड वृद्धि तथा Aid खाता में और ६००० चार फ्री कक्षाओं के खाते में प्राप्त हुआ है।

दोनों विभागों की कार्यकारिणी समितियाँ नियमित रूप से चल रही हैं। नई कमेटियों का निर्वाचन अभी होने

वाला है हम आदेश की प्रतीक्षा में है हमने Special Constitution की मांग की है जो विचाराधीन है।

जिस क्षेत्र में हमारे भवन स्थित हैं इन दिनों यह आतंकवादिता का क्षेत्र है। प्राथमिक विभाग में छात्राओं की संख्या कम हो रही है और आशंका है कि नए सेशन में यह संख्या और भी घट जायेगी।

आर्य महिला शिक्षा मण्डल ट्रस्ट के प्रति विद्यालय आभार प्रदर्शित करता है कि दो विशाल भवन बिना किसी भाड़ा के ट्रस्ट ने हमें दे रखे हैं। हमारी जो आवश्यकता बोर्ड से पूरी नहीं हो पाती ट्रस्ट की उदारता से उसकी पूर्ति होती है। ट्रस्ट के द्वारा हमें दो बसें मिली हुई हैं। भवन की मरम्मत सुधार आदि के अवसरों पर ट्रस्ट ही हमारा सहायक है।

हमारी हमेशा से यही हार्दिक इच्छा रही है कि हम अपनी छात्राओं को आर्य समाज के आदर्शों के अनुसार ढाल सकें।

आर्य समाज द्वारा संस्थापित यह संस्था उत्तरोत्तर होती चली आई है जो हम सब के लिये गौरव का विषय है पिछली भयानक घटनाओं में विधाता हमारे लिए तो कृपाल ही रहे हैं यही आशा है कि भविष्य में भी प्रभु कृपा से यह संस्था आर्य समाज के लिये हितकर कार्य करती रहेगी और आर्य समाज के संरक्षण की पूर्ववत पात्र बनी रहेगी।

भवन, अतिथिशाला :

आर्य समाज का भवन महर्षि के दिव्य जीवन की चित्रांकित गाथा के लिये तथा वैदिक शिक्षाओं के तत्वों को शुभ्र संगमर्मर पर अंकित किये जाने की दृष्टि से इस महानगरी का दर्शनीय स्थान है। मन्दिर से ही संलग्न रानी बिरला आर्य अतिथिशाला है, जहाँ आर्य विद्वानों तथा बाहर से आगत आर्य विचारों वाले अतिथियों के ठहरने की समुचित व्यवस्था है।

औषधालय :

प्रतिदिन प्रातः ७ से १० बजे तक खुला रहता है। सोमवार को अवकाश रहता है। कोई शुल्क नहीं लिया जाता है किसी प्रकार की रोगियों की शिकायत नहीं है। व्यवहार सुन्दर रहता है। काम नियमपूर्वक चल रहा है। गत वर्ष २१८७४ रोगियों ने लाभ उठाया।

दातव्य-चिकित्सालय :—महर्षि दयानन्द दातव्य औषधालय वर्षों से कलकत्ते की रोग-पीड़ित जनता की निःशुल्क सेवा कर रहा है। जहाँ प्रतिवर्ष लगभग २५००० रोगियों की चिकित्सा होती है।

औषधालय की स्थापना महाशिवरात्रि ६ मार्च, १९५९ में हुई थी। वर्तमान में रोगियों की दैनिक उपस्थिति १०० से ११० तक होती है।

औषधालय को सुयोग एवं अनुभवी चिकित्सक श्री कविराज अमृत नारायण झा की सेवायें प्राप्त हैं। दवाइयाँ अपने यहाँ वैद्यजी की देख-रेख में श्री कुमार ठाकुर के द्वारा तैयार की जाती हैं।

औषधालय की विभिन्न मासिक दानदाताओं की सूची निम्न प्रकार हैं

१. श्रीमती लक्ष्मी देवी पोद्दार ट्रस्ट	१००
२. श्री सीताराम चैरिटी ट्रस्ट	५०
३. श्रीमती पार्वती बाई सेठिया मेमोरियल ट्रस्ट	५०
४. श्रीमती विद्यावती कपुर	२५
५. श्री चिरंजीलालजी बाहरी	२५
६. ,, गोविन्दराम भगवानदास	२५
७. ,, ओमप्रकाश गोयल	२५
८. ,, ओमप्रकाश आर्य	२५
९. श्रीमती महादेवी चैरिटेबुल ट्रस्ट	२५

अन्य सहयोगी दानदाताओं की नामावली :

१०. श्री तेजपालजी
११. ,, भगवती प्रसाद जायसवाल
१२. ,, मानिक चन्द्र सोनी
१३. ,, गीता स्टोर्स
१४. ,, अरुण कुमार नरूला
१५. श्रीमती विद्यावती दत्ता
१६. श्री वासुदेव प्रसाद गुप्ता
१७. ,, जगदीश तिवारी
१८. ,, विनय प्रसाद सिंह
१९. ,, पन्नालाल नन्कुराम आर्य
२०. ,, ताराशाहजी
२१. ,, बाबूलाल एण्ड कम्पनो
२२. ,, बछराजजी सोनी
२३. श्रीमती चम्पादेवी आर्य
२४. श्री चन्द्रवली प्रसाद गुप्त
२५. ,, सूरज स्टोर्स
२६. श्रीमती विद्यावती सभरवाल
२७. ,, सुनीति देवी शर्मा
२८. श्री श्रीनाथ बादर्स
२९. ,, जगन्नाथ मोदी
३०. ,, मेवालाल आर्य
३१. श्रीमती शकुन्तला देवी भारद्वाज
३२. श्री सीताराम जायसवाल
३३. श्रीमती शिलवती विश्वनोई
३४. श्री ओमप्रकाश धीया
३५. ,, हिन्दलोक कम्पनी
३६. श्रीमती केकन देवी
३७. श्री सत्यनारायण सेठ
३८. ,, रामधनी जायसवाल
३९. ,, महेन्द्रप्रसाद आर्य
४०. ,, बनारसीदासजी अरोड़ा
४१. ,, पी० अरोड़ा एण्ड कम्पनी
४२. मेसर्स नेशनल नोवेल्टी स्टोर्स
४३. श्रीमती शान्ति देवी सैनी
४४. ,, दर्शना दुलारी अग्रवाल
४५. स्व० श्री मूलचन्दजी अग्रवाल

हम आशा करते हैं कि सदस्यगण धर्मार्थ ट्रस्टों से तथा दानी महानुभावों से चिकित्सालय को आर्थिक सहायता दिलाने की कृपा करेंगे। जिससे इस संस्थान द्वारा अधिकाधिक रोगियों की सेवा की जा सके। चिकित्सालय के संचालन की देख-रेख श्री रुलियारामजी गुप्त बड़ी तत्परता से करते हैं।

वैदिक पुस्तकालय तथा वाचनालय :

आर्य समाज के महान विस्तृत प्राचीन शुद्ध वैदिक संस्कृति को मृत प्राय स्थिति से जीवित जाग्रत प्रगतिशील संस्था का रूप देने में स्वाध्याय के साधन पर सदा ध्यान रखा गया। आर्य समाज के स्थापना काल से लेकर अब तक भी जहां कहीं समाज का कार्य आरम्भ होता है, उसके साथ छोटा-बड़ा पुस्तकालय स्वाध्याय प्रेमियों तथा कार्यकर्ताओं के प्रयोगार्थ अवश्य रहता है। आर्य समाज कलकत्ता (१९, विधान सरनी) भारतवर्ष के आर्य समाजों में प्रमुख स्थान रखता है। हमारे वर्तमान पुस्तकालय भी इस समाज की प्रगतियों के साथ-साथ अपनी सेवाओं के लिये सुसज्जित है। इस समय वेद शास्त्र तथा उपयोगी अध्यात्मिक संग्रह में लगभग अढ़ाई हजार संस्कृत, बंगला, हिन्दी, अंग्रेजी पुस्तकें उपलब्ध हैं, जो धर्म अनुरागी और अनवेशन कर्ताओं के लिये अमूल्य सामग्री प्रस्तुत करती हैं। इस भण्डार में इस समाज के भूतपूर्व उपमन्त्री श्री बृजेश्वर राय जी स्नातक गुरुकुल सिकन्द्राबाद का अपने पूज्य पिता श्री सत्याचरन जी भट्टाचार्य के संग्रहीत ग्रन्थ विशेष हैं। इस समय इस पुस्तकालय की व्यवस्था एक विशेष कमरे में है। प्रातः ७ से

९ बजे तक तथा सायं ६ से ८॥ बजे तक पुस्तकालय नियमित खुलता है, कभी अवकाश नहीं रहता। वाचनालय में ६ दैनिक पत्र तथा अनेक साप्ताहिक व पाक्षिक पत्र-पत्रिकायें पढ़ने वालों को उपलब्ध हैं। आर्य समाज के अनुष्ठानों द्वारा सम्पादित पत्र रहते हैं। जिनसे आर्य जनता को देश के हर प्रान्त सम्बन्धी गति-विधियों की जानकारी प्राप्त होती है। इस समाज की गति-विधियों में यह विभाग इस समाज के गौरव अनुरूप सञ्चालन हो रहा है। यह कहना असंगत न होगा कि आर्यजनों में इस उपयोगी अंग के व्यवहार की रुचि नगण्य हैं। पिछले तीन वर्ष में केवल मात्र २०० से भी कम पुस्तकें स्वाध्यार्थ ली गई हैं।

इस विभाग से संलग्न बिक्री विभाग में वैदिक साहित्य ३५०० रुपये का रखा है। सदा नये प्रकाशन मंगाये और बिक्री किये जाते हैं। स्वाध्याय तथा पत्र आदि वाचनालय भी निःशुल्क हैं, बैठने के लिये सुव्यवस्था हैं, पंखे-बिजली लगे हैं। सदस्यों से अनुरोध है कि वह अधिक से अधिक इस विभाग का उपयोग कर हमें उत्साहित करें।

आर्य महिला शिक्षा मण्डल ट्रस्ट तथा मण्डल

इस समाज की स्थापना १८८५ में हुई महिलाओं में जागरण हमारे प्रचार का मुख्य अङ्ग है। १९०२ ई० में एक कन्या विद्यालय संस्थापित हुआ और १९१० ई० में आर्य समाज का वर्तमान भवन बना। साथ ही साथ पुत्रियों की शिक्षा में अधिक साधन जुटाने के लिये पृथक विभाग की आवश्यकता अनुभव की गई। इसी सन्दर्भ में अलग भवन क्रय किया गया। ज्यों-ज्यों सम्पत्ति और राशि बढ़ती गई, उसकी देखभाल तथा संभाल के लिये आर्य समाज के दैनिक कार्यों के भार उठाने वालों ने ही पृथक ट्रस्ट बनाने का निश्चय किया। हमारे इस समाज के इस समय के विशाल विस्तृत गौरव पूर्ण रूप में आर्य कन्या महाविद्यालय का स्थान नगर की सुप्रसिद्ध संस्थाओं में है, जिसका श्रेय इस नगर के पूर्वकालीन आर्य महान् पुरुषों में श्री खुमल जी, श्री सेठ सर छाजुराम जी, श्री रायबहादुर रलाराम जी, श्री तुलसीदत्त जी, श्री जयनारायण रामचन्द्र पोद्दार (परिवार), बिड़ला ब्रादर्स, श्री विशनदास जी बांसल, श्री हरगोबिन्द गुप्त आदि नाम उल्लेखनीय हैं। जिनकी उदारता, दानशीलता तथा सौजन्य से महिला शिक्षा मण्डल ट्रस्ट का मूर्तरूप प्राप्त हुआ। साथ वाले दोनों भवन तथा इनके प्रयोग को सार्थक करने में ट्रस्ट का प्रयत्न तथा संरक्षण ही श्रेयस्कर है। इस समय ट्रस्ट के आठ ट्रस्टी हैं, जो समय-समय पर रिक्त स्थानों की पूर्ति होकर निम्न प्रकार हैं :—

श्री कृष्णकुमार बिड़ला, सेठ कृष्णलाल पोद्दार, श्री हंसराज गुप्त, श्री महेन्द्र कुमार चौधरी, श्री मिहिरचन्द धीमान्, म० रघुनन्दन लाल जी, श्री देवीप्रसाद मस्करा, श्री रुलियाराम गुप्त।

अचल सम्पत्ति में दो भवन हैं। धन राशि का विवरण ट्रस्ट के कोषाध्यक्ष द्वारा प्राप्त का विवरण निम्न प्रकार हैं :—

पाँच दुकानें भाड़ा पर हैं, जिनकी वार्षिक आय कलकत्ता कारपोरेशन करों के लिये भी पूरी नहीं होती, उसकी पूर्ति ट्रस्ट द्वारा होती। गत वर्ष ट्रस्ट से भिन्न-भिन्न समय पर ११५४५.१६ राशि आ० क० म० विद्यालय को आर्य महिला शिक्षा मण्डल द्वारा दी गई। शिक्षा विभाग से लगभग ७०,३००.०० रु० वार्षिक सहायता प्राप्त होती है। विद्यालय सञ्चालन उनके नियमों के अन्तर्गत सञ्चालित होता है। इसीलिये महिला शिक्षा मण्डल का कोई विशेष कार्य नहीं होता। इस ओर ट्रस्टियों तथा मण्डल सदस्यों का ध्यान गया है और इन दोनों को अधिक उपयोगी बनाने के लिये प्रयत्न हो रहा है। नारी हित के लिये विद्यालयों के अतिरिक्त कोई उपयुक्त सुझाव आवे तो ट्रस्ट के नियमों में उसकी संविधान की धारा है।

दैनिक तथा साप्ताहिक कार्यक्रम :

प्रतिदिन प्रातःकाल ७ से ८ तक यज्ञशाला में हवन नियमित रूप से होता है। पूर्व निश्चित कार्यक्रमानुसार आर्य

समाज कलकत्ता का साप्ताहिक सत्संग प्रति रविवार प्रातःकाल ८ बजे से ११ बजे तक होता है। आर्य-समाज के अन्यान्य चलने वाले कार्यक्रमों में से साप्ताहिक सत्संग बहुत महत्वपूर्ण है। सभी आर्य सदस्य सप्ताह में एक बार एकत्र हो जाते हैं और हम एक आर्य परिवार के हैं, इसकी सिद्धि करते हैं।

सत्संग के तीन अंग होते हैं :—

(१) सन्ध्योपासना तथा अग्निहोत्र

(२) कथा तथा भजन

(३) प्रवचन, विशेष सूचनाएँ, संगठन सूक्त तथा शान्ति पाठ।

श्री पं० सदाशिवजी शर्मा, श्री पं० शिवाकान्तजी उपाध्याय ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका की कथा, श्री पं० उमाकान्तजी उपाध्याय सन्ध्या एवं प्रार्थना मन्त्रों की व्याख्या एवं रामरीझनजी भजन करते हैं तथा बाहर से पधारे हुए संन्यासी, महात्मा, विद्वान् व स्थानीय विद्वानों के प्रवचन भी सत्संगों में होते रहते हैं।

बाल सत्संग और स्त्री-समाज :

आर्य सिद्धान्तों के प्रचार के लिये हमारे कुछ और संगठन चल रहे हैं :—बाल सत्संग और स्त्री-समाज। बाल सत्संग का संचालन कुछ काल से श्री पं० प्रियदर्शनजी सिद्धान्तभूषण कर रहे हैं। आर्य-समाज में बच्चों को सत्संग में लाने और पुनः घर पहुँचाने के लिये बस की व्यवस्था की है।

स्त्री-समाज आर्य-समाज का पुराना संगठन है। महिलाओं के उद्योग से इसका संचालन हो रहा है। आर्य-समाज का कोई भी कार्य ऐसा नहीं है, जिसमें उसके योगदान का एक बड़ा अंश न हो या आर्य-समाज के कार्यकर्त्ता उसको पूरा करने के लिये उनकी सहायता न पाते हों। श्री पूज्या माता विद्यावतीजी सभरवाल का सहयोग सदा सुलभ रहता है।

बंग प्रचार—

आर्य-समाज कलकत्ता के तत्वावधान में बंगाल के सुप्रसिद्ध विद्वान् श्री पं० दीनबन्धुजी वेदशास्त्री स्थानीय कालेज स्क्वायर पार्क में प्रतिदिन सायंकाल ५-६ बजे तक वैदिक धर्म का प्रचार करते हैं। धर्मप्रेमी प्रवचन से लाभ उठाते हैं।

'आर्य-संसार' मासिक पत्र—

'आर्य-संसार' नाम से यह मासिक पत्र नवम्बर १९५८ से आर्य-समाज द्वारा प्रकाशित हो रहा है। इस पत्र के सुयोग्य सम्पादक श्री पं० उमाकान्तजी उपाध्याय, एम० ए० अपनी विद्वता से पत्र की उन्नति में निरन्तर प्रयत्नशील हैं। आर्य-समाज के प्रतिष्ठित विद्वानों के लेख 'आर्य संसार' में प्रकाशनार्थ प्राप्त होते रहते हैं। हमारी योजना है कि 'आर्य-संसार' आर्य-परिवार का सुरुचिपूर्ण पत्र बने।

संस्कार—

नामकरण, अन्न प्राशन, मुण्डन, यज्ञोपवीत, विवाह, गृह प्रवेश, अन्त्येष्टि, शुद्धि आदि संस्कार हुए।

पर्व—

श्रावणी पर्व (वेद प्रचार सप्ताह), जन्माष्टमी, बसन्त पञ्चमी, दयानन्द बोधोत्सव, होली, नवशस्येष्टि, आर्य-समाज स्थापना दिवस, श्रद्धानन्द बलिदान दिवस, महर्षि निर्वाण दिवस, मकर संक्रान्ति, विजयादशमी आदि पर्व उत्साह पूर्वक मनाये गये।

जलक्षेत्र—

आर्य-समाज मन्दिर के सामने विगत कई वर्षों से एक प्याऊ चल रहा है। श्री सावलदास चैरीटेबल ट्रस्ट प्याऊ का पूरा खर्च बहन करता है।

विशेष प्रचार—

श्रावणी उपाकर्म के अवसर पर श्रावणी से जन्माष्टमी तक श्री पण्डित उमाकान्तजी उपाध्याय, एम० ए० के आचार्यत्व

में ऋग्वेद के मंत्रों से बृहद् यज्ञ सम्पन्न हुआ। ऋत्विजों में श्री पं० शिवाकान्तजी उपाध्याय, श्री पं० प्रियदर्शनजी सिद्धान्त भूषण, श्री पं० शिवनन्दनजी काव्यतीर्थ, श्री पं० दीनबन्धुजी वेदशास्त्री आदि थे।

यज्ञ के अतिरिक्त प्रतिदिन रात्रि के समय ८ से ६ तक श्री पं० उमाकान्तजी उपाध्याय द्वारा यजुर्वेद के ४०वें अध्याय की कथा होती रही। यज्ञ में सपत्नीक यजमानों ने भाग लिया।

वर्तमान वर्ष में हमारे बहुत से हितैषी आर्य-परिवारों के नर-नारी हमसे बिछुड़ गये, जो अपनी दानशीलता, सहायता परायणता के लिए आर्य-जगत् में प्रसिद्ध हो गए थे। उनकी आत्मिक शान्ति के लिये आर्य-समाज कलकत्ता के नर-नारियों ने विशेष अधिवेशनों में सहानुभूति सूचक प्रस्ताव पारित करके उनके कुटुम्बी जनों के पास प्रस्तावों की प्रतिलिपि प्रेषित की तथा समाचार-पत्रों में प्रकाशनार्थ भेजी :—

श्री देवदत्त आनन्द, लखनऊ
श्रीमती रूकमणी देवी
(माता श्री बनारसीदासजी अरोड़ा, प्रधान आर्य-समाज, कलकत्ता)
श्री जगदीशप्रसाद पोद्दार, कलकत्ता
महात्मा श्री आनन्द भिक्षुजी वानप्रस्थी
श्री राजनारायण सिंह, प्रधान आर्य-समाज, बैरकपुर
श्री कृष्णचन्द्र जयदका, कलकत्ता
डा० सुरेन्द्रनाथ शर्मा, देहली
श्रीमती कौशल्या देवी, कलकत्ता
माता (पं० प्रियदर्शनजी सिद्धान्तभूषण)
माता (श्री सतीशकुमार श्रीवास्तव)
श्री चन्द्रजी भाई वर्मा, बम्बई
श्री हरिचरणदासजी बहल, बम्बई
श्री सौदागरमलजी चोपड़ा, कलकत्ता।

वार्षिकोत्सव—

कारुणिक प्रभु का कोटिशः धन्यवाद है, जिसकी अपार अनुकम्पा और सहायता से आर्य-समाज कलकत्ता का ८५वाँ वार्षिकोत्सव २६ दिसम्बर १६७० से ३ जनवरी १६७१ तक मुहम्मदअली पार्क में सुसज्जित विशाल चन्द्रातप के नीचे बड़ी धूमधाम से सम्पन्न हुआ।

बृहद् यज्ञ से ३-१-७१ तक वन्दनवार और तोरण से सुसज्जित यज्ञ वेदी में प्रातः ७ से ६ तक ऋग्वेद के मंत्रों से यज्ञ सम्पादित किया गया।

ब्रह्मा के आसन पर श्री पं० उमाकान्तजी उपाध्याजी थे। श्री पं० शिवाकान्त उपाध्याय, श्री पं० प्रियदर्शनजी सिद्धान्त भूषण, श्री पं० शिवनन्दनप्रसादजी काव्यतीर्थ, श्री पं० दीन-बन्धुजी वेदशास्त्री, श्री पं० मदनमोहनजी विद्यासागर, श्री पं० श्रीकान्तजी उपाध्याय आदि ऋत्विजों के रूप में उपस्थित थे।

राष्ट्ररक्षा सम्मेलन, वेद सम्मेलन, गोरक्षा सम्मेलन, महिला सम्मेलन, बंग सम्मेलन सम्पन्न हुए।

आगत विद्वानों के भोजन तथा सेवा आदि का प्रबन्ध अत्युत्तम किया गया था। इस कार्य में आर्य समाज के सदस्यों ने उत्साह पूर्वक भाग लिया।

अन्त में हम उस परम कारुणिक भगवान का कोटिशः धन्यवाद करते हैं, जिसकी अपार दया और सहायता से अनेक प्रकार की विघ्न बाधाओं की उपस्थिति में भी हम जनता-जनार्दन की यत्किंचित सेवा कर सके। उदार दानी सज्जनों तथा सभी सहयोगियों का हार्दिक धन्यवाद करते हैं, जिनके सहयोग से हम सारा वर्ष सेवा-कार्य करने में समर्थ हो सके हैं।

छबीलदास सैनी
मन्त्री

बालोदय पुस्तक के प्रकाशनार्थ प्राप्त धन के आय-व्यय का ब्यौरा

आय

२५०)	श्री	सत्यानन्द आर्य
२५०)	श्रीमती	मेवा देवी आर्या
१५१)	श्री	जीवनराम नत्थूराम
१००)	श्रीमती	रामदेवीजी
१०००)	,,	शान्ति देवी सैनी
१००)	,,	सावित्री देवी गुप्ता
१००)	,,	सुशीला देवी
१००)	,,	सोनाई देवी जायसवाल
१००)	श्री	सीतारामजी जायसवाल
१००)	,,	व्रिजराज अग्रवाल
५१)	,,	सज्जन कुमार अग्रवाल
११)	,,	जंगीलाल आर्य
५१)	श्रीमती	चांदरानीजी अग्रवाल
५१)	,,	मेवालाल सुरेश कुमार आर्य
३५)	,,	रामगोपाल गुप्त
१६६०)		योग

व्यय

२३०)५०	ब्लाक बनवाई
६१६)	छपाई बालोदय ११०० प्रति, बाइन्डिंगसह
६८६)२८	कागज खर्चा
३५)	कागज कवर पेज, आर्ट पेपर
३२)२२	विविध व्यय
१५६०)	योग

पुनमचन्द आर्य
सदाशिव शर्मा
१-६-६१

बजट सन् १६७०-७१ का अन्तरंग २४-७-७१ द्वारा स्वीकृत

	अनुमानित आय	सही
मासिक चन्दा	६५००)	३६७४)
दान	३५००)	१८२७)
जन-सेवा	६०००)	५१२३)
वेद प्रचार	४५००)	५८५)
आर्य-संसार	७५००)	७५६२)
हवन सामग्री	२४००)	८४७)
प्याऊ	८४०)	७६१)
दैनिक हवन	६००)	८५६)
बाल-सत्संग	५००)	७४०)
पर्व	१०००)	१८६२)
विद्यार्थी सहायता	१०००)	१३६)
	३४६४०)	२४३३६)
घाटा रहा, वह वार्षिकोत्सव के चन्दे से पूरा करना	२५६६०)	
	६०३००)	

	अनुमानित व्यय	सही
जनसेवा	६०००)	६५१५)
वेद प्रचार	५०००)	२७२७)
आर्य संसार	६०००)	७३७६)
बेतन	७०००)	६४५६)
बंग-प्रचार	२०००)	१८४५)
बाल-सत्संग	१६००)	१७५८)
प्रकाशन	१५००)	३८५)
बिजली	१५००)	१७७८)
मकान मरम्मत	२५००)	५८६)
टेलीफोन	१२००)	६७१)
दैनिक हवन	१०००)	१०६०)
अतिथि सत्कार	१०००)	६८)
स्टेशनरी	३००)	३५५)
मार्ग व्यय	६००)	३६६)
खुदरा खर्च	६००)	५३८)
पुस्तकालय एवं वाचनालय	३००)	३३१)
पर्व	२०००)	२७४०)
विद्यार्थी सहायता	२१००)	२८६)
प्याऊ	१०००)	१०६४)
सहायता	८००)	३१७)
डाक खर्च	३००)	३३६)
प्रोविडेण्टफण्ड	४००)	१६७)
दशांश	६५०)	३६७)
वार्षिकोत्सव	१३०००)	१४०४६)
संस्कार	२५०)	७२)
नया सामान खरीद	१२५०)	२२०४)
	६०३००)	५४८७३)

अनुमानित बजट—१९७१-७२

अनुमानित आय :

मद	राशि
मासिक चन्दा	६०००)
दान	३०००)
जन-सेवा	६०००)
वेद प्रचार	२५००)
आर्य-संसार	७५००)
हवन सामग्री	१०००)
प्याऊ	८४०)
दैनिक हवन	१०००)
बालक-सत्संग	७५०)
पर्व	२०००)
विद्यार्थी सहायता	५००)
	३१०९०)
घाटा रहा—वह वार्षिकोत्सव के चन्दे से पूरा करना	३२०१०)
	६३१००)

अनुमानित व्यय :

मद	राशि
जन-सेवा	५२००)
वेद प्रचार	५०००)
आर्य-संसार	७५००)
वेतन	७०००)
बंग-प्रचार	२०००)
बालक-सत्संग	१८००)
प्रकाशन	१०००)
बिजली	१८००)
मकान मरम्मत	२०००)
टेलीफोन	१२००)
दैनिक हवन	११००)
अतिथि-सत्कार	१०००)
स्टेशनरी	४००)
मार्ग व्यय	५००)
खुदरा	६५०)
पुस्तकालय	४००)
पर्व	३०००)
विद्यार्थी सहायता	१०००)
प्याऊ	१०००)
सहायता	५००)
डाक व्यय	४००)
प्रोविडेण्ट फण्ड	३००)
दशांश	६००)
वार्षिकोत्सव	१५०००)
संस्कार	२५०)
नया सामान	१५००)
	६३१००)

आर्य समाज, कलकत्ता
बैलेंस सीट, ३१ मार्च १९७१ तक

जेनरल फण्ड	२,४९,६२८.५२	भवन	२,३३,०३८.२६
बुक फण्ड	४,५४२.३७	फर्नीचर	४,३८४.८९
अबला अनाथ रक्षा फण्ड	२८२.७५	माईक्रोफोन	२,३००.४५
आर्य संसार	२,०९७.२८	टाईप मशीन	१,३१८.२४
बंगाल बाढ़ सहायता	६५१.२३	शिल्भर के बर्तन	३१०.४७
लादूराम सोदपुर निधि	१,०००.००	बर्तन	१,०६४.९२
अमृतनारायण झा प्रो० फण्ड	१,३६१.११	गोरक्षा	७७८.१३
सत्यनारायण साव प्रो० फण्ड	२०१.०४	चित्रावली	२,९३०.८५
श्री हरिश्चन्द्रजी वर्मा	६००.००	हवन कुण्ड	१११.२५
आर्योदय, दिल्ली	४५.९०	पुस्तक	३५२०.७७
स्वर्गीय स्वामी समर्पणानन्दजी	१५०.००	रेकार्ड बेद मंत्र	१४०.३०
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा	१७९.०५	हवन सामग्री	८१.००
अजितकुमार कुण्डु एण्ड ब्रा०	४८२.०९	जनज्ञान	५४.००
आर्य प्रतिनिधि सभा बंग आसाम	३९७.४०	श्री भोलाराम सैनी रांची	१४१.२५
	२,६१,६००.७४	श्री चितरंजन मुखर्जी	६००.००
		श्री कुमार ठाकुर (एडभांस)	२१५.००
		कलकत्ता इलेक्ट्रिक सप्लाई कारपोरेशन	९८०.००
		कलकत्ता कारपोरेशन	२००.००
		सिटी आर्कीटेक्ट	८४०.००
		डाक-तार	१६०.००
		एलाहाबाद बैंक—करेन्ट एकाउन्ट	३४२.८२
		,, प्रो० फण्ड अमृतनारायण	१३६१.११
		,, ,, सत्यनारायण	२०१.०४
		,, फिक्स डिपोजिट	६०००.००
		रोकड़	५२५.९९
			२,६१,६००.७४

वास्ते आर्य समाज, कलकत्ता
श्रीनाथदास गुप्त, कोषाध्यक्ष
२०।७।७१

वास्ते आर्य समाज, कलकत्ता
छबीलदास सैनी, मंत्री
२०।७।७१

वास्ते आर्य समाज, कलकत्ता
बनारसीदास अरोड़ा, प्रधान
२०।७।७१

आर्य समाज, कलकत्ता

आय-व्यय विवरण १ अप्रैल १९७० से ३१ मार्च १९७१ तक

आय :—

मासिक चन्दा	३,९७४.००	
आर्य प्रतिनिधि सभा		
बंग-आसाम	३९७.४०	३,५७६.६०
वार्षिकोत्सव—		
आय	२५,२६४.३९	
व्यय	१४,०४६.४४	११,२१७.९५
माइक्रोफोन—		
आय	१,४४७.००	
व्यय	७२२.४०	७२४.६०
भवन मरम्मत—		
आय	१,५००.००	
व्यय	५८९.१७	९१०.८३
यज्ञ दान		२०८.५०
दान		१,७६२.६०
संस्कार		६०२.५१
बैंक इण्टरेस्ट		४११.७०
हवन सामग्री से बचत		८४७,५९
पुस्तक बिक्री से बचत		९१३.००
		२१,१७५.८८

व्यय :

जनसेवा :	व्यय : ६५१५.५४	
	आय : ५,१२३.५८	१,३९१.९६
स्टेशनरी		३५५.४६
पोस्टल		३३६.३५
अतिथि सत्कार		९८.५७
दैनिक हवन		२००.४६
कन्भेन्स :		२९६.७९
वेद प्रचार :		२,७२७.९५
बालक सत्संग		१,०१८.७५
प्रकाशन		२७६.५५
पर्व		८४६.७३
पुस्तकालय वाचनालय :		३३१.७१
फुटकर		५३८.९३
दान		३१७.२५
बिजली		१,६२८.७५
टेलीफोन		९४३.२५
विधार्थी सहायता		१५०.४०
बंग प्रचार		१,८४५.००
वेतन		६,४५६.३६
प्रोभीडेन्ड फण्ड		१९७.३०
बैंक चार्ज		३.१५
प्याऊ :	व्यय : १,०९४.६४	
	आय : ७६१.००	३३३.६४
		२०,३९५.३१
जेनरल फण्ड में जमा :		७८०.५७
		२१,१७५.८८

वास्ते आर्य समाज, कलकत्ता	वास्ते आर्य समाज, कलकत्ता	वास्ते आर्य समाज, कलकत्ता
श्रीनाथदास गुप्त, कोषाध्यक्ष	छबीलदास सैनी, मंत्री	बनारसीदास अरोड़ा, प्रधन
२०-७-७१	२०-७-७१	२०-७-७१

(आडिटर रिपोर्ट का हिन्दी अनुवाद)

आर्य समाज के सदस्यों को हिसाब परीक्षक की सूचना—

हमने आर्य समाज कलकत्ता का संलग्न किया हुआ ३१ मार्च १९७१ का चिट्ठा तथा उस दिन को समाप्त होने वाले वर्ष का संलग्न आय-व्यय के खाते का हिसाब परीक्षण किया है और सूचित करते हैं कि :—

१—हमें हमारे ज्ञान व विश्वास के अनुसार वे सभी सूचनाएँ और व्याख्याएँ प्राप्त हुयी है जो हमारे हिसाब परीक्षण के लिये आवश्यक थीं।

२—हमारे समक्ष प्रस्तुत किये गये बही-खातों तथा चिट्ठा व आय और व्यय के खाते में समानता है।

३—हमारी राय में तथा हमें प्राप्त हुई सूचनाओं व हमें दी गई व्याख्याओं के अनुसार, चिट्ठा तथा आय व व्यय का खाता समाज के उत्तम अवस्था का सत्य व सही दृश्य प्रदर्शित करता है।

वास्ते—आर० के० पटौदी एण्ड कम्पनी

हस्ताक्षर—आर० के० पटौदी
मालिक
चार्टर्ड एकाउन्टेंट्स

४३, बकरिया स्ट्रीट,
कलकत्ता-७
दिनांक—२३ ७-१९७१

आर्य-समाज कलकत्ता के आय-व्यय विवरण १९७०-७१ व वैलेन्स सीट १९७०-७१ से सम्बन्धित आय व्यय परीक्षक की रिपोर्ट

एकाउण्टिंग वर्ष १९७०-७१ का हिसाब जांचा गया तथा ठीक पाया।

आय-व्यय विवरण तथा वैलेन्स सीट खातों के आधार से ठीक पाये गये।

सत्यानन्द आर्य
हिसाब परीक्षक
आर्य-समाज, कलकत्ता

सावदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा (दयानन्द भवन, रामलीला मैदान) का वार्षिक अधिवेशन १७ और १८ जुलाई को दिल्ली में हुआ

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा (महर्षि दयानन्द भवन, रामलीला मैदान, नई दिल्ली) का वार्षिक अधिवेशन सभा प्रधान पद्म विभूषण श्री डा० दुःखनरामजी पूर्व वाइस चांसलर पटना विश्व विद्यालय की अध्यक्षता में १७-१८ जुलाई, १९७१ को दयानन्द भवन नई दिल्ली में हुआ।

अधिवेशन में पंजाब, दिल्ली, बिहार, उत्तर प्रदेश दीव, मोरीशस, बंगाल, राजस्थान, मध्यभारत, मध्य प्रदेश आदि देश विदेश के प्रतिनिधियों ने बहु-संख्या में भाग लिया। सभा की संशोधित नियमावली के अनुसार आगामी ३ वर्ष के लिये पदाधिकारिकारियों और अन्तरंग सदस्यों के निर्वाचन के अतिरिक्त ५ लाख का बजट पास हुआ। पदाधिकारियों तथा अन्तरंग सदस्यों की सूची निम्न प्रकार है :—

प्रधान : श्री डा० डी० रामजी, पटना

उप-प्रधान : (१) श्री प्रतापसिंह शूरजी वल्लभदास, बम्बई
(२) ,, लाला रामगोपालजी, शालवाले
(३) ,, वीरेन्द्रजी एम० ए०, पंजाब
(४) ,, मेहरचन्दजी धीमान, बंगाल
(५) ,, छोटूसिंहजी एडवोकेट, राजस्थान

मंत्री : श्री ओमप्रकाशजी त्यागी

उप-मंत्री : (१) श्री डा० भवानीलालजी भारतीय, राजस्थान
(२) ,, पं० वासुदेव शर्मा, बिहार
(३) ,, पं० सच्चिदानन्द शास्त्री, उत्तर प्रदेश
(४) ,, भगवान देवजी शर्मा, दीव
(५) ,, मनोहरलालजी विद्यालंकार, दिल्ली

कोषाध्यक्ष : श्री सोमनाथजी मरवाहा, अधिवक्ता, दिल्ली

पुस्तकाध्यक्ष : श्री शिवचन्द्रजी, दिल्ली

अन्तरंग सदस्य :

(१) श्री स्वामी विद्यानन्दजी विदेह
(२) पं० नरेन्द्रजी, हैदराबाद
(३) श्री विश्वम्भर प्रसादजी शर्मा, मध्य प्रदेश
(४) ,, बाबूलालजी गुप्त, मध्यभारत
(५) ,, बालमुकुन्दजी अहूजा, दिल्ली
(६) ,, आचार्य रामानन्दजी शास्त्री, बिहार
(७) ,, बटूकृष्णजी बर्मन, बंगाल
(८) श्री रघुनन्दन स्वरूप अधिवक्ता, उत्तर प्रदेश
(९) ,, भक्तरामजी एडवोकेट, दिल्ली
(१०) ,, प्रिंसिपल नन्दलालजी, पंजाब
(११) ,, राजा रामसिंहजी, पंजाब
(१२) ,, डा० हरिप्रकाशजी, पंजाब
(१३) ,, श्रीकरणजी शारदा, राजस्थान

श्री नारायणदासजी कपूर आडीटर नियुक्त हुए

इसके अतिरिक्त विदेश प्रचार, अराष्ट्रीय प्रचार निरोध, बंगला देश के पीड़ितों की सहायता, आर्य वीर दल, आदि-आदि के कार्यार्थ कई उपसमितियां नियुक्त की गई हैं।

सभा ने एक प्रस्ताव के द्वारा आर्य समाजों और आर्य जनता को प्रेरणा की है कि वे १ अगस्त को बंगला सहायता दिवस मनाएं और सार्वजनिक सभाएं करके भारत सरकार को प्रेरणा करें कि वह बंगला देश को मान्यता दे। बंगला देश के पीड़ितों की सहायतार्थ धन एवं वस्त्र एकत्र कर सार्वदेशिक सभा में भेजें।

सभा की देख-रेख में आर्य समाज रिलीफ सोसायटी कलकत्ता में काम कर रही है। एक नया केन्द्र विलोनियां (त्रिपुरा) में खोला गया है, जहां लाखों की संख्या में शरणार्थी पहुँच गए हैं।

सभा ने आनन्द मार्ग की धर्म, संस्कृति एवं देश विरोधी प्रगतियों पर घोर चिन्ता व्यक्त की और जनता को इस खतरे से सावधान रहने तथा भारत सरकार को इसका तुरन्त निवारण करने का अनुरोध किया है।

सभा ने आर्य [illegible] शताब्दी तक पूर्ण किए जाने के उद्देश्य से एक विस्तृत प्रोग्राम बनाया है जिसमें उत्कृष्ट साहित्य के प्रकाशन, देश विदेश में प्रचार कार्य एवं आर्य सदस्यों की संख्या बढ़ाने तथा आर्य समाज की अब तक की प्रगतियों की विवरण पुस्तिका छपवाने और आर्य समाज के संगठन को दृढ़ करने सम्पूर्ण देश में कानूनन गो-हत्या बंद करवाने आदि की योजनाएं उल्लेखनीय हैं।

सभा ने आर्य समाज के उपनियमों का अन्तिम रूप से संशोधन कर दिया है। बैठक में देश के अनेक आर्य नेता, आर्य विद्वान एवं कार्यकर्त्ता सम्मिलित हुए थे।

महा-सम्मेलन : मई १९७२ में अलवर में सार्वदेशिक आर्य महासम्मेलन का अधिवेशन करने का निर्णय किया गया है।

अपील : वेदों के हिन्दी अनुवाद के लिए श्री लाला रामगोपालजी द्वारा १ लाख रुपये की अपील की गई, तुरन्त ही १६ हजार रुपये एकत्र हो गए।

— प्रचार विभाग

आर्य-समाज १९, विधान सरणी, कलकत्ता-६ के लिये पं० उमाकान्त उपाध्याय, एम० ए० द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित तथा रत्नाकर प्रेस, ११-ए, सैय्यदसाली लेन, कलकत्ता-७ में मुद्रित।

ओ३म्

वर्ष १२ अङ्क ५

आर्य-संसार

आर्य-समाज कलकत्ता

का

मासिक मुख पत्र

सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

—आर्य-समाज का चौथा नियम

मई १९७१

मूल्य :—
एक प्रति २० पैसे
वार्षिक २) रुपये

आर्य-समाज कलकत्ता
१९, विधान सरणी,
कलकत्ता-६

जीवन की सफलता का अचूक मार्ग
योग

मानव जीवन की सफलता का रहस्य योग शब्द में छिपा है। योग मानव जीवन के विकास की विधि है।

हम आनन्द स्वरूप भगवान की सन्तान हैं और आनन्द को प्राप्त करना हमारे जीवन का लक्ष्य है। आनन्द की प्राप्ति के लिये जीवन को शुद्ध बनाना अनिवार्य है और जीवन की शुद्धि का एक मात्र साधन योग है। अतः जो भाई बहन अपने जीवन को शुद्ध-शान्ति और मानवता से भरपूर करना चाहते हैं - जीवन में सफलता प्राप्त करना चाहते हैं—जीवन का कल्याण करना चाहते हैं उन्हें योगाभ्यास अवश्य करना चाहिये।

योगाभ्यास के मुख्य निम्न चार नियम है :

१—शरीर स्वास्थ बलवान—सुन्दर और निरोग बन जाता है।

२—मन शान्त और शुद्ध हो जाता है।

३—बुद्धि में पवित्रता और निर्मलता आ जाती है।

४—हृदय उदार हो जाता है।

सारा मानव समाज अपना कुटुम्ब बन जाता है और हर प्राणी में उस सर्व व्यापक प्यारी मां की अनुभूति करता हुआ योगाभ्यासी आनन्द विभोर हो उठता है और फिर दूसरे भाई बहनों में आनन्द की प्रसादी बांटता हुआ अपना जीवन सफलतापूर्वक व्यतीत करके अन्त में मोक्ष का अधिकारी बन जाता है।

जिस मनुष्य के जीवन में यह उपरोक्त चार गुण आ जायें फिर संसार के सब वैभव—ऐश्वर्य उसके पास घूमते हैं। उसका यह लोक और परलोक दोनों सफल हो जाते हैं। अतः जिन भाई बहनों को अपने जीवन में उपरोक्त गुण लाने की अभिलाषा हो उन्हें योग का अभ्यास प्रतिदिन नियमपूर्वक करना चाहिये।

हमारे सब प्राचीन ऋषियों, मुनियों, महा पुरुषों का यह सन्देश है और वेद, गीता आदि ग्रन्थों का भी यही आदेश है।

प्रभु कृपा से हमें भी इस मार्ग की सफलता—श्रेष्ठता की अनुभूति हो चुकी है। और प्रभु कृपा से योग का अभ्यास करके जीवन में अपूर्व सुख की अनुभूति हुई है। प्रभु आज्ञा से समस्त मानव समाज को सुखी बनाने के लिये हमारी सभा इसके प्रसार और प्रचार में लगी है।

योग के आठ अंग हैं :

१—यम २—नियम ३—आसन ४—प्राणायाम ५—प्रत्याहार ६—धारणा ७ ध्यान ८—समाधि।

इसकी अधिक जानकारी के लिये जिनकी इच्छा हो वह निम्नलिखित पते पर पत्र व्यवहार करें या स्वयं मिले।

निवेदक :

कविराज रामसिंह वैद्यवाचस्पति

पुनर्जन्म : वैदिक अध्यात्मवाद का मेरूदण्ड

लेखक :—अतुलकान्त गुप्त 'जयन्त'

India's central conception is that of the "Eteral" the spirit here incased in matter, involved and immanent in it and evolving on the matterial plane by the REBIRTH of the individual up the scale of being till in mental man it enters the world of idias and realm of conscious morality, 'Dharma'.

—**Yogi Arobindo Ghosh**

अर्थात्—भारत की मूल धारणा सृष्टि के सनातनत्व में निहित है। प्रकृति से निर्मित शरीर में जीव व्याप्त एवं अन्तस्थ होकर जड़-जगत में पुनर्जन्म द्वारा प्रकट होता रहता है—जब तक मानसिक अथवा आन्तरिक रूपेण वह यानी जीवात्मा भावनाओं के संसार (या विचारों की दुनिया) और सचेतन नैतिकता यानी "धर्म" के राज्य में प्रवेश नहीं पा लेता।

—*योगी अरविन्द घोष*

हिन्दू-धर्म को छोड़कर अन्य किसी भी धर्म (तथाकथित) में पुनर्जन्म का सिद्धान्त मान्य नहीं है। उन सबके मत में जीव का जन्म एक बार और सिर्फ एक बार ही होता है—वह चाहे क्षण मात्र के लिये हो अथवा निम्नतम योनियों में हो। उनसे यदि एक सवाल करें कि परम कृपालु परमेश्वर ने मनुष्यादि योनियों में जीवों के जन्म में विभिन्नता की सृष्टि क्यों की ? प्रभु ने क्यों एक को अल्पायु अन्य को दीर्घायु, एक को पापी, अन्य को पुण्यात्मा, किसी को अद्भुत प्रतिभासंपन्न किसी को अत्यन्त मूढ़मती, किसी को कुरूप व पंगु तथा किसी को सुन्दरता की अपारराशि से पूर्ण, किसी को दर दर का भिखारी अन्य को अतुल धनराशि का मालिक बनाया ? वे सभी कहते—"यह सब इच्छामय परमेश्वर की इच्छा से होता है : ईश्वरीय कार्यों में कारण खोजना असंगत है अन्याय है। अब इन सबकी इस मान्यता "सब इच्छामय ईश्वर की इच्छा" को यदि मान लें तो यह भी क्या नहीं मान लेना पड़ेगा कि सृष्टिकर्त्ता ईश्वर दयालु व न्यायकारी नहीं ; बल्कि निष्ठुर है, स्वेच्छाचारी तथा खामख्याली है ? स्वेच्छाचारी तानाशाही राजा जिस प्रकार अपनी व्यक्तिगत इच्छानुसार प्रजाजनों में किसी को पुरस्कृत तथा किसी को दण्डित करता है, उसके प्रजापालन में जिस प्रकार कोई न्यायनीति का मान दण्ड नहीं रहता, इन सब लोगों के आराध्य परमात्मा के आचरण में क्या अन्धेर नगरी के चौपट राजा वाली बात नहीं ? इनके खुदा की हरकतों में कोई न्यायनीति एवं नियम बद्धता नहीं होनी चाहिये। किन्तु हम ऐसा नहीं पाते; वरन् ईश्वरीय न्यायकारी होने की वजह से ही दयालु कहे गए हैं तथा कण-कण में घटित घटनाओं व अणु अणु एवं परमाणु में संचालित क्रियाओं में अकाट्य नियमबद्धता के दर्शन होते हैं।

जीव की मृत्यु के पश्चात् क्या अवस्था होती है ? यह जटिल प्रश्न प्राचीनकाल से लेकर जगत् के सकल लोकों के सब देशों के शिक्षित समाज में गम्भीर गवेषणा एवं चिन्तन

का विषय रहता आया है एवं नाना प्रकार से इस प्रश्न का उत्तर दिया जाता रहा [illegible]स्थ, सबल, सामर्थ्यशाली मनुष्य—जो कुछ काल हँसता था, खेलता था, कार्यरत था, हठात् रोग [illegible] अथवा किसी दुर्घटना के फलस्वरूप प्राणवायु से विच्युत उसका सुन्दर, सुकोमल सुश्री शरीर धाराशायी हो गया बाह्यरूपेण उसका शरीर ज्यों का त्यों समस्त अङ्ग प्रत्यङ्ग [illegible]त व अपरिवर्तित होने के बावजूद वह कौन सी वस्तु [illegible]के शरीर में अभाव हो जाता है कि वह फिर किसी दिन उठ सकेगा, न तो बैठेगा, न तो चलेगा और न कोई क्रिया-[illegible] ही कर पायेगा। उसका शरीर इस अवस्था को प्राप्त [illegible]ने के पश्चात् गल कर, सड़ कर पंचभूतों में मिल जायेगा। [illegible] प्रश्न जागता है कि उसके इस देह-यन्त्र में [illegible] [illegible] [illegible] किस [illegible] या शक्ति का अभाव हो गया जिसकी वजह से उसका अन्तिम परिणाम घटित हो गया? यह जो वस्तु उसके [illegible]ीर से अलग हो गया, उसका वास्तविक स्वरूप क्या है, मृत्यु के पश्चात् शरीर से अलग होने वाले वस्तु की किस तरह परिणति या अवस्थिति होती है? शरीर त्याग के [illegible]ात् उसका चिर विनाश हो जाता है? अथवा, वह फिर [illegible] स्थूल शरीर में आकर, जिस प्रकार पहले अन्य शरीरधारी [illegible]वों के सम्पर्क में रह चुका है, पुनः उसी प्रकार उनसे सम्पर्क स्थापित करता है? इन सभी प्रश्नों की मीमांसा एवं आलोड़न करने के क्रम में ही जगत में नाना प्रकार के धार्मिक मत [illegible]त्रों Religions Circls) व दर्शन शास्त्रों (Phylsophical Back grounds) की उत्पत्ति हुई हैं। [illegible]न प्रश्नों को हल करने की राह पर चलते हुए अन्य प्रायः [illegible]भी धर्म व दर्शन (वैदिक धर्म व हिन्दू धर्म को छोड़ कर) [illegible]ते है कि मृत्यु के पश्चात् जीव का आत्मा सूक्ष्म शरीर में सुदीर्घ काल तक कब्र में निश्चल निष्क्रिय होकर पड़े रहने के पश्चात अपने अच्छे व बुरे कर्मों के ईश्वरीय निर्णय के पश्चात् अनन्त स्वर्ग अथवा अनन्त नरक भोग करना है।

परन्तु हिन्दू धर्म कहता है कि जब तक जीव के हृदय में किसी प्रकार की अच्छी अथवा बुरी वासना अथवा कामना है, तब तक उसे बराबर पुनः देह धारण करना पड़ता है और इस संसार में यातायात करना पड़ता है क्योंकि यह संसार ही जीव की कर्म भूमि है। जब वासना रूपी कारण विद्यमान रहता है, कर्मरूपी फल तब तक उसे भोगना पड़ता है।

पुनर्जन्म सिद्धान्त विरोधी विशेषतः ईसाई एवं मुसलमानों के धर्मशास्त्र (???) कहते हैं—

"ईश्वर (या God या खुदा) जब जगतसृष्टि करता है तब समस्त मनुष्यों को सत एवं पवित्र-बुद्धि-सहित ही पैदा करता है। ईश्वर की इच्छा थी कि उसके संतान व संततिगण उसके द्वारा निर्धारित नीति व आदर्श के पथ पर चल कर जीवन को उन्नत तथा सुखी बनावें। लेकिन शैतान कहाँ से अचानक टपक पड़ा और ईश्वर की आज्ञा (या इच्छा) अमान्यकर सृष्टि प्रारम्भ के मनुष्य-युगल आदम एवं हव्वा को फुसलाकर गलत रास्ते पर परिचालित किया जिसके फलस्वरूप वे ज्ञान-वृक्ष के फलों को खाकर भ्रष्टाचारी व पतित हो गये। और उनके उसी नैतिक पतन के पश्चात् से ही मनुष्य समाज में अन्याय एवं पापों की उत्पत्ति हो गई और तभी से वंशानुक्रम से मनुष्य पापी होकर जन्म लेने लगी।"

अब हम ऊपर उद्धृत वाक्य समूहों पर विचार करते हैं तो निम्नलिखित बातें साधारणतया स्पष्टरूप से कही जा सकती है—

१—'ईश्वर जब जगत् सृष्टि करता है'—इस वाक्यांश से ऐसा लगता है कि 'किसी समय' जगत सृष्टि करता है और उसी समय से जगत है उसके पहले जगत का अभाव सिद्ध होता है। जगत पदार्थों से बना है; जब प्रकृति कभी नहीं थी तो अचानक सृष्टि हुई कैसे? ईश्वर या खुदा स्वयं में पदार्थ नहीं है वह उनके रूप परिवर्तन का कारण

अवश्य है। प्रकृति अनादि, अनन्त है, यह सिद्धान्त Chemistry (रसायन शास्त्र) के विद्यार्थी जानते और मानते हैं। Law of Conservation of MASS अथवा Law of Industructibility of matter के अनुसार पदार्थ कभी विनाश को प्राप्त नहीं होता न कभी हुआ और न कभी होगा—इसे ईश्वर कभी उल्लंघित नहीं कर सकता, या हम कहें कि ईश्वर स्वयं बनाए हुए ईश्वरीय नियमों का मात्र इच्छा करके ही व्यतिक्रम नहीं कर सकता। ईश्वर केवल प्रकृति की विकृति अथवा संस्कृति कालक्रम से किया करना एवं अपने इस कार्य स्वयं सम्पूर्ण होने के कारण सर्वशक्तिमान कहा जाता है। अस्तु जगत की नित्यता अथवा उसका सनातन होना विज्ञान सम्मत है और इसी के ऊपर समस्त हिन्दू दर्शन आधारित है।

२– वेद विरोधी तथा कथित धर्मशास्त्रों से उद्धृत उपर्युक्त वाक्यों को पढ़ने से आपको स्पष्ट हो जाएगा कि ईश्वर की प्रथम इच्छा ही पूरी नहीं हो सकी? शैतान निश्चित ही ईश्वरीय इच्छा के अनुकूल पैदा नहीं हुआ वह तो ईश्वर का केवल शत्रु ही नहीं बल्कि उसने ईश्वर की प्रथम इच्छा को पूरा नहीं होने दिया, वह ईश्वर विजेता होकर कहता है ईश्वर के पीछे क्यों पड़े हो, तुम सब मेरे भक्त बन जाओ, मैं तुम्हारे God की प्रथम इच्छा पर ही विजय प्राप्त कर चुका हूँ!!

३—ईश्वर की प्रथम इच्छा क्या थी? वह "इच्छा" की कि उसके सन्तान (आदम-हवा) एवं सन्ततिगण (बाद की पीढ़ियाँ) उसके द्वारा निर्धारित नीति व आदर्श के पथ पर चल कर.......... अर्थात् ईश्वर (इच्छामय?) ने नीति-निर्धारित किया और चाहा कि उसकी प्रजा उन पर चले। परन्तु यह सब एक शतान की बदौलत सम्भव नहीं हुआ जिस ईश्वर ने सबको सत एवं पवित्र बुद्धि देकर पैदा किया जिसने केवल यही चाहा कि उसके प्रजागण जीवन को उन्नत एवं सुखी बनावे उस ईश्वर की प्रजा का यह हाल? यदि ईश्वर 'इच्छामय' होता तो क्या उसके इच्छानुकूल होना सम्भव नहीं होता।

४—इसके अन्य ह[illegible] पर विचार करें—एक और विचित्रता मिलेगी। [illegible] के प्रथम में ही वेद-विरोधी मतावलम्बी 'जीवों को जन्म [illegible]ते समय विभिन्नता की सृष्टि क्यों की?' के उत्तर में [illegible]हता है—"यह सब इच्छामय ईश्वर की इच्छा है।" और इनका धर्मशास्त्र कहता है कि ईश्वर समस्त मनुष्यों को सत [illegible] पवित्र बुद्धि सहित ही पैदा करता है और इसलिये कह[illegible]है कि सभी का जीवन सुखी तथा उन्नत हो सके। फिर [illegible] ईश्वर सबको समान बुद्धि देकर सबके समान सुख व [illegible]नोन्नति का आकांक्षी है वह सबको एक-सा ही धन, बल, [illegible]र्य, सुन्दरता जीवनावधि व परिस्थितियां प्रदान क्यों न[illegible] करता? उत्तर: उसकी इच्छा। तो फिर उसकी पह[illegible] आकांक्षा का क्या हुआ?

५ – ध्यान दीजिये—'[illegible]क्ष के फल खाकर भ्रष्टाचारी व पतित हो गये।' प्र[illegible]: ज्ञान-वृक्ष [illegible]होता है या नहीं ये तो नहीं जाने जिन्होंने ऐस[illegible] सिद्धान्तों (या गप्पों!) [illegible] प्रायन किया होगा फिर [illegible] इस अलंकारिक भाषा का प्रयोग मान भी लें तो क्या [illegible] ज्ञान-वृक्ष (?) का फल खाकर भ्रष्टाचारी तथा प[illegible] हो जाता है? तब तो अज्ञानान्धकार के कुएँ में पड़े [illegible] बेहतर होगा। फिर God ने आदम-हव्वा को ज्ञा[illegible]क्ष के फल खाने से रोका क्यों? क्या वह चाहता था कि अज्ञानी ही रहें? अगर रोकना ही था तो ज्ञानवृक्ष की [illegible]बना क्यों की (अस्तु, यह विषयान्तर हो जाएगा अतः यहीं छोड़ता हूँ)।

ईसाई मत बाइबिल में कहता "Man is a Born Sinner" अर्थात् मनुष्य जन्म से ही पापी है। लेकिन यह जन्म पापी मनुष्य यदि अपने पुरुषार्थ व परमपिता के जरिये सत्कार्यों का अनुष्ठान करके यथेष्ठ पुण्य संचय कर लेता है तो वह पुनः ईश्वर का अनुग्रह-भाजन हो जाता है। जो वैसा नहीं करते वे उसके घृणा व अभिशाप के पात्र के रूप में विवेचित होते हैं। और ईश्वर के इस अनुकम्पा अथवा अभिशाप के फलस्वरूप क्रमशः अनन्त स्वर्ग अथवा अनन्त नरक भोग मिलता है। उनके मत में यही ईश्वर का अन्तिम

विधान है तथा मनुष्यों को [illegible] और [illegible] अवसर नहीं मिलने वाला। लेकिन मनुष्यों के किये पाप या पुण्यों के फलाफल मृत्यु के पश्चात् ही नहीं भोगना होगा, बल्कि इसके लिये सबको मृत्यु के पश्चात् उसी कब्र में सुदीर्घ काल तक रहना पड़ेगा। इसके पश्चात् जब जगत के प्रलय का समय आयेगा तब "विचार के दिन" (Day of Judgment) समस्त मृत व्यक्तियों की आत्मा के विचार के लिये ईश्वर के पास उपस्थित होना पड़ेगा। विचार में जो अपेक्षाकृत अधिक पुण्यात्मा माने जायेंगे वे अनन्त स्वर्ग में जायेंगे तथा जो अपेक्षाकृत अधिक पापी चुने जायेंगे वे सदा-सर्वदा के लिये अनन्त नरक में झोंक दिये जायेंगे। ईश्वर का यह विधान अचल व अटूट है।

अब हम उपर्युक्त धर्मों के सिद्धान्तों पर कुछ विचार करना चाहेंगे। सर्वप्रथम तो यही कहना पड़ेगा कि इनके अनुसार ईश्वर की शक्ति मत्ता (All mighty-ness) खण्डित हो जाती है, क्योंकि स्वभावतः मन में प्रश्न उठता है कि उसके [illegible] धर्मराज्य में शैतान की इतनी शक्ति व साहस कैसे व कहाँ से आगई कि जिसके बल पर वह ईश्वरीय-सृष्ट नर-नारी को विपथ पर संचालित कर सका? और ईश्वर इस अपराध के लिये शैतान को दण्डित करने में अक्षम तथा असमर्थ होकर निरीह व निर्दोष सन्तानों को किसलिये दण्डित करता है? एवं वह दण्ड ऐसा वैसा नहीं, बिल्कुल एक बार। अनन्त काल के लिये दुःसह नरक-यन्त्रणा जहाँ बिन्दु मात्र क्षमा व कृपा का स्थल नहीं। उपर्युक्त धर्मावलम्बी लोगों के मत में आशा व आश्वासन का स्थान कहाँ? ईश्वर के प्रेम, वात्सल्य व निरपेक्ष न्याय नीति का परिचय कहाँ? भगवान् व भगवत् विधान यदि इसी तरह का हो तो भगवान्की भक्ति उसके विधानों व आदर्शों के अनुगामी होने की आवश्यकता ही क्या? प्रश्न उठेगा कि क्या हिन्दू धर्म में स्वर्ग नारकवाद नहीं? वहाँ भी तो जीवों के दुःसह नरक-यन्त्रणा भोगने का विधान है? उत्तर है—'हाँ', किन्तु उसका स्वरूप भिन्न है। उपरोक्त ईसाई धर्मानुसार से सर्वथा अलग है। मनुष्य को अपने किये गये अन्यायों व पापाचरणों का फल अवश्यमेव भोगना पड़ता है। कुछ या फल हाथोंहाथ इसी जन्म में मिलता जाता है तथा कुछ का फल दूसरे जीवन के संस्कारों के रूप में मृत्यु के बाद भी जीवात्मा भोगता है। इसी जगत में आकर ही वह उन्हें भोगता है। यही जगत ही नरक व स्वर्ग दोनों की पृष्ठ भूमि है। हिन्दू धर्म का अविचल सिद्धान्त है कि किये हुए कर्मों का फल चाहे वह स्वर्गीय सुख हो या नारकीय-यन्त्रणा हो, अवश्यमेव भोगना पड़ता है। यह कर्मवाद का सिद्धान्त युक्ति-संगत तथा विज्ञान सम्मत भी है। कर्म करने फल का भोग करना ही पड़ता है। यही तो प्राकृतिक (Natural Rule) है। 'As you sow, so you will reap'; जैसा बोओगे वैसा ही काटोगे (पाओगे)। विज्ञान भी कहता है—"Every Action has equal and opposite reaction" प्रत्येक क्रिया के बदले प्रतिक्रिया होती है; क्योंकि कोई क्रिया निष्फल नहीं हो सकती। किन्तु, 'अनन्त काल तक नरक या स्वर्ग-भोग का सिद्धान्त' वैदिक धर्म (हिन्दू दर्शन) नहीं मानता। गीता स्पष्टाक्षरों में कहती है—"क्षीणे पुण्ये मर्त्य-लोकम् विशन्ति" पुण्य का क्षय होने पर जीव को पुनः मर्त्य-लोक में आना अनिवार्य है। जब तक उसकी वासना का नाश नहीं होता एवं पूर्णत्व लाभ नहीं होता, तब तक उसे पुनः-पुनः इस संसार में यातायात करना ही पड़ता है। सुतरां, जीव की चरमगति अनन्त काल के लिये स्वर्ग या नरक भोग नहीं। देवलोक में एक दल परम सुन्दरी अपसरा उल्लास आनन्द में विभोर हो एवं प्रभु या परमपिता परमेश्वर वहीं अप्सरापुरी में आसीन अपने भक्तों के साथ आसीन होकर उन्हें स्वर्गीय आनन्द बाँटता होगा एवं पुण्य-भोगी जीवगण उसके सानिध्य में भोग-सुरा में प्रदत्त हो झूमते होंगे – इस अवस्था को आर्य हिन्दू कदापि चरम प्राप्ति व साध्य के रूप में स्वीकार नहीं करता। वेद तो कुछ और ही स्वर्ग की चर्चा करता है। उनके अनुसार वासना का नाश जहाँ मुक्ति व परमशक्ति वहीं है। स्वर्ग या नरक भोगना दोनों भोगवाद में सन्निहित है और यह ब्रह्माण्ड ही सशरीर आत्मा (Spirit incased in matter) के कर्म-का क्षेत्र होता है, चरमोत्कर्ष तो आत्मा की जन्म-मरण के बन्धनों से मुक्ति यानी भोगों की क्रिया से मुक्ति ही है। उसे न तो स्वर्ग भोगना है नरक; भोग का सर्वथा अभाव ही मुक्ति है।

॥ ओ३म् ॥

ऋषि दयानन्द दर्शन

संसार में बड़े-बड़े सुधारक एवं महापुरुषों के जन्म का कारण तत्कालीन परिस्थितियाँ हुआ करती हैं। यदि यहाँ शूद्रों और पशुओं पर अत्याचार न होते, लाखों पशु वेदों के नाम पर बध करके उनके रक्त-मांस से यज्ञकुण्ड अपवित्र न किये जाते, यदि शूद्रों को सामाजिक अधिकारों से वञ्चित करके उनके लिये वेदों की शिक्षा और कर्मकाण्ड (संस्करणादि) का द्वार बन्द न किया जाता तो शायद महात्मा बुद्ध को राज्य-सुख त्याग कर तपस्या न करनी पड़ती। इसी प्रकार यदि देश में नास्तिकता का प्रचार न बढ़ना तथा वेदों का अनादर एवं उनके विमुख होने का भाव उन्नति न करता, तो सम्भव न था कि शंकराचार्य को गृह त्याग कर यत्र-तत्र भ्रमण करना पड़ता। निष्कर्ष यह कि महापुरुष उत्पन्न ही तब होते हैं, जब उनकी उत्पत्ति की आवश्यकता देश में पूर्ण रीति से अनुभव होने लगती है।

महर्षि दयानन्दजी के जन्म का कारण भी तत्कालीन परिस्थितियाँ ही थीं। परिस्थितियाँ निम्न प्रकार थीं :—

१—वेदों के नाम से लोग परिचित तो थे, पर वेद क्या है, उनमें किन-किन शिक्षाओं का विधान है? इससे पूर्णतः अनभिज्ञ थे। यही कारण था कि एक पुर्तगाली पादरी (Robert Noble) रोबर्ट नोबल ने यजुर्वेद के नाम से कल्पित वेद गढ़कर उसमें ईसाई धर्म की शिक्षा अंकित की और मद्रास के अनेक वेदानुयायियों को ईसाई बनाने में सफल हुआ।

२—देश में प्राचीन वैदिक सभ्यता का मान घट रहा था, उसका स्थान अनेकों उत्पातों और अत्याचारों का मूल पश्चिमी सभ्यता ले रही थी।

३—प्राचीन संस्कृत साहित्य निकम्मा और वेद गड़रियों के गीत समझे जाते थे। देशवासी आँखें बन्द करके उसका अनुकरण करने में गौरव अनुभव करते थे।

४—जातीय (आर्य) भाषा का पढ़ना सभ्यता के विपरीत समझा जाता था, इसी लिये हिन्दी गन्दी कहलाने लगी थी। विदेशी भाषायें उसका स्थान ले रही थीं।

५—बाल-विवाहादि के प्रचलन एवं ब्रह्मचर्य के लोप से देशवासियों विशेषकर हिन्दू जाति के शरीरों में आत्मिक एवं शारीरिक बल का ह्रास हो रहा था। इसी निर्बलता के कारण समय-समय पर अपमानित एवं लज्जित होना पड़ता है।

६—कर्म की निरादरता का भाव मतमतान्तरों की कुशिक्षा के प्रचलित हो जाने से जनसाधारण की आर्थिक अवस्था गिर रही थी। अनाथ एवं विधवाओं की संख्या नित्य-प्रति बढ़ती जाती थी। उनकी रक्षा का उचित प्रबन्ध नहीं होने के कारण उन्हें विधर्मी बनना पड़ता था।

७—बाल-विवाह पराकाष्ठा को पहुँच चुका था, और उसके दुष्परिणामों से हिन्दू-जाति में लाखों बाल विधवायें बनती जा रही थीं। जिनमें से अधिकतर एक वर्ष से कम आयु की थीं। परिणामतः उनका विवाह पुनः न होने के कारण भ्रूणहत्या, गर्भपात, शिशु वध आदि अनेक कुकृत्य हिन्दू जाति के मस्तक पर कलंक का टीका बन रहे थे।

८—जन्म से जाति-पाति की प्रथा प्रचलित होने से खान-पान में छुआछूत की मात्रा बढ़ जाने से हिन्दुओं में परस्पर घृणा का भाव बढ़ता चला जा रहा था।

९—शूद्रों के साथ द्विजों का व्यवहार अत्यन्त अनुचित था। तंग आकर वे दिन-प्रतिदिन ईसाई और मुसलमानों की संख्या बढ़ा रहे थे।

१०—नारी का निरादर बढ़ रहा था। वह शिक्षा की अनधिकारी समझी जाती थीं। तत्कालीन सन्त कवि तुलसी-दासजी ने तो यहाँ तक कह दिया था—'ढोल गंवार शूद्र पशु नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी।'

११—हिन्दू जाति ईश्वर से विमुख हो रही थी, अज्ञानतावश पाषाण प्रतिमाओं को पूजने लगी थी। एक निराकार ईश्वर का स्थान अनेक सैयद, मसानी तथा कब्र एवं पीरों ने ले लिया था।

इतना ही नहीं, अपितु भारतीय राष्ट्रीय चेतना की प्रबल बाढ़ में जो कारण बनकर रहे थे, उनका भी उल्लेख आवश्यक है। शिक्षित वर्ग पाश्चात्य सभ्यता का पूर्णतः भक्त बनता जा रहा था। परिणामतः भारत का प्राचीन गौरव लुप्त प्रायः हो रहा था। लोगों की बुद्धि विकृत होकर उसमें दासता घर कर गई थी, एवं उनका स्वाभिमान तथा स्वतन्त्र विचार शक्ति को तो पाला मार चुका था।

दयानन्द ने देश की कथनीय दशा को करुण-नेत्रों से देखा। जिस समय उथला यूरोपीय बुद्धिवाद भारतीय धमनियों में धीरे-धीरे प्रवेश कर रहा था और प्राचीन गौरव को भुलाता जा रहा था। दूसरी ओर प्लेग की महामारी के समान ईसाईयत एवं इस्लाम भारतीय जीवन में प्रविष्ट हो रहा था। यह ऐतिहासिक सत्य है कि जब ऋषि दयानन्द के मस्तिष्क का निर्माण मथुरा नगरी की एक जर्जरित कुटिया में हो रहा था। उस समय भारत की उच्चतम धार्मिक एवं राजनैतिक भावना इतनी जर्जरित हो चुकी थी कि युरोप की धार्मिक भावना एवं राज्य सत्ता उसकी मानवीय सन्तोष जनक पूर्ति किये बिना उसके टिमटिमाते दीपक को बुझाने की चाल चल रही थी। ब्रह्म समाज इस दुरवस्था पर दुखी था, परन्तु इस पर जाने में या अनजाने में ईसाईपन की छाया जम चुकी थी। केवल ५० वर्ष के काल में मौलिक सिद्धान्तों के दो बार परिवर्तन हो जाने पर जनता में उसके प्रति श्रद्धा नष्ट हो चुकी थी। कालान्त में यह समाज ईसाईयत में पूर्णतया विलीन हो गया।

महान वीर योद्धा ऋषि दयानन्द का उत्साह पूर्वक स्वागत होने का कारण इस पृष्ठ भूमिका के प्रकाश में सहज ही समझ में आ सकता है। आप स्वयं वेदों के धुरन्धर विद्वान एवं मर्मज्ञ ऋषि थे। ऋषियों की परम्परा के अंग थे, वीर भावना के साथ प्राचीन भारत के पवित्र ग्रन्थों को लेकर कार्य क्षेत्र में अवतीर्ण हुए थे। आपने अकेले ही भारतीय सभ्यता को ठेस पहुँचाने वालों के विरुद्ध मोर्चा लगाया। वेद विरुद्ध चलने वाले पोगा पंथियों को शास्त्रार्थ के लिये ललकारा। ऋषि की तर्क पटुता ने भारत पर छाई काली घटाओं को छिन्न-भिन्न करके रख दिया। इस पवित्र कार्य को आगे बढ़ाने के लिये आपने रात-दिन अथक परिश्रम करके आर्य समाज की स्थापना की।

जीवन परिचय

आपका जन्म संवत् १८८१ गुजरात काठियावाड़ के मौरवी राज्यान्तर्गत टंकारा ग्राम में हुआ। जहाँ सेठ शूरजी भाई ने डेढ़ लाख रुपये का भवन बना कर वैदिक अनुसंधानार्थ दान दिया। आपके पिता करसनजी तिवारी औदिच्य ब्राह्मण थे। तत्कालीन अंध परम्परागत शिवपूजन के पक्षपाती थे। आपका जन्म नाम मूलजी दयाराम था, लालन पालन धार्मिक कट्टरपन के वातावरण में हुआ। आठ वर्ष की आयु में उपनयन (यज्ञोपवीत) संस्कार हुआ एवं सामाजिक रीति रिवाजों का पूर्णतः पालन कराया गया। ऐसा प्रतीत होता था कि धार्मिक कट्टरपन में समय आने पर पिता का स्थान ले लेगा, परन्तु यह किसको ज्ञान था कि इसी भ्रम को दूर करने के लिये प्रभू ने इस पवित्र आत्मा को भेजा है। यह एक आश्चर्यजनक उदाहरण है। जबकि यह कल्पना कर ली जाती है कि बलात लादी हुई शिक्षा के सांचे में नवयुवकों के मस्तिष्कों को ढाला जाना, अपनी इच्छानुसार उनके भविष्य

का निर्माण करना ; इसका सुनिश्चित परिणाम क्रान्ति होती है। इसी प्रकार की क्रान्ति ऋषि के जीवन में हुई। १४ वर्ष की अवस्था में शिवरात्रि को व्रत रखने के लिये विवश किया गया। रात्रि में जब पिताजी एवं अन्य भक्तजन शिव पूजन का उपचार करके जागरण करने लगे तो धीरे धीरे समस्त भक्त मंडल निद्रा देवी की गोद में जा विराजा। केवल जिज्ञासु दयानन्द ही जागता रहा। सहसा एक चूहा आया और स्वतन्त्रतापूर्वक शिवजी की मूर्ति पर चढ़कर भोग लगाने लगा, बस यह प्रर्याप्त था। सोचा यह कैसा शिव है जो चूहे से भी आत्म रक्षा नहीं कर सकता? (सर सैयद अहमद खाँ ने तो इसीको इलहाम माना है) बालक की आत्मा में जागृति उत्पन्न हुई एवं तत्कालीन मूर्ति पूजा की निस्सारता का ज्ञान हो गया। पिताजी को जगाकर संदेह प्रकट किया गया, उत्तर डांट डपट के सिवा क्या था। आप तत्काल घर चले आये व्रत खोल दिया (भोजन खा लिया)। यह घटना पिता पुत्र के विचार संघर्ष के लिये प्रर्याप्त थी। दोनों की प्रकृति भिन्न थी अतः पारस्परिक समझौते का द्वार बन्द हो गया। तत्पश्चात् भगिनी एवं चचा की मृत्यु ने संसार की निस्सारता का परिचय कराया। १९ वर्ष की अवस्था में बलात् किये जाने वाले विवाह से बचने के लिये घर से भाग निकले, पकड़े गये, पिता की कैद में रहे, समय पाकर स्वतन्त्रता प्रिय बालक पुनः भागा और फिर पिता से पुनर्मिलन न हो सका।

सच्चे शिव की खोज

संसार के प्रत्येक सुख से वंचित केवल भिक्षा पर अवलम्बित सम्पन्न परिवार का वह ब्राह्मण कुमार साधु वेश में १५ वर्ष तक यत्र तत्र भ्रमण करता रहा। बीहड़ जंगलों एवं नदियों के किनारे रैन बसेरा किया एवं बर्फ के टुकड़ों से अपनी क्षुधा को शांत करता हुआ यह बालक, विद्वान, तपस्वी एवं सच्चे योगी की खोज में उत्तर भारत के प्रत्येक तीर्थ पर गया, परन्तु धर्म जिज्ञासा शान्त न हुई। अन्त में सन् १८७० में गुरुवर विरजानन्दजी के दर्शन मथुरा नगरी में हुए। जो प्रचलित अंध-परम्पराओं एवं कुप्रथाओं के घोर विरोधी थे। आप करतारपुर (पंजाब) के निवासी थे २१ वर्ष की अवस्था में शीतल रोग से पीड़ित अपने बाह्य नेत्रों की ज्योति विहीन मातर पिता के आश्रयरहित घर से निकल पड़े थे। प्रतिभावान बालक काशी में व्याकरण का पूर्ण पान्डित्य प्राप्त कर मथुरा में योग्य शिष्य की खोज शिक्षण कार्य किया करते थे। अकस्मात् इच्छित शिष्य को प्राप्त कर गुरु मन ही मुग्ध थे। दयानन्द ने पूर्ण रूपेण अपने आपको गुरु के अर्पित कर दिया जिसने भारत की प्राचीन गौरव गरिमा पूर्ण गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के द्वारा ब्रह्मचर्य एवं ज्ञान की भट्टी में तपाकर कुन्दन बना दिया। केवल तीन वर्ष के अल्पकाल में इस अजेय पुरुष की सेवा से जब शिक्षण कार्य सम्पन्न हुआ तो दीक्षा का समय आया। इस विलक्षण गुरु की दक्षिणा भी अद्भुत थी। दयानन्द एक थाल भरकर लौंग लाय और श्री चरण में भेंट किया, गुरु की कुछ और ही कामना थी। गुरु ने शिष्य का अवशिष्ठ जीवन वेद प्रचार, पाखण्ड खण्डन, मानव जाति के उद्धार और प्राचीन सभ्यता के प्रचार के लिये मांगा। शिष्य गुरु आज्ञा शिरोधार्य कर प्रचार कार्य के लिये हरिद्वार कुम्भ के मेले में पहुँचे, वहाँ पाखण्ड खंडिनी पताका लगाई। अनेक श्रद्धालु स्त्री, पुरुष आपके पास आते और प्रश्नोत्तर करते। स्वामीजी निरन्तर पाखण्डों का खण्डन एवं वेदानुकूल आचरण पर बल देते रहे। मेले के अन्त तक यह कार्य चलता रहा। उत्तर भारत में वे इसी प्रकार यत्रतत्र भ्रमण करते हुए प्रचार करते रहे। आप इस पुनीत कार्य में इतने सफल हुए कि ५ वर्ष में उत्तर भारत का काया कल्प सा हो गया। पाखण्डियों को आटे में घाटा आने लगा। इसी विद्वेषाग्नि से उद्वेलित हो आपको १७ बार घातक विष दिया। अनेकों धूर्तों ने अपशब्दों द्वारा हतोत्साह करना चाहा। एक पाखंडी शिव भक्त ने तो आपके ऊपर भयंकर विषधर (सर्प) फैंका, परन्तु आपने तत्काल पैर से कुचल कर मार दिया। ऐसे निर्भीक प्रचारक पर छल से विजय पाना सर्वथा असम्भव था, क्योंकि वे वैदिक

वाङ्मय और संस्कृत के अनुपम भण्डार थे। आपके ज्ञान और तेज के सन्मुख ठहरना कठिन था। आपके अकाट्य तर्क एवं ओजस्वी स्पष्ट वक्तृता से अनेक विरोधियों का विरोध भस्म सात् हो जाया करता था। वे लोग दयानन्दजी की तुलना जल की प्रबल बाढ़ से किया करते थे। वास्तव में शंकराचार्य के पश्चात् दयानन्द जैसा वेदवित् भारत में उत्पन्न नहीं हुआ।

काशी शास्त्रार्थ :

अनेकों बार पराजित होने पर पौराणिक पण्डों ने स्वामीजी को अपने गढ़ (बनारस) में आने को ललकारा। दयानन्द सिंह समान निर्भीक झूमते हुए वहाँ पहुँचे, नवम्बर १८६९ में उस महान शास्त्रार्थ में प्रवृत्त हुए, जिसकी उपमा इतिहास में बहुत खोजने पर भी मिलनी कठिन है। अपने स्थान पर तो सबही वीर बनते हैं, परन्तु विपक्षी के दुर्ग में जाकर सिंह समान गर्जना करना एवं उनको परास्त करना दयानन्द का ही काम था। आप लाखों आक्रान्ताओं के सामने, जो आपको परास्त करने को उत्सुक थे, जा डटे। आपने लगभग ३०० पण्डितों से काशी नरेश की मध्यस्थता में शास्त्रार्थ किया। दूसरे शब्दों में इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि पोपगढ़ की अग्रगामिनी और सुरक्षित दोनों सेनाओं को परास्त कर यह सिद्ध कर दिया कि जिन अनार्ष ग्रन्थों का आचरण किया जाता है, वे वेद विरुद्ध है। आपका आधार केवल वेद था। पण्डितों के धीरज का बांध उस प्रबल बाढ़ के सामने न ठहर सका। अन्ततः आपका बहिष्कार एवं परिहास करने लगे। दयानन्द को अपने चारों ओर निराशा का कुहरा प्रतीत हुआ। परन्तु अगले दिन प्रातः महाभारत के अद्वितीय सेनानी अर्जुन के समान कौरव रूपिणी पौराणिकों की अक्षोहिणी सेना को चीरते हुए अपने प्रचार को अबाधगति देकर ऋषिवर आगे बढ़े। इस ऐतिहासिक संघर्ष की प्रतिध्वनि से समस्त भारत का पौराणिक मण्डल घबरा गया, परिणामस्वरूप उत्तर भारत में पुनः वेद की ऋचायें गूंजने लगी। विजयी दयानन्द वेद का नाद बजाते हुए गंगा के किनारे-किनारे कलकत्ता जा पहुँचे, वहाँ श्री राम कृष्णजी परमहंस से प्रथम भेंट हुई, परमहंसजी इतने प्रभावित हुए कि अपने प्रियतम शिष्य नरेन्द्र को भी इस पवित्र दर्शन का आनन्द प्राप्त कराने ले गये। स्वामीजी उस समय प्रमोद कानन में समाधिस्थ हो प्रभु चिन्तन में लय हो रहे थे, मस्तक पर अपूर्व तेज टपक रहा था। बालक नरेन्द्र ने श्रद्धावनत हो सादर प्रणाम किया और शान्त भाव से हृदय में एक तीव्र जिज्ञासा को लिये घर आ गये। बालक ने गुरुदेव से इस दिव्य तेज को प्राप्त करने की जिज्ञासा प्रकट की। श्री परमहंसजी ने आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत को इसका मूल बताया। जिज्ञासु बालक ने गुरुजी की आज्ञा शिरोधार्य की, आगे चल कर यह बालक स्वामी विवेकानन्दजी बने और देश-विदेश में वेद का सन्देश सुनाकर अमर हो गये। श्री केशवचन्द्रजी एवं आपके अनुयायियों ने भी ऋषिवर के दर्शन किये। इनको ब्रह्मसमाज के प्रचार एवं मूर्तिपूजा का खण्डन तथा धार्मिक रूढ़िवाद के खण्डन के लिये उपयुक्त नेता मिल गया। तत्ववेत्ता दयानन्दजी ने पाश्चात्य विचारों से विमोहित दार्शनिकों के साथ सन्धि न की। आपकी शुद्ध आस्तिकता एवं लोह सदृश वेद निष्ठा ब्रह्मसमाज के सिद्धान्तों से मेल न खा सकी। ब्रह्मसमाज संशयवाद में ग्रस्त था, वेदों की अपौरुषेयता एवं आवागमन के सिद्धान्त को स्वीकार न करते थे। इसपर दयानन्द और ब्रह्मसमाज ने अपना-अपना रास्ता पकड़ा। श्री केशवचन्द्र सेन के एक सुझाव कि भविष्य में आप अपना प्रचार संस्कृत के स्थान पर जनसाधारण की भाषा में करें, ऋषिवर ने स्वीकार किया, फलतः आपका प्रचार सर्वसाधारण में लोकप्रिय होने लगा। ऋषि ने अपने ग्रन्थ भी इसी विकासोन्मुखी हिन्दी भाषा में रचे। जनता ने सत्य और असत्य को परखा। सदियों से रूढ़िवाद से पीड़ित जनता वेद की भक्त बन गई। इस कार्य को स्थायी रूप देने के लिये ऋषिवर ने १० अप्रैल १८७५ को बम्बई में आर्यसमाज की स्थापना की। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना परम धर्म बनाया। इस संस्था के द्वारा धर्म-पिपासु

जिज्ञासुवर्ग के लिये अमृतमयी वेद वाणी का रसपान सहज-गम्य हो गया। इसके साथ-साथ एकेश्वरवाद, सच्चरित्रता एवं सार्वभौम कल्याण की कामना के साथ-साथ स्वदेशभक्ति का पाठ भी इस समाज के द्वारा जनता को पढ़ाया जाने लगा। परिणामतः महाराष्ट्र, गुजरात, राजपूताना, उत्तरप्रदेश, पंजाब, हरियाणा तथा दिल्ली इत्यादि में विशेष रूप से आर्यसमाजों का जाल-सा बिछ गया। धीरे-धीरे अछूतोद्धार, स्त्रीशिक्षा, शुद्धि एवं अन्य सामाजिक जीवन का महत्वपूर्ण परिष्कृत एवं परिमार्जित रूप जनता के सामने आया। आपने भारत के निष्प्राण शरीर में अदम्य उत्साह एवं दृढ़ निश्चयात्मक संकल्प और सिंह समान रक्त भर पुनर्जीवित कर दिया। आपके शब्द वीरोचित शक्ति के साथ गूंजे।

ऋषिवर ने भाग्य के भरोसे बैठे और सांसारिक निष्क्रियता में डूबे हुए अपने देशवासियों को स्मरण कराया कि आत्मा कर्म करने में स्वतन्त्र है, परन्तु फल भोगने में परतन्त्र है। कर्म से ही प्रारब्ध बनता है और प्रारब्ध ही कर्मों का फल होता है। हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहने से कर्म करना और सत्कर्म करना कहीं श्रेयस्कर है। स्वामीजी ने विशेषाधिकार एवं पक्षपात की घास को भस्मसात कर वैदिक ज्ञान का मार्ग मानव मात्र के लिये खोल दिया। आपने वैदिक सभ्यता की विशेषता को अपने व्यक्तिगत जीवन में ढालकर सभ्य समाज के हृदयों पर ऐसी छाप डाली जो दिन-प्रतिदिन निखरती एवं चमकती जाती है। वास्तव में ऋषि दयानन्दजी वे महामानव थे, जिनको अपने कार्यक्षेत्र का पूर्ण ज्ञान था। आपके सिद्धान्त वैदिक शिक्षा पर निर्भर एवं अकाट्य थे। आपने अपने साधन स्वयं चुने और प्रबलतम अनुभूति के साथ अपने अनुकूल वातावरण का निर्माण किया, जन्मजात नेता के रूप में वीरता पूर्वक अपनी भावना को क्रियात्मक रूप दिया, आपके जीवन में इतनी प्रभावशालीनता एवं लोकप्रियता का एकमात्र मूल कारण स्पष्टवादिता एवं सत्यप्रियता थी। इसी कारण आप निर्भीक होकर अपना कार्य अथक कर्मयोगी की नाईं निरन्तर करते रहे। आपमें विचार कर्म और नेतृत्व की प्रतिभा का अनुपम सम्मिश्रण थी। आपने मानव मात्र के लिये शिक्षा-सूत्र का समान अधिकार दिलाया। आप जन्मना जाति प्रथा के विरोधी थे एवं कर्मानुसार वर्ण विभाजन पर जोर दिया करते थे। आपकी कामना थी कि मानव मात्र के लिये विकास का मार्ग उन्मुक्त होना चाहिये, जिससे वह समाज के लिये अधिकाधिक उपयोगी सिद्ध हो सके। आपको सबसे अधिक अस्पृश्यों के प्रति घृणित अन्याय असह्य था। उनके अधिकारों का जितनी प्रबलता से आपने समर्थन किया, आजतक किसीने न किया।

आज अस्पृश्य भाव लुप्त करने का जो बीड़ा भारत सरकार ने उठाया है, वह उस ऋषि की ही देन है। महर्षि के प्रयत्न से जिन जातियों (वर्णों) के मानव परमपिता की कल्याणी वाणी के श्रवण मात्र तक के अधिकार से वंचित थे, उनमें आजकल अनेक कृतविध, पण्डित, शास्त्री आदि की पदवी से विभूषित हैं। दयानन्द की दया से जिनको चौके की लकीर से बाहर भी भोजन दुर्लभ था उनको अब प्रत्येक शुद्ध स्थान में दाल भात की सुपच रसोई सुलभ हो गई है। जो पौराणिक पण्डित "स्त्री शूद्रो न धीयताम्" पर स्व पाण्डित्य का सारा बल लगा दिया करते थे, वे भी आज मुक्त कण्ठ से मनुजी के 'ब्रह्म चर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्' का समर्थन करते हैं। अब उनके गण्यमान्य पुरुष बाल विधवाओं के पुनर्विवाह कर दुःख भंजन के पवित्र व्रत में दीक्षित दृष्टिगोचर होते हैं। यहाँ तक कि अनेक पौराणिक तथाकथित नाकों ने स्वबाल विधवापुत्रियों का आजन्म मर्मान्त वेदना विमोचन करके अक्षय पुण्य का सञ्चय किया है। यत्रतत्र सनातन धर्म कन्या विद्यालय दृष्टिगोचर होते हैं। यह सब उस ऋषि का प्रताप है। शिक्षा सुधारक—मैकाले शिक्षा प्रणाली के द्वारा भारतीय युवक वर्ग का शोषण एवं पतन ऋषि के करुणापूर्ण नेत्रों से न देखा गया। इसके निराकरण के लिये आपने गुरुकुल प्रथा को चालू किया। ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने पर बल दिये। कन्या तथा युवकों के विद्यालय दूर दूर स्थापित करने की प्रथा चलाई।

इसके अतिरिक्त निःशुल्क शिक्षा पर बल दिया। जिससे विद्यार्थी सादा जीवन व्यतीत कर सकें तथा देश पर भार न न हो। आपने सर्वसाधारण में संस्कृत प्रचार पर बल दिया। परिणामस्वरूप आज इन गुरुकुलों से संस्कृत के धुरन्धर विद्वान् बनकर निकलते हैं। वास्तव में पश्चिमीय सभ्यता के इस बढ़ते हुए प्रवाह को इस प्रकार पलट देना ऋषि दयानन्द का अलौकिक चमत्कार ही हो सकता है। अब इस कलिकाल में देवगिरोद्धारक रूप में महर्षि का नाम आसूर्य चन्द्र चमकता रहेगा।

जिन अबला एवं अनाथों को मौलवी और पादरी अनायास अपनी भेड़ों में मिला कर भारत की भावी संतति को सदा के लिये परतक रखने का षड्यन्त्र रच रहे थे। उनको ऋषि की दिव्य दृष्टि ने निहार कर उनके लिये वैदिक अनाथालय एवं वैदिक विधवाश्रम स्थापित करके हिन्दू जाति पर अविस्मरणीय उपकार किये हैं।

गोरक्षक :

ऋषि ने जहाँ भारत की अन्य न्यूनताओं को दूर करने का प्रयत्न किया, वहाँ सर्वहितकारिणी गौमाता का क्रुण क्रन्दन भी आपसे न देखा गया। आपने "गो करुणानिधि" पुस्तक लिखकर गौ का महत्व प्रदर्शित किया तथा हस्ताक्षर आन्दोलन चलाकर जन-जागरण किया। स्वामीजी की आकस्मिक मृत्यु से यह कार्य अपूर्ण रह गया अन्यथा गौ-वध उसी समय बन्द हो जाता।

स्वदेश हितैषी :

स्वामी जी के उपदेश एवं सिद्धान्त सार्वभौम धर्मोपदेष्टा के रूप में हमारे सामने आते हैं। परन्तु इतना होने पर भी "जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" के अनुसार आपका भारत हितैषी होना परमावश्यक था। जिस मानव में स्वदेश हित एवं स्वजातीयता के भाव नहीं है वह आत्म सम्मान शून्य और स्वाभिमान रहित मानव पशु तुल्य है। एक कवि ने कहा है—"जिसको न निज गौरव तथा निज जाति का अभिमान है। वह नर नहीं, नर पशु निरा है और मृतक समान है॥" तो ऐसा विश्व कुटुम्बी संन्यासी भी स्वमाता के असीम उपकारों को भुलाकर कृतघ्न बन सकता है? जो इस पवित्र जन्मभूमि से मृत्कणों से स्वशरीर या योग्य उपकारको विस्मृत करके अप्रायश्चित्तीय कृतघ्नता का भागी हो सकता है? क्या हम ऋषिवर जैसे कृतविद्य और बहुश्रुत मानव में इन न्यूनताओं की आशा कर सकते हैं? नहीं, कदापि नहीं। यही कारण है कि महर्षि को अपने लेखों में अनेक स्थानों पर स्वदेशभक्ति और आर्यावर्त के प्राचीन गौरव के गहरे रंग में आपादमस्तक रंगा हुआ पाते हैं। यह निःशंक कहा जा सकता है कि ऋषिवर आजकल के किसी भी राष्ट्रवादी और सच्चे देशभक्त से कम न थे। कुछ सज्जन सम्भव है विदेशी वस्त्र वर्जन एवं स्वदेशी वस्त्र प्रेम के आन्दोलन का आरम्भ बंग भंग से समझते हैं। कुछ इसको गाँधीयुग की देन मानते हैं। किन्तु निष्पक्ष भाव से यदि ऐतिहासिक अन्वेषण किया जावे तो ज्ञात होगा कि जिस समय किसी भी राजनैतिक आन्दोलन ने विदेशी वस्त्र वर्जन का नाम भी न लिया था, उस समय ऋषिवर ने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में स्वराज्य की महत्ता एवं विदेशी वस्त्र वर्जन का शब्द उठाया। आपके अनुयायी स्वनामधन्य श्री पं० गुरुदत्त जी एम० ए०, लाला साईंदास जी, स्वा० श्रद्धानन्द जी, ला० लाजपतराय जी आदि स्वदेशी वस्त्र ही पहनते थे। जिस प्रकार भूभ्रमण एवं गुरुत्वाकर्षण आदि के सिद्धान्त के आविष्कार का अभिमान आर्य भट्ट आदि भारतीय ज्योतिषियों को ही है, परन्तु संसार में उनके प्रचार का श्रेय पाश्चात्य वैज्ञानिकों को मिला। ठीक इसी प्रकार इस शताब्दी में स्वदेशी वस्त्र परिधान के प्रथम उपदेष्टा ऋषि ही थे। हाँ, इस समय इसके प्रबल प्रचारक एवं गौरवग्राही महात्मा गाँधी ही थे। भारत के पुनर्निर्माण में जो भागीरथ प्रयत्न ऋषि दयानन्द ने किया उसको इतिहास स्यात् कभी न भूल सकेगा।

अतः स्वामी दयानन्दजी न केवल संन्यासी ही थे,

(शेष १२ पृष्ठ पर)

'महर्षि दयानन्द सरस्वती की देन'

रेखा चोपड़ा
जानकी देवी महाविद्यालय
पूर्वी मार्ग, नई देहली (देहली विश्वविद्यालय)

किसी भी राष्ट्र की आत्मा उसकी धार्मिक भावना पर अविलम्बित होती है। भारतीय राष्ट्र के उत्थान एवं पतन का कारण उसकी धार्मिक भावनाओं की परिवर्तित अवस्थायें ही हैं। वैदिक धार्मिक वृतियों का परित्याग उसकी पराधीनता का कारण बना और अब पुनः ऋषि निर्दिष्ट-मार्ग का अवलम्बन ही उसकी स्वाधीनता का साधन बन रहा है। हमारे राष्ट्र-जीवन का आधार-भूत तत्त्व क्या है ? हमारी आत्मा का वास्तविक स्वरूप क्या है ? यह सब ज्ञात करने के लिये हम उन महापुरुषों के जीवन की ओर दृष्टिपात करते हैं, जिन्होंने राष्ट्रात्मा का पूर्ण साक्षात्कार किया है। जिन महान् विभूतियों के नाम-स्मरण मात्र से ही हम अपने जीवन में दुर्बलता के क्षणों में बल का अनुभव करने लगते हैं और हमारे हृदय की कायरता का स्थान वीर-व्रत ले लेता है। ऐसी महानात्माओं में महर्षि दयानन्द सरस्वती का नाम अग्र-गण्य है। उनके सम्बन्ध में खदीजा बेगम का वक्तव्य है—"महर्षि दयानन्द भारत माता के उन प्रसिद्ध और उच्चात्माओं में से थे, जिनका नाम संसार के इतिहास में सदैव चमकते हुए सितारों की भांति प्रकाशित रहेगा। वह भारत माता के उन सपूतों में से थे, जिनके व्यक्तित्व पर जितना भी अभिमान किया जाय, कम है।........

वस्तुतः हमारे सम्पूर्ण राष्ट्र का जीवनतत्व धर्म ही है। भारतीयों ने यदि किसी को पूजा तो केवल इसलिये कि उसके जीवन में हमें पग-पग पर धार्मिकता के दर्शन होते हैं। महर्षि दयानन्द आज जनता के आराध्य-देव क्यों बन गए ? क्योंकि वह धर्म के रक्षक थे, उन्होंने जनता की आध्यात्मिक उन्नति के हेतु स्वयं को समर्पन करने में भी तनिक सङ्कोच न किया। निष्काम भाव से वैदिक धर्म का प्रचार कर इसे एक लोकोत्तर धर्म बनाया। 'धर्म' शब्द का अर्थ अत्यन्त व्यापक है। वैदिक धर्मानुसार हमारा उठना बैठना, खाना-पीना आदि सभी साधारण कर्मों के पीछे धर्म की भावना विद्यमान है। महर्षि ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सत्यार्थ-प्रकाश' के तृतीय समुल्लास में माना है—"शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय ईश्वर प्रणिधान नियमाः।" इसी प्रकार हमारे राजनैतिक आचार्यों ने राजनीति पर भी धर्म का पुट चढ़ाया है। शुक्राचार्य एवं चाणक्य धर्म-युक्त राजनीति के पोषक थे। ऋषि दयानन्द ने भी 'सत्यार्थ-प्रकाश' के छठे समुल्लास में राजनीति का उल्लेख करके इसे धर्म का अङ्ग बना दिया है। इस प्रकार विद्वानों की पूजा, माता-पिता की सेवा, अतिथि सेवा इत्यादि जीवन का प्रत्येक कृत्य धर्माधीन ही है। अतः धर्म की प्रेरणा लेकर ही जीवन-यापन किया जाना चाहिये। यही भारतीय आत्मा का स्वरूप है। यही महान् वैदिक धर्म है जिसमें न हिंसा है न प्रतिहिंसा, जिसे पाकर कोई व्यक्ति, कोई समाज, कोई राष्ट्र उन्नति के शिखर पर चढ़ सकता है।' इसी महान् धर्म के पूर्ण ज्ञाता एवं प्रचारक थे—'स्वामी दयानन्द सरस्वती' जिन्होंने इसके प्रचार हेतु ही अपना सर्वस्व त्याग कर दिया और उसी के प्रचार की आशा का दीपक प्रज्ज्वलित कर आर्य

जनता को सौंप गए इस धर्म-दीपक को सदा प्रज्वलित रखने के कारण ही उन्होंने अन्त न होने वाली बाती-रूपा 'सत्यार्थ प्रकाश' का प्रणयन किया एवं अक्षय तेल के रूप में महान 'आर्य-समाज की नींव डाली। आज यह उन्हीं के पुनीत कर्मों का परिणाम है कि वैदिक-धर्म का यह दीपक अपने अक्षय प्रकाश से न केवल भारतीयों का ही मार्ग प्रशस्त कर रहा है अपितु विश्व-कल्याण के लिए एक अद्भुत प्रकाश विकीर्ण कर रहा है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती जिस समय कार्यक्षेत्र में प्रविष्ट हुए उस समय भारत में यद्यपि अपने छोटे-बड़े सम्प्रदाय कार्यरत थे तथापि वह अपने महान उद्देश्यों से च्युत हो चुके थे। विचार स्वातन्त्र्य का ऐसा तिरोभाव हुआ था मानो उसका कभी प्रादुर्भाव ही न हुआ हो। धार्मिक, सामाजिक एवं राजनैतिक पराधीनता ने भारत सन्तान को पराधीन बना दिया था। यह महर्षिवर की कृपा ही थी कि उन्होंने इस जर्जर अवस्था में धर्म का बीड़ा उठाकर, भारतीयों को जागृत किया उस समय आलस्य, प्रमाद, अज्ञान और निर्बलता ने भारतीयों को जकड़ा हुआ था और हिन्दू-जाति उनसे मुक्त होने को छटपटा रही थी। आर्य धर्म रूढ़िवादिता एवं धार्मिक जड़ता के कीचड़ में धंसा हुआ था। शुद्ध वैदिक धर्म का पूर्णतः लोप हो चुका था। लोगों यद्यपि की वेद में अगाध श्रद्धा थी तथापि अब उनको वेदाध्ययन में रुचि न थी। विभिन्न मतावलम्बी परस्पर लड़ते थे। स्थान स्थान पर मन्दिर, मठ एवं देवालयों का निर्माण हो रहा था, पर यह मठ अनाचार के गढ़ थे। जैन-धर्म सच्ची अहिंसा-वृत्ति को त्याग कर कायरता, निष्कर्मण्यता और विडम्बना का शिकार हो रहा था। अद्वैतवादी शङ्कराचार्य का 'अहं ब्रह्मास्मि' भारतीयों को पाप के गढ़े में गिराने का कारण बन रहा था। आचार-अनाचार, पाप-पुण्य में भेद न रह गया था। भक्ति-मार्ग तो सर्वथा दूषित हो चुका था। ऐसी दुरावस्था एवं छल-छद्म के भयंकर साम्राज्य के कारण ही सर्वत्र धाँधली मची हुई थी। किसी भी क्षेत्र में भारतीयों को दासता की जंजीरें काटने का साहस न होता था। इसी समय महर्षि कार्य-क्षेत्र में अवतरित हुए एवं जनता को आदेश दिया—'उठो! जागो व रुको मत, जब तक तुम्हे

(पृष्ठ १० का शेषांश)

अपितु जगदुद्धारक, सार्वभौम धर्मोपदेशक, सद्विद्या प्रचारक के रूप में हमारे सन्मुख आते हैं।

उपर्युक्त लघु लेख में ऋषिवर के कतिपय गुणानुवाद करने का केवल यह ही उद्देश्य है कि उस परमयोगी ने सच्चे शिव की खोज का बीड़ा उठाया था और तब तक चैन से न बैठा, जब तक कि सच्चे शिव का साक्षात्कार कर अपने मन-मन्दिर में न कर लिया। योग के अवर्णनीय परमानन्द को त्याग संसार का उपकारक ऋषि भारत में प्रचार करते हुए राजस्थान में जन-जागरण करते हुए जोधपुर पहुँचे, वहाँ के राणा के स्वाभिमान को जागृत किया। राणा को ऋषिवर से प्रभावित देख वाम-मार्गियों को असह्य हो उठा। उन्होंने नन्हींजान वेश्या के द्वारा षड्यन्त्र रचकर स्वामीजी के पाचक जगन्नाथ के द्वारा दूध में पिसा हुआ कांच मिलवा दिया। ऋषिवर को ज्ञात होने पर पाचक को बुलाया और कुछ रुपये देकर तत्काल राज्य की सीमा से भाग जाने को कहा। यह थी दयानन्द की दया। अनेक उपचार करने पर भी सन् १८८३ दीपावली के दिन सायंकाल के समय भोले-भक्तों को विलाप करता छोड़ ऋषिवर परमपिता परमात्मा की गोद में लय हो गये।

ऐसे महान त्यागी, देश-सुधारक का गुणानुवाद जितना करूँ, थोड़ा है। उसके ऋण से उऋण होने का केवल एक ही मार्ग है कि यावज्जीवन तन, मन, धन से ऋषिवर के स्वप्नों को साकार रूप में, जिससे भारत पुनः संसार का सिरमौर बन सके।

लेखक—
यज्ञदत्त प्रभाकर, विद्यावाचस्पति,
उपमन्त्री, आर्यसमाज,
१९४, बर्कखाना गुड़भावां छावनी, हरियाणा

सफलता न मिले।' इसी प्रकार का उपदेश उपनिषदों में भी प्राप्त होता है जो कि अविद्याग्रस्त लोगों को दिया गया है—

'उत्तिष्ठत जागृत प्राप्य वराग्निबोधत।'

इस प्रकार यह स्पष्ट ही है कि महर्षि दयानन्द का अवतरण एक ऐसे समय मे हुआ था जब कि पतनोन्मुख भारतीयों को एक ऐसे महापुरुष की नितान्त आवश्यकता थी जो कि इस समय तक ईसाई बन चुके अनेकों हिन्दुओं का उद्धार करे। अतः उनका अभ्युदय भारतीयों के लिए एक वरदान स्वरूप था। श्री सुभाषचन्द्र बोस ने इनके सम्बन्ध में लिखा है—"स्वामी दयानन्द सरस्वती उन महापुरुषों में थे, जिन्होंने आधुनिक भारत का निर्माणकिया था और जो उनके आचार सम्बन्धी पुनरुत्थान तथा धार्मिक पुनरुद्धार के उत्तर दाता हैं। हिन्दू समाज का उद्धार करने में आर्य-समाज का बहुत हाथ रहा है।

स्वामी दयानन्द को मैं एक धार्मिक-सुधारक तथा कर्म-योगी मानता हूँ। संगठन कार्यों के प्रसार की दृष्टि से आर्य-समाज एक अनुपम संस्था है।"

इन महर्षि दयानन्द का जन्म सं० १८८१ वि० में एक साधारण हिन्दू परिवार में हुआ था। उसी के अनुसार इनकी शिक्षा का प्रबन्ध हुआ था। १४ वर्ष की आयु तक इन्होंने यजुर्वेद-संहिता कण्ठस्थ कर ली थी और १८९४ विक्रमी में इन्हें कुल क्रमागत धार्मिक कृत्यों में प्रविष्ट होने के लिये शिवरात्रि के व्रत के लिये कहा गया और इसी दिन शिव लिङ्ग पर चूहों को कूदते देख इनके जीवन में मौलिक परि-वर्तन हो गया। अब इन्होंने पूजा-पाठ के कार्यों को तिला-ञ्जलि दे मन को पूर्णतः पठन-पाठन में लगा दिया। इसी समय इनकी बहन एवं प्रिय चाचा की हैजे से मृत्यु हो गयी और इसी समय से इनको दर्पण के समान स्वच्छ चित्त में वैराग्य की जड़ जम गई। अब यह जिज्ञासु बालक विद्वानों और वृद्धों से अमर होने के उपाय पूछने लगा, किन्तु ठीक उत्तर न मिलने के कारण वह घर से चल पड़े। अमृत-पिपासु बालक मूलशंकर को अब एक ही धुन थी कि मृत्यु से छूटने का उपाय क्या है? उसे बताया गया था कि मृत्यु से छूटने का उपाय 'योग' ही है। अतः मूलशङ्कर सच्चे योगी की तलाश में शहर-गाँव एवं जंगलों में घूमते फिरे। सर्व-प्रथम उन्होंने एक ब्रह्मचारी की प्रेरणा से दीक्षा लेकर अपना नाम 'शुद्ध-चेतन ब्रह्मचारी' रखा। फिर पूर्णानन्द सरस्वती से सन्यास लेकर यह दयानन्द सरस्वती बन गये। अब महर्षि ने सच्चे योगी की तलाश में कठिन से कठिन चोटियों पर चढ़ कर, गुफाओं में घुस कर और घाटियाँ पार कर सच्चे जिज्ञासु होने का परिचय दिया। १५ वर्षों तक जिज्ञासु दयानन्द ने पहाड़ों और मैदानों को नाप डाला, इतने शारी-रिक कष्ट सहे और तपश्चर्या की—यह सब सत्य-योग एवं मोक्ष की प्राप्ति के लिये। परन्तु उनके हृदय की आग न हिमालय की सर्दी से बुझी और न गङ्गा और नर्मदा के जलों ने उस ज्वाला को शान्त किया। अतः वह हृदय के इस सन्ताप को बुझाने के लिये स्वामी विरजानन्द के पास पहुँचे और वहाँ ही योग्य-गुरु के चरणों में बैठ कर विद्यामृत का पान किया।

जिज्ञासु दयानन्द का जीवन पूर्ण यति का जीवन था। जिस दिन से वह जिज्ञासु बने [illegible] मन-वचन और कर्म से ब्रह्मचारी रहने का कठोर [illegible] किया। दण्डी जी से स्वामी ने अष्टाध्यायी, महाभाष्य आदि व्याकरण ग्रंथों के अतिरिक्त अन्य आर्ष ग्रंथों का भी अध्ययन किया, किन्तु इस ग्रंथ-विद्या से कहीं बढ़कर वह भाव थे, जो उन्हें गुरु से प्राप्त हुए। आधुनिक या आर्वाचीन ग्रन्थों को छोड़ कर आर्ष ग्रन्थों में श्रद्धा, मूर्त्ति-पूजा आदि कुरीतियों से वैराग्य और कठोर संयम इनके लिये वह अपने गुरु के प्रति आभारी थे। विद्याध्ययन के उपरान्त दण्डी जी ने श्रद्धाञ्जलि-बद्ध स्वामी को उपदेश दिया—"देश का उपकार करो, सत् शास्त्रों का उद्धार करो। मत-मतान्तरों की अविद्या को मिटाओ और वदिक धर्म फैलाओ।" ब्रह्मचर्य के तेज से तेजस्वी बाल-ब्रह्मचारी स्वामी दयानन्द अपने गुरु से इस अमूल्य उपदेश को ग्रहण कर ही कार्य-क्षेत्र में प्रविष्ट हुए थे। स्वामी जी का सारा जीवन निष्काम योगी का ही उदाहरण पेश करता है। वे प्रतिदिन नियमित रूप से योगाभ्यास करते थे। उनके नेत्रों एवं मुख से दिव्य ज्योति प्रकट होती थी। वे १८-१८ घण्टे की समाधि लगा लेते थे। अपनी योग-विद्या से कई बार वह भूत-भविष्य की घटनायें भी जान जाया करते थे—ऐसा उनके जीवन की कई घटनाओं से ज्ञात होता है। इसके साथ ही ऋषि दयानन्द आदित्य ब्रह्मचारी थे, तेज-स्विता की मूर्ति थे। वह व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र एवं विश्व के लिये ब्रह्मचर्य के पालन को अनिवार्य मानते थे। अपने समस्त ग्रन्थों में वह ब्रह्मचर्य पर विशेष बल देते थे। उन्होंने यहाँ तक कहा कि ब्रह्मचर्य के नाश होने से भारतवर्ष का नाश हुआ है और ब्रह्मचर्य का बल से उद्धार करने से फिर देश का उद्धार हो सकेगा। ब्रह्मचर्य के पालन की दृष्टि से उन्होंने पाँच वर्ष की आयु से ही बालक-बालिकाओं को पृथक्-पृथक् गुरुकुलों में रहने का आदेश दिया है। ऐसे भी अनेकों अवसर आये, जब उनके भक्तों एवं शिष्यों ने उनके ब्रह्मचर्य की परीक्षा करनी चाही तो ऋषि ने इसके ठोस प्रमाण देने में भी संकोच न किया। (क्रमशः)

ओ३म्

वर्ष १३ अङ्क ४

आर्य-संसार

आर्य-समाज कलकत्ता

का

मासिक मुख पत्र

वैशाख
२०२८

अप्रैल, १९७१

वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

—आर्य-समाज का तृतीय नियम

मूल्य :—
एक प्रति २० पैसे
वार्षिक २) रुपये

आर्य-समाज कलकत्ता
१९, विधान सरणी,
कलकत्ता-६

आर्य समाज स्थापना दिवस

दिनांक २८-३-७१ को प्रातः आर्य समाज स्थापना दिवस के उपलक्ष्य में एक सभा श्री हंसराज जी चड्ढा के सभापतित्व में आर्य समाज मन्दिर १६ विधान सरणी में हुई। जिसमें श्री देवी प्रसाद जी मस्करा पं० दीनबन्धु जी वेदशास्त्री, पं० शिवाकान्तजी उपाध्याय, श्रीराम जी जयसवाल, उपमंत्री आदि सज्जनों के व्याख्यान हुये।

रामनवमी पर्व

दिनांक ४-४-७१ को प्रातः श्री रामनवमी पर्व समारोह पूर्वक आर्य समाज मन्दिर १६ विधान सरणी में सेठ श्री कृष्णलाल जी पोद्दार के सभापतित्व में मनाया गया। जिसमें प्रो० श्री विष्णुकान्तजी शास्त्री (कलकत्ता विश्वविद्यालय) पं० दीनबन्धु जी शास्त्री, पं० उमाकान्त जी उपाध्याय आदि सज्जनों द्वारा व्याख्यान हुए।

शोक प्रस्ताव

आर्य समाज कलकत्ता १६ विधान सरणी के दिनांक २८-३-७१ के रविवासरीय सत्संग के अवसर पर एकत्र समस्त आर्यजन कलकत्ता आर्य समाज के भूतपूर्व उप पुस्तकाध्यक्ष एवं वर्तमान अन्तरङ्ग सदस्य श्री सतीश कुमारजी श्रीवास्तव की माताजी का देहांत जो दिनांक १-३-७१ को हो गया पर शोक प्रकट करते हैं तथा परम पिता परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि वह दिवंगत आत्मा को सद्गति प्रदान करे और उनके शोक सन्तप्त परिवार को धैर्य एवं शान्ति प्रदान करे।

× × × × ×

आर्य समाज कलकत्ता के दिनांक २८-३-७१ के रविवारीय सत्संग के अवसर पर एकत्र समस्त आर्यजन श्री हनुमान प्रसादजी पोद्दार जो कि सर्वदलीय गोरक्षा महाभियान समिति की सर्वोच्च समिति के कोषाध्यक्ष थे, के देहावसान जो दिनांक २३-३-७१ दिन सोमवार को हो गया पर शोक प्रकट करते हैं तथा परमपिता परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान करें तथा शोक-संतप्त परिवार को धैर्य एवं शोक सहन करने की शक्ति प्रदान करें।

निबन्ध प्रतियोगिता के लिये

विषय : महर्षि दयानन्द की देन—यथार्थवाद

लेखक—धर्ममित्र शास्त्री, जूवां जिला रोहतक (हरियाणा)

आज संसार में अमीर-गरीब, पूंजीपति-मजदूर का झगड़ा चारों तरफ सुनाई दे रहा है। एक तरफ अमीर लोग हैं, जो महलों में रहते हैं, मोटरों में चलते हैं, बढ़िया कपड़े पहनते हैं, बढ़िया खाना खाते हैं, अनेकों नौकर उनकी सेवा करते हैं, फिर भी उनके पास इतना धन है कि उन्हें धन खर्चने को जगह नहीं मिलती। दूसरी तरफ गरीब मजदूर हैं, जिन्हें भर पेट रोटी भी नहीं मिलती, उनके बच्चों के लिये रहने को मकान नहीं, पहनने के लिये कपड़े नहीं, पढ़ने के लिये उचित साधन नहीं। ऐसी हालत में असन्तोष न बढ़े तो क्या हो ? विद्रोह न हो तो क्या हो ? यह कैसे हो सकता है कि जो मजदूर अमीरों के लिये महल बनायें, वे स्वयं एक झोपड़ी में पड़े सर्दी में ठिठुरते रहें। यह कैसे हो सकता है जो मजदूर अमीरों को रेशमी कपड़े बना कर दें, वे स्वयं चीथड़ों में रह कर गुज़ारा करें ? ऐसी स्थिति में मजदूरों के हृदय में पूंजीपतियों के लिये विद्रोह हो जाना स्वाभाविक है। इसी विद्रोह की अवस्था ने एक नवीन विचार-धारा को जन्म दिया, जिसका नाम साम्यवाद या कम्यूनिज्म है।

पूंजीपति साम्यवादियों से भयभीत होकर सोचते हैं कि इनसे कैसे बचा जाये। साम्यवादी पूंजीपतियों पर इतना क्रुद्ध हैं कि उन्हें समूल नष्ट कर देना चाहते हैं। अमीर और गरीब का यह झगड़ा एक समस्या बन कर संसार के सामने खड़ा हो गया है ! दुनियां की सरकारें तथा विचारक इस समस्या को सुलझाने के अपने-अपने ढंग के उपाय सोच रहे हैं। सरकारें इसके लिये योजनायें बनाती हैं। कोई पाँच वर्ष की योजना बनाता है, कोई दस वर्ष की। लेकिन जितनी योजनायें बनती हैं, उतनी ही अधिक समस्यायें उलझती चली जाती हैं।

संसार भर के विद्वानों और विचारकों ने इस समस्या के हल के लिये नई-नई व्यवस्थायें बनाई हैं। इन्हीं व्यवस्थाओं का परिणाम - लेनिनवाद, मार्क्सवाद, गाँधीवाद, साम्यवाद और कम्युनिज्म आदि हैं। इन सभी वादों का परीक्षण संसार ने करके देख लिया, पर समस्या सुलझने में नहीं आई ? 'रोग बढ़ता ही गया, ज्यों-ज्यों दवा की।'

एक व्यवस्था अभी शेष है, जिसका परीक्षण वर्तमान समय में संसार में नहीं हो रहा ! वह है, महर्षि दयानन्द का 'यथार्थवाद'। यथार्थवाद का आधार—वैदिक वर्ण व्यवस्था है।

वर्ण-व्यवस्था का नाम सुनकर आज के साम्यवादी (कम्युनिष्ट) चौंक उठते हैं। वे कहते हैं—यह कौन-सी वर्ण व्यवस्था है। क्या यह वही वर्ण-व्यवस्था है, जो जाति-पाति के भेद भाव को पैदा करती है, जो ब्राह्मण को क्षत्रिय से, क्षत्रिय को वैश्य से, वैश्य को शूद्र से अलग करती है, जिसने मनुष्य समाज में छूत-अछूत, स्पृश्य और अस्पृश्य के भेद उत्पन्न कर दिया। जो जन्म से ही ऊँच और नीच मानती है, जिसके द्वारा कुछ जातियाँ जन्म से ही ऊँची और कुछ जन्म से ही नीची हैं। जिस वर्ण व्यवस्था का सहारा लेकर कुछ जातियों ने स्वार्थवश सामाजिक अधिकारों पर अनुचित तौर पर एकाधिपत्य जमा लिया है और दूसरों को उनके मनुष्यता के

अधिकार से भी वंचित कर दिया है। जिसके द्वारा हीन हीन लोगों को पद दलित करके उन पर मनमाने अत्याचार किये जाते रहे हैं ; जिस वर्ण-व्यवस्था ने मनुष्य को मनुष्य का शत्रु बना दिया है।

समाजवादी विचार के लोग कहते हैं—हम ऐसी वर्ण-व्यवस्था को मानने को तैयार नहीं। हम तो इस स्वार्थपूर्ण व्यवस्था के टुकड़े-टुकड़े कर देना चाहते हैं। उनका कहना है—यदि देश को उन्नत करना है तो इस वर्ण-व्यवस्था को एकदम भूल जाना चाहिये।

परन्तु क्या महर्षि दयानन्द ने जिस वर्ण-व्यवस्था का निरूपण किया है, वह ऐसी ही वर्ण-व्यवस्था है ! नहीं, वह यह वर्ण व्यवस्था नहीं है, जो आज हमारे समाज में चल रही है। आज जिसे वर्ण-व्यवस्था कहा जा रहा है, उसे जितना जल्दी मिटा दिया जाये, उतना ही संसार का भला है। दूसरों को उनके जन्मसिद्ध अधिकारों से वंचित करने की इस व्यवस्था को वर्ण-व्यवस्था कहना भारी भूल है।

जिस वर्ण-व्यवस्था का चित्र महर्षि दयानन्द ने हमारे सामने खींचा है, उसका आरम्भ वैदिक संस्कृति के निर्माता हमारे प्राचीन ऋषियों ने बहुत गहन सिद्धान्तों पर किया था। आज हजारों साल बीत जाने पर वर्ण व्यवस्था का असली रूप विकृत हो चुका है। प्रथम तो आपसी स्वार्थों ने इस व्यवस्था को दूषित किया। दूसरे, भारत हजारों साल दूसरी बर्बर जातियों के आधीन रहा। विजेता बर्बर लोग अपनी-अपनी संस्कृति और सभ्यता लेकर यहाँ आये। उनकी निम्न कोटि की संस्कृति और सभ्यता का सम्पर्क हमारी वैदिक संस्कृति के साथ होता रहा। विजेता लोगों के सहस्रों वर्षों के निरन्तर प्रभाव से वैदिक संस्कृति और उसके आधार पर निर्मित वर्ण-व्यवस्था का रूप ही दूसरा हो गया।

महर्षि दयानन्द ने उस पर चढ़े हुए मैल को रगड़ा देकर दूर कर दिया और उसके चमकते हुए विशद् रूप को दिखा कर कहा—देखो संसार के लोगो ! इस व्यवस्था के आधार पर संसार में सुख और शान्ति स्थापित हो सकती है।

महर्षि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित वर्ण-व्यवस्था का रूप क्या है ? आज हमारा दृष्टिकोण बहुत छोटा हो गया है। हमें जो कुछ आँखों से दिखाई देता है, हम समझते हैं, बस यही सब कुछ है। हम अपने को देखें तो यह हमारा शरीर दीखता है। संसार को देखें तो खाने-पीने, ओढ़ने-पहनने का भौतिक सामान दिखता है। हम समझते हैं कि यह शरीर ही सब कुछ है। इस शरीर के लिये हमें भौतिक साधनों की आवश्यकता है ! इस सब भौतिक सामान को हमने प्राप्त कर लिया तो समझो सब कुछ पा लिया। यह हमारा शरीर भौतिक है। इसके लिये भौतिक विकास की ही आवश्यकता है। इससे आगे हम कुछ नहीं चाहते।

लेकिन वैदिक संस्कृति भौतिक विकास, खाना-पीना, मकान, कपड़े को ही सब कुछ मान कर नहीं रुक जाती। वह मनुष्य के सम्पूर्ण विकास को लेकर चलती है। मनुष्य इन भौतिक पदार्थों से बहुत ऊँचा है। यह शरीर ही सब कुछ नहीं है। इस शरीर का स्वामी—आत्मा भी है। शरीर अपने लिये नहीं, आत्मा के लिये है। वैदिक संस्कृति मनुष्य को शरीर से आत्मा की तरफ ले जाती है।

शरीर आत्मा का साधन है। आत्मा साध्य है। हमने आत्मा को बिल्कुल भुला दिया। शरीर को ही साध्य मान लिया। शरीर की रक्षा के लिये ही सब कुछ करना हमने जीवन का उद्देश्य समझ लिया ; क्योंकि हम शारीरिक भोग पदार्थों को इकट्ठा करने के लिये दूसरों के साथ छीना-झपटी करते हैं। इसी कारण संसार में अशान्ति है।

हमारे प्राचीन ऋषियों ने गहराई से सोचकर इन गहन सिद्धान्तों को स्थापित किया था कि भौतिक-विकास और आध्यात्मिक-विकास दोनों मिल कर ही सामाजिक विकास कर सकते हैं। अकेले भौतिक-विकास का परिणाम भयङ्कर होगा।

इस सिद्धान्त का व्यवहारिक परिणाम वर्ण-व्यवस्था है। वर्ण-व्यवस्था के अनुसार—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र—ये चार मनुष्य की चार प्रकार की प्रवृत्तियाँ हैं। जीवन-यात्रा को

पूरा करने के लिये आत्मा की ये चार दिशायें हैं। इनमें से एक प्रवृत्ति या एक दिशा—खाना-पीना, कपड़ा, मकान आदि भी है। परन्तु यही सब कुछ नहीं। हमारा सब कुछ तो आत्मा का विकास है। खाना-पीना आदि तो वैश्य प्रवृत्ति है। आत्मा का विकास इससे बहुत बढ़कर है।

वैदिक वर्ण व्यवस्था के अनुसार मनुष्य इन चार प्रवृत्तियों में से अपने गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार किसी एक प्रवृत्ति का वरण (चुनाव) करता है और उसी के अनुसार अपने जीवनका कार्यक्रम बनाता है। प्रवृत्तिके आधार पर चुन कर बनाया हुआ जीवन का कार्य क्रम दृढ़ होता है। इसीलिये कहा है—'आचार्यस्त्वस्य यां जाति यथावत् विधिपारग उत्पादयति सावित्र्या सा सत्या सा अजरा-अमरा'—आचार्य अपने शिष्य के मानसिक विकास को वर्षों तक देख कर, उसकी प्रवृत्ति को देखकर जो जाति, जो वर्ण निश्चित कर देता है वह सत्य है, अजर है, अमर है। किसी व्यक्तिको बचपन से लगातार वर्षों तक समीप से देखकर यह बता देना कि इस व्यक्तिके जीवन की दिशा दूसरी तरफ जायगी, दूसरी तरफ नहीं, प्रवृत्ति का विभाव या प्रवृत्ति का वर्गीकरण कहलाता है। प्राचीन काल के आचार्य प्रत्येक बालक की बुद्धि परीक्षा करने के बाद उसकी प्रवृत्ति का निर्धारण कर देते थे, उस प्रवृत्ति को वर्ण कहा जाता था। इस प्रकार वर्ण व्यवस्था का लक्ष्य प्रवृत्तियों का बटवारा है। मनुष्य की चार प्रकार की प्रवृत्तियाँ होती हैं—ज्ञान, क्रिया, इच्छा और आनन्द। ज्ञान प्रधान प्रवृत्ति वाला ब्राह्मण, क्रिया प्रवृत्ति प्रधान क्षत्रिय, इच्छा प्रवृत्ति प्रधान वैश्य और आनन्द (मौज) प्रवृत्ति प्रधान शूद्र कहलाता है।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ये चार कर्तव्य हैं और सम्मान शासन, धन और मौज उड़ाना—ये इनके अधिकार हैं। कर्तव्यों के प्रवृत्ति के अनुसार चार हिस्सों में बाँट कर उन्हें नियमित कर देने का नाम वर्ण-व्यवस्था है।

ब्राह्मण को ज्ञान के कारण सम्मान मिलेगा, शासन और धन नहीं। क्षत्रिय को क्रियाशीलता के कारण शासन मिलेगा धन और सम्मान नहीं। वैश्य को इच्छा शक्ति के कारण धन मिलेगा, सम्मान और शासन नहीं। संसार में सारे अनर्थ तब होते हैं, जब सम्मान, शासन और धन तीनों चीज एक जगह इकट्ठी हो जाती है। इन तीनों अधिकारों को एक व्यक्ति जब प्राप्त कर लेता है तो मनमानी मौज और आनन्द भी वही उड़ाता है।

आज सभी लोग पैसा जमा करना चाहते हैं। क्यों चाहते हैं ? क्योंकि आज पैसे वाले का सम्मान है, पैसे वाले का राज्य है, पैसे वाले के पास ही भौतिक-सुख भोग के सभी सामान है। सभी अधिकार पैसे वाले के पास इकट्ठे हो गये। इसीलिये समाज में अव्यवस्था हो रही है। वैदिक वर्ण व्यवस्था इन तीनों चीजों (सम्मान, शासन, धन) को इकट्ठा नहीं होने देती।

वर्ण व्यवस्था के सिद्धान्त को मानकर जो सरकार बनेगी, उसका यह काम होगा, कि वह इस बात की देखभाल रक्खे कि हर आदमी सब प्रकार के अधिकार लेने की इच्छा न करे। तब जाकर वर्ण व्यवस्था का सिद्धान्त क्रियात्मक रूप धारण कर सकेगा।

साम्यवादी (कम्यूनिस्ट) विचार के लोग महर्षि प्रतिपादित वर्ण व्यवस्था पर यह आक्षेप करते हैं—वर्ण-व्यवस्था के आधार पर किया गया समाज संगठन का हल भी स्थायी नहीं रह सकेगा। क्योंकि प्रवृत्तियों के आधार पर निर्वाचित वर्ण-अन्त में वृत्ति (पेशे) में बदल जायेंगे। यह तो जरूरी नहीं हो सकता कि वर्ण के आधार पर एक बार जो एक पेशे को अपना लेगा, वह उसको बदल कर दूसरा पेशा ले ही नहीं सकेगा। एक वृत्ति (पेशे) में सारी आयु के लिये कोई किसी को नहीं बांध सकता। वैदिक काल में पहले भी वर्ण व्यवस्था चली थी। उसका अन्त वृत्तियों के बदलने के कारण हो गया। फिर वैदिक वर्ण व्यवस्था का आधार तो शुद्ध भावनाओं और शुद्ध विचारों पर है। इस बात का उत्तरदायित्व कौन ले सकता है कि समाज के लोग फिर कभी स्वार्थवश अपनी आवश्यकताओं को नहीं बढ़ायेंगे और अनधिकार आधिपत्य नहीं करेंगे। इसलिये वर्ण व्यवस्था अव्यवहार्य है।

अपनी व्यवस्था की पुष्टि में वे यह युक्ति देते हैं कि हमारी समाज व्यवस्था में किसी को धन से धन कमाने की इजाजत नहीं होगी। सबको करने के लिये काम दिया जायेगा और प्रत्येक को काम के आधार पर वेतन दिया जायेगा। इस व्यवस्था से आर्थिक असमानता उत्पन्न नहीं हो सकती।

महर्षि दयानन्द ने इस समस्या का भी हल किया है। उन्होंने गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की स्थापना इसी उद्देश्य से की थी। गुरुकुल-शिक्षा-प्रणाली का अर्थ है- गुरु और शिष्य का पिता-पुत्र जैसा सम्बन्ध होना। प्रत्येक विचारक यह मानता है कि सभी प्रलोभन का आरम्भ सन्तान से होता है। हर व्यक्ति अपनी सन्तान को समृद्ध बनाना चाहता है और उसके लिये झूठ, छल, कपट सभी तरीकों से अधिक से अधिक संपति जमा करने का यत्न करता है। प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार के शब्दों में "इन सब बुराइयों को दूर करने का एक ही उपाय है—बालक को माता-पिता से अलग कर दिया जाय। वह यह न समझे कि वह अपने माता-पिता का ही बच्चा है, उन्हीं की सेवा करना उनका कर्त्तव्य है, वह यह समझे कि वह राष्ट्र का बच्चा है, उसे राष्ट्र की सेवा करनी है, और राष्ट्र की सेवा करते करते विश्व का कल्याण करना उसका लक्ष्य है।" यह तरीका केवल गुरुकुल-शिक्षा-प्रणाली के द्वारा ही अपनाया जा सकता है। सब बच्चों को माता-पिता से अलग करके गुरु के कुल में रखा जाये। वहाँ सबका एक से तरीके से, एक से वातावरण में सबका पालन हो। हर बच्चे को खाने पीने, खेलने कूदने, शिक्षा आदि की समान सुविधा हो। इस प्रकार बच्चा आरम्भ से ही मोह-ममता, पक्षपात और स्वार्थ के बन्धन काटने के मार्ग पर चलना सीख जाता है। धीरे-धीरे बालक स्वार्थ के बन्धनों से मुक्त होकर अपने को परिवार तक ही सीमित नहीं समझता। प्राणी मात्र को अपना समझने लगता है। "वसुधैव कुटुम्बकम्" की भावना बना लेता है। यही प्रवृत्ति बालक को सारी आयु भर अपने में बांधे रहती है।

साम्यवाद (कम्यूनिज्म) की व्यवस्था में यह दोष है कि वह केवल भौतिक-विकास पर आधारित है और वह भी अनियमित भौतिक विकास। अनियमित भौतिक विकास से पूंजी का अपने आप असमान विभाग हो जाता है। पूंजी का असमान विभाग होने पर, उसका समान विभाग कराने के लिये पूंजीपति और मजदूरों के झगड़े भी खड़े होते रहेंगे।

वैदिक वर्ण व्यवस्था का विधान है—"श्रद्धया देयं अश्रद्धया देयं ह्रिया देयं भिया देयम्"। श्रद्धा भी है अश्रद्धा भी है, लज्जा भी है, भय भी है। कम्यूनिज्म की व्यवस्था में केवल भय है—डण्डा है। केवल मात्र डण्डा मनुष्य को पशु बना देता है। वैदिक वर्ण व्यवस्था भौतिक विकास के साथ आध्यात्मिक विकास को लेकर चलती है। वह मनुष्य को देवता बनाती है। इसलिये वैदिक वर्ण-व्यवस्था ही समाज-संगठन के लिए सर्वोत्तम व्यवहार्य उपाय है।

महर्षि दयानन्द ने विकृत हुई वर्ण व्यवस्था को शुद्ध करके उसका जो व्यवहार्य रूप संसार के सामने प्रस्तुत किया है, यही यथार्थवाद है और यह उनकी सबसे बड़ी देन है।

महर्षि दयानन्द ने यथार्थवाद का नारा लगा कर, सैकड़ों प्रकार से, मध्यकालिक मनोवृत्तियों में जकड़े हुए देश को झकझोर दिया और उसे नये वातावरण में लाकर खड़ा कर दिया। यदि वे ऐसा न करते तो न जाने कितने वर्षों तक हम उन रूढ़ियों में जकड़े रहते, जिनमें सर्वसाधारण के जीवन को पनपने की कोई गुँजाइश नहीं थी। महर्षि ने मनुष्य को उनकी मनुष्यता का अधिकार दिलाया। जो दीन-हीन, दास और पद-दलित थे, जिनकी मनुष्यता का अधिकार उनसे छीन लिया गया था, उन्हें दिलाया।

यही तो सब कुछ है, जिसे मार्क्सवादी, साम्यवादी और गांधीवादी आदि समाजवादी लोग चाहते हैं। मार्क्सवादी, लेनिनवादी और गांधीवादी का नारा एक-एक व्यक्ति के नाम पर है। महर्षि दयानन्द का यथार्थवाद एक सार्वजनिक नारा है, जिसे सभी आसानी से अपना सकते हैं।

संसार के लोग भटक रहे हैं शान्ति की तलाश में ढूँढ रहे हैं अन्धकार से निकलने का मार्ग। यह शान्ति और प्रकाश यदि मिलेगा, तो महर्षि दयानन्द के यथार्थवाद में मिलेगा। यह एक अमिट ज्योति है। लाख धूयें के बादल आये, इसे छिपा नहीं सकते। या तो संसार महर्षि के यथार्थवाद को अपना कर शान्ति और सुख प्राप्त कर लेगा, अन्यथा भौतिकवाद की आग में जल कर भस्म हो जायेगा।

॥ ओ३म् ॥

भारतीय नीति व गोरक्षा

(ले०—यज्ञमित्र आयंगार, विद्याभास्कर, (मैसूर)

विश्व का समस्त मानव समाज एक सूत्र में बंधा हुआ है। परन्तु वे सूत्र विविध वर्णयुक्त हो रहे हैं। उन वर्णों का नामकरण एक विद्वान् ने इस प्रकार किया है :—

World has three colours, by which the people have tide. There is first colour named Politics, second socialism and third called religious.

(*Universal Political Authority*)

इस विद्वान् ने राजनीति, धर्म, समाज, इन तीनों को अलग-अलग वर्ण के रूप में दे दिया। क्योंकि देखी भी यही जाती है कि राजनीति में छल, धर्म में भक्ति, समाज में सेवा की भावना है। कुछ अंशों में देखा जाये तो गो-रक्षा की जिम्मेदारी राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, तीनों कर्त्तव्यों पर निर्भर है। अगर सच्चे हृदय से यह सोचा जाये तो गो हत्या का अनुकूल प्रतिपादन करने का दुर्धर्ष भी तीनों के अकर्मण्यता का ही फल है।

आज तक भारत ने डिंडिमघोष से यही कहा :—

यदि नो गांहिंसि यद्यश्वं यदि पूरुषम्

तन्त्वा सीसे न विध्यामो। · ऋ०।

पूर्व रचित यह नारा केवल वैदेशिक के लिये कहा गया था। जब वैदेशिक व्यक्ति मोगल तथा ब्रिटिश आदि अपना-अपना अड्डा जमाने में प्रवृत्त हुए तब उन्हे चेतावनी (Warning) देते हुए इस वेदोक्त नारे का खुल कर प्रयोग किया गया। आजकल यद्यपि वैदेशिक विशेष शासक यदि प्राप्त स्थान यहाँ पर नहीं है, यद्यपि उनके द्वारा प्रकटी कृता विदेशी मुद्रा की लालसा प्राप्त स्थान है।

यह पढ़कर पाठकों को आश्चर्य होगा कि गो-भक्त संसद सदस्य ने यह प्रश्न किया कि गो-रक्षा करने का कारण क्या है? इस पर हमारे राष्ट्रनायक देशोन्नति विधायक दलों के नेता ने यही कहा—इससे विदेशी मुद्रा के प्राप्त करने में कठिनता महसूस होगी। तदनुसार अन्य गो-भक्त ने यह भी पूछा कि गो-हत्या के बाद जब गोवंश समाप्त हो जायेगा फिर विदेशी मुद्रा के कठिनाई को दूर करने में नर बलि की आवश्यकता पड़े तो क्या उसे स्वीकार करेंगे? कुछ एक विदेशी रङ्ग में रञ्जित व्यक्तियों ने मूर्खता का परिचय देते हुए हामी भरने में कसर न छोड़ी।

वस्तुतः भारतीय पुजारी भारतीय नीति के नाम पर उछल-कूद मचा रहे हैं, परन्तु उन्हें यह मालूम नहीं कि भारतीय नीति क्या है?

उसका उत्तर यह है—राजा हरिश्चन्द्र के काल से ही भारतीय नीति गो-रक्षा के रूप में चली आ रही थी।

"आर्यावर्तीय देशवासी अपने को पशु-पालन करने से धन्य समझते थे, यही हरिश्चन्द्र कालीन भारतीय नीतिप्रधान स्रोत है।

(भारतीय इतिहास की पृष्ठभूमि)

इसके अतिरिक्त महाकवि कालिदास ने अपनी रचना रघुवंश में डिंडिमघोष से कहा कि बड़े-बड़े क्षत्रिय राजा अपने ही हाथों से गो-सेवा करते हुए :—

पयोधरी भूतचतुस्समुद्रांजुगोपगोरूप धरामिवोर्वीम्।

(रघुवंश)

गौरति पृथ्व्या नामधेयं गमनात्, गच्छन्तीतिभूतानि यस्मिन्।

(निरुक्त)

गो शब्द तो पृथ्वी का भी नाम है। आजकल गौ-रक्षा का प्रश्न इतना जटिल इसी लिए है कि न हम से पृथ्वी की रक्षा की जाती है, न तो गो-पशु की।

इतना ही नहीं, पृथ्वी रूपी गौ की महिमा दिखाते हुए संस्कृत लौकिक साहित्य ने इतना भी स्पष्ट किया है :—

दुदोह गां स यज्ञाय (रघुवंश)

अर्थात् राजा दिलीप ने अपने हाथों से राजसूयादि यज्ञ हेतु गाय को दुहा। दूसरा अर्थ यह भी है कि पृथ्वी को अपने प्रजापालन रूपी यज्ञ के लिये कृषि आदि के द्वारा दोहन किया। इससे यह सिद्ध हुआ कि यज्ञ की रक्षा गौ के द्वारा ही होती है, जिसका फल गीता के अनुसार :—

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः। (गीता)

अर्थात् हमारे ऊपर जितने भी पाप चढ़ रहे हैं, जिसका कि मार्जन पौराणिक भाई के कथनानुसार गङ्गा भी दूर नहीं कर सकती, वह छू-मन्तर हो सकता है तथा हमारे सिण्डीकेट का मस्तिष्क ठीक हो सकता है।

अगर राजनैतिक दृष्टि से भी देखा जाये तो (१) राष्ट्र के पतनका कारण, (२) खाद्यादि समस्या का कारण, (३) फूट का कारण, (४) सम्प्रदायिक दंगों का कारण, (५) हर एक विदेशी सम्मेलनों में मात खाने का कारण गो-हत्या ही है, अन्य कुछ नहीं।

महाभारत में जब यक्ष ने युधिष्ठिर से पूछा :—

कः स्विद् गुरुतरा भूमेः।

तो युधिष्ठिर ने कहा कि,—

माता गुरुतरा भूमेः।

यक्ष के पुनः पूछने पर कि माता कौन है? तो युधिष्ठिर ने वेद का उद्धरण देते हुए कहा :—

गावो विश्वस्य मातरः।

हमारा बुद्धि वैशद्य इतना निकृष्ट हो चुका है कि हम विदेशी मुद्रा के लिप्सा में अपनी मातृशक्ति की हत्या करने में दिन-ब-दिन अधिक प्रवृत्त हो रहे हैं। धिक्कार है, विदेशों में तो गो-रक्षा पर जोर दिया जा रहा है। डेनमार्क के 'मिल्क मेड ब्राण्ड' का 'कैन्डेन्स मिल्क' बड़ी रुचि से खाते-खाते अघाते नहीं और यहाँ के कृष्ण द्वारा परिवर्द्धित गौ-वंश का नाश करने में तत्पर हो रहे हैं। वस्तुतः यह कलि-विडम्बना ही है। राजनीति की दृष्टि से भी मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि हमारे राष्ट्रनायकों की खिसकती कुर्सी भी गो-रक्षा ही सम्भाल सकती है, अन्यथा एक दिन यह देश में अवश्य ही राष्ट्रपति शासित होकर स्टालिन आदि कोई अधिशासी (Dictator) आकर दिया ढयोढ़ी आदि को अपने गोदाम में डालकर ताला बन्द कर देगा।

आज तक इतिहास के पन्ने यही जिन्दादिली के साथ नारा बुलन्द कर रहे हैं :—

गावो रक्षन्ति विश्वस्मिन्, विश्वस्मिन् धर्मकर्मजान्।
सम्यक् समार्जितान् पुण्यान्,....... ..।

(सामन्त चूडामणि)

हमारी भोली बेचारी गरीब चालाक सरकार अपनी बनावटी भारतीय नीति के ओट में शिकार खेल रही है। भले ही अन्धों के हाथ में बटेर लग रहा हो तो भी अपने को आँख वाले समझ कर शेरेदिल साबित करने में कसर नहीं छोड़ते।

इसी सन्दर्भ में एक किंवदन्ती प्रचलित है कि एक बार बलराम और भीष्म घूमने वन में गये। बहुत बीहड़ वन था, उसमें एक पगडण्डी थी, जिस को रोक कर एक गाय खड़ी हो गई थी। वह भी गाय धक्के के इन्तजार में थी कि कब धक्का लगे मैं भू-लोक को छोड़ दूँ। बलराम ने हटाना चाहा पर उसने न हटने पर हल के नोक से धक्का देकर आगे बढ़ाना चाहा, परन्तु दैवीदेच्छा यह हुई कि रास्ते से न हट करके पृथ्वी पर से ही हट गई अर्थात् मर गई। इस पर भीष्म ने तत्काल कहा—"हे राम! मालूम पड़ता है कि कौरव वंश का नाश निकट है," वस्तुतस्तु बलराम कौरव पक्षपाती होने के फलस्वरूप नामोनिशां कौरवों का न रहा। यही इतिहास क्रिया के रूप में दुहराया जा रहा है कि वार्षिक गाय कुछ गिने-चुने शहरों में जैसे कलकत्ता, बम्बई, दिल्ली, लखनऊ, कानपुर, अहमदाबाद, मैसूर मेरठ, इनमें लगभग २,६७,०३० गायों की हत्या सम्मान्य रूपेण होती है, जिससे कि हिन्दू-जाति का ह्रास शनैः-शनैः हो रहा है। मैं निम्न आंकड़े संवत् २०१० का दे रहा हूँ। उपरोक्त शहरों में ही कितना गोवध होता होगा। यह आज २०२७ अर्थात् १७ वर्ष बाद अनुमानतः पाठक खुद समझ जायेंगे।

नगर नाम	पशु संख्या	नगर नाम	पशु संख्या
कलकत्ता	१०३,५५५	अहमदाबाद	१४,१२८
बम्बई	८५,२७१	मेरठ	९,४५३
दिल्ली	२९,५६५	मैसूर	३,३३८
कानपुर	१०५६३	कुल ७ नगरों में	२६७०३०

अगर संवत् २०१० में ७ नगरों में २६,७०३० गोवध

होता है तो पूरे भारत में करोड़ों का अनुमान आजकल २०२० में लगाये जाने पर अनुचित न होगा। अगर इतने ही नगरों में इतने ही गौ २०१० संवत् में ही पाले जाते तो 'कॅन्डेन्स मिल्क' को चाटना न पड़ता तथा नालियों में खून के जगह दूध बहता तथा अन्न के अभाव में RL. 480 का आटा जबरन जनता को न दिया जाता तथा राजनैतिक क्षेत्र में देवी इन्दिरा तथा निजलिङ्गप्पा के बीच में जो फूट हत्या के तामसिक भावनाओं से प्रेरित होकर पड़ी है, शायद यह फूट न रहती। शुद्ध गौ का घी, दूध आदि के सेवन करने से—

यह भारत की लूट है, लुट सको तो लूट।
अन्त काल पछताओगे, कुर्सी जाये जब छूट॥

वाला उतावलापन न होकर देशोन्नति की भावना विचार का प्रचार ही हरेक मस्तिष्क भविष्य में संचार करता है।

कांग्रेस का चिन्ह बैलों की जोड़ी (Pair of Bullock) है, परन्तु वे बैल भी मरने के भय से जुएको तोड़ कर भाग चुके हैं तथा उन्हीं बैलों ने घर जलाने के लिये कई दीपक जला लिये हैं। भविष्य में शायद भारतीय सत्ता तेलयुक्त दियों (जन-संघ) के, या हसियाँ-हथौड़ी लिये लुहारों के (कम्युनिस्ट) होगी। जिस प्रकार रावण की मूर्ति कागजी बनाई जाती है, उसे जला दी जाती है, उसी प्रकार भारतीय नीति की कागजी मूर्त्ति बनेगी, उस पर हथौड़ा आघात करेगा और हँसिया काटेगा अथवा दीपक पूरे तौर से जलाकर भस्म कर देगा, यही आशङ्का है। गौ का अर्थ सिर्फ गाय से ही नहीं अपितु, बछड़े, सूअर, बकरियाँ आदि से भी मेरा सम्बन्ध है तथा वे भी अन्यान्य हैं जो हमारे मूर्धन्य राष्ट्र-नायकों के मुँह का कौर बनने में सफलता प्राप्त करते हैं।

श्री रामगोपाल शालवाले के शब्दों में :—

"आर्य वीरों! देखो राष्ट्र का प्रतिदिन पतन हो रहा है। यह यहाँ तक बढ़ जायेगा कि हमारा देश एक दिन स्वतन्त्रता के मैदान को छोड़ परतन्त्र भावना के बेड़ी में आ सकता है। देखो वेद भी यही कहता है :—

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवान् यज्ञेनबोधय।

अर्थात् गौ-पालन करना हमारा मुख्य कार्य है। उसकी रक्षा करने पर ही हमारा भारत पतन के वैतरणी को पार कर सकता है। (गो-रक्षा सत्याग्रह के भाषण का कुछ अंश)

अगर भारतीय नीति की दुहाई देते हुए गोवध का उन्मूलन न किया तो मनु के कथनानुसार प्रेरक, दर्शक, सुनने वाले, भक्षण करने वाले, मारने वाले, बूचड़खाना तक पहुँचने वाले, मरते हुए गौवों के करुणारुणरुदित शब्द को सुनकर भी न्यायोचित निर्णय वाले, सब पापी होंगे और वे—

तेहि स्थावरां यान्ति

स्थावर अर्थात् वृक्षादि योनि को प्राप्त होते हैं। तदनु बिना ८४,००००० योनियों को पार किये मनुष्य योनि दुर्लभ एवं असम्भव है। जिस प्रकार परीक्षा में नकल (Copy write) करने से परीक्षावरुद्ध छात्र (Resticated Student) तीन साल या यावद् अवधि तक ठोकरें खाता रहता है तब अवधि समाप्त होने पर अगले श्रेणी में पदार्पण करता है, उसी प्रकार मनुष्य ८४ लाख योनि में कल्पान्तों तक ठोकरें खाते हुए पुनः मुश्किल से मनुष्य योनि में आता है।

अन्त में श्री स्व० स्वामी समर्पणानन्द जी के शब्दोंमें :—

"युवको, अब भी चेतो! यह मत सोचो कि हम अभी असमर्थ हैं। यह मुगल या ब्रिटिश का शासन नहीं अपितु अपना शासन है।

ब्रिटिश शासन में परतन्त्रता के कठोर बेड़ियों को तोड़ने के लिये तुम में शक्ति आई थी, अब गोवध के मामूली रस्सी को तोड़ने में तुम में शक्ति नहीं? यह धर्म युद्ध होगा, यह मत सोचो कि हम धर्म-युद्ध में हार जायेंगे। नहीं हारोगे क्यों :—धर्मो रक्षति रक्षितः।

अतएव तुम अपने मन में सोचो—

अहमिन्द्रो न पराजिग्ये।

मैं अद्भुत शक्ति वाला इन्द्र हूँ। मैं नहीं हारूँगा, शत्रु हार जायेगा। अगर गौ-रक्षा में बलिदान भी करना पड़े तो डरो नहीं, मौका मत चूको। क्योंकि करोड़ों गौ-माताएँ तुम्हें अपनी मूक वाणी से ही आशीर्वाद देंगी, जिससे यह जन्म तुम्हारा सफल होगा।

(श्रद्धेय स्व० स्वा० समर्पणानन्द जी,
हैदराबाद के एक भाषण से उद्धृत)

उपसंहार के तौर पर यही कहूँगा कि गो-रक्षा रूपी महा धर्म-युद्ध हमें अवश्य करना होगा।

इस चालाक सरकार की भारतीय नीति का पोल खोल कर गड्ढे में पड़े हुए प्राचीन भारतीय नीति, सभ्यता को ऊपर लाना ही होगा। प्रभु से यही प्रार्थना है कि—

प्रभु देव,

वयं जयेमत्वया युजा।

(ऋग्वेद)

आर्यसमाज कलकत्ता के ८५वां वार्षिकोत्सव पर धन देने वाले महानुभावों की नामावली

२७०२)३६ आर्य स्त्री समाज द्वारा एकत्र
१५०३) श्री घनश्यामदासजी गोयल (वचन)
५०१) एयर ट्रान्सपोर्ट कारपोरेशन
५०१) रोड ट्रान्सपोर्ट कारपोरेशन
५०१) साउथ इस्टर्न रोड वेज
१२२३) आर्य कन्या महाविद्यालय द्वारा एकत्र
११०१) श्री जयनारायण पोद्दारट्रस्ट
११००) ,, लालचन्द्रजी वाहरी चैरिटेबुल रिलीजियस ट्रस्ट
११००) ,, मौरुका चैरिटेबुल ट्रस्ट
५०१) ,, इकौनोमिक ट्रान्सपोर्ट आरगनाईजेशन
५०१) ,, इन्डस्ट्रीयल गैसेस लि० (वचन)
५०१) ,, डुअर्स ट्रान्सपोर्ट
५०१) ,, अशोककुमारजी
५०१) ,, रामचन्द्र स्मारक निधि,
५०१) ,, जिन्दल (इण्डिया) प्रा० लि०
३५१) ,, इण्डियन रोड लाईन्स कारपोरेशन
३५१) श्रमती विद्यावतीजी कपूर (भिमसेन होटल)
३०१) श्री अशोक इक्सपोर्ट एण्ड इम्पोर्ट
२५१) ,, भारत टेक्सटाइल
२५२) ,, निवासटैक्सटाईल
२५१) ,, गोविन्दराम भगवानदास
२५१) ,, सूरजमल बैजनाथ
२५१) ,, दि गोल्डेन स्टील कारपोरेशन
२५१) ,, वासुदेवजी अग्रवाल
२५१) ,, ताराचन्द सुरेखा
२५१) ,, आर० शंकरलाल एण्ड कं०
२५१) श्री बनारसीदासजी अरोड़ा
२५१) ,, दुलियारामजी गुप्त
२२५) ,, गजानन्दजी आर्य
२०१) ,, यशवन्तराय चोपड़ा
२०१) ,, पटना ट्रान्सपोर्ट कं०
२०१) ,, सौदागरमल चोपड़ा
१५१) ,, सीताराम जायसवाल
१५१) ,, फेन्डसलेदर कम्पनी
१५१) ,, जयभारत फेबरीक्स
१५१) ,, भवानीदास रामगोविन्द
१५१) ,, डी० एम० बन्सी एस० सन्स
१५१) ,, जगनाथ रामनाथ
१५१) ,, अल्लुरामजी वर्मा
१५१) ,, दि देहली आयरन सिन्डिकेट प्रा० लि०
१५१) ,, एस० आर० शर्मा एण्ड सन्स
१५१) ,, विजयकुमार सैनी
१५१) ,, कमल आयरन एण्ड स्टील को०
१५१) ,, जी० एन० सी० ब्रादर्स
१५१) ,, धनीराम देवराज
१५१) ,, रामविजय कम्पनी (वचन)
१०८) श्रीमती गोमत्ती देवी आर्य
१०५) श्री बद्रीप्रसाद वर्मा
१०१) ,, हंसराजजी चड्ढा
१०१) ,, पूनमचन्द सुरेशकुमार
१०१) ,, गुगनराम रामप्रताप
१०१) ,, जगनाथगुप्त एण्ड सन्स

१०१) श्री कलकत्ता मिल एजेन्सी

५१) नगदी

५०) बचन

[illegible]१) श्री राजगढ़ीया एजेन्सी

१०१) ,, जानकी प्रसाद बल्ला

१०१) ,, टिकमचन्द मुन्नालाल

१०१) ,, शालिग्राम मुन्नालाल

१०१) ,, कुमार कौमर्सियल स्टोर

१०१) ,, चन्द्रवलीजी गुप्त

१०१) ,, हरचरणदासजी बहल

१०१) ,, सुन्दरलालजी लुधानी

१०१) ,, गयाप्रसाद मिश्रीलाल

१०१) ,, गुप्तदान

१०१) ,, देवीप्रसादजी मसकरा

१०१) ,, सुखदेवजी शर्मा

१०१) ,, शिवदास हरिदास गुप्त

१०१) ,, वासुदेवजी गोयनका

१०१) ,, सुन्दरलाल एण्ड कं०

१०१) ,, लक्ष्मी पोद्दार ट्रस्ट

१०१) ,, मेघराजजी गोविन्दगढ़ वाले

१०१) ,, सुदर्शन शिल्क हाउस

१०१) ,, विजय आयरन ट्रेडिंग कं०

१०१) ,, मिक्को मैनुफैक्चरिंग कं०

१०१) ,, सूरजमल ओमप्रकाश घियां (बचन)

१०१) ,, पुष्करलाल एण्ड कं० (बचन)

१०१) ,, कन्हैयालालजी धोबालवाले (बचन)

७१) ,, रामप्रसादजी जैसवाल

७१) ,, ताराशाहजी

७१) ,, फूलचन्द्रजी

५१) ,, वासुदेवजी गुप्त

५१) ,, पवनदास हृदमल

५१) ,, बैजनाथ अरोड़ा

५१) श्री पन्नालाल धर्मपाल (बचन)

५१) ,, रामगोपालजी गुप्त

५१) ,, प्यारेलालजी मनचन्दा

५१) ,, हिन्दलौक कम्पनी

५१) ,, श्रीनाथ ब्रासर्स

५१) ,, सुरज स्टोर

५१) ,, बनारसीदासजी अरोड़ा (बिजली वाले)

५१) ,, स्पेयर्स इण्डिया

५१) ,, महेशप्रसाद आर्य

५१) ,, देवराजजी आर्य

५१) ,, राजाराम जायसवाल

५१) ,, रामयश आर्य

५१) ,, महादेवप्रसाद शर्मा

५१) ,, बरकतराम प्रेमचन्द्र

५१) ,, जनार्दन प्रसाद शराफ

५१) ,, नवदुर्गा ट्रेडिंग कं०

५१) ,, मेवालाल आर्य

५१) ,, जमनादास रामकिशन

५१) ,, हिन्द टाय कं०

५१) ,, पाल ब्रा० एण्ड० कं०

५१) ,, आटोमेटिव कारपोरेशन

५१) ,, पुरुषोत्तमजी झुनझुनवाला

५१) ,, भुरामल सराफ

५१) ,, विनयप्रसाद सिंह

५१) ,, खेम सिंहजी

२५) नगद

२६) बचन

५१) ,, रामअवध रामप्रताप आर्य

५१) ,, कलकत्ता मिल एजेन्सी

५१) ,, कालिन्दी मैनुफैक्चरिंग कं०

५०) ,, हरीरामजी जायसवाल

३१) श्री मुरलीधर पोद्दार

३१) ,, माखनलाल बागरोदियां
३१) ,, हिन्द टाय हाउस
३१) ,, गुलाब परफ्यूमारी
३१) ,, पंजाब क्वालिटी स्टोर
३१) ,, सेन्थीक मोडरेज इन्डस्ट्रीज
३१) ,, नन्दकिशोर अग्रवाल
३१) श्रीमती शान्ति देवी सैनी
३१) श्री अर्जुनदेव बंसल
३१) ,, सत्यनारायणजी
३१) ,, प्रकाशचन्द्र पोद्दार
३१) ,, भोजराज मोतीराम
३१) श्रीमती गायत्रीजी बैद्य
२५) श्री श्रीनाथ दास गुप्त
२५) ,, हीरालाल आर्य
२५) ,, लक्ष्मण सिंह
२५) ,, कृष्णराम वंशीप्रसाद
२५) ,, रामजीवन शाह
२५) श्रीमती रामदुलारी
२५) श्री सत्यनारायन रामजी
२५) ,, पन्नालाल नन्हकुराम
२५) " पाल एण्ड को०
२५) " रामप्रीत पान्डेय
२५) " रामनिध अयोध्याप्रसाद
२५) ,, लक्ष्मी आयरन स्टील कं०
२५) ,, चन्द्रबलीराम जायसवाल
२५) ,, रामजस हिरालाल
२५) ,, लक्ष्मीप्रसाद जायसवाल
२१) ,, सुखदेवप्रसाद आर्य
२१) ,, टीकमराम साव
२१) ,, शान्तिस्वरूपजी
२१) श्री रामस्वरूपजी डालमिया
२१) ,, रोशनलाल कपूर
२१) ,, भोलानाथ अग्रवाल
२१) ,, जगदीशप्रसादजी
२१) ,, शिवनन्दनप्रसाद
२१) ,, दूर्गादत्तश्री जड़िया
२१) ,, सोखीलाल साह
२१) ,, बलवीरजी खोसला
२१) ,, रोशनलालजी खट्टर
२१) ,, रामरत्ती शाह
२१) ,, गणेशप्रसाद जायसवाल
२१) ,, सोमदेव अग्रवाला
२१) ,, अमरनाथ शिकरी
२१) ,, निरञ्जन मिष्टान्न भंडार
२१) ,, पंचमलालजी जायसवाल
२१) ,, ग्लोमर स्टोर्स
२१) ,, रामदेव हनुमानप्रसाद
२१) ,, अर्जुनदेव गोबिन्दराम
२१) ,, श्यामसुन्दरजी
२१) ,, ग्लोब ओटो स्टोर्स
२१) ,, मोटर स्पेयर्स इन्डिया
२१) ,, छगनलाल गुप्त
२१) ,, मवगीरलाल जायसवाल
२१) ,, रामलखन सिंह
२१) ,, खेरा ओटोमोबाईल
२१) ,, सुखदेवराम साव
२१) श्रीमती सरोजनी आहुजा
२१) ,, सत्यदेवी गुप्त
२१) श्री जयराम रामपल्टन शेठ
२१) ,, सावलरामजी अग्रवाल
२१) ,, हरिशंकरजी अग्रवाल
२१) ,, जनता स्टोर्स
२१) ,, बी० पी० भाटिया
२१) ,, बजाज स्टोर्स

१५) ,, रामवस आर्य
१५) ,, माता दमयन्ती देवी (पटना)
१५) ,, एच० एल० साव एण्ड सन्स
१५) ,, आर० प्रताप एन्ड सन्स
१४) ,, मोतीलाल विश्वकर्मा
११) ,, गीता जलपान
११) पी० के० स्टोर
११) ,, हरवंशलालजी
११) ,, हरीबाबु अग्रवाल
११) ,, श्याम ब्रादर्स
११) ,, जी० पी० प्लास्टीक
११) ,, पन्नालालजी
११) ,, बर्मा इन्डिस्ट्रीयल कारपोरेशन
११) ,, बंगाल प्लास्टीक इन्डस्ट्रीज
११) ,, हीरालाल जगन्नाथ प्रसाद
११) ,, बनवारीलाल मनमन्दा
११) ,, भानूभाई देशाई एन्ड को०
११) ,, एन० एल० फिरगल
११) ,, राधेश्याम मशीन
२१) ,, शान्ति ओटोमोबाईल
११) ,, खन्ना ओटोमोबाईल
११) ,, मेकनीकल स्पेयर्स
११) ,, भगवतीप्रसाद शेठ कालीप्रसाद शेठ
११) श्रीमती शान्ति देवी गुप्त
११) ,, निर्मला देवी जायसवाल
११) श्री रामनरेश सेठ
११) ,, जी० एन० ट्रेडिंग कं०
११) ,, दुर्गाप्रसाद सेठ
११) ,, यमुना महाराज शर्मा
११) ,, विन्ध्याचल सेठ
११) ,, रामखेलावनजी
११) ,, यशवन्त शाह

११) ,, सत्यपालजी आर्य
११) ,, रामगोपाल आर्य
११) ,, मदनलाल गोयनका
११) ,, महावीरराम लोचनराम
११) ,, सीताराम ठाकुरप्रसाद
११) ,, ओरियन्टल प्लास्टीक इन्डस्ट्रीज
११) श्रीमती अम्बिका देवी शाह
११) ,, आशा शाह
११) श्री जगन्नाथ मोदी
११) ,, भगवानदासजी जड़ीया
११) ,, रामधन जड़ीया
११) ,, प्रह्लाद राय वर्मा
११) श्रीमती कुमारी देवी जायसवाल
११) श्री श्रीराम आयरन एन्ड स्टील कं०
११) ,, पन्नालाल अग्रवाल
११) ,, गुप्तदान
११) श्रीमती रामरानी समरवाल
११) ,, कमल अरोड़ा
११) ,, शीला शरमानी
११) ,, वीर वर्मा
११) ,, सुन्दर बाई
११) ,, ईन्द्रावतीजी
११) ,, नितिशकुमारजी
११) ,, शान्ति देवीजी
११) ,, सावित्रीजी
११) श्री मुरलीधर जायसवाल
११) ,, किशोरीलाल दवे
११) ,, रूपलाल राधाकृष्ण
११) ,, डांगुर सिंहजी
११) ,, जयनारायण गुप्त
११) ,, विजय स्टोर
११) ,, राधधनी जायसवाल

११) ,, प्रकाशचन्द्र गुप्त
११) ,, आजाद ग्राम सप्लाई कं०
११) ,, हीरालाल जानकीप्रसाद
११) ,, हीरालाल साव
११) ,, सदानन्द गुप्त
११) ,, महादेवराम रामदेवराम
११) ,, जवाहरबाबू
११) श्री अजय स्टोर्स
११) ,, रामसुन्दर रामकुमार
११) ,, जयसवाल एण्ड कं०
११) ,, राज रामदास जयसवाल
११) ,, महेश प्रसाद
११) ,, रोशनलाल बंसल
११) ,, मूलचन्द शाह
११) ,, महादेव शाह
११) ,, इस्टर्न पेपर डिलर्स लि०
११) ,, गोरखनाथ जायसवाल
११) ,, ओमप्रकाश शाह
११) ,, रामचन्द्र जायसवाल
१०) ,, डी० एम० जी मेहरा
१०) ,, ध्रुवचन्द
१०) ,, सत्यनारायण शेठ
१०) ,, सोमनाथ आर्य
१०) श्रीमती शकुन्तलाजी
१०) ,, विद्यावती जी
१०) श्री बिहार शो मिल
१०) ,, नर्थ बिहार शो मिल
१०) ,, के० बी० समरवाल एण्ड कं०
१०) ,, रामसुरज सिंह
१०) ,, माखनलाल स्टोर
९) ,, गुप्त दान
५) ,, रामस्वरूपजी खन्ना

५) ,, शिवलखन पाण्डेय
५) ,, जगदीश प्रसाद
५) ,, केदारनाथ जायसवाल
५) ,, उमाकान्त जायसवाल
५) ,, उमाकान्त जायसवाल
५) श्रीमती सरोजी देवी गुप्त
५) श्री हरिवंश प्रसाद जायसवाल
५) ,, खेदूराम मिश्रा
५) ,, बद्रीप्रसाद जायसवाल
५) ,, गणेशप्रसाद जायसवाल
५) ,, सालिकराम सीताराम
५) ,, भगवान प्रसाद जायसवाल
५) ,, मथुराम बुम्फनराम
५) ,, एस० के० ट्रेडिंग कं०
५) ,, ब्रह्मदत्तजी
५) ,, ओमप्रकाश वर्मा
५) ,, सुरेन्द्रकुमार वर्मा
५) ,, मातुराम वर्मा
५) ,, भंवरलाल शर्मा
५) श्रीमती राजदुलारी जायसवाल
५) श्री जसवन्तराम पारिख
५) ,, रामसमुझ साह
५) ,, प्लाई वुड रास्क प्राईज
५) ,, हनुमान साव मिल
५) ,, हीरा सिंह
५) ,, सोमानीजी
५) ,, शुभनारायण
५) ,, पन्नालाल रामतारक
५) ,, जमुनाप्रसाद मिश्रीलाल
५) ,, मुन्नीलाल रामपाल
५) ,, लालताप्रसाद फूलचन्द
५) ,, राम विश्वनाथ साह

५) ,, चुन्नीलाल छोटेलाल
५) ,, शिवशंकर श्रीराम साव
५) ,, मथुराराम साह
५) ,, रामसेवक
५) ,, बद्रीप्रसाद
५) ,, जगदीश प्र० कैलाश प्र०
५) ,, मानिकतला वे-ब्रीज
५) ,, रामधनी साव
५) ,, सीतला प्रसाद
५) ,, हरिहर प्रसाद साव
५) ,, मिठाईलाल जायसवाल
५) ,, मोतीलाल एण्ड सन्स
५) ,, स्टैन्डर्ड ट्रेडिंग कं०
५) श्री कान्ती देशाई
५) ,, मानिकचन्द
५) ,, ओ० पी० आनन्द
५ ,, अरुणकुमार गुप्त
५) ,, रामनाथ साव
५) ,, गुलाब बाई
५) ,, सत्यनारायण अग्रवाल
५) ,, सतीशचन्द्र अजयकुमार
५) ,, रामभरोस साव
५) ,, श्यामसुन्दर कन्हैयालाल
५) ,, लखीचन्द्र जायसवाल
५) ,, द्वारिका प्रसाद साव
५) ,, रामदेव साव
५) ,, चेतनारायणलाल साव
५) ,, एम० एल० गुप्ता
५) ,, हीरालाल किशोरीलाल
५) ,, ननकूराम साव
५) " दुर्गाप्रसाद साव
४) " गयाबाला सिंह
४) " लक्ष्मीनारायण साव
३) " हीरालाल साव
३) " लालजी पटेल एण्ड कं०
३) " भानुव्र गांगुली
३) " लक्ष्मीप्रसाद जायसवाल
२) " रामदेव शाह
२) " हरनन्दन सरदार
२) " प्रभात
२) " हेमनारायण सिंह
२) " बैजनाथ राम
२) " श्याम बाबू
२) " लक्ष्मी राईस मिल
२) " दूलाल मल्लिक
२) " अमरनाथ चौधरी
२ " देवधारी चौधरी
२) " भूटन राम
२) " विमानी राम
२) " भारत स्टील कारपोरेशन
२) " सुभाषचन्द्र जायसवाल
२) " चतुरी प्रसाद
२) " सत्यनारायण जायसवाल
१) " अज्ञात
१) श्रीमती उषारानी
१) श्री देबूराम
१) " लालजी साव
१) " जयनारायण सिंह

१५५२)४५
१७६) आरती
३७६) टिकट से प्राप्त
१०००)४५ अपील द्वारा

२७६११)८१

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली

देश भर की समाजें २५ अप्रैल को "बंगला देश दिवस" मनाएं— सभामन्त्री लाला रामगोपाल शालवाले की अपील

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने बंगला देश के नागरिकों की सहायतार्थ एक देश व्यापी अभियान चलाने का निश्चय किया है।

इस सम्बन्ध में सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के महामन्त्री लाला रामगोपाल शालवाले ने पूर्व बंगाल में पाक सरकार द्वारा किये जा रहे बर्बर अत्याचारों की निन्दा की है। उन्होंने आर्य समाजों की ओर से भारत सरकार से अपील की है कि सरकार बंगला देश को मान्यता प्रदान करे और संसार के अन्य राष्ट्रों से बंगला देश की सुरक्षा के मामले में अपील करे।

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की ओर से देश भर की आर्य समाजों से अपील की गई है कि वे २५ अप्रैल को अपनी-अपनी समाजोंमें बंगला देश की सहायता के लिये "बंगला-देश-दिवस" मनाएं और दिवस की सभाओं में सरकार से बंगला देश को मान्यता देने की मांग करें।

लाला रामगोपाल शालवाले ने यह भी कहा कि मैं स्वयं तथा मेरे साथ आर्य नेता श्री ओ३म्प्रकाश त्यागी उन स्थानों का दौरा करेंगे जहां से पाकिस्तान के अत्याचारों से पीड़ित होकर विस्थापित लोग आ

रहे हैं। उन्हें आर्य समाजों की ओर से सहायता प्रदान करेंगे। इस सम्बन्ध में यह भी आशा है कि सार्वदेशिक सभा, यदि सरकार ने स्वीकृति दी, तो चिकित्सा तथा अन्य सहायता के शिविर भी अनेक स्थानों पर खोलेंगे।

प्रचार विभाग
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा
नई दिल्ली

आर्य-समाज १९, विधान सरणी, कलकत्ता-६ के लिये उमाकान्त उपाध्याय, एम० ए० द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित तथा रत्नाकर प्रेस, ११-ए, सैयद साली लेन, कलकत्ता-७ में मुद्रित।